



आधुनिक हिन्दी आलोचना  
पर पाश्चात्य प्रभाव



# आधुनिक हिन्दी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव

रामचन्द्र प्रसाद

एम० ए० (पटना) पी०एच० डी० (एडिनबरा), डा० लिट्० (पटना)

स्नातकोत्तर श्रंगरेजी विभाग, पटना युनिवर्सिटी

**लोकभारती प्रकाशन**

१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१



लोकभारती प्रकाशन  
१५ ए, महात्मा गांधी भाग  
इलाहाबाद १ द्वारा प्रकाशित

●

कॉपीराइट  
श्री रामचंद्र प्रसाद

●

प्रथम संस्करण  
मई, १९७३

●

माया प्रेस (प्रा०) लिमिटेड  
इलाहाबाद-३ द्वारा मुद्रित

मूल्य ३५ ००

हिन्दी-आलोचना  
के

आधार-स्तम्भ

पूज्य पितृवल्प

आचार्य डॉ० नगेन्द्र

को

सादर

‘त्वदीय वस्तु हे देव तुभ्यमेव समपये’

रामचन्द्र प्रसाद



- १ आभार ९
- २ भूमिका डॉ० कुमार विमल ११
- ३ प्रास्ताविक १७
- ४ प्रथम अध्याय हिन्दी आलाचना साहित्य का ऐतिहासिक सर्वेक्षण ४६
- ५ द्वितीय अध्याय पाश्चात्य समीक्षा का ऐतिहासिक सर्वेक्षण ९२
- ६ तृतीय अध्याय हिन्दी की सैद्धान्तिक आलोचना पर ।  
पाश्चात्य प्रभाव—१ १५३
- डॉ० श्यामसुन्दर दास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—डॉ० गुलाबराय—प० रामदहिन मिश्र—डॉ० धीरन्द्र वर्मा—आचार्य बलदेव उपाध्याय
- ७ चतुर्थ अध्याय हिन्दी की सैद्धान्तिक आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव—२ २३४
- प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—शान्तिप्रिय द्विवेदी—आचार्य नन्ददुलार बाजपेयी—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—डा० लक्ष्मीनारायण सुधागु—हिन्दी की नाट्य समीक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव—डॉ० दशरथ ओझा—डा० नगेन्द्र—प्रगतिवादी समीक्षक—प्रकाशचन्द्र गुप्त—डा० रामविलास शर्मा—शिवदानसिंह चौहान—डा० नामवरसिंह—हिन्दी कथा—साहित्य की आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव डा० देवराज उपाध्याय—डॉ० देवराज—अन्यान्य आलोचक
- ८ पंचम अध्याय हिन्दी की व्यावहारिक आलाचना पर पाश्चात्य प्रभाव ३५६
- बाबू श्यामसुन्दरदास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—बलदेव उपाध्याय हिन्दी नाट्य की व्यावहारिक समीक्षा—डा० जगन्नाथ प्रसाद गमा—डा० दशरथ ओझा—प० विश्वनाथ प्रसाद

मिथ—गान्धिप्रिय द्विवेदी—आचार्य नन्ददुलार वाजपेयी,  
—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—डॉ० नगेंद्र—प्रगतिवादी  
आलोचक—अन्यान्य आलोचक

- ६ षष्ठ अध्याय हिन्दी व कवि —आलाचका की समीक्षा पर  
पाश्चात्य प्रभाव ४०२  
जयगवर प्रसाद—निराला—पत—डॉ० रामकुमार वर्मा—महादेवी  
वर्मा—रामधारी सिंह दिनकर—अज्ञेय—नलिन विलोचन शर्मा—  
गजानन भाषव मुक्तिबोध
- १० सप्तम अध्याय हिन्दी-भाषालाचन पर पाश्चात्य प्रभाव ५१३  
११ उपसंहार ५४५  
१२ सदर्भ ग्रंथ और पत्र पत्रिकाएँ ५५४



## आभार

आज तक हिन्दा समीक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव का रूपान्तरण करने का प्रयास कुछ स्पष्ट निबन्धा तक ही सीमित रहा है। इस प्रभाव के विभिन्न पक्षों का एकत्र तथा समन्वित परिचय देनेवाली अद्यतन कृति का सवधा प्रभाव देखकर मैं इस शोध-प्रबन्ध द्वारा इसकी पूर्ति का विनाश्र प्रयास किया है। इस महत्काय के प्रेरक और प्रोत्साहक परमादरणीय विद्वद्भर आचार्य देवदत्त नाथ शर्माजी हैं। उन्हीं के प्रकाश बहुप्य से प्रभावित होकर मैं हिन्दी साहित्य की और आवृष्ट हुआ तथा उन्हीं का स्नेह और आशीर्वाद मेरा सम्बल रहा है। अतः यह जा कुछ भी है, सब गुरुवर का ही है।

हिन्दी के जिन महान् आचार्यों की कृतियाँ से मैं अतिशय लाभान्वित हुआ हूँ व हैं डॉ० धारदर वर्मा, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी डा० नगेद्र आचार्य नन्ददुलार वाजपेया और आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र। अतः इन शास्त्रदर्शियों के प्रति मैं अपनी सश्रद्ध प्रणति निबदन करता हूँ। हिन्दी समीक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव का विवेचन करनेवाले अनुमधित्सु पर भी एडिनबरा विश्वविद्यालय के अगरेजी विभाग के एमेरिटस प्रोफेसर डब्ल्यू० एल० रेनिक इतिहास विभाग के प्रोफेसर जाज शोपसन, ब्रिटिश म्यूजियम के मुद्रित-ग्रन्थ-विभाग के डाक्टर डा० ई० राइस आदि पाश्चात्य विद्वानों का प्रभाव पडा है। प्रस्तुत शोध के रचना-काल में इन महानुभावों ने मुझे जा प्रोत्साहन दिया है उसका मूल्य शब्दा में आका नहीं जा सकता। इन सबके प्रति मैं श्रद्धावन्त हूँ।

डा० कुमार विमल, डा० गापाल राय, डा० सियाराम तिवारी और डा० वचनदेव कुमार जैसे मित्रों का मुझे पग-पग पर स्नेह-सद्भावपूर्ण साहाय्य मिला है और ये मेरे लिए अनन्त प्रेरणा तथा अटल आत्म विश्वास के अजस स्रोत रहे हैं। एतदप्य, इनके प्रति हृदय से आभार स्वीकार करता हूँ।

इस अनुष्ठान के सर्वाधिक महत्त्वभागा मेरे पूज्य पिताजी हैं, जिनके स्नेहा-श्रय में यह श्रम मा अत्यन्त सुखद रहा। उनके वात्सल्य ने मुझे दैनिक चिन्ताओं से तो मुक्त रखा हा, अपन। विद्याव्यसनिता के फलस्वरूप उन्होंने ग्रन्था का जा विशाल सग्रह किया है उसने सामग्री के लिए मुझे भटकने भी नहीं दिया। और, इस प्रकार यह दुर्गम शोध-ग्रन्थ भी सहज-सुगम हो गया। इससे अधिक

घोर क्या वह मरता हूँ कि उतासा मुझे उगी तरह प्राण है तिम तरह उह मरी थडा ।

पटना पूर्वनिर्गटी पुस्तकालय, मि हा साद्वरी, भगत्य पुस्तकालय, पटना कलिज साद्वरी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पुस्तकालय ब्रिटिश वाडगिस साद्वरी प्राणि व व्यवस्थापन। न समय-समय पर पुस्तक। क उपाग की जा सुविधा दी है उक्त लिए मैं इन संस्थाया घोर उनक अधिबार्थिया का धामारा हूँ ।

इस अवसर पर उन सागा का भी धन्यवाण्पूवक स्मरण करगा हूँ तिम अग्रहयाग स मरी प्रेरणा उर्दीप्ततर हूँ है ।

प्रैगर्जी विभाग,  
पटना विश्वविद्यालय ।

—रामचन्द्र प्रसा

## भूमिका

अंगरेजी और हिन्दी के समन्वय लेखक डा० रामचन्द्र प्रसाद का यह ग्रन्थ आधुनिक हिन्दी आलोचना के स्वतंत्र व्यक्तित्व को निर्गुण किये बिना, उसे प्रेरित और प्रभावित करने वाले पाश्चात्य प्रभाव का विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण उपस्थित करता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव के विभिन्न पक्षों को आलोचित करने का अनेक निबन्ध और ग्रन्थगत दो श्लोकों के अन्तर्गत प्रकाशित हुए हैं। किन्तु डा० प्रसाद के इस विचार-गम ग्रन्थ में विवेच्य विषय का जो गहन और अनाविल उपस्थापन हुआ है वह इसे एक व्यावक्तक वैशिष्ट्य देता है।

लेखक केवल परिश्रमी या विद्वान ही नहीं, ममज्ञ भी है। इसलिए उसे उन स्थलों की सहज परख है, जहाँ रचना या कृति का चमत्कार अथवा कृति-कार की रसदीप्त अनुभूति का प्रकट छिपा रहता है। यद्यपि यह पुस्तक किसी 'रचना' की आलोचना न हो कर आलोचना की आलोचना है, तथापि इसमें अनेक स्थलों पर वह परख और सहज प्रसन्न शली की चमक है, जो ममज्ञता की सही पहचान है।

इस ग्रन्थ के अन्तर्गत पाश्चात्य प्रभाव के विवेचन में किसी पूर्वाग्रह से काम नहीं लिया गया है। लेखक ने अपनी आधारभूत धारणा को बड़े ही निर्भ्रान्त शब्दों में उपस्थित करते हुए लिखा है—'यद्यपि हिन्दी-आलोचना-साहित्य की श्रीवृद्धि में पश्चिम का महत्त्वपूर्ण योगदान है, तथापि उसने इसकी स्वीय चेतना निधि को निःशेष नहीं किया, इसकी सत्ता नहीं मिटायी। भारतीय काव्यालोचन की निजी, स्वदेशी परम्परा 'अपरीक्षितवाद-ग्रहण मात्र न होकर आप ही आप अत्यन्त प्राणवान, प्रौढ तथा सशक्त है, जो युग-युग से भारतीय वाङ्मय को प्रभावित करती रही है। हिन्दी-समीक्षा की जब स्वदेश की सबल, सपोषित परम्पराओं में ही याचिष्ट होनी चाहिए, यद्यपि पश्चिम से यही उदरक इसके सबद्धन के लिए आवश्यक है, फिर भी हिन्दी भारतीय भूमि में ही अनिवाद्य प्राण-शक्ति लेकर पल्लवित-मुष्पित हो सकती है।' (प० २४) लेखक का यह सन्तुलित दृष्टिकोण प्रशंसनीय है, क्योंकि हिन्दी साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव के सन्दर्भ में अधिकतर असन्तुलित या अतिवादी दृष्टिकोण ही निरूपित होते रहे हैं। लाड मेवाले की शिक्षा-नीति के फलस्वरूप



बहुत ज़्यादा तक भारतीय विद्वान्-मंडली का वर्ग (Orientalist और Occidentalist) में बँटते रह गये। अँग्लो-वेस्टी इंग्लैण्ड में परिचितियों की अनुकूलता या शासकीय महत्त्वात्ता 'अँग्लो-वेस्टी-इंग्लैण्ड' का ये वर्ग-व्यवस्था को ही सिद्धि देती और यही वर्ग शासकीय महत्त्वात्ता का वास्तविक अर्थ उक्ताने वाला रहा। अब अँग्लो-वेस्टी इंग्लैण्ड का ही मत उक्त महत्त्वात्ता का वास्तविक अर्थ के वर्ग-व्यवस्था में परिचितियों में परिचितियों का अर्थ अन्वयण का मत बना हुआ है और भारतीय साहित्य पर वास्तविक प्रभाव की प्रतिबन्धिता में प्रकट-परिहास ही जा रहा है। एसी परिचितियों में ही प्रभाव का उचित निर्दिष्ट मन्वयण आपूर्ति भारतीय वेष्टी इंग्लैण्ड का वास्तविक प्रभाव का नाम बताया है।

संसार-साहित्य और संस्कृत-साहित्य का सम्बन्ध ही परिचितियों का युग में पुरुष और परिचितियों का बीच प्रभाव का वास्तविक अर्थ प्रकट करता ही साहित्य। सभी आन्तरिक साहित्य और साहित्यिक प्रभाव पर एक विचार ही बलवान् परिचितियों है। यद्यपि तथा एक सांस्कृतिक साहित्यिक साहित्य (संस्कृत-साहित्य) का निर्माण ही महत्त्वात्ता। अन्वय-साहित्यिक साहित्य साहित्य-मुविषा एवं साहित्यिक महत्त्वात्ता में इस प्रभाव-युग में निर्माण प्रकट जायत और आपूर्ति प्रकट-प्रकटता का दोष में परिचितियों हुए दण्ड का तिरा अन्वय दण्ड का स्वयं प्रभाव में बताया या अन्वय दण्ड-प्रकटता का बीच परिचितियों जुगुप्सा अपवा विष्टी भाँडा (जाफा-विष्टी) का उम्मार कर वास्तविक प्रभाव का एकदम अप्रकटित रहने का वास्तविक अनुचित और कठिन है। विष्टी प्रभाव विष्टी-प्रकटता का इस महत्त्वात्ता में तिरा का दूसरा पहलू अन्वय-प्रभाव उक्ति का ही रह गया है। अर्थात् हमारा पाश्चात्य साहित्य पर भारतीय प्रभाव का अध्ययन विष्टी-प्रकटता का बराबर विष्टी है। वास्तविकता यह है कि नये नाम और प्रकृत धारण पर यूरोप तथा अमेरिका के साहित्य एवं साहित्यिक बला की कई प्रकृतियाँ आज उन्हा दिशा-प्रकटता में नई दोष लगा रहा है। जा दिशाएँ पुरुष की, विशय-पर भारत की पुरास्वीकृत और स्वायत्त निर्माण है। केवल बीते हुए युग में ही नहीं, आज भी प्राच्य प्रकृतियों पाश्चात्य साहित्य का बादीय ढंग में प्रभावित कर रही हैं। यीटम और टी० एस० एलिफट की बात कौन कहे अभी-अभी बीट जेनरेशन का कविता में कुछ एसा दार्शनिक कविताएँ लिखा है, जिन पर भारत-प्रकटता, ध्यान और बोधितत्व की धारणा का गहरा प्रभाव है। आशय यह कि पश्चिम का अन्वय कवि और कलाकार आज वसी रचनाएँ प्रकृतित कर रहे हैं, जसी रचनाएँ बल तक भारत, ईरान

या चीन जैसे प्राच्य प्रवृत्तियाँ के प्रतिनिधि देशों के कलाकारों द्वारा ही सम्भव थी। अचरज यह है कि जब तक एशिया या अफ्रीका के कवि-कलाकार किसी बात को कहते रहते, हैं तब तक हम उसे आधुनिक नहीं कहते, किन्तु, जब उसी बात को पश्चिम के कठ, कलम या कूची से अभिव्यक्ति मिल जाती है तब हम उस, सम्भवतः अपनी निधियाँ से अपरिचित रहने के कारण, 'आधुनिक' और 'नवीन' कहने लगते हैं। पश्चिम के स्पष्ट वा जादू यह है कि पुरानी अफ्रिकन मूर्तिकला के प्रभाव को स्वीकार करने वाला 'क्यूबिज्म' हमारे लिए अतिआधुनिक बन गया है और चौथी शताब्दी के चीनी कवि Lu Chu क गद्यगीत (Fu) से प्रेरणाएँ पाकर लिखने वाला अमेरिकन कवि (Archibald Macleish) हमारे लिए आधुनिक प्रवृत्तियों का साहित्यकार बन गया है। अतः पश्चात्य साहित्य पर भारतीय या प्राच्य प्रभाव का भी उद्घाटन होना चाहिए। चूँकि डा० रामचन्द्र प्रसाद केवल अँगरेजी साहित्य के ही शास्त्र निष्णात विद्वान नहीं बल्कि हिन्दी साहित्य और भारतीय अध्यात्म के भी अच्छे ज्ञाता हैं इसलिए इस ग्रन्थ के पूरक रूप में वे ही पश्चात्य साहित्य पर प्राच्य प्रभाव का मानक अध्ययन उपस्थित कर द तो समकालीन भारतीय मनीषा में पुनः आत्मविश्वास की एक तरंग फैल जायगी।

आशा है प्रबुद्ध पाठक-वर्ग डॉ० प्रसाद के इस ग्रन्थ का हार्दिक स्वागत करेंगे।

४ नवम्बर, '७२

—कुमार विमल

निदेशक,

बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना—४



आधुनिक हिन्दी आलोचना  
पर पाश्चात्य प्रभाव



प्रस्तुत विषय का सीमा निर्धारण  
एव उपलब्ध सामग्री का परीक्षण

“आजकल पाश्चात्य बाद विद्या के बटुत से पत्ते यहा पारिजात  
पत्र की तरह प्रदर्शन किए जाने लगे हैं।”

—रामचन्द्र शुक्ल (चित्तमणि, २, पृ० १६५)

विज्ञान धार्मिक बुद्धिवाद तथा औद्योगिक सन्नियता से प्रभावित अनेक-  
रूपात्मक परिस्थितिया का यह युग जहा एक जोर राष्ट्रीय चेतना एव राष्ट्रीय  
शक्तिया के एकीकरण को महत्त्व दे रहा है, वही दूसरी ओर स्थान एव दूरत्व  
के व्यवधान को निम्न गति से विघटित होत देख, अन्तराष्ट्रीयता और सावभौम  
संस्कृति का सशक्त पोषण कर रहा है । विज्ञान के चतुर्दिक् प्रभाव के कारण  
संसार की विभिन्न सभ्यताएँ प्राणतनुजा से अनुभूत होकर यूनाधिक भौतिक,  
औद्योगिक एव यांत्रिक हानी जा रही हैं । वैज्ञानिक आविष्कारों से जीवन कम-  
व्यस्त और गत्यात्मक हो गया है, संसार में पारस्परिक निर्भरता, सांस्कृतिक  
आदान प्रदान, सम्पन्न और मिश्रण की कडिया अत्यन्त सशक्त तथा समन्वित  
हानी जा रही हैं । ऐसी दशा में साहित्यिक मिद्धात और आलोचना के प्रतिमान  
बड़े वेग से भ्रमण करत हुए देश-द्वानतर क पाठकों और लेखकों को प्रभावित  
करत हैं । चूँकि न्यूनतम प्रवृत्तियाँ स्वत आकषक हाती हैं, युग-युग से प्रचलित  
रूढ़-जजर संस्कारा तथा साहित्यिक परंपराओं से उठे हुए लेखक इनसे सहज

ही प्रभावित हो, साहित्य को एर नई दिशा दते हैं और नवनवीनमेपशालिनी प्रतिभा से युक्त लेखक उनमें अपनी भाषा की रचि तथा परम्परा के अनुकूल परिवर्तन लात हुए अभिनव रचना शैली और सिद्धान्त की सृष्टि करते ह । यदि नय विचारा का उदभव किसी सगल राष्ट्र की उबरा साहित्यिक भूमि में हाता है और उन विचारा के जनक विश्वविख्यात साहित्यकार होते ह तो एस विचार और सिद्धांत स्पभावत ही अधिन ग्रहण हो जात हैं । मेधावी तथा परिष्कृत रचि लेखक और नीर-शीर विवेकी हसापम आलाचक, जो जाप ही कम भाव प्रवण नहीं होत, मनानुकूल उपयोगी विचारा को शीघ्र ही गतमसात् कर लेते है ।

आधुनिक हिन्दी समालोचना साहित्य में सामान्यत दो विभिन्न प्रकार के प्रभाव एकर देखे जात है । कुछ समीक्षक ने भारतीय काव्यशास्त्र के परंपरा पोषित आदर्शा को अपनाया है और कुछ ने पाश्चात्य जालोचना तथा इसके मूलभूत सिद्धांतों को अपनी विचार धारा का अविच्छिन्न अंग बना लिया है । कई भारतीय समीक्षकों ने अपने तर्कों और विचारा की पुष्टि मात्र के लिए पाश्चात्य आलोचना के मानदंडों को अपनाया है तथा पाश्चात्य लेखकों के जगरेजी उद्धरणों से अपने तर्कों की पुष्टि की है—'उनका नाम जपकर उनके सहारे बतरणी पार करना चाहा है ।' इतना ही नहीं, कई आलाचकों ने स्वयंकी परंपरा तथा समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियों को सवथा विस्मृत करत हुए पाश्चात्य प्रतिमानों में हिन्दी की कला-कृतियों की समीक्षा की है । तीसरे प्रकार के आलाचक सुविधानुसार आलोचना की कभी पाश्चात्य, कभी पौरस्त्य परंपरा को स्वीकार करते हुए आलोचना का वह सुष्ठु समन्वय प्रस्तुत करत है, जिसका सूनपात जाचाय शुक्ल ने किया था । हिन्दी में ऐसे निवधों का भी अभाव नहीं जो पश्चिम के मूधय साहित्यकारों तथा साहित्य से सम्बद्ध कतिपय विचारा पर लिखे गए है और न ऐसे निवध ही कम है जिनमें पाश्चात्य एवं भारतीय साहित्यकारों सिद्धांतों और मानदंडों की तुलनात्मक समीक्षाएँ प्रस्तुत की गई ह । इनके लेखक प्रायः ऐसे जतदष्टि सम्पन्न समीक्षक हैं, जिन्होंने भारतीय तथा पाश्चात्य काव्य शास्त्र का और समालोचना की विभिन्न परंपराओं एवं अंग उपागों का मूधम अध्ययन किया है और इनसे एक साथ ही प्रभावित हुए है ।

काव्यशास्त्र के जिन अगाध पाश्चात्य जनयिष्णुओं तथा प्रभावकों ने हमारी

१ माध्यम, सितम्बर १९६५, पृ० ९५ साहित्य पर बाह्य एवं स्थायी प्रभावों के कारणों, प्रकारों और माध्यमों के लिए देखें माध्यम अगस्त १९६५ पृ० २४-२७ ।

पुनातन साहित्यिक भीमता में नये अन्तर्लोक उदगमिन किए हैं, उनमें ग्रेज साहित्यकारों का स्थान सर्वोपरि है। उनका प्रभाव 'उन्नीसवीं शती के' लिये चरण से जाग्म होकर अद्यावधि अनेक रूपा और प्रकारों में प्रतिफलित हो आया है। उनके ग्रन्थों के हिंदी अनुवाद हुए हैं और उनकी साहित्यिक मान्यताएँ तथा सिद्धान्त-उपपत्तियाँ ने आधुनिक हिन्दी-समीक्षा के अन्तर्गत प्रवेश कर उन पर पश्चिमी रंग चढ़ाया है। उनके ग्रन्थों के माध्यम से अनेक प्रकार की नयी-नयी वाक्य-रचनाओं के विचार अपनाये हैं और अनेक प्रकार की नयी-नयी वाक्य-रचनाओं की अपनी स्वतंत्र सिद्धान्त-निधि में जनक अन्तर्लोक उदगमिन का जन्म हुआ है जिसके परिणामस्वरूप आज का हिन्दी-सामाजिक-साहित्य अत्यन्त समृद्ध एवं समृद्ध हो गया है। अतएव प्रस्तुत ग्रन्थ में उन अग्रज साहित्यकारों का ही अग्रिम विवरण है जिन्होंने हमारी समीक्षा की मर्यादा का भङ्ग किया है। इस पर अपने प्रभाव एवं विभूतियों के अतिरिक्त विवरण दिए हैं। किन्तु अग्रजों की समग्र युरोपीय वादमय समृद्धत युरोपीय समीक्षा-शास्त्र की दृष्टि परंपरा में—अनुप्राणित एवं संपादित विभिन्न प्रवृत्तियों का समन्वय है। इस पर युरोपीय विचार-धाराएँ तथा आलोचना-सिद्धान्तों का अपना ही प्रभाव है, जितना आधुनिक भारतीय वादमय पर पश्चिम का है। भारतीय वाक्य एवं साहित्य-रचना पर पश्चिमी साहित्यिक मान्यताओं के इस प्रभुत्व प्रभाव के मूल में अग्रजों साहित्यिक परंपराओं की सततता तथा प्रभुत्व का साथ ही अंग्रेजी साम्राज्य की वह व्यापक परिधि का जो भारत भी समाविष्ट था। अंग्रेजों के शासन-काल से ही उनकी भाषा और साहित्य का प्रभाव प्रभूत होता गया और मर्यादा स्वतंत्र भारत में भी इसका प्रभुत्व अत्यन्त ही होता है।

१ डॉ० बेंकट गर्ना, आधुनिक हिन्दी-साहित्य में समालोचना का विकास, (दिल्ली, १९६२), पृ० ११६, द्रष्टव्य "अपने साहित्य की इस हीनता की मर्यादा ने कुछ लोगों को अनेक की ओर तथा कुछ को पश्चिम के अधा-नुकरण की ओर आकृष्ट किया। इन दोनों प्रवृत्तियों में सामंजस्य भी स्थापित हुआ, जो भारतीय साहित्य चिंतन और जावन के लिए धेयस्कर सिद्ध हुआ। आज भी इसी में भारत का कल्याण है। पश्चिम के अनुकरण पर उत्तम साहित्य और कला की नवीन शक्तियाँ और विज्ञान की नवीन सरणिशा का अन्वेषण प्रारम्भ हो गया।" डॉ० भावत्स्वरूप मिश्र, हिन्दी आलोचना उदभव और विकास (देहरादून, १९६१), पृ० २२७।



अंगरेजी साहित्य पर इटली, फ्रांस, जर्मनी तथा रूस आदि देशों के साहित्य का जो गहरा प्रभाव देगा जाता है, उसका कारण इन देशों के सम्पन्न साहित्य की प्रभेदभावना, अंगरेजी की श्रेष्ठ ग्रहणशीलता और उनके दृष्टिकोण की स्वस्थ-गूढ़ उदात्तता है जिसके फलस्वरूप, जान-बूझ तथा एलियट जैसे जालोचना परभावक है और कुछ हद तक जालोचना का यह कर्तव्य है कि वह इस विचार-धारा को प्रवहमान बनाए रखे साथ ही सर्वात्म विचारधारा के अन्तर्गत प्रवाह को स्वदेशी आदर्शों के प्रति आभ्यासानु तो हाना ही चाहिए विदेश के दान चिंतन से भी लाभान्वित होने का प्रयत्न करना चाहिए। यूनान तथा रोम की महा साहित्यिक धृतियाँ अंगरेजी के लिए अमूल्य सारभूत आदर्श उपस्थित करती हैं। फ्रांस की ऐतिहासिक तथा युगांतरकारी राज्यान्तरी से उत्तीसवा शती के अंगरेज स्वच्छ-दत्तावादी कवि ही अत्यधिक प्रभावित नहीं हुए थे १७८८ की इस महान् घटना-संकुल प्राति के बाद फ्रांस समस्त यूरोप का राजनीतिक एवं साहित्यिक प्रयोगशाला भी हो गया। इस प्राति के पहले डगलड पर नामन विजय से ही फ्रांस के प्रभुत्व (डॉमिनेशन) का श्रीगणेश होता है जिसके कारण इंग्लैंड में चौदहवीं शती तक फ्रांसीसी भाषा का वही स्थान रहता है जो मध्ययुगीन गिरजा घरों तथा मठों में लटिन का। इस विजय के पूर्व यूरोप में सभी पढ़े लिखे व्यक्ति लटिन बोलते थे और इंग्लैंड में भी पूजाचना के लिए इसी भाषा का प्रयोग होता था। नामन विजय के माय ही एक नई भाषा—नामन फ्रांसीसी—का उपस्थापन होता है, जिसने जनपदीय भाषा अंगरेजी को अत्यधिक प्रभावित किया। हिंडन विरचित 'पालिनाइकन' में लिखा है

(इंग्लैंड के) स्कूलों में पढ़नेवाले विद्यार्थी अब राष्ट्रीय प्रचलित शिक्षण प्रणाली के विपरीत अपनी देश भाषा को त्यागने के लिए सम्बन्धित किए जाते हैं और उन्हें अपने पाठों की व्याख्या फ्रांसीसी भाषा में करनी पड़ती है। जब नामन ने पहली बार इंग्लैंड में पदापन किया था तब से आज तक वे ऐसा ही करत जा रहे हैं। उच्चकुलोत्पन्न शिशुओं को उस समय से ही फ्रांसीसी भाषा बोलने की शिक्षा दी जाती है जब वे पालने में मूलते होते हैं और प्राचीन लोग जो अपनी बुढ़ाई में पुराने से बरने के लिए लालायित रहते हैं बड़े परिश्रम से फ्रांसीसी भाषा बोलने की चेष्टा करते हैं।<sup>१</sup>

१ एडविन रीस्ट, चॉसम बर्ड (न्यूयार्क, १९६२), पृ ११९।

चौदहवीं शती में इंग्लैंड की जनपदीय भाषा की यही अवस्था थी। वस्तुतः सन् १०६६ ई० से ही लटिन तथा फ्रांसीसी भाषाओं ने विभिन्न प्रकार से जन-सेवादि के तथा व्यक्तिगत कायप्रभा से प्राचीन अँगरेजी को अपदस्थ कर अपना स्थान देना दिया था। यहाँ तक कि चॉसर, गावर तथा चौदहवीं शती के अन्य सभी ख्यात कवियों की रचनाओं पर फ्रांसीसी कविता और इसकी परंपराओं का प्रभूत प्रभाव देखने का मिला है। फ्रांसीसी भाषा में प्रणीत 'द रामास आव द रोज' सरीखी अन्यायपरक कविताओं ने तथा इसी भाषा में सबसे प्रथम उद्भूत शालान, दरवारी साहित्य न—'काटलैं' परंपरा ने—सामयिक अँगरेजी काव्य का अत्यधिक प्रभावित किया, जिसमें स्वप्नगत अन्यायपरक कविताओं की उस महती शृंखला का सूत्रपात हुआ जिसमें 'पल्', 'द युव आव द डचेम', 'पियस द प्लाउमन' आदि कविताएँ अनिवाय कड़ी-सी रंगती हैं। इसी समय इटली में उस समस्त साहित्य की प्रभुता यूरोप के अथ देशों के साहित्य पर पड़ने छितराने लगी, जिसे 'नवजागरण' का महान् असादान समझना चाहिए। इटली ही वह सौभाग्यशाली देश था जहाँ इस सर्वतोमुखी साम्प्रतिक महानिर्माण के आदिमक-मानसिक आदानों का महारम्भ हुआ। पंद्रहवीं शती के इतालवी मानववादी लेखकों ने मध्ययुगीन परंपराओं में सम्बन्ध-च्छेद करके अपने शिक्षण तथा प्रेरणा के द्वारा साहित्यिक विमर्शों का जीवनपन किया। उन्होंने साहित्य के प्रति एक नए दृष्टिकोण का उदघाटन किया और पुरातन आभिजात्यवाद की परंपरा एवं दृष्टि का जयगान करते हुए आनवादी पीढ़ियाँ रोमानी तथा रोमी ग्रन्थों और विद्वान्ता से परिचित ही नहीं कराया, अपितु उनमें साहित्यिक मूल्यों एवं मायताओं के प्रति एक अभिनव चेतना का संचार भी किया। सोलहवीं तथा सत्रहवीं शती के मिटनी, एमकम वैन जानसन पटनम आदि आलाचक्र उनके विचारा से अनिश्चय अनुप्राणित हुए और उनके समसामयिक कवि इतालवी काव्य में—गात, पटगक, वुकसियो, टैमा प्रभृति काव्यकारों में—उत्प्रेरित हुए। उनके महाकाव्यों में इंग्लैंड में गणनादिक तथा धार्मिक प्रयत्न-काव्यों को, स्पेन्सर तथा मिल्टन को, प्रभावित किया, अँगरेज कविता में जपनी जनपदीय भाषा और इसकी सम्भावनाओं के प्रति चेतना का उदय किया और उनमें प्रतिस्पर्धा की वह भावना जाग्रत की, जिसके कारण इंग्लैंड के कविता ने अपनी भाषा की समष्टि के लिए अथक चेष्टा की। इसी समय बर्नार्ड आविड आदि कविता में भी अँगरेजी काव्य को प्रभावित किया, फ्लूटाव, आविट और काम्पिलियन की रचनाओं के अनुवाद हुए और 'दाइनि' का प्राधित्व सम्पूर्ण प्रकाशित हुआ। सत्रहवीं शती के अँगरेजी

गद्य पर लटिन का, जान डन की कविता पर ओविड का (मध्ययुगीन शिक्षता,  
 विज्ञान तथा प्लेटोनिज्म का भी), वेन जानसन की आलाचनाओं पर अरम्भ,  
 मिण्टुनों, सेलिगर तथा डेनियल हेसियल का प्रभाव ज्वित है। नव्य-अभिजातवादी  
 युग में प्राचीन अभिजात साहित्य की आत्मा पुनः प्रतिष्ठित हुई और ड्राइडन  
 पोप प्रभृति व्यंग्य-लेखकों के ऊपर होरेम जुवेनल, वेरो जादि के प्रभाव पड़े।  
 उन्नासवी शती में कार्लरिज ने जर्मनी के दार्शनिकों और चिन्तकों से प्रभावित  
 होकर ललित कल्पना और कल्पना के भेद भावों को स्पष्ट करने हुए साहित्यिक  
 समीक्षा तथा समीक्षण के लिए उपादेय मनोविज्ञान, दर्शन जादि में जट्ट सज्ज  
 स्थापित किया और यह प्रमाणित कर दिया कि आलोचकों के लिए घोर  
 जयन्माय रूसोमेविणी प्रतिभा, व्यापक अध्ययन तथा अभिरुचि की  
 नम्यता आदि तो आवश्यक है ही साथ ही उमरे लिए शिक्षा की विभिन्न  
 शाखाओं ( इतिहास ) के प्रति अनुराग भी अपरिहार्य है। आधुनिक  
 युग में एलियट तथा लीविम जैसे समीक्षकों ने निररूप उच्छ्रित एवं अविनाश  
 साहित्यालोचन के लिए साहित्य से परे विभिन्न विषयों का—मनोविज्ञान भाषा-  
 विज्ञान, नवविज्ञान दर्शन साहित्यगत स्वराष्ट्रीय रचना एवं परंपराओं का—  
 ज्ञान अर्पणित बनाया है। कार्लरिज ने यह सिद्ध कर दिया है कि समीक्षा के  
 लिए यदि दर्शन तथा मनोविज्ञान का समुचित ज्ञान हो तो इनमें प्रभावित एवं  
 निर्मित समीक्षा का महत्व उम समीक्षा से बढ जाता है जिसकी  
 रचना कोरे साहित्यिक माना के आधार पर हुई है।

उन्नीसवी शती के अँगरेजी साहित्य पर पौरुष मर्मृति का एक साहित्य  
 का बम प्रभाव पड़ा पडा। वह स्वयं और शरीर जन्म कथिया की रचनाओं में  
 प्राच्य रूम्यवाद का मिन्य अतमान मित्ता है। मर विनियम ज्ञान चारम  
 विनियम मनियर विनियम मम म्मून् शरीर अनय विज्ञान की रचनाओं  
 का इग प्रभाव के म्मय प्रमार में जो योगदान है वह मकया बच है परन्तु  
 अँगरेजी विचार धारा एवं दर्शन चिन्ता पर शरीर ममय बाट तथा शरीर का अन्वय  
 प्रभाव पना जिनम अँगरेजी समीक्षा का न आध्यात्मिक और पाप्य सामग्री  
 मित्ती। म्मू जानड की रचनाओं में भा प्राचान अभिजात तथा तात्कालीन  
 यूरोपीय समीक्षा-परम्पराओं का वर्तमान युग में एलियट की समीक्षा एवं  
 बैरि का अन्वय प्रभाव दर्शन का मित्ता है।  
 अन्वय पाश्चात्य प्रभाव को चार्लर भी इन अँगरेजी साहित्य  
 विज्ञान अँगरेजी समीक्षा के प्रभाव तदा ही मानित तदा गग मान। इमिन्त

हम आधुनिक हिन्दी-समीक्षा व उन प्रवाहा और अन्तःप्रवाहा का परिशीलन करेंगे जिनसे स्वयं अंगरेजों समीक्षा प्रभावित है। तात्पर्य यह कि जहाँ हम अंगरेजी समीक्षा पर जोर देंगे, वहाँ पश्चिम व अन्तःप्रवाह दंगा की उन समीक्षा-परंपराओं को भी परिवर्तित करेंगे, जिन्होंने पहले अंगरेजी का और तत्पश्चात् उसके माध्यम से हिन्दी-समीक्षा को प्रभावित किया है।

आधुनिक अंगरेजी समीक्षा का यहूला अर्थ ऐसी आलोचना लिखने में व्यस्त है जिसमें पाठित्य अधिक होता है, विगुड साहित्यालोचन कम। पंडितोचित आलोचना गाहन, रीते, रोजमठ ट्यूव सुदंग अध्यापका की रचनाओं में तथा प्रियमन, वेटमन जादि सम्पादका की टीका टिप्पणियाँ में स्थापित है। ऐसी आलोचना प्रायः सजनात्मक कृतियों के मूलानुगत का अवपण और भयन करती हुई व्याख्यात्मक आलोचना का स्वरूप ग्रहण करती है। ऐसे आलोचक कवि तथा लेखक द्वारा प्रयुक्त विम्व या वाक्यांग के उन जलम-सूत्रों की छानबीन करते हैं, जिनमें विम्व या वाक्यांग निम्न ही हैं। जॉन लिविंग्स्टन लोज की रचित पुस्तक 'द रोट टु जेड' ऐसी ही उपमन, जामूसी रचना है, जिसमें विद्वान लेखक ने उन सनी श्रया का टूट निराला है, जिन्हें कालरिज ने पना था और जिनमें अपनी कविताओं के लिए विम्वदि किये थे। प्रभावा के परीक्षण तथा रचनाओं के उत्तम के परिशीलन पर जायन समीक्षात्मक कृतियों सामान्यतः लेखक की निरामु बुद्धि की परिचायिका या जामूसी ही होगी। प्रस्तुत प्रबंध में अद्यतन हिन्दी-समीक्षा पर पठनवाले पाठकान्य प्रभावा का निरूपण ऐसा ही प्रतीत हो सकता है। जिस प्रकार कभी-कभी जामूसी जाच-मडताला के परिणामों में प्रामाण्य नहा हाता उसी प्रकार प्रभावा के प्रदंग भी पयाप्त विद्वसनीय आधारा के अभाव तथा अपनान विमानुत्ता और शिप्रता आदि के कारण वहा प्रनाम देवन शिगत हैं, जहा उसका रंग भी नहीं होता अथवा ऐसे सूत्रों की ओर सवन करन हैं जिनसे विवेचित व्यक्ति का कभी परिचय ही न था। वस्तुतः आधुनिक हिन्दी-समीक्षा पर प्रभाव दिखानेवाले आलोचक ऐसी मूल जिन शीघ्रता से कर बैठते हैं वसी शीघ्रता से अन्य भाषाओं की समीक्षा पर पठनवाले प्रभावा के अनुगधाता एव समीक्षक नहीं करत।<sup>१</sup> इसका कारण

१ सत्यदेव परिव्राजक ने कुछ ऐसी ही बातें हिन्दी समीक्षकों के सबंध में आज से वर्षों पूर्व कही थीं। दे० 'साहित्य-सेवियों से नम्र निवेदन', सरस्वती, १९२९, पृ० ४८३। इसी सदन में द्रष्टव्य—डॉ० देवराज, चिंतन-प्रमग - प्रभावित होने की बात, कल्पना, जगस्त, ६१, पृ० ९९-१०१। पुनश्च



२ भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्यकारों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करनेवाले निम्न अथवा ग्रन्थ,

३ भारतीय कविता और लेखका पर लिखी जानेवाली ऐसी जालोचनाएँ जिनके आधार पाश्चात्य मानक हैं। इन जालोचनाओं के तीन प्रकार हैं —

(क) पाश्चात्य जालोचका द्वारा लिखी गई भारतीय विषया पर समीक्षा (हिन्दी के अपभ्रंशित प्राचीन कविता, ग्रन्था अथवा जनम वर्णित घटनाओं आर पाना के कात् निधारण म पाश्चात्य ऐतिहासिक एवं साहित्यिक रचनाएँ उपयोगी सिद्ध हुई है।<sup>१</sup>)

(ख) अहिन्दी, किन्तु भारतीय लेखका द्वारा प्रस्तुत हिन्दी साहित्य-संबंधी विषया पर लिखी गई समीक्षा, और

(ग) हिन्दी के निजी समीक्षका की कृतियाँ,

४ विभिन्न विषया पर लिखी जानेवाली जालोचनाएँ, जिनके प्रतिमाना म भारतीय तथा पाश्चात्य सिद्धान्ता का समिश्रण है और जो किसी परंपरा विरोध का अनुसरण नहीं करती, ऐसे जालोचक अपने सम्कारा की दृष्ट पीठिका पर ही अपने पश्चिमी विचार स्थापित करते हैं,

५ कुछ ऐसी समीक्षाएँ, जिनम पाश्चात्य जालोचना अथवा साहित्य का प्रभाव नाममान का ही है एक ही विषय, एक ही समस्या पर विचार करनेवाले जालोचक—प्राच्य एवं प्रतीच्य—कभी-कभी समानानतर तक विचार, किलेपण आदि प्रस्तुत करते हैं,

६ पाश्चात्य जालोचना-ग्रन्था के आधार पर लिखी गई हिन्दी समीक्षाएँ अनुवाद जादि।

इनके अतिरिक्त यह भी निर्विवाद है कि अनेकानेक पाश्चात्य सजनात्मक कृतियाँ ने आधुनिक हिन्दी-काव्य तथा गद्य-साहित्य को प्रभावित किया है। ऐम काव्य और गद्य की समीक्षा मे पाश्चात्य तत्त्वा का समाहार देखा जा सकता

१ द्रष्टव्य बोगोत्सव-स्मारक-संग्रह मे महामहोपाध्याय रायवहादुर श्री गौराशंकर ओझा का 'पृथ्वीराज रासो का निर्माण-काल' शीर्षक निबन्ध (पृ० २९-६६) और मई १९५५ मे अवलम्बित मे प्रकाशित 'कालिदास का समय' (पृ० ४६८-४७०)।

है। स्पष्ट है कि इस प्रबंध में 'प्रभाव' शब्द का अत्यन्त नमनशील मानकर कभी-कभी 'छाया' के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है। 'गोघ-वर्ति' न कहीं भी इससे संकुचित अर्थ में इसे प्रयुक्त नहीं किया, जिसके पत्र-स्वरूप उन स्थला पर भी उसने प्रभाव देखा है जहाँ पाश्चात्य विचार-सरणीया का केवल समर्थन या उल्लेख ही हुआ है।

पाश्चात्य विद्वाना ने भी प्रभावा के निरूपण में जहाँ एक ओर बड़ी तत्परता दिखाई है, गौण से गौण रचानाओं पर भी पढ़नेवाले विभिन्न प्रभावा की छान-बीन में वे सतत रहे हैं वही दूसरी ओर उनकी भूला ने आधुनिक समीक्षा में जनकवा विवादा की जटिल श्रृंखला का प्रजनन किया है। निम्नलिखित उद्धरण जहाँ मनोरंजक हैं वहाँ हम इस बात की चेतावनी भी देते हैं कि साहित्यिक प्रभावों के समीक्षण में कभी ही सततता एवं सम्म-समुचित वैज्ञानिक विस्तेषण की अपेक्षा होती है जैसी सततता आधार सामग्री की भित्ति पर वैज्ञानिक तथ्यनिरूपण के लिए आवश्यक है। साथ ही इनसे 'प्रभाव' के मन्वे अर्थ की व्युत्पत्ति होती है और इन बात का जान जाना है कि प्रभावा का राज और मफन्ता के लिए समीक्षा को बड़ा ही सतक रहना चाहिए—उसमें हमोपम सादृशाहता होनी चाहिए।

- (१) गेक्सपियर ने जिन पुस्तका और नाटका का अध्ययन किया था उनमें इतने अधिक जग्राप्य हैं कि यदि हम १६१६ के पूर्व प्रकाशित सभी उपलब्ध पुस्तका को पढ़ें तब भी हमें निम्नदेह यह स्वीकार करना होगा कि हमने व सारी पुस्तक नहीं पढ़ी, जिनमें गेक्सपियर परिचित था। हम जिन भावा या वाक्याणा को अपनी समधीत तथा जानी-पहचानी पुस्तका से उद्धृत हुआ समझते हैं, वे सम्भवत उन पुस्तका से लिए गए हैं जो आज दुर्लभ हैं। इसके अतिरिक्त सादृश्य का कारण कभी-कभी संयोग-मात्र भी हो सकता है,<sup>१</sup> गेक्सपियर ने अपने शब्द वाक्याणा या भाव कई स्रोता से व्युत्पन्न किए होंगे<sup>२</sup>—जैसे वातावरण से, शब्द-वासा पांडुलिपियो तथा पत्रा में। मूल-वाता के अनुसंधान में

१ Some resemblances may be coincidental

२ Shakespeare may have derived the word, the phrase, the image or the idea from a variety of sources

तत्पर समीक्षक जिस प्रकार की भूलें प्रायः कर बैठते हैं उसका एक रोचक उदाहरण क्लियोपेट्रा की मृत्यु पर होनेवाले विवचन से मिलता है। एक समीक्षक ने शेक्सपियर के इस दृश्य में तथा पोल-रचित 'प्रथम एड्यक्ट' के एक ऐसे स्थल में साम्य देता है, जिसमें एक बाले साँप को इन शब्दों में संबोधित किया गया है "ला प्यार बच्चे, स्तनपायी करा।"<sup>१</sup> क्लियोपेट्रा साँप के संबोधन में कहती है

क्या तुम मेरे बच्चे को मेरे स्तन पर नहीं देखते,  
जो दूध पीकर स्वयं पालिका को मुला देता है।<sup>२</sup>

किन्तु इस प्रकार की तुलना जनसाधारण में प्रचलित तुलना ही थी। नैश की एक रचना 'रूना मनीह व आसू (प्राइस्टस टीयर्ज) में जोरकूपर विरचित 'वेमारन' में यह धतमान है। हा सकता है, शेक्सपियर ने चामिया के एक सबाधन ('प्राची के ऐ सितार।') से यह विचार लिया था। इससे पूरा के उस सितारे का भान हुआ होगा जिनमें चामिया में वर्णित पूरा के तीनों चतुर व्यक्तियों का बथलेहम पहुँचाया था जहाँ उन्होंने गिगु (जीजस) को अपनी माँ की गोद में पाया।<sup>३</sup>

(२) हिंदी में पिछले कुछ वर्षों से नये-नये वादा का नामकरण हो रहा है। अँगरेजी रोमंटिसिज्म के स्थान पर हम 'स्वच्छ-दत्तावात्' शब्द का प्रयोग करते हैं। माक्सवादी साहित्य-नृष्टि को हम प्रगतिवाद में समाहित करते हैं। पश्चिमी प्रतीकवादी काव्य-साहित्य के अनुरूप हमने हिंदी में प्रयोगवादी काव्य शैली का निर्माण किया। यहाँ भी हमने पश्चिम के वादा को हिंदी में ज्या-का-त्या रूपान्तरित नहीं किया है, केवल प्रवृत्तियों के आधार पर समान से नाम दे

१ 'Suck on, sweet babe'

२ 'Dost thou not see my Baby at my breast,  
That suckes the Nurse asleepe'

३ केनेथ म्यूर की अँगरेजी पुस्तक 'शेक्सपियरस सोसेज' की कुछ पंक्तियों के अनुवाद, दे० शेक्सपियरस सोसेज (लंदन, १९५७), पृ० १३।



दिये हैं। स्वच्छतावादी कविता में हम 'प्रसाद', 'निराला' जादि की गणना करते हैं, परंतु इनके काव्य में विदेशी प्रभाव का अनुसंधान बहुत कुछ व्यर्थ होगा। 'प्रसाद' उपनिषदा और शवागमा का दर्शन को हिंदी में लाये हैं। निराला भारतीय अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा अपने काव्य में कर सके हैं। अतएव वस्तु-पथ में तो किसी प्रकार का विदेशी प्रभाव घटित हुआ ही नहीं शली और रूप रचना में इन कविता की स्वतंत्रता और मौलिकता स्पष्ट देखी जा सकती है। सभी प्रकार सुमित्रानन्दन पंत और महादेवी की काव्यसृष्टि में विशुद्ध भारतीय चिंताधारा का विकास है।<sup>१</sup>

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि प्रभाव के अनुसंधान में निरत समीक्षक को जहां बहुत होना चाहिए वहां अत्यन्त विवेकशील तार्किक एवं व्यवस्थित प्रयास के लिए कृत-संकल्प भी। किसी निष्कप विशय पर पत्र-चर्चा के पढ़ते उस सभी बात-अनात सूत्रों का विश्लेषण और अनुसंधान करना होगा उसे अपने आलोच्य कवि लेखक या समीक्षक द्वारा अधीत उन सभी ग्रंथों की खोज करनी होगी जिनसे वह प्रभावित हुआ है। उसे यह भी स्मरण रखना होगा कि समीक्षका के विचार सिद्धांत जादि कई सूत्रों में युक्त होते हैं। उनके लिए यदि बहुत जालाचना-ग्रंथ उपादेय है तो साथ ही वार्त्तांगण का कोश पाण्डुलिपि और पत्र-व्यवहार भी। इतनी विस्तृत प्रचुर एवं जगाध सामग्री का एकत्रण यावज्जीवन अविरत अनुसंधान से भी संभव नहीं हो सकता और यदि संभव हो भी तो सामग्री के संचयन में ही शाय-काय निष्पन्न नहीं हो सकता। उल्लेख आचार-सामग्री के निस्तुपीकरण की आवश्यकता होती है और इस प्रक्रिया के बाद उपयोगी तथा प्रसंगाच्चिन्त सामग्री को पुनः निर्यदिष्ट करना—छानना—पडता है। यह भी बड़ा ही दुसाध्य कार्य है। इन कारणों से हममें स प्रबंध में छोटे छोटे वाक्या साधारण मानका और शीघ्र सिद्धता की युत्पत्ति पर विचार कर जाधुनिक समीक्षका के कृतित्व के उन स्रोतों का सामांय वणन किया है जिनसे व असदिग्ध रूप में प्रभावित हुए हैं। वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि आज का हिंदी-समीक्षक—द्वितीय महायुद्ध के बाद का हिंदी समीक्षक—जितना ग्रंथगोष्ठ तथा प्रभाव्य हो गया है उतना वह पहल कभी न था। नय-नये

१ नन्ददुलारे बाजपेयी, प्रकीर्णिका (कानपुर, १९६५), पं० ५५-५६।

प्रभावा के लिए उनका हृदय प्रकाशित है, उसमें अपने नये दायित्व के प्रति चेतना है और वह समझ पाश्चाय समीक्षा-साहित्य एक सज्जनात्मक साहित्य से सजीवन तत्त्वा का चयन कर अपनी भाषा का अभिनव गारव-गरिमा से विभूषित करने का अभिलाषी है।<sup>१</sup> इसलिए स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-समीक्षक गारनीय सिद्धान्त को परिधि तत्र ही अपने को सीमित रखने में असमर्थ है। पाश्चाय समीक्षा-शास्त्र से प्रभावित हिन्दी-समीक्षक की सख्या अपरिमेय हो चुकी है।<sup>२</sup> अतः प्रभावा के समझन और एकत्रीकरण में हम इतस्ततः 'बुसुम चयन प्रवृत्ति' का ही आश्रय लेना पडा है और उन लेखकों को ही अपने विवेचन का आधार बनाना पडा है जिनमें हिन्दी-समीक्षा-जगत् में नयी मान्यताओं की स्थापना हुई है और जिनका समीक्षागत आदान-प्रदान हमारी दृष्टि में कुछ महत्त्व रखता है। ग्रहण एक-दूसरे के मत में इनो सुनिश्चित नीति के परस्पर न ता एक ही समीक्षक की समस्त रचनाओं का मूल्यांकन किया जा सकता है और न समस्त हिन्दी-समीक्षक का ही। उन तरह के जालोचक स्वभाव ही विवेचन नहीं हो पाय हैं, जिनकी

१ पद्मवी-मोहनी गनी के अंगरेज समीक्षक की कुछ ऐसी ही अवस्था थी। नवजागरण में राष्ट्रीय चेतना की जो लहर फैलायी, उसमें साहित्य के बहुपयान विकास के लिए अथक प्रयास की लहर भी समाहित थी।

२ 'हिदा-व्रिता की कसौटी' शीर्षक निबन्ध में आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा है "नयी कविता, नयी कसौटी, नयी वस्तु, नयी तुला की पुराने भ्रमानक है। नया कविता को प्रसारित हुए गनी हो चुकी। नयी कसौटी और नयी तुला का घोष होने भी (द्विवेदी-युग-सकल १९५० से) हो चुकी, पर न कोई नया निकल बना, न कोई नया बटलरा। जो ना सामने गला जाता है, वह जिदोगी माल है। अपनी विवेक-बुद्धि, ऊहापोह और चिन्तन से गारव-मयन करनेवाला प्राचीनता की भाति कोई नूतन दिग्दर्शन कहीं नहीं।" डे० पाटल, मई १९५४, पृ० ११। इसी प्रकार 'समीक्षा में सतुल्यता का प्रश्न' शीर्षक लेख के अंत में आचार्य हजारामप्रसाद द्विवेदी ने कहा है "पुरानी परंपरा को एकदम मुलाना अत्यंत नयकर गलती है। मुझे यह समझ में नहीं आता कि आधुनिक समालोचना-पद्धति क्यों नहीं पुराने अनुभवों से अपने को समृद्ध कर सकती। नवीन परिस्थितियों के अनुसार पुराने अनुभवों का प्रयोग सज्ज हितकर होगा—जीवन में भी और साहित्य में भी।" पाटल, जून १९५४, पृ० ११।



आधुनिक समीक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव का जो पृष्ठधार होता है, उससे ही पश्चिमी समीक्षात्मक प्रतिमानों, पदावल्या एव वार्ता की बाट आ जाती है। यहाँ तक कि हिन्दी-आलोचना में आधुनिकता और नवीनता का जो द्वय-संघर्ष चला पड़ा है उसके मूल में अँगरेजी के ही माटो तथा 'न्यू' शब्द हैं जिनसे 'माडन लिटिरेचर', 'माडन पायट्री' तथा 'न्यू लिटिरेचर', 'न्यू पायट्री' जैसे प्रचलित साहित्यिक नाम बन हैं। निम्न है "कुछ कवि और तेज आधुनिकता के नाम पर विपरीत विचार धाराओं तथा रचना-शक्तियों को हिन्दी में स्थापित" १ किए जा रहे हैं। समीक्षा-मन्त्री अनेकानेक पारिभाषिक तथा शास्त्रीय शब्द अँगरेजी से ले लिए गए हैं और परंपरागत भारतीय शब्दों से हमारा सम्पर्क छूटा जा रहा है। २ इन्हीं कारणों से इस प्रबंध में 'गुलजा' तथा 'गुलजातर' समीक्षा पर पढ़नेवाले पाश्चात्य प्रभाव के विभिन्न महत्त्वपूर्ण पन्थों का आकलन का प्रयत्न किया गया है और 'गुलजा' का ही आधुनिक हिन्दी-समीक्षा का युगप्रवर्तक माना गया है।

एक तो प्रस्तुत विषय तथा हमारे सबद्ध विषयों पर अनेकानेक छोटे-मोटे स्फुट निबंध उपलब्ध हैं, किंतु विषयों की जिस प्रकार के सांगोपांग विवेचन की ज़रूरत है, वसा सवागपुण और प्रामाणिक विवेचन जहाँ तक नहीं हुआ। हिन्दी-समीक्षा हिन्दी-काव्य, हिन्दी-नाटक पाश्चात्य प्रभावों के सदर्भ में आलोचित हो चुके हैं और हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर पढ़नेवाले अँगरेजी प्रभाव का भी सूक्ष्म परीक्षण हो चुका है। ३ परन्तु अधुनातन हिन्दी-समीक्षा जो पाश्चात्य तत्त्वों में संसृष्ट एवं संपोषित है, एक अन्वीक्षणीय विवेचन के लिए प्रयोगशाला में लायी नहीं गई और न इस पर शून्यकारण एवं चिकित्सा-अधिभारियों के तेज चाकू ही चलें। आधुनिक हिन्दी-समीक्षा की वणसकरता तथा अपमिश्रण का

१ नन्ददुलारे वाजपेयी, प्रकीर्णिका, पृ० ४२।

२ उपरिद्धत, पृ० ५७।

३ डॉ० ध्यापति गर्मा, हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव (आगरा, १९६१), डॉ० रवीन्द्रमहाय वर्मा, हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव (काठपुर, १९५४), डॉ० विश्वनाथ मिश्र, हिन्दी भाषा और साहित्य पर अँगरेजी प्रभाव (देहरादून, १९६३), डॉ० घमकेशोर लाल, अँगरेजी नाटकों का हिन्दी नाटकों पर प्रभाव (गोध-प्रबंध)।



वाजपेयी द्वारा प्रशमित इस ग्रन्थ के प्राक्ख्यान में पाश्चात्य साहित्यालोचन की परंपरा तथा वैशिष्ट्य का वर्णन है,<sup>१</sup> इसमें पाश्चात्य तथा पौरस्त्य समीक्षा-परंपरा अत्यंत प्राचीन कही गई है, उन पाश्चात्य साहित्यालोचकों की अभ्ययना हुई है जिन्होंने अपनी समीक्षा-परंपरा का सुश्रुत विवरण प्रस्तुत किया है और अन्ततोगत्वा इस बात पर खेद प्रकट किया गया है कि भारतीय साहित्यालोचन की परंपरा का आधुनिक विद्वानों ने इतना सुंदर विवचन नहीं किया। पाश्चात्य एवं प्राच्य परंपराओं के परस्पर भेद विभेद से अवगत प्रबुद्ध प्राक्ख्यान लेखक ने यह स्वीकार किया है कि पाश्चात्य समीक्षा ठीक उसी माग पर नहीं चली, जिस पर भारतीय साहित्यालोचन चला है। फिर भी आज जब दोनों हमारे समक्ष हैं तब सहमा हम यह निणय नहीं कर पाते कि इन दोनों समीक्षा-परंपराओं में क्या अंतर है। इसके अभिज्ञान के लिए हम चाहिए कि हम पाश्चात्य तथा भारतीय साहित्य शास्त्र के संपूर्ण नम विकास को देखें। “तभी हम उनके संपूर्ण स्वरूप से अवगत हो सकेंगे और तभी भारतीय साहित्यालोचन के साथ पश्चिमी सिद्धांतों की समानता और असमानता का भी परिचय प्राप्त कर सकेंगे। आज के साहित्यिक विचार्यों के लिए यह आवश्यक है कि भारत और पश्चिम की साहित्य-समीक्षा का सवाग स्वरूप उसके समक्ष रहे।”<sup>२</sup>

“हिन्दी-आलोचना उद्भव और विकास” के विषयानुक्रम में जिन गीणिका का उल्लेख है उनमें कदापि ऐसा बोध नहीं होता कि मिश्रजी को भारतीय साहित्यालोचन के साथ पश्चिमी सिद्धांतों की समानता और असमानता का परिचय कराना भी अभीष्ट था। वस्तुतः हिन्दी-समीक्षा के उद्भव और विकास के विभिन्न पन्नाओं का वैज्ञानिक अनुगोलन विवचन ही उनका ध्येय है और इसी कारण उन्होंने हिन्दी समीक्षा की उपलब्धियाँ पर जोर दते हुए भारतीय परंपरा के परिप्रेक्ष्य में उनकी मौलिकता का निदान किया है। परन्तु उनकी पुस्तक में जहाँ-तहाँ हिन्दी समीक्षा पर पड़नेवाले पाश्चात्य प्रभावा का भी बड़ा ही विशद विवेचन मिलता है। (स्वयं मिश्रजी के इस समीक्षा-ग्रन्थ पर आर्य-समीक्षा का प्रभाव परिलक्षित होता है।) द्विवेदी जल में समीक्षा के स्वरूप-मुकुल के विकास में पश्चिम का जो योगदान है,<sup>३</sup> उसका सामान्य वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसी

१ इसी प्राक्ख्यान का एक प्रमुख अंग १९६५ ई० में प्रकाशित ‘प्रकीर्णिका’ में ‘भारतीय समीक्षा एक मुद्राव’ नाम से अभिहित हुआ है।

२ हिन्दी-आलोचना उद्भव और विकास, (देहरादून, १९६१), पृ० ९।

३ उपरिक्त, पृ० २६१।

प्रकार हिंदी की गुणात्मक, सौष्ठववादी, सौन्दर्यप्रियी, मनोविश्लेषणात्मक, मातृभाषी, परिष्कार, लौकिक तथा अभिव्यक्तावादी जागरण व विकास में योगदान एवं अंगरेजी समीक्षा की जा रहा है उम्मा भी उम्मा है।<sup>१</sup> परन्तु मिश्रजी ने हिंदी-समीक्षा की उपस्थिति को अंतर पर विनाश बल दिया है, उम्मा उन पर पढ़ावात् धार प्रभावा व प्रभावा अथवा विनाशपरण पर नहा दिया। यद्यपि उनकी गुणात्मक व उत्तरात्मक म दिया गए विषय विवेचना का इस प्रबंध से सीधा संबंध है, फिर भी मिश्रजी के और हमारे दृष्टिगोचर म अंतर है, उम्मा मातृ यह नहा जो हमारा है। इसलिए एत ही विषय पर निरंतर समय भी हमने दो विभिन्न प्रकार स विवेचन सामग्री को उपस्थित किया है। जहाँ उनका ध्यान समीक्षा व इतिहास और विकास पर केन्द्रित रहा है यहाँ हमारा इस पर दृष्टिगत प्रभावो के उत्तर रहा है। जहाँ उम्मान समीक्षा की विभिन्न धाराओं और उपधाओं के उद्भव एव विकास को ध्यान म ररत हुए तथ्य चयन किया है, यहाँ हमने हिंदी-समीक्षा के विभिन्न रूपा और प्रकारों पर पाश्चात्य प्रभाव का विवेचन किया है। उनको धार-पद्धति तत्त्वतः विवरणात्मक है हमारी अधिकाधिक तुलनात्मक। उनकी पद्धति है 'जामे सौष्ठववादी समीक्षा के तत्त्वा का कुछ विनाश विश्लेषण करेंगे,'<sup>२</sup> किंतु हम लिखते हैं "जामे सौष्ठववादी समीक्षा के तत्त्वा पर पढ़नवाले पाश्चात्य प्रभावो का हम कुछ विनाश विश्लेषण करेंगे।" उनका द्वारा किया गया वस्तु का प्रस्तुतीकरण परिचयात्मक अधिक है, जब कि प्रस्तुत प्रबंध अपेक्षया विश्लेषणात्मक अधिक है।

डा० कवट शर्मा का बृहन गोव प्रबंध "आधुनिक हिंदी साहित्य में समालोचना का विकास" (१९६२) निस्संदेह एक अत्यंत गभीर, विद्वत्तापूर्ण और प्रामाणिक ग्रंथ है, जो डा० भगीरथ मिश्र के "काव्यशास्त्र का इतिहास" और डा० भगवत्स्वरूप मिश्र के 'हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास' आदि ग्रंथा से सबथा भिन्न और कई दृष्टिया से हिन्दी समालोचनागत विकास का विशद, सुभृल एव सर्वात्कृष्ट इतिहास है। शर्माजी न युग की सामान्य प्रवृत्तिया के सर्वांगीण विवेचन क अतिरिक्त समालोचना की विशेष पद्धतिया का आकलन भी प्रस्तुत किया है। "समालोचना का विकास म ममीक्षित

१ हिंदी आलोचना उद्भव और विकास, प० ३२५-३२७।

२ उपरिक्त, प० ४२३, ४२८-४२९, ४३२-४३३, ४४६, ४७५-४७६, ४८५-५२०।

३ उपरिक्त, प० ४२३।

आलोचक प्रायः ऐसे व्यक्ति हैं, जिनका युग निर्माता तथा पथ निर्देशक के रूप में विशेष महत्त्व रहा है। "समालोचना के विकास-मय की समस्याएँ" तथा "उपलब्धियाँ और आवश्यकताएँ" शीपक अध्यायो में मौलिकता और प्रगाढ़ चतुष्टय का सुंदर संयोग हुआ है। लेखक की यह मौलिक कृति हिन्दी-साहित्य के लिए कुछ ऐसी ही है, जैसी अँगरेजी में क्लिन्थ ब्रुकस तथा ऐटकिन्स की कृतियाँ। वस्तुतः जहाँ ऐटकिन्स में मूल आलोचनात्मक रचनाओं के सम्बन्ध तथा उनमें वर्तमान विचार-सामग्री के सफल की अपूर्व क्षमता देखी जाती है, वहाँ शर्माजी में आत्मोद्भूत निष्ठा तथा मन्वन्वह सिद्धान्तों के आधार पर साहित्य-समीक्षा करने की मौलिक प्रवृत्ति पायी जाती है। यह सर्वविदित है कि समसामयिक कविता केवल तभी तथा समीक्षका की उपलब्धियाँ का यथोचित मूल्यांकन समी नहीं कर सकते। सामयिक की कृतियाँ का मूल्यांकन करते समय जब हम स्वभावतः तरह-तरह के पूर्वाग्रहों एवं प्रभावों से आक्रांत रहते हैं, तब हमारी तथ्य-ग्राहिणी प्रज्ञा का लोप हो जाता है। शर्माजी ने अपने प्रतिमानों के औचित्य में विश्वास रखकर डा० रामविलास शर्मा डा० लक्ष्मीनारायण मुद्याणु, डा० रामकुमार शर्मा सरीखे कनिष्ठ तथा प्रतिष्ठित एवं सम्मान्य आलोचकों की सारगर्भ समीक्षा प्रस्तुत की है। उनमें सत्समालोचक तथा समालोचना-साहित्य के वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण के लिए अपेक्षित गंभीर जीवनानुभूति, रस-ग्राहिता, व्यापक अध्ययन यदि गुण एक साथ ही समाहित हैं। परन्तु जहाँ शर्माजी का ध्यान समालोचना के विकास-मय पर विशेष रूप से केन्द्रित है, वहाँ हमारा ध्यान विकास क्रम में इस विधा पर पड़नेवाले पश्चिमी विचारों और शैलियों के प्रभाव के अनुसंधान पर अधिक है। जहाँ शर्माजी न बड़ी ही परिष्कृत और परिमार्जित शैली में आलोचना के विकास एवं प्रसार-काल का तत्त्वपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है, वहाँ हमने इस विकास एवं प्रसार क्रम में पश्चात्त्य-साहित्य के महत्वपूर्ण योगदान का स्थापन किया है। शर्माजी की तरह हमारी भी मूल धारणा यही रही है कि "आज की नव्यतम हिन्दी-समालोचना पश्चिमी वादा से प्रभावित होकर अपना बहुरूपी प्रसार कर सकती है।"<sup>१</sup>

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास (दिल्ली, १९६२), पृ० (आत्मनिवेदन)। इसी ग्रन्थ के पृष्ठ "४" पर देखिए "आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास जिन रूपों और प्रकारों में हुआ है, उन पर भारतीय साहित्य शास्त्र की अपेक्षा पश्चात्त्य साहित्य (विशेषतः आंग्ल साहित्य) का प्रभाव अधिक है।" पुनश्च "आधुनिक युग-चेतना



किन्तु जहाँ शर्माजी का सवध समालोचना के प्रवर्तन तथा सवधन काल से ही रहा है, वहाँ हमारा ध्यान सामान्यतः इससे विकास तथा प्रसार-काल—शुक्ल तथा गुल्फोत्तर-युग पर केंद्रित रहा है। इस प्रकार जहाँ शर्माजी ने विशिष्ट समीक्षा पर अत्यंत गभीर, तटस्थ तथा अनुसंधानात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है और जहाँ उन्होंने उनकी समीक्षा-पद्धति तथा आलोचनात्मक विचार विदुषा पर ही अधिक जोर दत्त हुए उनका समुचित मूल्यांकन उपस्थित किया है वहाँ हमने हिंदी-समीक्षा के उसी पक्ष पर समीक्षात्मक दृष्टि डाला है जिस पर पाश्चात्य मायताओं के गभीर और व्यापक प्रभाव दृष्टिगत होते हैं। इस प्रभाव के साहित्यिक महत्त्व एवं व्यापकता का सम्यक बोध केवल समीक्षा शास्त्र के मूधय प्रतिनिधि लेखकों की रचनाओं के विश्लेषण से नहीं हो सकता। इसके लिए कतिपय ऐसे साहित्यकार भी परीक्षित होने चाहिए जिनमें भावमित्री और कारमित्री प्रतिभाओं का बलक्षण समाहारता है, परंतु जिहान अभी तक हिंदी के संरक्षक का पद नहीं प्राप्त किया। इसी कारण नव्यतम साहित्यिक वादों के विवेचन के अन्तर्गत उन समीक्षकों के कृतित्व का विश्लेषण स्वतोभावेन समीचीन जान पड़ता है, जिन पर पाश्चात्य प्रभाव का गभीर और अमिट चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। डा० शर्मा के लिए 'सवगता का दुःखि-नाद करनवाले नवीन समालोचक का समीक्षा-क्षेत्र में भरे ही का स्थान नहा हो,<sup>१</sup> परंतु प्रस्तुत बोध विषय से इन समीक्षकों का सवध स्पष्ट है। फिर, शिवदानसिंह चौहान, अमतराम, प्रभाकर माचव, धमवीर भारती सरौखे समालोचकों का हिंदी-समीक्षा की नव्यतम प्रवर्तिया के उमेय में जो प्रामुख्य तथा योगदान है, वह सवया स्मरणीय हो चुका है। अतः इन लेखकों का ऐसा गुण निरसन—एसा "कड डिसमिसल"—और उनके प्रति ऐसा दृष्टिकोण शर्माजी की कृति को प्रस्तुत बोध प्रवध से निग्रना प्रदान करता है —

साहित्यकार बनन की धून में हमारे समालोचन बडे उत्साहपूर्ण गण में अपनी सवगता का दुःखि-नाद भी करत हैं किन्तु उनकी

के निर्माण में पश्चिमा साहित्य और यूरोपाय सम्पक का भी बहुत हाथ है, अतः उनका हमारे साहित्यालोचन पर प्रभाव न पडे, यह पदाचित असम्भव-सा है।" (पृ० ८०) पुनरपि "आधुनिक हिंदी-समालोचना के विकास-क्रम में अग्रणी भाषा-साहित्य का माध्यम से उपलब्ध पाश्चात्य साहित्यालोचन एक प्रमुख त्वात के रूप में अधिष्ठित है।" (पृ० ११६)।

१ आधुनिक हिंदी साहित्य में समालोचना का विकास, पृ० ४६४।

समीक्षा-क्षेत्र में विशेष उपलब्धि न होने के कारण उनको मैंने विशेष महत्त्व नहीं दिया है। वैसे शिवदानसिंह चौहान, अमृतराय, अचल, प्रभाकर माचवे, धर्मवीर भारती, प्रेमनारायण टंडन आदि नवीन समालोचक पत्र-पत्रिकाओं में यदा-कदा अपनी विचार धाराओं में अभिनव उमेद करने का प्रयास भी करते रहते हैं, किंतु जब तक उनमें कोई विशेष परिपक्वता न मिले, उनका विवेचन सम्मानार्ह नहीं कहा जा सकता। डा० विनयमोहन शर्मा, नलिन विलोचन शर्मा और डा० देवराज के समीक्षात्मक निबंध प्रसार-काल के इतर समालोचकों की समता में अधिक समयित और विवेकपूर्ण हैं।<sup>१</sup>

ध्यानव्य है कि न तो परिपक्वता की कसौटी पर प्रकाश डाला गया है, न उपयुक्त कथन का स्पष्टीकरण ही हुआ और न निष्पन्न को प्रामाणिकता प्रदान करने के लिए तब वितक ही प्रस्तुत किए गए हैं। नवीन समालोचक—नवलेखन के प्रतिनिधि समीक्षक—'पत्र-पत्रिकाओं में यदा-कदा अपनी विचार-धाराओं में अभिनव उमेद करने का प्रयास' ही नहीं करते, उन्होंने अभिनव भावताओं की उद्भावना भी की है।<sup>२</sup> ऐसा जान पड़ता है कि "अन्यान्व आलाचक" तरु आते-आते शर्मानी का अनुसंधानगत उत्साह परिम्वित हो चुका है और वे पुस्तक के समापन के लिए अधीर हो उठे हैं, अथवा वे नलिन जी तथा डा० देवराज जैसे समीक्षकों का इस प्रकार कुछ शब्दों में ही मूल्यांकित नहीं कर लेते। और फिर, "अभिनव" के प्रति नैराश्यपूर्ण दृष्टिकोण क्यों ? नवान साहित्य चेतना से आदातिन नये आलोचक प्राचीन परंपराओं से प्रभावित हानर ही सन्तुष्ट नहीं हो सकते। इस कारण उनकी नव्यतर समीक्षा प्रणालियाँ, नए दृष्टिकोण और उनकी नव्य अनुभूतियाँ कुछ समीक्षकों के लिए विस्मय का

१ आधुनिक हिंदी-साहित्य में समालोचना का विप्लव (दिल्ली, १९६२), पृ० ४६४।

२ नवलेखन का "दुनियादी दशन" है "अनुभववाद"। "अनुभवशीलता से कई भावताओं की स्वाभाविक रूप से उद्भावना हुई है। अब उदात्त को दान नहीं रही, भव्य और दिव्य का जादू टूट गया और सौंदर्य की लोकोत्तर कल्पना निष्प्रभ हो गयी। जो कुछ छुआ और पकड़ा जा सकता है, जो चुभ सकता है और गुग्गुदी र्षदा कर सकता है, वह रगीन हो या मटमैला, गीरा या काला, साहित्य के लिए विषय हो गया। अनुभव के विषय का यथावत चिद्यन शांतिकारी महत्त्व की घटना है।" माध्यम, मार्च १९६५, पृ० ५।

पारण पाती है। यन्त्री हुई परिस्थितियाँ और जीवन की नई यन्त्री हुई पाण्डित्य का अभिव्यक्ति करने के लिए "हृद-हृद" की नई नई विधाओं का गूँथे हुए हैं और इन अभिव्यक्ति विधाओं के समीपान के लिए समाधान के तबे लिए नई प्रणालियाँ उत्सूत हुई हैं।

'जापान का इतिहास तथा विज्ञान (हि सं० १८६४) अंग्रेजी गमी स-संघा में प्रकाशित एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है जिसमें विभिन्न आजापता प्रणालियों तथा समीपान-विधाओं का स्पष्ट बर्णन का अथवा गूँथे गूँथे विवरण मिलता है। इसमें विज्ञान-समाधान-संगणनाओं और तथा प्रणालियों का बर्णन तथा प्रमाणों का बर्णन प्रस्तुत किया गया है। यह हिन्दी समाधान पर पर्यटन-पाठ्य प्रभाव का संभव है। प्रबुद्ध समाज-संघ १३ इसमें पाठ्य-समाधान आजापता का इतिहास तथा समाज विज्ञानों का विचार विवरण प्रस्तुत करने हुए विज्ञान-धाराओं के अर्थात् विभिन्न विषयों में समस्त विज्ञानों में बर्णित किया है। इस पुस्तक का मुख्य विज्ञान तथा इतिहास में है। यह प्रमाणों का आजापता और अनुसंधान से। सर्वप्रथम इसमें प्राचीन जापान-जापान-जापान का विभाजन करने का परभाव युक्तियों की आजापता-संगणना प्रणाली युक्तियों साहित्य-संगणना का उद्देश्य और वास्तविक से उचित ह्रास तथा समीप साहित्य-संगणना का प्रभाव बर्णित का मंगल विद्युत्-संगणना बर्णन उपस्थित किया गया है। सदुक्ति प्राचीन पाठ्य-समाधान विज्ञानों के उद्देश्य का बर्णन किया गया है जिसमें याद पाठ्य-समाधानों की पठन-विधि में वाक्य में प्रणाली का महत्त्व एवं विधि तथा वाक्यांशों का अनुसंधान-संगणना का सम्यक्-संगणना प्रस्तुत है। प्रथम खंड के सात अध्यायों में अफलातून और अरम्भ द्वारा बर्णित आजापता विज्ञानों का विवरण और चौथे में भाषण-संगणना का तत्त्वादि तथा गद्य-शैली का विवरण की विवरण उपस्थित है। इसी प्रकार पाँचवें अध्याय में विवरण विषय पाठ्य-समाधान भाषण-संगणना आलोचना-शैली वाक्य के विभिन्न तत्त्व लागिनुन (लाजाइनस या लाजाइनस) का सिद्धांत, आलोचना का नवोत्थापना आदि से समझ हैं। छठे अध्याय में भारतीय रस-संगणना नाट्य-संगणना गुण तथा रीति-संगणना की स्थापना इत्यादि का उल्लेख है। इस अध्याय के अंत में— उपसंहार में—दोई पृष्ठों की एक तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गई है जिसमें कहा गया है —

१ आलोचना, अप्रैल १९५२, पृ० २७, माध्यम, मई १९६५, पृ० १२८-१३२  
२ ए० पी० खत्री और शिवदानसिंह चौहान।

सम्बन्ध-साहित्य के एक हजार वर्ष के अन्तर्गत निर्मित साहित्य सिद्धांतों तथा आलोचनात्मक अनुसंधानों की तुलनात्मक समीक्षा यदि अंग्रेजी साहित्य सिद्धांतों तथा आलोचनात्मक विचारों से की जाय तो बहुत कुछ अज्ञान से दोना साहित्य के अनुसंधान में अपूर्व सामर्थ्य दिखलाई देगा। तब जिन प्रश्नों के हल ढूढने में सस्कृत-साहित्यकार सलग हुए, प्रायः वैसे ही प्रश्न अंग्रेजी साहित्यकारों ने भी उठाये और उनका हल ढूढने का प्रयत्न किया। इस अनुसंधान में जिस विवेचनात्मक शक्ति का परिचय सस्कृत-साहित्यकारों ने दिया, उतनी ही विश्लेषणात्मक शक्ति तथा साहित्यिक सूत्र का प्रयोग अंग्रेजी साहित्यकारों ने भी किया। हाँ, अंतर केवल इतना है कि जहाँ अंग्रेजी साहित्य का आलोचनात्मक अनुसंधान बीसवीं शती तक अविरल गति से होता आया, सस्कृत का आलोचनात्मक प्रवाह प्रायः एक हजार वर्ष के अन्तर्गत ही समाप्त हुआ और तत्पश्चात् उसका स्रोत सूखता चला गया।<sup>१</sup>

स्पष्ट है कि अंग्रेजी समीक्षा तथा भारतीय काव्य शास्त्र में यद्यपि "अपूर्व सामर्थ्य" दिखलाई देता है फिर भी इनके सिद्धांतों के तुलनात्मक अनुशीलन में प्रभाव का प्रश्न ही नहीं उठता। "आलोचना इतिहास तथा सिद्धांत" के लेखक-द्वय ने भारतीय तथा यूनानी साहित्यकारों एवं दार्शनिकों की चिंतनधाराओं में अंतर दिखाते हुए कहा है —

जहाँ वास्तविक काव्य के मूल स्रोतों को पहचानने में सलग हुए, वहाँ यूनानी महाकाव्यकार आलोचनात्मक विचारों की नींव डालने लगे और काव्य की सत्य-सबधी समझाई पर यथाशक्ति विचार प्रदर्शन करने लगे। इन्हीं दोनों कवियों ने काव्य के ध्येय के विषय में चिंतन करना शुरू जानन्द प्रदान तथा शिक्षा प्रदान, दो विभिन्न विचार-धाराओं को प्रवाहित किया। जहाँ सस्कृत के कवि ने काव्य की आत्मा में काव्य का प्रकाश देखा, वहाँ पश्चिमी साहित्यकारों ने काव्य के प्रभाव तथा उस प्रभाव के कारणों को ही अपने सम्मुख विचारार्थ रखा।<sup>२</sup>

१ आलोचना इतिहास तथा सिद्धांत (राजकमल प्रकाशन १९६४) पृ० १५०।

२ उपरिक्त, पृ० १५१।



“सिद्धांत” शीपक द्वितीय खंड में भी पार्श्वार्थ सिद्धांत ही विशद रूप से परीक्षित हुए हैं। इसमें भी ग्रहण के प्रति अत्यधिक उदार हिंदी के आधुनिक समीक्षकों पर पार्श्वार्थ प्रभाव का विवेचन नहीं है।

प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा द्वारा संपादित “छायावाद और प्रातिवाद” (१८५०), डा० गाविन्द त्रिगुणायत-विरचित “शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत”, डा० देवीशंकर अवस्थी की सिद्धान्तिक और व्यावहारिक समीक्षा का संकलन “आलोचना और आलोचना” (१८६१), श्री रामप्रसाद द्विवेदी रचित “प्रगतिवादी समीक्षा” (१८६४), डा० प्रतापनारायण टंडन का शोध प्रबंध “समीक्षा के मान और हिन्दी-समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ” (१८६५), जादि ग्रन्था में प्रचुर उपयोगी सामग्री संकलित है, परन्तु इन सभी ग्रन्थों के स्रष्टा तथा प्रस्तुत प्रबंध के लेखकों के दृष्टिकोण और गहनता में सादर्य न होने के कारण इन ग्रन्थों में यह प्रबंध सर्वथा भिन्न है। डा० आनन्दप्रसाद दीक्षित लिखित “रस सिद्धांत स्वरूप-विस्तारण” (१८६०), डा० सुरेन्द्र चार्लिंगे की ‘सौंदर्य-तत्त्व और काव्य-सिद्धांत १८६३), डा० राममूर्ति त्रिपाठी की “रस-विमर्श” (१८६५) डा० कृष्ण शिवशारी-कृत ‘रसशास्त्र और साहित्य-समीक्षा’ (१८६५) तथा डा० सच्चिदानन्द चौधरी-विरचित ‘हिंदी काव्य शास्त्र में रस सिद्धांत’ (१८६५) जैसी पुस्तकें और इस प्रबंध में कोई साम्य नहीं है। प्रवृत्तियों में संपादित सहायक ग्रन्थों की अनुमति तथा आद्यत प्रयुक्त पाद-टिप्पणियों से उन अन्वय ग्रन्थों और विवधा का परिचय मिलेगा, जिनसे हमें समुचित संकेत या अपने विचारों के स्पष्टीकरण के लिए उद्धरण लिये हैं। इनमें ‘आलोचना’, ‘माध्यम “कल्पना” पारल” ‘अवर्तिका’, ‘दृष्टिकोण’, ‘साहित्य’, ‘प्रतीक’ आदि परिभाषा में प्रकाशित कितने ही निवृत्तियों का हमारे विषय से सीधा संबंध है और उन्होंने यदा-कदा मेरी चिंतन शक्ति का प्रोत्साहन भी किया है। इन कारण छोटे घने निवृत्तियों के वाक्यों का हमें अनुभव प्रयाग और उनके फलस्वरूप का प्रयास किया है। डा० नगेंद्र तथा आचार्य नन्ददुलार वाजपेयी की कतिपय रचनाओं में आधुनिक हिन्दी-समीक्षा पर पार्श्वार्थ प्रभाव का बड़ा ही सूक्ष्म रोचक और विद्वत्तापूर्ण विस्तारण मिलता है। वाजपेयी जी की लोकप्रिय पुस्तक ‘आधुनिक साहित्य’ तथा “नया साहित्य नए प्रश्न” में मेरे विषय से संबद्ध कई ऐसे महत्वपूर्ण सन्नाहों का विनियोग मिलता है जिनकी व्याख्या की अपेक्षा थी। उनकी अन्वय कृतियों में ‘प्रकीर्णिका’ भी अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई है परन्तु इसमें इस प्रबंध के विषय का वैसा विस्तीर्ण और सर्वांगीण प्रतिपादन नहीं हुआ जमा इस शोध-ग्रन्थ में हुआ है। ‘प्रकीर्णिका’

के दो निबन्ध, "भारतीय और पश्चिमी समीक्षा समानता और भिन्नता" तथा "हिन्दी-साहित्य पाश्चात्य प्रभाव", उपयोगी किंतु अत्यंत सक्षिप्त तथा गुसहृत है। डा० नगेन्द्र के "भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र" शीपक निबन्ध<sup>१</sup> के सम्बन्ध में कुछ ऐसी ही बात कही जा सकती है यद्यपि डा० नगेन्द्र का विवेचन अपेक्षया अधिक प्राञ्जल समीक्षात्मक और रसोत्सिक्त है।

अन्य समीक्षका में जिन्होंने हमारे विषय पर, या इससे सबद्ध विषया पर उपयोगी तत्त्वा और उपकरणों का सफलन किया है शचीरानी गुर्त ("हिन्दी के आलोचक"<sup>२</sup>, 'वचारिकी'), डा० रघुवश (साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य"), डा० लक्ष्मीकांत वर्मा ('नय प्रतिमान पुरान निरूप'), डा० देवराज ('प्रतिश्रियाएँ') आदि उल्लेखनीय हैं। इनकी रचनाओं में या इनके द्वारा संपादित ग्रन्थों में छिट-पुट ऐसे अनेक निबन्ध मिली हैं जो प्रस्तुत प्रबन्ध के विषय पर कुछ प्रकाश तो डालते हैं पर उसे वेदित नहीं करते थोड़ा बहुत लिखकर अन्य विषयों पर उतर आते हैं। इसी प्रकार साहित्य के अधुनातन इतिहासकारों ने इस विषय का विवेचन तो किया है, परंतु लक्ष्म्यांतर के कारण उनकी रचनाएँ मौलिक एवं प्रयोज्य होकर भी इस प्रबन्ध से सबथा भिन्न हैं। डा० लक्ष्मीसाम्बर्ण्य द्वारा रचित "आधुनिक हिन्दी साहित्य" (१८४१), आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का सूक्ष्म सिंहावलोकन 'हिन्दी का सामयिक साहित्य' (१८४१) डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी-कृत "हिन्दी साहित्य" (१८५२) शीपक ग्रन्थ जिसमें स्वतन्त्र व्यक्तित्व स्वकीय दृष्टिकोण एवं प्रकाश बहुष्य पर आधुनिक विवेचन का स्तर बहुत ऊंचा है और डा० रामरतन भटनागर के आलोचनात्मक अध्ययन 'हिन्दी साहित्य' (१८४८) और अध्ययन और आलोचना (१८५७) प्रस्तुत शोध के सम्बन्ध में नई रचनाओं में परिगणित होंगे। श्री लीलाधर गुप्त-रचित 'पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत' (१८५२) डा० प्रभाकर माचवे-कृत 'समीक्षा की समीक्षा' (१८५३), नारायणप्रसाद चौबे द्वारा प्रणीत डा० नगेन्द्र के आलोचना सिद्धांत" (१८६२) डा० रामश्रवण द्विवेदी-रचित 'साहित्य-सिद्धांत' (१८६३) भगीरथ दीक्षित रचित 'समीक्षालोक' (१८६४) डा० रंगवीर राय द्वारा संपादित डा० नगेन्द्र व्यक्तित्व और कृतित्व' (१८६५), डा० कुमार विमल द्वारा लिखित शोध-

१ विचार और विवेचन (दिल्ली, १९६४), पृ० १-१७।

२ 'नाम और क्लेवर से जाद्विपित होते हुए भी सामग्री की दृष्टि से, यह ग्रन्थ "निराशाजनक" है। साहित्य, मई-जून १९५५, पृ० ५।

प्रबंध "काव्य एव अन्य एतत् कलायां के प्रमुख तत्त्वों का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन छायावादी कविता के सदर्भ में", तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित "काव्यशास्त्र भारतीय और पाश्चात्य काव्य सिद्धांतों का विवेचन" (पंडित जगन्नाथ तिवारी अभिनदन-ग्रन्थ, १८६६), तथा अन्यान्य प्रकाशित-अप्रकाशित ग्रन्थ भी अत्यंत उपादेय सिद्ध हुए हैं परंतु उनमें इस शोध-विषय का यत्न-तन्त्र अनियमित प्रतिपादन हुआ है और जहाँ उनमें विवेचन परोक्ष और आकस्मिक है, वहाँ इस प्रबंध में प्रत्यक्ष तथा नियमित। निवदान सिंह चौहान की 'आलोचना के सिद्धांत' (१९६०) नामक पुस्तक के द्वितीय खंड में पाश्चात्य आलोचना के विकास का परिपक्व विवरण है परंतु इस आलोचना के प्रभाव का नहीं। वसा लेखक की एक अथ वृत्ति 'हिंदी-साहित्य के जन्मी दय , जिनमें कुछ नव्यतर तथा उत्पन्न भावोद्बोधक विचार-धाराओं का उल्लेख है 'आलोचना का विकास' शीर्षक अध्याय प्रस्तुत करती है जिसका मंत्र हमारे इस प्रबंध के विषय से कदापि नहीं। राजमल प्रकाशन द्वारा एकरचित और सगरीन मूल्याकन माला की दो अत्यंत कठिया "हिंदी आलोचना की अर्वाचीन प्रवृत्तियाँ" तथा "पाश्चात्य आलोचना की अर्वाचीन प्रवृत्तियाँ" नाम से अभिहित हैं। उन दोनों में प्रचुर आलोचनात्मक सामग्री का समाह्वय है परंतु पाश्चात्य - पीरम्य प्रवृत्तियों के आदान प्रदान से इनका मंत्र नहीं। "हिंदी साहित्य का इतिहास" (त्रयोदश भाग) के चतुर्थ और पंचम खंड में हिंदी-समीक्षा के अद्यतन प्रतिमानों नव्यतर प्रणालियों और विचार-मार्गों तथा इसमें अन्तर्व्याप्त पाश्चात्य प्रभावा का उमवद्ध विवेचन प्रस्तुत किया गया है। किंतु जहाँ इतिहासकारों ने आधुनिक समालोचना के बहुपक्षीय विकास पर ध्यान दिया है और जहाँ उनकी भूमिका अत्यंत व्यापक एवं परिस्त है, वहाँ हमारा ध्यान हिंदी-समीक्षा पर पड़नेवाले पाश्चात्य प्रभावा पर ही एकीकृत है।

वन्देव उपाध्याय-विरचित "भारतीय-साहित्यशास्त्र (१८५०) में पाश्चात्य एक प्राच्य काव्यशास्त्रों का न तो सन्निहित विवेचन मिलता है और न एक-दूसरे के प्रभावा का वर्णन ही। डा० भगीरथ मिश्र के 'काव्यशास्त्र (द्वितीय संस्करण १८६३) के संवध में भी यही बात कही जा सकती है किंतु उनमें भी उपयोगी एवं प्रासंगिक तथ्यों का निरूपण हुआ है। इसी प्रकार यद्यपि डा० रामाधर शर्मा विरचित 'हिंदी की सद्धान्तिक समीक्षा' (१९६२) समग्रत एक जयन महत्वपूर्ण शोधग्रन्थ है जिसमें प्रस्तुत प्रबंध के प्रणयन में प्रभूत सहायता मिली है फिर भी शर्माजी के ग्रन्थ में, जसा उसके नाम से ही



स्पष्ट है, न तो व्यावहारिक समीक्षा का विवेचन हुआ है न हिंदी की सद्भाषिक समीक्षा पर पाश्चात्य प्रभावा का ही। शर्माजी का ग्रन्थ एटकिन्स की पद्धति पर प्रस्तुत किया गया हिन्दी के गणनीय समीक्षका के जालोचनात्मक सिद्धाता का सुष्ठु सङ्कलन है, जिसे डा० सुरेशचन्द्र-विरचित "आधुनिक हिन्दी-कविया के काय सिद्धात" (१९६०) के पूरक-ग्रथ के रूप में सङ्कृत होना चाहिए। गुप्तजी और शर्माजी के ग्रथ मिलकर हिन्दी-कविया और समीक्षका के समस्त काव्य एवं जालोचना सिद्धाता का संग्रह तथा विवेचन उपस्थित कर देत है।

हिन्दी-आलाचना पर पाश्चात्य प्रभाव के निदर्शन से सबद्ध अनेकानेक ग्रन्था के इस संक्षिप्त विवेचन में स्पष्ट है कि इस विषय पर एक प्रामाणिक एवं जद्यतन प्रवध की अपेक्षा बनी रह गई थी। इसी की पूर्ति के निमित्त यह ग्रथ प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें आधुनिक हिन्दी-आलाचना पर पाश्चात्य प्रभाव का निदर्शन तो हुआ ही है, उनकी समीक्षागत उपलब्धिया के वस्तुनिष्ठ एवं तटस्थ मूल्यांकन का प्रयास भी किया गया है।

यद्यपि प्रस्तुत प्रवध का मूल केन्द्र है समीक्षा पर विभिन्न पाश्चात्य प्रभावा का जाकलन एवं प्रस्तुतीकरण, फिर भी हिन्दी-समीक्षा का ऐतिहासिक सर्वेक्षण प्रस्तुत किए बिना प्रभावा का वणन असंगत प्रतीत हुआ। इसलिए प्रथम अध्याय में हिन्दी समीक्षा साहित्य का संक्षिप्त ऐतिहासिक सर्वेक्षण उपस्थित किया गया है। इसी प्रकार द्वितीय अध्याय में पाश्चात्य समीक्षा का क्रमबद्ध विवरण वस उद्देश्य से उपस्थित किया गया है कि जब तक इस समीक्षा की परंपराओं और शालियों की आधारभूमि का ठीक-ठीक परिचय न होगा, तब तक हम उनके प्रभावा के सम्यक् आकलन एवं विश्लेषण में असमथ होंगे। भारतीय एवं पाश्चात्य सिद्धाता और वादा पर विचार करते समय, इस बात की चष्टा की गई है कि केवल उही विचारधाराओं का विवेचन किया जाय जिनके अनुशीलन में प्रमाता को वह व्यापक परिप्रेक्ष्य प्राप्त हो सके जो प्रस्तुत प्रवध में विवेचन समीक्षका के मूल्यांकन के लिए अपेक्षित है। तृतीय और चतुर्थ अध्यायों में हिन्दी के मूढ्य आलाचना की सद्भाषिक जालोचना पर पाश्चात्य प्रभाव का सामोपाग विवेचन और विश्लेषण प्रस्तुत है। पंचम अध्याय में हिन्दी के छायावादी, प्रगतिवादी एवं प्रयागवादी कविया की समीक्षात्मक रचनाओं पर पाश्चात्य प्रभाव का जाकलन है। प्रवध के अंतिम दो अध्यायों में क्रमशः हिन्दी की व्यावहारिक आलाचना और हिन्दी-आलाचना पर पाश्चात्य प्रभाव का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत प्रवध में विवेचन समीक्षका की श्रुतिया से पुष्कल उद्धरण लेकर उनकी प्रकृत और अलगभूत 'पाश्चात्यता' का विवेचन भी हुआ है। विषय के प्रति

मम्बु न्याय की दृष्टि से हर प्रकार की कृतिया को लिया गया है और यथास्थान उनकी यथार्थ जालोचना भी की गई है।

पादचाल लेखका के रन्वे-रन्वे उद्धरण रोमन लिपि में और छोटे-छोटे वाक्यादि नागरी अक्षरों में दिए गए हैं। विवेच्य आलोचना का परिष्कार, सामान्यतः, अवस्था क्रम से रखा गया है। इसमें सुविधा तो है ही, इससे उनके आपेक्षिक महत्त्व पर कुछ जाघात भी नहीं होता।





## हिन्दी-आलोचना-साहित्य का ऐतिहासिक सर्वेक्षण



“साहित्य शास्त्र की मौलिकता का अर्थ नवीन सिद्धांतों अथवा तथ्यों की उदभावना या आविष्कार नहीं है। यहाँ मौलिकता से अभिप्राय विवेचन की मौलिकता का ही है।”

—डा० नगेन्द्र, विचार और विवेचन, पृ० ८२

विश्व के सभी साहित्या के समान हिन्दी में भी समालोचना का उद्भव सजनात्मक कृतियों के साथ ही मानना चाहिए। प्रायः देखा जाता है कि आरम्भिक सजनात्मक लेखक अपनी कृतियों में शास्त्र की भी चर्चा करते हैं, जो मिलकुल स्वाभाविक है क्योंकि साहित्यकार की चेतना में जब साहित्य का जन्म होना रहता है तब शास्त्र भी वहाँ विद्यमान रहता है। इतना ही नहीं, विश्व के प्रत्येक महान और निष्ठा कवि में काव्यांग के प्रति गम्भीर रचि और काव्य शास्त्र का प्रभूत ज्ञान देखा जाता है। उसकी काव्य-संवर्धी निश्चित धारणाएँ होती हैं, जिनका प्रतिबिम्बन उसकी सजनात्मक रचनाओं में होता है। छंद, अल्कार आदि को वह भावों के उत्कर्ष में सहायक मान भले ही समझे,<sup>१</sup> पर पिगल और अल्कार का ज्ञान उसकी कवित्व-सम्पदा के लिए आवश्यक माना

१ उदाहरणार्थ—सूफ़ी कवियों को “भावों और विचारों को व्यक्त करने का सबसे अधिक ध्यान था और छंद, अल्कार आदि भावों के उत्कर्ष में सहायक मान समझे गए थे। प्रेममार्गी कवियों ने गदालकारों पर बहुत ही कम ध्यान दिया है—प्रायः कुछ भी नहीं। उनकी यह निरपेक्षता खटकने की सीमा तक पहुँच जाती है। परंतु इसकी कमी अर्थालंकारों में पूरी करने की चेष्टा की गई है, जो सफल भी हुई है। इन कवियों ने सादृश्यमूलक

गया है। और उसी अनप्रेक्षणी दृष्टि यह जानती है कि उत्तर थागा बाहर प्रमाता मित प्रसार समग्न लिए जा सक्त हैं। जागु-वधि भी इग सिद्धान्त व अपवाद नहा होते उनव भी व काव्य विषयन मा उनरी रमणीयत वनिताआ म स्थापित होन हैं जा या तो वधि की निजी अपुववस्तुनिमाणणम प्रतिभा पर जाधत होने हैं, या प्राग्भूत और सामयिक वृत्तिया के अनुगीलन पर अधया वमी-वमी प्रतिभा और अधयन दोना पर।

आलोचना साहित्य की एन स्वतंत्र विद्या भी है जिसकी रचना काव्य-संज्ञ ही नहीं, काव्य के सुधी ममन ज्ययता भी करते हैं। वधि और प्रमाता जन् साहित्य-संज्ञी अपने विचारा की यथावत अभिव्यजना करते हैं तभी सच्चा समालोचना का अवतरण होता है। हिंदी म एसी आलोचना का प्रणयन सबप्रथम कव हुआ मह विश्वस्त रूप सं नहा कहा जा सक्ता परंतु सिवसिंह सरोज 'निश्रवधु विनोत्' तथा 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' म पुड अयवा पुष्य का नाम लिया गया है। सामग्री की अनुपलब्धता के कारण हम इसके सबध म कुछ नहीं कह सक्ते किंतु इतना जानत हैं कि तदयुगीन वधिया न अपनी रचनाआ म ही प्रसगानुकूल अपने काव्य विषयक विविध मत समाविष्ट किय और काव्य-स्वरूप तथा काय प्रयोजन आदि के सबध म वतिपय सन्निप्त एव सांकेतिक उक्तियाँ उपस्थित की। भक्तिवालीन साहित्यकारा ने सबप्रथम आलोचना को सामान्य स्तर पर उतारते हुए इसके सद्धान्तिक एव व्यावहारिक दोना धना म काय किया। सबत १५६८ म प्रणीत कृपाराम विरचित 'हिततरंगिणी' म एक ओर तो भरत मुनि के नाट्य शास्त्र के आधार पर रस निरूपण मिलत है और दूसरी ओर "नाट्य शास्त्र तथा भानुदत्त की रस-मजरी" के आधार पर नायिका भेद की चचा की गई है। इसम पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रीय ग्रन्था की रचना के कुछ सक्तेत अवश्य प्राप्त होत हैं किंतु इनम एक भी ग्रंथ प्रकाश म नहा आया। कृपाराम के पदचात भक्तिकाल म ही सबत १६०७ म सूरदास द्वारा साहित्य लहरी नामक रस रीति विषयक ग्रंथ का प्रणयन हुआ। सनहवी शती के प्रारम्भ म नददास ने भानुदत्त की रस-मजरी के आधार पर अपनी नायिका भेद विषयक रस-मजरी की रचना की। इस युग की अय उपलब्ध वृत्तिया म मोहनलाल मिश्र वृत "शृंगार सागर" (सं १६१६ वि०) गोपा

उपमा, रूपक, उत्प्रेसा आदि अलकारा का अधिक प्रयोग किया है।' इयामसुंदर दास, हिंदी भाषा और साहित्य (प्रयाग, सं १९८७), पृ० ३६७-३६९।

कवयिणी गोप वृत्त "गमभूषण" और "अलंकारचन्द्रिका", वरनस वृत्त "वरणा-भरण", "श्रुतिभूषण" तथा "भूषणभूषण" आदि उल्लेखनीय हैं।<sup>१</sup> न सभी ग्रन्थों में या तो संस्कृत के ग्रन्थों से या हिन्दी के ही पूर्ववर्ती ग्रन्थों से प्रेरणा ग्रहण किया गया प्रतीत होता है। साहित्यिक उच्चता, विचारगत मौलिकता तथा उच्च स्तरीयता का इनमें पर्याप्त सीमा तब जभाव है। परंतु इन सीमाओं के दान हुए भी इन वृत्तियों का विशिष्ट महत्त्व इस कारण से है, क्योंकि ये हिन्दी साहित्य शास्त्र के विकास की मुख्य कड़ियाँ हैं। साथ ही ये हिन्दी साहित्य शास्त्र की परंपरा की स्पष्टता भी आभासित करती हैं।<sup>१</sup>

भक्तियुग में भक्ति भावना का ही काव्य विषयक समस्त विवेचन का आधार बनाया गया, जिसके फलस्वरूप भक्ति रस एव स्वतंत्र रस के रूप में प्रतिष्ठित हुआ और भक्तिकालीन कविता में वात्सल्य, माधुर्य, दाम्य और सख्य आदि को भक्ति रस का ही अभिन्न अंगभूत रस माना। गोस्वामी तुलसीदास और महात्मा कबीर सरोगे कविता ने काव्यशास्त्र की पृथक् और स्वतंत्र रचना में ता शक्ति नही दिखलाई, पर तुलसीदास एव इनके जन्म अनेक कविता ने कवि, काव्य, अक्षरप्रयोग छंद-योजना आदि विषयों के संबंध में अनेकानेक प्रसंगानुसृत काव्योक्तियाँ प्रस्तुत कीं। गोस्वामी तुलसीदास ने कई स्थलों पर यह भी निर्देश किया कि उन्होंने काव्य रचना के लिए काव्य रचना नहीं की और महात्मा कबीर ने कहा कि वे काव्यशास्त्र के नियमों, छंदों तथा अक्षरों से अनभिन्न थे। काव्यकृति के आरम्भ और अन्त में कवि द्वारा रचना के उद्देश्य और उसके अभिप्राय आदि के विषय में उपस्थित किए गए स्पष्टीकरण में तथा अनेकानेक सूत्रबद्ध प्रतिक्रियाओं में तदनुगुण समीक्षा का स्वरूप देखा जा सकता है।

### रानि-आचार्यों की हिन्दी-समीक्षा

इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी-आलोचना शास्त्र अपने शुरुआत में संस्कृत काव्यशास्त्र का उपजीवी एव नवजागरणयुगीन जैमिनी समीक्षा के समान ही, पराश्रयी था। रीति-काल (सन् १६५८-१८५७ ई०) में जब प्राचीन काव्यशास्त्र का हिन्दी में सरन अवतरण हुआ, तब इसके कवि-आचार्य ऐसे राजाश्रित व्यक्ति थे,

१ डा० प्रतापनारायण टंडन, समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ (लखनऊ, १९६५), प्रथम खंड, पृ० ४०८। द्रष्टव्य श्री विश्वनाथप्रसाद, "शृंगारकाल की सीमा", हिमालय, अप्रैल १९४६, पृ० १७-२३।

जिनमें १ काव्यशास्त्र विषयमें अवैषम्य में गहरी रूचि थी और न संस्कृत काव्यशास्त्र का सम्पूर्ण ज्ञान ही था। यद्यपि काव्य और इसमें अथवा के वर्णन में इन्होंने इतस्ततः नवीनता का प्रश्न किया है, फिर भी यही रीति कवि परंपरागत काव्यशास्त्र में स्थापित मान मूल्या को दुहराने और प्राचीन लक्षण-रूपा का अनुवाद कर उनकी सिद्धि के लिए नय-नय सरस उदाहरण रचने में ही लीन रहे।<sup>१</sup> संस्कृत में लक्ष्य काव्य और लक्षण ग्रंथ एक जीवन्त सग्रह सूत्र में ग्रथित थे<sup>२</sup> उसमें रचा गया काव्य विद्वज्जना का कठहार था और हिंदी में काव्य रचना "संस्कृत का सम्पूर्ण रचनेवाले कविषा के हृदय में कुछ हेयता की भावना भर देता था।"<sup>३</sup> कवियशोर्लिप्सा के कारण नौसिपुत्रा में भी रीत्याचार्यों का अलंकार छंद, रस आदि के नियमों के स्पष्टीकरण के लिए वाच्य किया, परन्तु इन कवि-आचार्यों ने संस्कृत काव्यशास्त्र के आधार पर ही अपने उस काव्यशास्त्र का निर्माण किया, जिसमें प्राचीन सिद्धांतों की उपयुक्त वृत्तानिष्ठ व्याख्या तब नहीं मिलती। संस्कृत के आचार्यों ने अपने काव्यशास्त्र का आधार उपलब्ध काव्य को ही बनाया था, जिसके प्रत्यक्ष रूप उनके लक्षण और लक्ष्य के बीच प्रत्यक्ष तथा जीवन्त सम्पर्क आद्यतन बना रहा।<sup>४</sup> इनके विपरीत हिंदी के रीतिकारों ने लक्षणा के लिए "संस्कृत काव्यशास्त्र का अवलम्ब किया और उदाहरणों का स्वयं ही नूतन निर्माण किया, इस प्रकार हिंदी के समस्त काव्य का इनके लिए जैसे कोई अस्तित्व ही नहीं रहा।<sup>५</sup> इनमें दो विशिष्ट समीक्षा शक्तियाँ प्रचलित थी जिनके मूल में दो विभिन्न प्रकार के प्रेरणा स्रोत थे। इनमें कुछ तो अलंकारवादी थे और कुछ रसवादी।<sup>६</sup> केशव तथा उनके कुछ अन्य समकालीन कवियों ने भरत भामह दंडी, उदभट्ट केशव मिश्र तथा अमरदेव को अपना आदर्श बनाया और कुछ ने केशव द्वारा गीत आधार को अस्वाकृत करते हुए जयदेव और जयप

१ डा० नगेन्द्र, विचार और विवेचन (दिल्ली, १९६१), पृ० ६।

२ उपरिखत।

३ डा० भगीरथ मिश्र, हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास (लखनऊ विश्वविद्यालय, स० २००५), पृ० ३७।

४ डा० नगेन्द्र, विचार और विश्लेषण, पृ० ६।

५ डा० नगेन्द्र, अनुसंधान और आलोचना (दिल्ली, १९६१), पृ० २९।

६ नन्ददुलारे चन्द्रवैद्य, नया साहित्य नये प्रश्न (धारापत्नी, १९६३), पृ० २३।

७ उपरिखत।

दीक्षित को। मम्मट के “वाक्यप्रकाश” को, विश्वनाथ के “साहित्यदर्पण” को तथा आनन्दवदन के “ध्वन्यालोक” को बहुत कम कवि-आचार्यों ने अपनाया।

रीतिकारों में मौलिक सिद्धांत-प्रतिपादन नहीं मिलता, फिर भी उन्होंने शृंगाररस की ऐसी मधुर प्रसरण परस्वनी प्रवाहित की जिसे समस्त हिन्दी-साहित्य जान प्रीत हो उठा और रस की सावनीय सत्ता के सामने ध्वनि अलंकार आदि गौण हो गए।<sup>१</sup> उनके प्रयत्न से हिन्दी-साहित्यकारों की वाक्यशास्त्रीय अभिरुचि सुगन्धित रह सकी और काव्य रचना तथा वाक्यास्वादन के लिए शास्त्रीय पठभूमि का निर्माण हो सका। “उन्होंने प्रेम की अलौकिक धरातल से उतारकर, शुद्ध मानवीय लौकिक धरातल पर स्थापित किया। भक्तिकाल में प्रेम को जन-जीवन के व्यावहारिक धर्म से अलग कर दिया। रीतिकाल ने मानव की मूल भावना उम वापस दी। प्रेम के उस उच्चलित रूप ने आचार्य प्रणीत उदाहरणों में समाप्त युग रचि का सामायत तथा राज रचि का विशेषतया परिवार किया। दार्ष्टिक हास के उस अधकार युग में वाक्य के बुद्धि पथ को जाने-अनजाने पोषण देकर दृष्टाने अपने ढंग से बड़ा काम किया।”<sup>२</sup>

### हिन्दी-भाषा का विकास और भारतेन्दु-मुगीन पत्र-पत्रिकाएँ

तार्किक विवेचन खडन-भडन बज्ञानिक ढंग से विषय का प्रतिपादन, शास्त्रीय

१ डा० नगेन्द्र की ये स्थापनाएँ द्रष्टव्य हैं “ इन्होंने रस को ध्वनि के प्रभुत्व से मुक्त कर रसवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा की। घोर पराभव के उस युग में समाज के अभिगप्त जीवन में सरसता का संचार कर इन कवियों ने अपने ढंग से समाज का उपकार किया था। वास्तव में हिन्दी साहित्य के इतिहास में सबप्रथम रीति-कवियों ने ही काव्य की शुद्ध कला के रूप में ग्रहण किया।” दे० अनुसंधान और आलोचना में “रीतिकाल के कवि-आचार्यों का योगदान” (पृ० २८-३६), विचार और विश्लेषण में “हिन्दी का अपना आलोचनाशास्त्र” (पृ० ५-७) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, पृष्ठ भाग, पृ० ४९४-४९८। डा० नगेन्द्र की विचार धारा से मिलते-जुलते दृष्टिकोण के लिए देखिए रामधारी सिंह दिनकर, “रीतिकाल का नया मूल्यांकन”, अवतिभा काव्यालोचनांक, जनवरी १९५४, पृ० १४३-१५५।

२ आचार्य हजारामसाद द्विवेदी (सपा०), काव्यशास्त्र (दिल्ली, १९६६), पृ० ३४१-३४४।





साहित्य के व्यापक प्रभाव के भी अनेकानेक चिह्न दृष्टिगत होने लगते हैं। लेखकों की भाषा में अँगरेजी शब्दों के प्रचुर समावेश और साथ ही पारिभाषिक हिन्दी शब्दों के निर्माण का गुमारम्भ होता है।<sup>१</sup> लेखक अँगरेज कवियों की रचनाओं की ओर सवैत कर और उनसे प्रसंगानुकूल पंक्तियाँ उद्धृत कर अपने पाठ्यसाहित्य ज्ञान का सम्यक् परिचय देते हैं। उदाहरणार्थ—‘हिन्दी प्रदीप’ के अप्रैल १८७६ वाले अंक में “बाल्य अवस्था” शीर्षक निबंध में निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत हैं —

A man severe he was and stern to view,  
I knew him well and all the truent (*sic*) knew,  
Well had the boding tremblers learn'd to trace  
The days disasters in his morning face,  
Full well they laugh'd with counterfieted glee  
At all his jokes, for many a jokes (*sic*) had he

इसी वर्ष इसके जूनवाले अंक में हृषीकेश भट्टाचार्य-कृत “कवितावली” के प्रकाशन पर हृष प्रकट किया गया है “यह ग्रंथ बहुत ही मनोरंजक है इसकी चहुँप-सौ कविता अँगरेजी कविता से अनुवाद की गई है हम का इस बात का विशेष हृष है जो नूतन प्रणाली के सम्बृत्त विद्वानों ने इस बात की ओर मन दिया कि विदेशी भाषाओं में जो कुछ चातुरी हो उसका भी रसाकषण कर संस्कृत में कर लें।<sup>२</sup> नवम्बरवाले अंक में सुकरात का जीवनवृत्त प्रकाशित हुआ जो मिरातुल हिन्द से संगीत” था। इसी प्रकार ‘सारसुधानिधि’ के २६ मई सन १८७६ वाले अंक में “वगविजेता” का प्रथम परिच्छेद मिल्टन की इन पंक्तियों से शुरु होता है —

१ सन १८५७ से १९०० तक के साहित्य में राष्ट्रीय भावना के लिए देखिए डा० सुपमा नारायण, भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति (१९६६), पृ० ४२-६३। पारिभाषिक शब्दों को निर्माण-योजना किस प्रकार कार्यान्वित हो चली थी, इसके लिए द्रष्टव्य हिन्दी प्रदीप, १ जून १८७८ में “भोजन-मदाय”, जनवरी १८०० वाले अंक में पृ० १४-१५ पर “मनोविज्ञान”, सत्यसिन्धु (मासिक पत्रिका), १५ जुलाई १८९७ वाले अंक में “सृष्टि-तत्त्व” (दूसरा अध्याय), इत्यादि।

२ हिन्दी प्रदीप, १ जून १८७९, पृ० १६।

While the ploughman n ar at hand  
 Whistles o'er the furrowed land  
 And the milkmaid sunneth blithe  
 And the mower whets his scythe  
 And every shepherd tells his tale  
 Under the hawthorn in the dale १

अर्थ— १८८० ५ प्रकाशित हिंदी प्रभाव क एक कवि म दहाड की यह उक्ति उद्धृत है 'बोल्सिया भर्गो गुण—भर्गो भद्र पित दशमाल आई उम । उद्धृत १८८० का उ अर्थ क प्रथम कृष्ण पर शा समाप्त भर्गो म अर्थ एक विषय-शील है— आर म भाग एक इतिमिदुभा ट्टु दिनेय विषय । दशमाल किली शर्माग रग किली म्मा । दशम अर्थ क एक उद्गीग पर कता म्मा है कि विदग्धा र सुगी पर एक कितपर किली धा किलम उदरान बाबु हरिचन्द्र के सुगी क दिनिदिना का गहा किया है ।

जहाँ तक हिन्दी-समीक्षा का संबंध है उद्गीगवा दशा क अंतिम तीस श्लोक वषे ही युगांतरकारी गिह हुए। भार्गवु का गहनी प्रतिभा स आन्वर्तित न दशा म समीक्षा की एक उर्द भाषा का जन्म हुआ रीतिरिवाजगत साम्प्रदाय समाप्त—रक्षिया द्वारा प्रणीत पद्यात्मक समीक्षा—ने स्यात पर गरी धाया म विरहित उम समीक्षा का उद्भव हुआ त्रिगम आधुनिकता क बीजांगुर मित्र है। भारत-युगीन समीक्षा आरिखतव युगांतरिखय-मात्र की परन्तु आने उद्भव-जा से ही यह पारनाय आरेख्य म पगी उम पर नाताविष्य दगी विन्धी प्रभाव पर जिनने विह्व आज भी सारी रक्त-नलिकात्रा म यनमान हैं और जो इसने स्वल्प निर्माण तथा इस वर्गिण्य प्रानन करने म सहायक हुए हैं।

पत्र-समिक्षाओं में प्रकाशित "पुस्तक-परिचय"

हिन्दी म समीक्षा का वास्तविक आरम्भ बन्दीनारायण चौधरी प्रमथन की रचनाओं में नहीं होता २ इसका वास्तविक आरम्भ 'प्रमथन' की रचनाओं

१ L' Allegro, lines 63-68

२ "हिन्दी साहित्य कोश" (भाग १, प० १२३) के अनुसार हिन्दी में आलोचना का वास्तविक प्रारम्भ बन्दीनारायण चौधरी "प्रमथन" की उन रचनाओं से होता है जिनमें उन्होंने "आनन्दकादम्बिनी" में लाल धीनियासदास रचित "सयोगितास्यसम्बर" का नाट्य दोष और गदाधर सिंह द्वारा अनूदित "बग विजेता" के भाषा शिल्प संबंधी दोष दिखलाये थे ।

के पहले "सारमुधानिधि" के "साहित्य"<sup>१</sup> और "हिन्दी भाषा"<sup>२</sup> जमे निबन्धों से होता है। "साहित्य" शीपक निबन्ध के रचयिता की भाषा सबधी मनोवृत्ति आधुनिक तो है ही, साथ ही वह ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। इसके द्वाारा पाठका को अपनी भाषा के उत्तरोत्तर सबधन के लिए जागरूक और प्रयत्नशील करने का प्रयास किया गया है। 'सारमुधानिधि' में ही सन् १८७६ ई० के मई १८ वाले अंक में "बानू हरिश्चन्द्र" नामक परिचयात्मक निबन्ध प्रकाशित हुआ था, जिसमें एक मूढन्य साहित्यकार के प्रकार बहुरूप्य एव उपलब्धिया का स्तवन हुआ है और जिसके अन्त में यह अभ्यथना की गई है कि हिन्दी भाषा के हितैषी हरिश्चन्द्र की यथावश्यक सहायता करें। १८७८ ई० के ४ अगस्तवाले अंक में 'धार्मीशिक्षा' शीपक अनूदिन ग्रन्थ की समालोचना प्रकाशित है, जिसे केवल पुस्तक-परिचय मात्र कहा जा सकता है। वस्तुतः इस प्रकार की समीक्षा जिसमें पुस्तका का परिचय-मात्र जार विनापन छपा हो भारते-दुग्घ के अधिकांश पत्रों में देखी जा सकती है। 'हिन्दी प्रदीप' में १८८० के १ अप्रैल का निम्नलिखित समीक्षा प्रकाशित हुई —

हमारे चिरस्नही केशवराम भट्ट प्रेषित शमशाद सीशन नाम नाटक हम बहुत बहुत धन्यवादपूर्वक स्वीकार करते हैं यह नाटक कवीर का इस दाहे को लय कर लिखा गया है ॥

दुबल को न सनाइए जाकी मोठी हाथ ।

मुई खाल की सास से सार भस्म होइ जाय ॥

भाषा इसकी जैसा कि ग्रन्थ के नाम ही से प्रकट होता है ठेठ उरदू नागरी अक्षरा में है इसमें उत्तम पात्रों की बोली सरल उरदू और नौकर आदि हीन पात्रों की भाषा पठने की या भोजपुर की पूरबी रखी गई है नाटक यह उत्तम रीति पर रचा गया है ।<sup>३</sup>

इस युग के पुस्तक-परिचय का सामान्य स्तर यही है। परन्तु ऐसे भी समीक्षक मिलते हैं जिनका मानदण्ड 'आधुनिक' थे और जा म्वाभाविकता एव उपयोगिता की बसोटी पर इदयुगीन नाटका और उपन्यासों को आकाश चाहते थे। जुलाई सन १८८१ ई० में 'विद्यार्थी सम्मिलित हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका'<sup>४</sup>

१ सारमुधानिधि, १३ जनवरी सन १८७९ (भाग १, अंक १) ।

२ सारमुधानिधि, २० जनवरी, २७ जनवरी, १० फरवरी, १४ अप्रैल, १८७९ ई० ।

३ हिन्दी प्रदीप, जि० ३, सख्या ८ (१ अप्रैल १८८०), पृ० १२ ।

४ दे० बला ८, किरण ४, पृ० ८७ ।

मे "नाटक वा उपन्यास" शीघ्र एक विचारोत्तेजक टिप्पणी प्रकाशित हुई थी जिसमें तत्कालीन साहित्यकारों की रचनाओं से असन्तोष प्रकट करते हुए कहा गया है कि वे अपनी रचनाओं को अधिनाधिक सारगम तथा स्वाभाविक बनायें। १८८५ ई० में "हिंदी प्रदीप" में भाभापा लिपयन एक निबंध प्रकाशित हुआ जिसमें शीघ्र वा "भाषाओं का परिवर्तन"।<sup>१</sup> यहाँ तब आत-आत कुछ ही वर्षों में, इस पत्रिका के निबंध अल्पाधिक मात्रा में जागृकनात्मक हो जाते हैं। इसी उत्तरोत्तर विनाम और प्रोत्साहन के फलस्वरूप सन् १८८६ में बालकृष्ण भट्ट का वह निबंध प्रकाशित हुआ जिसका शीघ्र है 'सच्ची समालोचना' और जिसमें दिल्ली निवासी टाला श्रीनिवासदास के सयोगिता स्वयंवर' नाटक की समीक्षा है। इसे हम पुस्तक परिचय मात्र नहीं कह सकते। यद्यपि इसमें सडन-पथ की ही प्रधानता है, फिर भी इसमें समीक्षित पुस्तक को विभिन्न विचार विदुआ से परखा गया है और इसके विभिन्न सघटक अन्वयों को विवेचित करने का चपटा की गई है। लेखक के मानसिक पाश्चात्य समीक्षा से अपहृत जान पड़ते हैं और वह नाटककार को अपने पात्रों के 'आन्तरिक भाव' तथा 'स्फिरिट आन द टाइम्स' को जानने की सलाह देता है। समीक्षक के प्रतिमान के ही ह जा शेक्सपियर की आलोचना में डाक्टर जानसन हैजटिट लम्ब इत्यादि के हैं। लेखक नाटक के पात्रों का स्वाभाविक एवं इतिहास-सम्मत होना पसंद करता है और चाहता है कि हिन्दी-नाटकों के पात्र व्यक्ति हों, न कि हमने जहाँ तक नाटक दरे उनमें पात्रों की 'चरित्र (Characterization) के भिन्न होने ही से नाटक की शक्ति दत्ता पर आपके पात्र सत्र के सब एक ही रस में मन उपदेश देने की हृदय से लथर-पथर पाय गय।'<sup>२</sup> वह पाश्चात्य प्रतिमानों के साथ ही भारतीय नाट्यशास्त्र का भी प्रयोग करता है और भवभूति की चर्चा करते हुए श्रीनिवासदास को सलाह देता है कि नाटक में पाठित्य न हो, बल्कि मानव हृदय से नाटक का 'वितना गाना परिचय है, महं दरमाना चाहिए।'<sup>३</sup> समाशा की भाषा में कई स्थलों पर अंगरेजी गाना का प्रयोग हुआ है।

१ मई १८८६ को बालकृष्ण भट्ट का एक पत्र प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने "सांख्यिकानिधि" के सपादक का भ्रम निवारण' करने हुए अपना पूर्वानुमान आलोचना के आधारभूत दृष्टिकोणों का समर्थन किया है और बताया है कि

१ हिंदी प्रदीप, १ जून १८८५, पृ० ३६।

२ हिन्दी प्रदीप, १ अप्रैल, सन १८८६, पृ० १७।

३ उपरिक्त पृ० १८।

उन्होंने श्रीनिवामदास की आलोचना किसी मनीष तथा अपायपूर्ण पूर्वग्रह के कारण नहीं की थी। उन्होंने नाटककार के दोषों पर ही प्रकाश डाला था, यद्यपि उन्हें “बाह-बाह” वाली शैली गहीत न थी “गुण गाव कर हाँ में हाँ मिलाने वाले बटुन से लोग पडे ह यह क्या आवश्यकता है कि हम उन्ही के समान हाँ म हाँ मिलानेवाले हा।”<sup>१</sup> भट्टजी का आशयनादश उस युग के अधिकांश नमीशका का आदग है। उनके अनुसार “समालोचना ता उसी का नाम है कि उत्तम स उत्तम तेल का भी दोष निरूपण कर आइना कर दे।” इसमें, जैसा भट्टजी ने स्वयं कहा है उनका आदग परम्पराजनुमादिन है, यद्यपि मम्मट ने “काव्यप्रकाश” के अष्टम उल्लास में “विणीमहार” आदि “परमात्तम रचना” के दोषों का बड़ी निममता से उदघाटन किया है। भट्टजी की यह खडनात्मक प्रवृत्ति उनकी सहज आधुनिकता के अनुकूल नहीं दीगनी और न ऐसी असहिष्णुता राइमर-सरीने पाश्चात्य शास्त्रवादी आलाचका के बाहर ही पायी जाती है। किंतु जहाँ यह अनुपेयणीय सत्य है कि के सामयिकों के प्रति यकिचित् अनुदार हैं, वहाँ यह भी निश्चिवाद है कि उनके कतिपय प्रतिमानों की सायभौमता एव साद्वत्ता के कारण उनमें आधुनिकता का आभास होता है। भट्टजी ने कहा है

हम लोग ग्रंथों की समालोचना करने में केवल उपस्थित ग्रंथ ही पर ध्यान नहीं देते किन्तु उस प्रणाली के परम उत्कृष्ट ग्रंथ पर दृष्टि रखते हैं और जा ( Standard of excellence ) उत्कृष्टता की माप प्राचीन और नवीन बुद्धिमानों के विचार के अनुसार अपनी बुद्धि में उत्तम जँचते हैं उनको बुद्धि के चित्रपट में रखकर उसमें उपस्थित ग्रंथ का तुलना करते हैं और उस तुलना में जो कुछ गुण दाप समझ में आता है उसको प्रयत्नों के मित्र जन अपने मित्र तथा और इतर लोगों की प्रसन्नता का सृष्टता पर नेक भी ध्यान न दे प्रकाशित करते हैं ।<sup>२</sup>

इस उद्वरण से स्पष्ट है कि (१) हिन्दी की प्रौढ आधुनिक समीक्षा के लिए उपयुक्त मशकन शकवाली का निमाण हो चला है (यदि भारते दुयुगीन समीक्षा का एकमात्र यही योगदान हाता तो भी वह समीक्षा आधुनिक पाठका द्वारा अभिनदनीय होती) और कि (२) भारते दुकालीन व्यावहारिक समीक्षा में भी सद्भातिक सूवा का पर्याप्त समाहार मिलता है। नव जागरणयुगीन अँगरेजी

१ उपरिखत, १ मई सन १८८६, पृ० ९।

२ उपरिखत, पृ० १०।

समीक्षा प्रधानतः साहित्य एव वर्गीत (theoretical and legislative) है परन्तु भारत-युग की हिन्दी-समीक्षा मुख्यतः व्याख्यात्मक (३) रूपयुक्त उद्देश्य से भट्टजी का तथा उनसे जैत अथ समीक्षा की आलोचना-प्रक्रिया (critical process) पर भी यथार्थ प्रकाश पड़ता है। साहित्य की चिन्तन परंपरा का बोध समीक्षात्मक अनुशासन के लिए अनिवार्य है। सन व्याख्या और तुलना में सहायता मिलती है। इस कारण एचियट लाविम आदि न इस परंपरा के अन्तर्गत आये हैं। भट्टजी में तदुत्तरीय राष्ट्रियता सूट-सूटकर भरी थी इसलिए उन्होंने एक ओर तो श्रीधर पाठक द्वारा प्रस्तुत गोल्डस्मिथ की 'हरमिट' शीघ्र कविता के अनुशासन की प्रशंसा की है आ-दूसरी ओर कहा है कि 'अंगरेजी में पढ़ते तो इन अनूठे वाक्य हैं नया जो अनुशासन के योग्य है। हैं भी तो हमारी भाषा में उनका श्रेष्ठ अनुशासन कल्पित चोला रसोला सब सम्मत् और सब प्राण्य न होगा।' २ इस कथन के पहले वाक्य में समीक्षा का पूरवर्ह व्यजित होता है न कि उसका निष्पत्ति-दृष्टिकोण। फिर भी दश में अनगिनत ऐसे पाठक थे जिनमें अंगरेजी भाषा-साहित्य के प्रति गहरी रुचि थी, जिसका प्रतिबिम्बन सामयिक परिवर्तन में प्रकाशित तत्कालीन नियमों में हुआ है। "सारमुधानिधि" में सन १८७८ ई० के १४ जुलाई का एक निबंध प्रकाशित हुआ था जिसमें अंगरेजी भाषा पर नामन विजय के परिणामों का तथा इस भाषा के क्रमिक विकास का वर्णन मिलता है। आश्चर्य इस निबंध के प्रकाशन पर नहीं होता, जो कि इनमें वर्णित घटनाक्रम अधुनातन गवेषणा से प्राप्त तथ्यों एवं प्रामाणिक इतिहास में उल्लिखित घटनाओं के आशोक में अत्यन्त विश्वसनीय हैं। इसी युग में एक अन्य प्रकार के निबंध मिलते हैं, जो न जायत समीक्षात्मक है न केवल परिचयात्मक। इनमें ममस्पर्शी ताला व्यंग्य उपहास और शालिक विडम्बना पायी जाती है। श्री राधाचरण गास्वामी द्वारा संपादित 'भारतेन्दु' में ऐसे ही निबंधों का प्राचुर्य है जिनमें प्रभावाभिव्यजन और व्यंग्य अधिन हाते हैं सूक्ष्म गोध पर आधारित समीक्षात्मक काम।

(१) राजा शिवप्रसाद कौन हैं ? ३

१ इस युग की साहित्यिक समीक्षाओं में 'भारतेन्दु' के "नाटक" का स्थान सर्वोपरि है। इसका उल्लेख अग्रज हुआ है।

२ हिन्दी प्रदीप, १ मई १८८६, पृ० १६-१७।

३ भारतेंदु, २२ अप्रैल १८८३, पृ० ४५।

५८ आधुनिक हिन्दी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव

कई समाचारपत्रों ने राजा साहब से पूछा है, आप कौन हैं? हम राजा साहब की जोर से जवाब देने हैं। राजा साहब कन्नौज के राजा जयचंद हैं। राजा साहब मुशिदाबाद नाशकारी अमीर हैं। राजा साहब लकाधिप के भाई विभीषण हैं। राजा साहब इंग्लिश मैन ऑफ पार्लियामेंट वा सिविल मिलिटरी मजिस्ट्रेट के जीव योग हैं। राजा साहब ब्रामन किन्ड जेम्स आदि के गुरु हैं। राजा साहब हिंदू धर्म के नाग करने के लिए साधान् जन भुनि हैं। विष्णु क्या, राजा साहब यथाथ ही शिव हैं, जैसे शिव के कठ म विष्णु है, उसी प्रकार उनसे कठ म विष्णु है। राजा साहब हिंदुस्तान की उन्नति की प्रयत्न करने के लिए निरनन, त्रिगूलधारी, महाकाल, विकराट, मुडमाल, सर्वांग पूरित व्याल श्मशानवासी, अविनाशी, शिव हैं।।।

## (२) हिंदी

सकार कचहरिया म हिंदी क्या नहीं जारी करती? सुना है कि सकार हिंदी का असम्य भाषा समझती है। क्या न हो? जिसमें व्याकरण, काव्य, कोश न्याय वेदांत, साह्य पातञ्जल वेद उपवेद, पुराण, इतिहास वचक ज्योतिष, चतुष्पष्टि कला, आदि की पुस्तकें एक हजार वर्ष में भी प्राचीन हैं वह परम असम्य है। जो हिंदी आद्ये से अधिक भारतवर्ष भर में व्याप्त हो, जिसे दस बारह काटि मनुष्य बालते हैं वह महान महान् असम्य है। वर्तमान रीति के अनुसार भी जिसमें सब विषय के दो तीन हजार ग्रन्थ हैं चालीस से अधिक सम्वादपत्र छपते हैं, प्रतिवर्ष सैकड़ों विद्यार्थी पास होते हैं, वह असम्य चूडामणि भाषा है।।

‘भारतेंदु म प्रकाशित ‘सक्षिप्त समालोचना’ म सस्त तुन्नात्मक भावोत्पत्ति का प्रचुर समावेश हुआ है। समीक्षक की दृष्टि पाश्चात्य साहित्य की ओर भी जाती है परंतु तुन्ना सृजक, सक्षिप्त एव प्रभावाभिव्यजनात्मक ही रह जानी है उसका यथोचित विश्लेषण एव पल्लवन नहीं होता।<sup>२</sup> भारतेंदु क निघण्टु पर इसमें कोई सतुलित एलेजी और ‘इन मेमोरियम’ का प्रकाशन नहीं हुआ इनके स्थान पर भावुकतापूर्ण भावाद्र एव अयुसिकन सस्ते उद्गार

१ भारतेंदु, १० मई सन १८८४ ई०, पृ० २०।

२ उदाहरणार्थ—दे० भारतेंदु, पुस्तक २, अंक ९-१२, सन १८८४ ८५, पृ० १२९ (सक्षिप्त समालोचना)।



पत्र लिए गए 'हाथ' आज प्रचलित हो गया। पुरानी पत्र गन्। आशा  
 रसातल को घटा गया। पाताउ घमटा गया। गप का गप र रहा। शब्दाड  
 पूरा हो गया। शान्ति विधवा हो गई। हिन्दी मात्र विपरीत जनाय  
 गतिमा रहे गई। रविमा का धीर समुद्र सूना गया। सम्मुखा का मुमर  
 खन पण रण हो गया। सत्य का कल्पना निमूल हो गया। यत्न धम का  
 नजा गिर पड़ी।' १

भारते-दुरालीन समीक्षा संपादक एव कविमा म हिन्दी भाषा क बहुमुगी  
 विरास के प्रति जो गम्भीर और उरठा पायी जाता है वह भत्याआ क इतिहास  
 म कोई अनमुनी अनोगी घटना नहा है। नवजागरणयुगात जगरजा म भा नगी  
 भाषा के प्रति एमी ही जागरणता पायी जाती है। निम प्रकार भारत-दु तथा  
 अन्य पत्रिकाआ म बार-बार हिन्दी भाषा-साहित्य का गौरव गरिमा का गान हाना  
 है। उमी प्रकार नवजागरणयुगीन अंगरेज समीक्षा और रविमा म आर्य भाषा  
 की श्रेष्ठता का सगन्न पोषण मिलता है। और जिस प्रकार सोन्टवा गता क  
 अनर अंगरेज कविमा और आलोचका न अपन गम्भाडार क स्वधन के लिए  
 विदेशी शब्दा का जगरजी नागरिकता प्रदान करन और उह इस प्रकार  
 आत्मसात करने की युक्ति प्रस्तावित की था उसी प्रकार थाधर पाठन जम  
 हिन्दी कविमा तथा लेखका ने विदेशी शान्ति को जगीकृत करने की सत्ताह दी है।  
 क अंगरेजी गन्ना को बस ही नागरिक अधिकार दना चाहत है जस बगला  
 मगढी आदि भाषाओ के गन्दा को।<sup>२</sup> उनकी यह उदारता पाठनजी क अनुवादा  
 और उन अंगरेजी उद्धरण म दृष्टातीकृत है जो अपने मत की सपुष्टि म पाठनजी  
 न 'पायानियर' से लिय हैं।<sup>३</sup> भारते-दु और महावीरप्रसाद द्विवेदी की तरह  
 उह भी हिन्दी के भाषा-साहित्य-सदधी अभावा का बहु वैयक्तिक अनुभव था तथा  
 के तद्पुगीन साहित्यिक समस्याआ से पूणतया अवगत थे। उन समस्याओ मे  
 सवाधिक जटिल समस्या गन्ना भाडार के स्वधन की थी। सम्पन्न शब्द भाडार  
 क बिना इसमे उपयोगी साहित्य की सृष्टि न होती और बिना उत्तमातम ग्रन्था क  
 लम्बा सम्यक प्रचार न हाता। इस कारण सरस्वती के सवप्रथम अंक की  
 सूचिका म कहा गया था कि इसके नव जीवन धारण करन का केवल यही मुख्य  
 उद्देश्य है कि 'हिन्दी रसिना क मनारजन के साथ ही साथ भाषा के सरस्वती

१ उपरिबत, प० १५९ ।

२ दे० मर्यादा, भाग १, सत्या १, नवम्बर १९१०, प० २६ ।

३ उपरिबत, प० २४ ।

भण्डार की अगपुष्टि, वृद्धि और यथातथ्य पूति हा, तथा भाषा सुखका की ललित लवनी उत्साहित आर उत्तजित होकर विविध भावमरित" ग्रन्था की रचना करे।<sup>१</sup> स्पष्टत इस भूमिका मे यह नही कहा गया कि हिंदी भाषा के शब्द भांडार के सवधन एव दृढीकरण के लिए अंगरेजी शब्दा को अंगीकृत किया जाय, परंतु सम्पादक-समिति<sup>२</sup> का मतव्य गुप्त न था। ('मरस्वती' ने अपने प्रकाश के प्रथम वष मे ही शेरसपियर के नाटक की कई आख्यायिकाओं के "मर्मनुवाद" प्रकाशित किए थे।)<sup>३</sup> अंगरेजी साहित्य विभववान था, अंगरेजी भाषा ऐश्वर्यशालिनी एव सवधनशील थी और इसके बोलनेवाले लोग—प्रयोगकर्ता—भारतवासियों के शासक थे। अंगरेजी शिक्षा मे एक स्वाभाविक आकर्षण था, उसमे अध्यात्म अत्यल्प, ऐहिक तत्त्व सर्वाधिक थे। उसमे बहिर पर अधिक बल था, अंतर की उपक्षा थी। इसके अतिरिक्त नई शिक्षा आधुनिक थी, देशी शिक्षा पुरातन एव रुढ़। जहाँ ज्ञान विज्ञान पर आश्रित नई शिक्षा ने अलीबाबा के 'खुल समसम' की तरह पश्चिम को धन-ऐश्वर्य से परिपूर्ण कर दिया था वहीं गतानुगतिक और सकीणता पर आश्रित देशी शिक्षा भारत-वासियों को दिन प्रतिदिन जजर तथा दरिद्र बनाती जा रही थी। जिस स्वयं की जोर इनकी जाह्न टकटकी लगाए रहती, उससे इनके नित्यपूजित देवगण स्वयं-रजन की वर्षा नहीं करते और न अपने द्युमुक्षित पिपासित भवता के लिए शीतल-मधुर भुव-स्वाति बरसाते। उल्टे दुर्भिक्ष, दास्य, अज्ञान और अधविश्वास ने इनके जीवन को नानाविध सक्टा से आश्रित कर रखा था। नई शिक्षा विज्ञान पर आधुन थी,<sup>४</sup> उसमे नया जाज्वल्यमान ज्ञानालोक था और उसमे पाश्चि

१ मरस्वती, भाग १, सख्या १, जनवरी १९०० ई०, प० १२।

२ इसके सदस्य थे बाबू जगन्नाथदास (रत्नाकर), बी०ए०, बाबू श्याम-मुंदरदास, बी०ए०, बाबू राधाकृष्णदास, प० किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू कार्तिकप्रसाद सनो।

३ भाग १, सख्या १, प० ८ (सिम्वेलिन), भाग १, सख्या २, प० ४४ (एथेसवासी टाहमन), भाग १, सख्या ३, प० ८१ (पेरिविलस), भाग १, सख्या ४ (पेरिविलस का गेषान)। इनके अनुवादक बा० राधाकृष्ण दास थे।

४ इहाँ कारणों से पाण्डेय रामावतार शर्मा, महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल जस निदान अंगरेजी विज्ञान के प्रभाव ग्रहण करने और हिंदी के अधिनाधिक सवधन के प्रस्तोता हैं। शर्माजी ने शिक्षा के तीन अग बतलाये

मुग की आङ्गदारा समावनाएँ थी। उन्तराणी नयपुवरा के लिए उमम गोत्री थी ता इगम—नेी गिगा म—बारी। अंगरजी भापा मे हा हिल्ली भी सर्वाधर उगृत हा राती थी। देगी भापाभा म अभी यह औंगय जोर मत्र न था जिगत व हिल्ली के पोषण-मयधन म योगदान कर सक।

‘आन-दादम्बिनी’ म प्रवागिन कतिपय समीगाएँ, समग्रत समीगा ती कोटि म ही परिगणित हागी, इसलिए उनरा महत्व आज भी अगुण्य है और कई साहित्यनिहासा म यह लिखा मिलता है कि उनस ही हिल्ली-आलोचना ता वास्तविक सूत्रपात होता है। ‘यगविजेता’ की व्यावहारिक आलाचना, निस्मृष्ट, उस मुग की समीगात्मक उपलब्धिया के आलाप म प्रथम श्रेणी की है। उसम न बचल सडन पक्ष का प्राधान्य है न मडन पक्ष का ही। जनून्ति उपयास व विभिन्न परिच्छया की पथक-मयरा आलोचना प्रस्तुत करत हुए लेखन ने वही-नहा अतिरजनापूण विगपणा का प्रयोग किया है, जा इस समीगा को प्रभावाभिव्यजनवाती परपरा स अनस्यूत करत है। यालट्टुण्य भट्ट और प्रेमधन’ ने जिस शली का प्रवतन किया था, वह आज भी पत्र-पत्रिकाओं की

है—सप्रहाग, घटनाग और कार्याग और कहा है कि “अंगरेजी विज्ञान के जो भोग्य पदाय भारतवासियों के यहां आते भी हैं वे वहाँ बाहर हा पडे पडे बासी हो जाते हैं। भारत-सरस्वती का मुख ससृष्ट है। इस मुख तक तो यह विज्ञान अभी पहुँचा ही नहीं।” (मर्यादा, भाग २, सत्या ५, सितम्बर १९११, पृ० २०२) हिंदी साहित्य प्रेमियों को चाहिए कि अपनी भाषा मे ही वतानिक पादों की रचना करें। समस्त भारतवर्ष की एक भाषा होनी चाहिए और यदि इतना न ही सके तो कम से कम उनकी विज्ञान विषयक भाषा अवश्य ही एक होनी चाहिए। “सन १८५८ ई० की शिक्षा सबधी राजकाय आशा मे जिसे हम भारतवर्ष मे शिक्षा का मगनाकार्टा कह सकते हैं, भारतवासियों को एक बड़ी आशा दिलाई गई थी कि इस देग के सत्रसाधारण के मध्य यूरोपाय विद्या तथा विज्ञान का प्रचार उनको मातृभाषा ही द्वारा किया जायगा, किंतु ५० वर्षों के बाक यह वचन अय वचनों की नाइ, जो गवर्मेण्ट ने प्रजावग को दिये, अभाष्यरस अपूण ही रह गया। इस समय सारे भारतवर्ष के सम्मुख एक बड़ा प्रश्न यह है कि योरप का विज्ञान किस प्रकार गरीबा को उनरी हा भाषा में प्राप्त हो सके।” मागरीप्रचारिणी पत्रिका, जून १९०६ (सं० ४, भाग १०), पृ० १७८-१७९।

पुस्तक ममीयाआ म देवी जा सकती है। दाना ही अपने युग के अच्छे विद्वान् थे। ५० बालकृष्ण भट्ट को सम्पन्न-साहित्य का मूर्तिमान दूसरा "व्यास" ही कहा गया है। भट्टजी को व्याकरण ज्योतिष और बभकाड पर पूरा अधिकार था और वे वेदान्त सांख्य तथा दान के आचार्य थे। निरन्तर शास्त्र का विगिष्ट अध्ययन करने के कारण वे नये-नये शब्दों और नये मुहावरों का सफल बड़ी तत्परता से कर रते थे। उनके निबन्धों से उनकी परिभाषित परिष्कृत तथा सयत लेखन-शैली का बोध होता है—उनकी भाषा गम्भीरतम भावा एव उद्दृष्ट विचारों का बहान करन में सक्षम है। वे रमजता के महान् प्रस्तोता थे। उनके अनुसार अरसिका को शब्दों की भाषिणी शक्ति का—उनमें निहित रस का—बोध होना ही नहीं 'अरसिकेषु कवित्वनिवेदन शिरसि मा ल्खि मा लिखि मा लिखि। शब्दों की आकषण-शक्ति के प्रबोध के लिए सरल-हृदय होना रमन होना आवश्यक है। इसका मम तब प्रकट होता है, जब जरसन की गोष्ठी में कोई रसन आपैतता है। काक कृष्ण पिक कृष्ण को भेद पिककाकयो। वसनममयेप्राप्त काक काक पिक पिक ।

### सद्वातिक आलोचना भारतेदु कृत "नाटक"

सन् १८८३ ई० में मेटिकल हॉल प्रेस में भारतेदु का "नाटक" शीषक आलोचनात्मक निबन्ध प्रकाशित हुआ जो सद्वातिक समीक्षा की सबसे प्रथम महत्वपूर्ण रचना है और जिसे लेखक ने 'भाषाजवनिकाच्छत्र' "जगन्नाटक-सूत्रधार" 'मदनगगनायक' नटनागर को समर्पित किया है। इसके 'उपक्रम' में भारतेदु ने इनके स्रोत पर यह कहकर प्रकाश डाला है कि 'इसके लिखित विषय दण्डरूपक, भारतीय नाट्यशास्त्र साहित्यरूपण काव्यप्रकाश विल्मन्स हिन्दू थिएटरस, लाइफ आब दि एमिनेंट परमस, डामेटिस्ट्स एंड गवेलिम्स हिस्टरी डि इटालिक थिएटरस और जाय दगा से लिए गए हैं।' इसी निबन्ध में हिन्दी-नाट्य-समीक्षा में पाश्चात्य प्रभाव के अनेक गवाह खुलने हैं। पाश्चात्य प्रभाव का सच्चा सूत्रपात ज्ञाना है और आधुनिक समीक्षा के इस आरम्भिक स्वरूप को पाश्चात्य समीक्षा से प्रेरणा मिलती है। नव प्रबुद्ध भारत में उत्पन्न भारतेदु से यह बात छिपी नहीं रहती कि "नवादिन तरण-समाज में पाश्चात्य साहित्य भाव प्रवणता का नवा मय एव नय मूल्या के प्रति जिनामा' भर रहा है। उलाने इस साहित्य की उद्देशना की, वरन् मथामम्मत्र इसका उपयोग किया। 'नाटक' क कितन ही सिद्धात

१ भारतेदु-प्रयायला (स० २००७), भाग १, प० ७१३।

और इनमें उचितता जितनी ही मानाएँ इस बात को भौतिकी प्रमाणित करती हैं ।

निघण्टु का आरम्भ "नाटक" नाम की व्याख्या और कई महत्वपूर्ण परिभाषाएँ सहता है । नाटक नाम पात्रों का स्वस्व-परिचय कर नृपादि का "स्वरूप धारण करते हैं अथवा यथाविज्ञान के पदार्थ रंगभूमि में स्वकीय वाय-भाषण के हेतु निरता हैं ।" "शब्दाव्यय की मञ्जा रूप है और रूपता में नाटक ही प्रमुख है जिगने कारण रूपता मान को नाटक कहते हैं ।" इसी विधा का नाम कुशीन-शास्त्र भी है ब्रह्मा गिय, भरत, नारद, हनुमान व्यास वाल्मीकि, त्व-शुभ्र श्रीकृष्ण अजुन पायनी जादि इसमें आचार्य हैं और इनमें भरत मुनि इसका मुख्य प्रवर्तक हैं । वाच्य के उस सप्तगुणसमुन्नत रस को नाटक कहते हैं जिसमें नायक कोई महाराज (जसे दुष्यत) या ईश्वरराज (जसे श्रीराम) या प्रत्यक्ष परमेश्वर (जसे श्रीकृष्ण) हा, रस शृंगार या वीर हो, एक पात्र के ऊपर आर दस के भीतर हा, आख्यान मनोहर और परमोज्ज्वल हा । नाटक रूपक के दस भेदा में पहला महत्वपूर्ण भेद है इन कारण इसके वर्णित्य निरूपण के पदार्थ भारते-दु ने प्रकरण, भाषण, व्यायाग समवकार, डिम, ईहामग जक, वीची आर प्रहसन की विशयताभा का उल्लेख किया है । तदनतर महानाटक की व्याख्या और उपरूपक के भेदा का वर्णन प्रस्तुत है । भारते-दु ने प्राचीन और नवीन नाटका की परस्पर विभिन्नता को स्पष्ट करते हुए ईपत अत्याधुनिक मत प्रस्तुत किए हैं जो पाश्चात्य डेकारम के सिद्धांत की याद दिलाते हैं । प्राचीन की अपक्षा नवीन की परम मुख्यता बारबार दश्या के बदलने में है और इसी कारण एक एक अक में अनवानेक गभ्राक समाविष्ट होते हैं । यदि नाटकादि दश्यकाय का प्रणयन अभीष्ट हो, तो भारते-दु के अनुसार समस्त प्राचीन रीति का परित्याग आवश्यक नहीं हागा । इसके अतिरिक्त 'ग्रन्थकर्ता ऐसी चातुरी और नपुण्य से पात्रों की वातचीत रचना कर कि जिस पात्र का जो स्वभाव हा वसी ही उसकी वात भी विरचित हो । नाटक में वाचाल पात्र की मितभाषिता मितभाषा की वाचालता, मूख की वाकपटुता और पंडित का मौनीभाव विडम्बना मात्र है । पात्र की वात सुनकर उसके स्वभाव का परिचय ही नाटक का प्रधान अंग है ।<sup>१</sup> इसके बाद रसा का उल्लेख है और "अभिनय विषयक अयान्य स्फुट नियम वर्णित है । निघण्टु के उत्तरार्द्ध में नाटका का संक्षिप्त इतिहास और

१ भारते-दु ग्रन्थावली (स० २००७) भाग १, प० ७१५ ।

२ उपरिक्त, प० ७३४ ।

संस्कृत हिन्दी के नाटका की तालिका दी गई है। "अव भाषानाटक" और "योरोप म नाटका का प्रचार" शीपक प्रकरण के अन्नगन विवेचित विषयो से देखक की विद्वत्ता तथा व्यापक अध्ययन का परिचय मिलता है और इन विषया के विवेचन से ही लेख का अंत होना है।

काशी नागरीप्रचारिणी ममा द्वारा प्रकाशित एव ब्रजरत्नदास द्वारा संकलित एव संपादित 'भारत दु ग्रन्थावली' के तीसरे खंड म 'भारत दु वा० हरिश्चंद्र की समग्र प्राप्न गद्य रचनाआ का संग्रह' है। इममे मगहीन निवघा म एक भी ऐमा नहीं है जिसका कुछ विगिष्ट आलोचनामक महत्व हो, परन्तु 'चरितावली' म यत्र-यत्र महत्वपूर्ण समीक्षात्मक सूत्र भरे पडे हैं और 'पुरावत्त संग्रह' के अतान संकलित निवघा से देखक की विश्लेषणात्मक, शोधक प्रतिभा और गडी बोग की परिष्कृत एव परिमार्जित गद्य-शैली का सम्यक परिचय मिलता है। भारत दु म अतहित ममायक संपादक के रूप म भी प्रकट हुआ, ब्रजभाषा के उनायक कवि ने खनी बोली के भव्य राजभवन का शिषान्यास किया। अपने मासिक पत्र 'कविवचनमुघा' मे, त्रिमका उद्देश्य 'प्राचीन कविया की कविताआ को प्रकाशित करना था' उन्होंने त्रमग गद्य-लेखन को प्रोसाहित करत हुए खडी बोली की नायक की। सन १८७० ई० म फ्राम के प्रसिद्ध पत्र 'ली लेंगया डेम हिन्दु-स्नानिय' ने मुक्तकठ म उन पत्र की प्रशंसा की,<sup>१</sup> परन्तु वाबू साहब को इसमे सतोप न हुआ। सन् १८७३ ई० म 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' का जम हुआ जो आठवी सख्या क बाद 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के रूप मे प्रकाशित होने लगा। सन १८७३ ई० म ही 'हिन्दी का पुनजम' हुआ—हिन्दी नये चाल में टली (हरिश्चन्द्री हिन्दी) सन १८७३ ई०।

### खडीबोली-आदोलन

आधुनिक युग के आविर्भाव-काल म ही साहित्येतिहास की दृष्टि से उस युगांतरकारी आन्दोलन का आरम्भ हुआ, जिसका नेतृत्व मुख्यत अयोध्याप्रसाद खत्री न किया। मुजफ्फरपुर के इस युगद्रष्टा तथा भाग-दगाक ने 'नागरी' अथवा खडी बोली के प्रचार क लिए जो अथक प्रयास किया उसके फलस्वरूप हिन्दी-भाषा शृङ्खला-मुक्त हुई,<sup>२</sup> फिर अती अग चन्द्रिका भारतेंदु की शैली उसका

१ सदर्बता, भाग १, सख्या १, जनवरी १९००, पृ० ७।

२ जाचाय गिबपूजनसहाय और श्री नलिनविलोचन गर्मा (मम्पा०), अयोध्याप्रसाद तथा-स्मारक ग्रन्थ (पटना, १९६०), पृ० २२०, २२१।

अल्पास भी 'आधुनिक पद्य के इम जन्मदाता' एवं 'हिन्दी साहित्य के इस भगीरथ' की फाल्गुने न पाई। नरिण किलाचन शर्मा न रश्रीजी की उपेक्षा पर य मटीक भावोत्पार ध्यवा लिए है —

अयोध्याप्रमाद रश्री न खडी बोली, यानी आधुनिक हिन्दी, के साहित्य क प्रमुत अग कान्य, का उसका उचिन स्थान दिलाने क —उनस जो इमक विराध क लिए कटिवद्ध क—जो काय किया था वह अब, जम हम सारी चीज को सही परिप्रेष्य म देखन की स्थिति म हैं, इतना महत्त्वपूण सिद्ध हाता है कि हम समथ नही पाते कि उनने समसामयिका ने या उनन तुरत बाद के लागे न, उनकी दूरदर्शिता निष्ठा एवं प्रचेष्टा की उपस्था क्या की। सच कहा जाय ता रश्रीजी के समसायिक उतने दापी नही हैं जितने तुरत बाद की पीढ़ी के के विद्वान जिन पर यह दायित्व था कि के आधुनिक युग के जाविर्भाव-काल की जतर्घाराजा का सम्यक विदलेपण करते। खत्रीजी के समसामयिका ने उनका विराध करके उहे निपेधमूलक ही सही, एक प्रकार की मायना तो दी ।<sup>१</sup>

खत्रीजी को अपने जीवन-काल म राधाचरण गोस्वामी और प्रतापनारायण मिश्र जैसे ब्रजभाषा पद्य क ममयका के धार विरोध का सामना करना पडा। अकेले इस युग-सचेतक, सात्त्विक-बभठ महापुरुष न भारत-दु काशी नागरी प्रचारिणी सभा और 'हिंदोस्थान' सरीखे तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओ तथा विभिन्न साहित्य महारथिया का सामना किया। रडी बोली आ दोलन म शीघर पाठक ने उनके पथ का जोरदार नमथन किया, अपनी ससत्त भाषा जार भावोशीपक तकरी से यह सिद्ध करना चाण कि 'नवीन हिन्दी' म भी कविता बन सकती है बनायी जा सकती है। उनका यह वि-वास सदढ़ था कि 'यदि इस प्रकार की हिंदी जिसम आजकल गद्य ग्रंथ और समाचारपत्र आदि लिखे जात है सूरदास तुलसीदास आदि के समय म प्रचलित होती तो सनेह नहा सूरसागर रामायण आदि काव्य इसी भाषा मे लिखे गए होते।'<sup>२</sup> उनके इस वि-वास के मूल म खडी-बोली क ज्योतिमय भविष्य क प्रति अविक्ल जास्या रही होगी, परंतु उनके विपस्था प्रतापनारायण मिश्र ने कहा —

१ उपरिबत्, पृ० (भूमिका) ७

२ उपरिबत्, पृ० ७६।

यह तो और भी हमारे लिए अहंकार का विषय है कि दूसरे देगोवाले केवल एक ही भाषा से गद्य-पद्य दोनों में काम चलाते हैं हमारे यहाँ एक गद्य की भाषा है, एक पद्य की ।। क्या वृजभाषा भी हिंदी नहीं है ? अरबी है ? फिर उसका 'परिरक्षण' क्या न किया जाय ? हमारे प्यारे पाठकजी इसका कोई पुष्ट प्रमाण दे सकते हैं कि मूरदास, तुलसीदासादि के समय में खड़ी-बोली प्रचलित न थी ? १

वस्तुतः मित्रजी जिसे अहंकार का विषय समझते हैं, उनमें तथ्य कम, निपट जहवाद और वैदग्ध्य अधिक है । विस्मयादिवोधक और प्रश्नसूचक चिह्ना के जतिश्रय उन्मुक्त प्रयोग से लेखक का मतव्य स्पष्ट हो जाता है । वह हमारे आवेगों को उद्दीप्त करना चाहता है, वैज्ञानिक तर्कों से आस्वस्त करना नहीं । उनकी नीति कारे खडन की नीति है 'गाली-गलौज की ओर चुकी है,' उसका मडन-मन अत्यंत दुबल है । "गद्य और पद्य की भाषा पृथक्-पृथक् न होनी चाहिए ।

सम्य-समाज की जो भाषा हो उसी भाषा में गद्यपद्यात्मक साहित्य होना चाहिए ।" २

### इंग्लंड में आंग्ल भाषा-आंदोलन

पंद्रहवीं और सोलहवीं शती में अंगरेजी भाषा के प्रचार और अभिस्वीकरण के लिए उसके समर्थकों को कुछ ऐसा ही सघर्ष करना पड़ा था । इंग्लंड में लटिन और फ्रांसीसी भाषाओं के विरुद्ध 'बर्नार्ड्यूलर' के पथपोषकों ने तरह-तरह के तर्क वितर्क उपस्थित किए । उनका काय चौदहवीं शती में किए गए कुछ प्रयासों के कारण सरल-मुगम हो गया । नामन विजय के बाद पहली बार सन् १३६६ ई० में इंग्लंड में एक ऐसा शासन हुआ जिसकी मातृभाषा अंगरेजी थी । चतुर्थ हेनरी ने राजसिंहासन के लिए जो जुनीनी दी, सिंहासनाष्ट होने के बाद उसने पार्लामेंट को जो धन्यवाद ज्ञापित किए और इंग्लंड के सर्वोच्च न्यायाधीश ने द्वितीय रिचर्ड को राज्याधिकार से च्युत करते हुए जो भाषण किए, वे सब के सब अंगरेजी में ही थे । अंगरेजी राजनय की उत्तरात्तर बधमान शक्ति के कारण यह अनिवाय हो गया कि राजधानी की भाषा ही राष्ट्रीय साहित्यिक भाषा बने । उन अनुबूल परिस्थितियों के अतिरिक्त अंगरेजी भाषा के संस्थापन एवं प्रचार में धर्म-सुधार के आंदोलन में भी महत्वपूर्ण योगदान किया । चौदहवीं शती में

१ उपरिक्त, पृ० ८० ।

२ महावाचस्पति द्विवेदी, रसज्ञ रजन (आगरा, स० २००६), पृ० १९ ।



गिरजे और पोल के मत्ताधितार पर विविध ओर उमर अनुपायिका—जो-जहाँ  
 —ने जो आया हूँ उमर परम्परा मगूय वाचि का अंगरता भागानुता  
 हुआ । पाणिमें मगूय अनुपा का उपायि—उम मग की अंगरता म  
 'एटा'—उमने व विण एा विधया उपायिा तिया गया परतु जोन जाय  
 गोट । इन जोरार द्या म पाणा की वि एम जा एता का ताछा जो  
 वररा वारर जोना तग घाट । हा द्या त उा मरार विधान का—वाचि  
 का—अपनी ही भाया म अपनाया है जिम विद्या म एा विनाम वरर है ज  
 हम भी अंगरती म ही दम विधान का अपाणय ।<sup>१३</sup>

पट्टर्ही गती म अंगरजी वाचि का जाणत दमिन रूय परतु धम  
 गुधार व आणन का जम-जम प्रमरण हुआ मधाना । वाचि का जन  
 माधारण की भाया म रूपायिा वरन का याजा मवेंगि रगी । इगिण  
 टिण्डेल ने अंगरेजी म अपने धमदम का अनुवाा तिया जिम पर अधिवांग पर-  
 वती अनुवाद आधत हैं जोर अपने विगिया के विराध का प्रत्युनर देन हुए  
 वहा यदि दनर न मुने सगूा रगा तो कुछ ही वर्षों म ई एवाे का भी  
 धमगास्त्र का उतना गान वरवा दूंगा जितना तुम गगा म भी नहा है ।<sup>१३</sup>  
 उसने अंगरेजी भाया की समथता का यणन वरन हुए वि जायवियस जाय  
 अ विदिचयन मन' (१५२८) म कहा वि दवदूवा (apostles) ने अपनी मातभाया  
 म ही धम प्रचार के वाय विए थे और सत जरम न धमगास्त्र को अपनी भाया  
 म रूपांतरित कर िया था । 'त हम एसा क्या नहा कर सकव ? इसर उत्तर  
 म वे वहेंग वि हम अपनी भाया म इसना अनुवाद नही वर सत हमारी भाया  
 अधनचरी है, अपवव है । यह उतनी अपवव नही है जितना इसे अपवव वहन  
 वाले मूठे हैं ।"<sup>१४</sup>

१ Adnullc

२ 'We will not be refuse of all other nacions, for sythen they have Goddes law whiche is the lawe of oure belefe in there owne langage, we will have oures in Englishe whosoever say naye ।

३ If God spare my life, ere many years I will cause a boy that draweth the plowe shall know more of the scriptures than thou dost ।

४ 'Why maye we not also ? They will saye it can not be translated into our tongue, it is so rude It is not so rude as they are false lyers'

इन बातों का प्रभाव बंग ही गम्भीर रहा। छठे एडवर्ड (१५४७-१५५३) के जन्मसमय 'नासन-बाल' में ही सपूण वाइविल के तरह सम्बरण और केवल 'यु टेस्टामेंट' का इमसे निगुने सम्बरण प्रवागित हुए। प्राटस्टेंट अनुवादों से प्रकृत होकर सन् १५६२ में बघोलिया ने श्री 'यु टेस्टामेंट' का अंगरेजी अनुवाद प्रकाशित किया। भारतवर्ष में अयाध्याप्रसाद शशी के समय में इने गिने व्यक्ति थे।<sup>१</sup> इगलड में स्वदेशी भाषा के समय में अनकानक निष्णात लखन थीर कवि। मल्कास्टर लटिन का सबसे प्रचड शत्रु और अंग्रेजी का बडा ही बट्टर समयक निष्ठा। इसी प्रकार रोजर ऐस्कम ने 'टेक्सीपिल्स' (१५४५) का 'समपण' में अपनी रचना की मूल प्रेरणा देगमकित बतलायी आर कहा कि पुस्तक में अंगरेजी के लिए अंगरेजी भाषा में जायत अंगरेजी विषय का ही बणन कर्होगा। विन्डिम बव फिलिप मिडनी प्रभति विद्वाना न भी राष्ट्रभाषा के पण का जाखदार शत्रु में समयन किया। स्पेंसर के आचार्य मल्कास्टर की इन पकितया से उस युग के प्राय सभा समीपका के दृष्टिकोण का परिचय मिल जाता है 'मैं रोम को प्यार करता हूँ परंतु लखन का अभया अधिक, मैं इटली का चाहता हूँ परंतु इगलड का उसमें भी अधिक, मैं लेटिन का सम्मान करता हूँ, परन्तु अंगरेजी की अभ्यचना।'<sup>३</sup>

रीतिकाल के सीमान्त पर खडे भारत-दु-युग के समीपका की वृत्तिया में

- १ विदेशी विद्वाना में फ्रेडरिख पिन्काट ने खडी बोली के पक्ष का समयन और प्रियमन में खडी बोली का विरोध किया।
- २ He would write 'English matter in English tongue for English men'
- ३ 'I love Rome but London better, I favour Italie, but England more, I honour the Latin, but I worship the English'

डेक्कर की निम्नलिखित पकितया इस सदन में कितनी सटीक हैं —

Fantastic compliment stalks up and down  
Trickt in outlandish feathers, all his words  
His looks his oaths, are all ridiculous  
All Apish, chuldish, and Italianate

इसी प्रकार "सिथिया रिबेल्स" में बन जॉनसन

You must not hunt for wild, outlandish termes,  
To stuffe out a peculiar dialect

दो परस्परविरोधी विचार धाराएँ धीरे धीरे हैं।<sup>१</sup> एर आर ष अंगरेजी  
 गिणत-गणना पर आती ध्यंग्यातिया ग गिमम प्रहार करत है ता दूगरी  
 ओर अंगरेजी भाषा-भाषिय स यथाशक्त प्ररणा ओर प्रभाव भी घट्ट करत  
 हैं। इती प्रार उा पर रीतिगालीन भाषायात्रा वा प्रभाव ता हु ही, भाष  
 ही ष जनेत्र नवीनतापरत प्रयुतिया वा भी परिणय दा है। भारत-ु प्रमथा  
 ओर टारु जगमाहनिह टगार लेगर एर आर ता रीतिगालीन शृमारमुन  
 टावा का वाध्य की जाभा के रूप म अंगीकार करत हैं ता दूगरी आर यार् य  
 राष्ट्रीयता स प्रभावि हाते ष कारण ये लोत-न्याण वा वाध्य की आत्मा क  
 रूप म प्रतिष्ठित करत हैं। रसवाली हातर भी उन्हाज आत्मा परिण वा सृष्टि  
 तथा चारित्रिक उमप पर बल थिया है ओर लोत-न्याण वा वाध्य वा प्रयात्र  
 माना है। इन्हा विचारा वा अनुमोत्र प० प्रतापनारायण मिश्र प० अम्बिरा  
 ध्याम आदि करत हैं परन्तु वा-टृष्ण भट्ट आर वा-मुनू गुज अपस  
 अधिर नवीनता-यापन है, तथा रीतिबद्धता वा सगरा रिराध करत हुए द-  
 नुराग की अभिव्यक्ति लोत रवि वा परिपार एव गुग्नि-गम्भान ही वाय  
 सृष्टि वा प्रयाजन मानत हैं ?<sup>२</sup> जहाँ ता हिन्दा-मद्य वा सत्रध है वाल्मुन  
 गुज जैसे लेगर इसरी छिपी हुई शक्ति को उदभासित करत हुए भाषा वा परि-  
 पार ओर ध्यानरण की अगुदिया को दूर करत हैं उसम वह 'रवानी' भी प  
 करते हैं जो द्विवदीजी के यहाँ कम मिलती ह। फिर भी भारत-ु-युग कई दृष्टिया

१ दो युग के अंतराल मे अवस्थित कविया, भावना और रचना मे ऐसा हा  
 सकल्प विश्लेष तथा सांग्य पापा जाता है। इनकी रचनाओं मे पृषवर्ती  
 युग और उसके परिचित सस्कारा के प्रति आण्ह तथा अपरिचित नवानता  
 के प्रति आक्षेपण का प्रतिफलन होता है। वेसपियर के सामयिकी मे इटली,  
 यूनान और परपरा के प्रति ऐसी ही द्वधमूलक अभिवृत्ति पायी जाती है।  
 ऐस्कम इटली से प्रभावित अंगरेजी को तीव्र आलोचना करता है, परन्तु  
 उसके युग के समोक्षक और कवि इटली से बहुश प्रभावित हैं, बेकन  
 और वाउन जध-परम्परानुसरण वा उपहास करने हुए नवीनता वा  
 यथाशक्त समथन करते हैं, परन्तु साथ ही यट भूल जाते हैं कि उनका  
 युग द्विमुख (double faced) भा है।

२ दे० डा० नत्थन सिंह, "भारते-ु युग वा वाय शास्त्र"। आचाय हजारी  
 प्रसाद द्विवेदी (सम्पा०), वाध्य शास्त्र (प० जगथाय तिवारी अभिनदन-  
 ग्रथ), पृ० ३८४-३९४।

से अप्रुण है। रीतिकालीन रचनाएँ मान्यताओं से उसका पिंड नहीं छूटता; उपयान और कहानी का बीजवपन-मान होता है विकास नहीं, नाटक और उप-यास के क्षेत्र में निवृष्ट अनुवाद एक तिलस्मी तथा ऐय्यारी की रचनाएँ होती हैं और हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में सबत्र अराजकता दोख पडती है।<sup>१</sup> यहाँ तक कि 'हिन्दोस्थान' में प्रकाशित महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखित "हिन्दी कालिदास की समालोचना" भी खटन-पद्धति पर ही आधित है और इसमें लाला सीताराम-चन्द्र कालिदास की रचनाओं के अनुवादों में भाषा भाव-संबंधी दोष सविस्तर वर्णित हैं। वा-कृष्ण भट्ट तथा "प्रेमघन" की तरह द्विवेदीजी ने भी इस पुस्तक में दोष ही दोष निकाले हैं, गुणा की ओर ध्यान नहीं दिया है।<sup>२</sup>

भारत-दु की मृत्यु के नौ वर्ष बाद १६ जुलाई, १८८३ ई०, को "निज भाषा उन्नति" के लिए काशी नागरी प्रचारिणी सभा की संस्थापना हुई।<sup>३</sup> आरम्भ में इसके कई अधिवक्ता के लिए उच्च कोटि के निवृष्ट लिखे गए जिनमें राधा-कृष्णदास का "नागरीदास" भी एक था। श्यामसुंदरदास के नेतृत्व में सभा ने हिन्दी-साहित्य की अनगणनेक प्राचीन पाठ्यपिपिया की खोज की, जिनके लिए डा० प्रियमन, डा० हानली, प्रो० वाय प्रभृति पाश्चात्य विद्वानों ने इसकी भूमिका-प्रशंसा की है। पीछे श्यामविहारी मिश्र और रायबहादुर दाबू हीरालाल के तत्त्वा-वधान में अनाम कविया और अप्रकाशित ग्रन्थों की खोज का काम चलता रहा। सभा-द्वारा सम्पन्न अनगणनेक उल्लेखनीय कार्यों में हिन्दी भाषा और साहित्य का वह सम्पन्न इतिहास भी है, जिसे सभा की ओर से श्यामसुंदरदास ने सन् १८८५ में प्राच्य विद्याविद्या के ऐतिहासिक अधिवेशन में उपस्थित किया था। इस रचना के पश्चात् पाश्चात्य विद्वान् हिन्दी की ओर आकृष्ट हुए और इसके समयका का उसाह बढ़ा। सभा की उपलब्धियों में हम उसके उन अभूत प्रकाशनों को भूल नहीं सकते, जो हिन्दी-साहित्य भांडार के अत्यंत भूषण बन चुके हैं। 'पृथ्वीराज रासो' जसी अनेक प्राचीन दुर्लभ और अप्रकाशित पुस्तकें

१ डा० उदयभानु सिंह, महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग (लखनऊ, स० २००८), पृ० २६५।

२ डा० लक्ष्मीनगर घाण्णैय, आधुनिक हिन्दी साहित्य (इलाहाबाद, १९४८), पृ० १८१।

३ नागरी प्रचारिणी-सभा-संबंधी यह अनुच्छेद वामुदेव मिश्र के ५४ निवृष्ट पर आगत है। निवृष्ट के लिए देखिए सरस्वती, जनवरी १९२७, पृ० ३३-४२।

का सम्पादन प्रकाशन ता हुआ ही, समा न जात पदन जोर पुस्तार दरर विभिन्न उपयोगी विषया पर उत्तमोत्तम गानवद्धा पुस्तकें लिखवाइ । पन्ति यामताप्रसाद गुण स हिन्दी का एन 'सर्वांगमुत्तर व्याकरण' लिखवाया, प० महावीरप्रसाद द्विवेदी, प० लज्जागवर झा, बा० जगन्नाथराज रत्ताकर प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बा० श्यामगुणदास, प० रामचन्द्र गुप्त आदि व निम्ना नुसार उसका सशोधित रूप प्रकाशन करवाया और एन बनानिज काग का निर्माण करवाया, जिसे हिन्दी म बनानिज गन्ना का दय अगत दूर हुआ । सन् १९०८ म समा न 'हिन्दी-शास्त्रागार के सम्पादन का काय भार स्वीकार किया, जो हिन्दी-साहित्यतिहास म एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है । इन निर्माण कार्यों के अतिरिक्त 'एगियाटिक सोसाइटी की परिषदा के समनुष्य सन् १८८७ से ही समा ने अपनी परिषदा— नागरी प्रचारिणी-परिषदा —का प्रकाशन आरम्भ किया, जो पहले प्रमासिन थी फिर मासिन बनी और १९०० स फिर त्रैमासिक हो गई । इसम मुख्यत गवेषणामूलक, गद्य-सम्बन्धा लय ही प्रकाशन होते थे । एससे सम्पादका म प० चन्द्रधर गमा गुलेरी प० गौरीगन्तर हीराचन्द्र ओया जादि उन्मट विद्वान् रहे हैं ।

### हिन्दी समीक्षा का विकास

जिस समीक्षा को जाचाय नन्दुलारे वाजपेयी ने 'रचनात्मक साहित्य की प्रिय सती, 'गुभपिणी सेविनी और सहृदय स्वामिनी' कहा है उसके छप्पा को बच्चन ने "जन्मना परासाइट" के नाम से अभिहित किया है । इस 'जन्म' को आजीविका के लिए पराश्रयी होना पडता है वह लक्ष्य ग्रन्थ पर जीता है आधार खोजता है । उसके सौभाग्य से आधार की सप्टि पहले होती है पीछे आधय की लक्ष्य ग्रन्थ पहले बनते हैं लक्षण ग्रन्थ पीछे । वस्तुतः जब तक सजनात्मक कृतिया उपलब्ध नहीं होनी और जब तक श्रेष्ठ साहित्य का प्राचुय नहीं होता तब तक समीक्षण न तो नियाशील होता है न उसके उपद्रव बढ़ते ह ।<sup>१</sup> हिन्दी साहित्य क्षेत्र म भी यही बात हुई । यहाँ भी शन शन इन 'जन्म' के उपद्रव बढ चलत

१ बच्चन कुछ चिट्ठिया "तुम नये आलोचकों से बहुत क्षुब्ध लगते हो —मैंने समालोचक नामक जन्म का कभी अस्तित्व ही स्वीकार नहीं किया —चाहे यह नया हो, चाहे पुराना । वह जन्मना परासाट (परजीवी) होता है, उसे दूसरों का कुछ खाने चवाने को चाहिए । " माध्यम, सितम्बर १९६५, पृ० ४ ।

हैं, जिनका कारण स्पष्ट है। जहाँ भारतेन्दु-युग में साहित्य की कुछ ही विधाओं की उद्भावना हुई थी, द्विवेदीयुगीन साहित्य में उमंग नई-नई विधाओं की सजना तथा सचनात्मक साहित्य की अभिवृद्धि होती है। इसके फलस्वरूप हिन्दी-समीक्षा भी जादवत्मक भाव से अपने विकास-मार्ग पर अग्रसर हो चली है।

द्विवेदी-युगीन हिन्दी-समालोचना की उपलब्धियाँ को आकने के लिए भारत-कालीन समीक्षा की निम्नलिखित विशेषताएँ ध्यातव्य हैं

(क) इस युग में रचनात्मक साहित्य के प्रणयन पर जितना बल दिया गया उतना समीक्षा पर नहीं। भारत-कालीन नवीनता के कल्पनीय उमेर और हिन्दी-समालोचना—वर्गीय और प्रणीत साहित्य—के उत्थान का युग है। इस कारण इस युग का 'रचनात्मक कृतियाँ' की आवश्यकता अपेक्षा अधिक थी। फिर भी इस युग के लेखकों ने हिन्दी-समीक्षा के रूप-निर्माण में जो योगदान किया उसका ऐतिहासिक महत्त्व है।

(ख) भारत-कालीन हिन्दी-समीक्षा का प्रारम्भ नवीनता एवं गतानुगतता की द्विवेदीयुगीन स्थिति में हुआ है। अंगरेजी साहित्य के अनुशीलन में हिन्दी-समीक्षा को नये-नये प्रतिमान मिलने हैं नई समीक्षा-पद्धतियाँ का प्रतिमान जाना है।<sup>१</sup> शास्त्रीय रीतिकालीन परंपरा के विपरीत पाश्चात्य समीक्षा का व्यावहारिक पद्धति के अनुसार कुछ समीक्षक विविध लेखकों की रचनाओं की समीक्षा करते हैं परन्तु रीति-साहित्य के समक्ष कुछ लेखक—रघुनाथ कविराज मुरारिदान प्रतापनारायण मिह्र प्रभृति काव्यशास्त्री—प्राचीन रीति-परंपरा का ही अनुसरण करते हैं।

(ग) बालकृष्ण भट्ट द्वारा हिन्दी प्रीति' में प्रकाशित कुछ निबंधों में नूतनात्मक समीक्षा का बीजबपन होता है किन्तु विवेक युग की अधिकांश समीक्षाएँ रचनात्मक कृतियों की आधारभूत प्रवृत्तियों अथवा अनुप्रेरक पृष्ठभूमि का विश्लेषण न कर उनका परिचय मात्र प्रस्तुत करती हैं। उनमें उम अकाट्य

१ "आधुनिक काल के भारतेन्दु-युग में नवान पद्धति की समीक्षा नवीन विचारों के साथ आरम्भ-मात्र हुई, मगर उसकी परंपरा चल नहीं पाई और न इस क्षेत्र में विशेष कार्य हुआ। भारतेन्दु-युग प्रधानतः पूर्वोपनिषदीय, स्वदेशी विदेशी के समन्वय का विवेकी युग था। ऐसे युग में यदि समीक्षा के क्षेत्र में प्रभूत कार्य होता तो आचार्य शुक्ल की समीक्षा की एक व्यापक पृष्ठभूमि मिलती, मगर ऐसा हुआ नहीं।" दे० आलोचना (विशेषांक), ३, १, अक्टूबर १९५३।

तर्जनाशक्ति का परिचय नहा मिलता, जो गुनल्जी सरीखे सम्मान्य समीपका का परिपक्व रचनाआ स होता है ।

द्विवेदी-युग "भाव से अधिक भाव वियास को और उससे भी अधिक भाषा की शुद्धता को महत्व देनेवाला उच्छ्वासमुक्त" युग था । खड़ी बोली के इस 'उत्थान-युग' में भाषा की शब्द सम्पत्ति की अभिवृद्धि हुई और साहित्य में शिव की प्रतिष्ठा । हिन्दी-समीक्षा-क्षेत्र में नई-नई आलोचनात्मक पद्धतियाँ का सूत्रपात हुआ, नय-नये आलोचक उवतीर्ण हुए और नय प्रतिमान बने, जिनसे गुनल्जी एवं शुक्लोत्तर समीक्षका के लिए एक बलिष्ठ पीठिका का निर्माण हुआ । तन्मयुगीन आलोचका ने—विशेषतः मिश्र-बधुआ और प० पद्मसिंह शर्मा ने—मवप्रथम तुलनात्मक समीक्षा का वास्तविक सूत्रपात किया और प्राचीन कवियाँ के साथ ही हिन्दी-नाव्यों के काव्यगत सौंदर्य पर ऐसे निवध लिखे जिनकी प्रभावितता आज भी स्पष्टनीय है । शर्माजी न देव की अपन्या विहारी को श्रेष्ठ सिद्ध किया जिसके परिणामस्वरूप १८२० के लगभग प० कृष्णबिहारी मिश्र ने 'देव और विहारी' की रचना की और कहा कि "देवजी विहारीलाजी की अपेक्षा अच्छे कवि हैं।" कई दृष्टियाँ से "विहारी की सतसई" २ और 'देव और विहारी' बड़े महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं । 'देव और विहारी' की भूमिका में विद्वत्ता एवं सहानुभूति का मणिकाचन संयोग तो हुआ ही है साथ ही इसमें बड़े ही महत्वपूर्ण तथ्याँ का उल्लेख हुआ है । पुस्तक में "ब्रजभाषा दुर्वोधता" की अभिवृद्धि के कारण का वर्णन और कविता पर भाषा माधुर्य के प्रभाव का विशद तथा मनोवैज्ञानिक

१ देव और विहारा (लखनऊ, स० २००६), द्वितीय संस्करण की भूमिका, प० ६

२ पद्मसिंह शर्मा विरचित "विहारी की सतसई" विहारी सतसई के भाष्य की भूमिका है । जुलाई १९०७ की "सरस्वती" में उन्होंने विहारी और फारसी कवि सादी का तुलनात्मक आलोचना प्रकाशित कराया । इस अंक में शर्माजी का एक और लेख छपा था—"भिन्न भाषाओं के समनार्थी पद्य" । यह निवध "सरस्वती" के अनेक अंकों में क्रमशः निकलता रहा और १९११ ई० में जाकर समाप्त हुआ । इसी प्रकार जुलाई १९०८ का "सरस्वती" में उनका "संस्कृत और हिन्दी कविता का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव" निकलना शुरू हुआ और १९१२ ई० में जाकर समाप्त हुआ । स्पष्ट है कि तुलनात्मक पद्धति पर आधारित समीक्षा में ही शर्माजी का प्रतिभा का समुचित व्यञ्जन हो पाता था ।

विवेचन है। तदुपरि लेखक अपन समाजचना-मज्धी विचारा का आकलन एक स्पष्टीकरण प्रस्तुत करता है। तुलनात्मक समीक्षा पर मिश्रजी का “वस्तव्य” जमा मारगम है वसा ही प्रामाणिक भी। “परिशिष्ट” का, ‘सारास’ डा० जानसन की उन पत्निया की याद दिताता है, जिनम इस अंगरेज समीक्षक ने ड्राइडन और पोप का तुलनात्मक मूल्यांकन किया था। मिश्रजी के निष्कर्षों से अमहमत होने के कारण तथा “मिश्रवधुओं की धीगा धीगी” से उत्प्रेरित होकर उनका खंडन करते हुए लाला भगवानदीन न “बिहारी-बोधिनी” की भूमिका (टीकाकार का वस्तव्य) म कहा

हमारा निश्चय है कि जिस प्रकार गान्तरम मे तुलसीदासजी बार वीररम मे भूपण मुख्य मान जाते हैं, उसी प्रकार शृंगाररम के बणन म बिहारी का नम्बर प्रथम है। मिश्रवधुआ ने बिहारी का ‘देव’ स मध्यम ठहराने की चेष्टा की है सही, पर यह उनकी धीगा पाणी है। हम मिश्रवधुआ की ‘नवग्ल’ नाम की पुस्तक से ही प्रमाणित कर सकते हैं कि उन्होंने बिहारी क जनेर दोहो का जय ही नहीं समझा। जनगत ही तिव मारा है कि बिहारी ने देव के भावा का (मूलवन) अपहरण किया है। प्रसुत समय बात यह है कि देव ने ही बिहारी के भाव लेकर अपनी कविता का अधिक भाग शृंगारित किया है।<sup>1</sup>

तुलनात्मक समीक्षा की यह शैली द्विवेदी-युग म पूणत विकसित न हो पाई—रम ‘सही दिगा का आर माडा’ न गया। द्विवेदी-युग के अधिकांश समीक्षक जिन्होंने तुलनात्मक पद्धति अपनायी, आलोच्य कविता के काव्य-सौंदर्य का उद्भासित करन का प्रयाम कम अपन-अपने कवि को अतिरेकपूण शब्दावली म श्रेष्ठ प्रमाणा करन का यत्न अधिक करत रहे। परन्तु इनम बहुत स ऐम टीकाकार भी हुए, जिनकी टीका टिप्पणियाँ और भूमिकाएँ हिन्दी-समीक्षा का अविच्छिन्न अंग बन चुनी हैं और इसके विकास म अन्यतम स्थान रखती हैं।<sup>2</sup>

१ बिहारी-बोधिनी (बनारस, स० २००७), पृ० ४-५।

२ उदाहरणाय—द० कविता-कलाप (प्रयाग, १९०९) की भूमिका ले० महावीरप्रसाद द्विवेदी, भूषण-ग्रथावली (नागरीप्रचारिणी सभा, १९०७) भूमिका-लेखक ‘श्यामबिहारा मिश्र और शुक्देवबिहारी मिश्र, मूरसुधा (ना० प्र० स०, १९२२) भूमिका लेखक गणेशबिहारी मिश्र, श्यामबिहारी मिश्र और शुक्देवबिहारी मिश्र, बिहारी-रत्नाकर (बनारस,



दुर्गी प्रकार द्वितीय युग में द्वितीय भाग मान्य व मर्यादा एवं पारंगत व त्रिनेत्र भाग काय हुए उभय महाविद्वान् महत्कृत काय युग निर्माण पवित्रा 'मर्यादा' का प्रमाण है। इसमें (और अन्तर्भा) द्वितीय एवं हा वरि और उगत काय का अन्तर् समीक्षा करती का प्रमाण ता ज्ञाप्य हुआ वस्तु समाप्त व ता निर्देयिता तथा यन्तुष्टि विषया पर ही उभय पश्य मत और व उगत काय का समुचित मूल्यांकन विचार्य करती व उन्ना गता हा पाई।

त्रिनेत्र प्रकार अन्तर्जा-समीक्षा व आधुनिक युग का आरम्भ रत्नाकर एवं प्रभासनाथे जागरण व युग व समाप्ति व काय हुआ है उगी प्रकार द्वितीय समीक्षा व आधुनिकता का प्रतिष्ठा तत्र हाती है जब समाप्त का एवं यम पूर्य और पश्चिम का सम्भार साम्प्रदायिक आचार्य व विद्वान् पर मना करत हुए रति आदि भावनापूर्ण समाप्तता का बहिष्कार करता है। बाह्य मृत् प्रमथा और महावीरप्रमाण द्वितीय की जागरण परियात्मता प्रणाली पर आधारित है यहाँ ता वि मय द्वितीय की प्रणाली म दूर तत्र प्रभाव दाने वाक्य साध नहा है।<sup>१</sup> मिश्रबधुभा न दोष-ज्ञान को छोड़कर आचरणा का मराहना और अभिगता व पथ पर अवश्य बड़ाया त्रिनु उनसे निष्पत्ति के मूल म प्रभावात्मक समीक्षा ही अधिन प्रतिष्ठ एव उन्म है।<sup>२</sup> इसी प्रकार देव की भाषा रचना का विवेचन करत हुए प० कृष्णविहारी मिश्र न एक स्थल पर लिखा है

प्रिय पाठन, आइए अब आपकी देवकी की भाषा रचना

१९२५) प्राक्खन-लेखक जगन्नाथदास (रत्नाकर), बाबा दीन दयाल गिरि-कृत जयोन्त-कल्पद्रुम (इलाहाबाद, १९२८) "अन्तर्दशन" के लेखक लाला भगवानदीन और मोहनवल्लभ पत, कवीर-प्रयागवाली (प्रयाग, १९२८) भूमिका-लेखक श्यामसुन्दरदास।

१ हिंदी साहित्य कौशल, २, प० ४२०-४२१।

२ "मिश्रबधुभा ने साहित्यिक समीक्षा का पहला रेखा चित्र हिंदी को प्रदान किया। यद्यपि इस रेखा चित्र में अनेक नवीनताएँ थीं, पर साहित्य का आधार और पुष्ट विवेचन कम ही था। रीतिकाल के साहित्यिक निदर्शों से वे पूरी तरह निकल नहीं सके थे। पद्मसिंह गर्माजी ने साहित्य के शब्द और अर्थ चमत्कार के साथ साथ भुवतक कवियों की तुलनात्मक समीक्षा का नया माग प्रदर्शित किया।" नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य (इलाहाबाद, स० २००७) पृ० १९।

आर उसकी अनोखी योजना के फलस्वरूप वर्षा में हिंडोले पर झूलत हुए प्रेमी-युगल का दसन करा दें। भाव दूढ़ने के लिए मस्तिष्क को कष्ट न उठाना पडगा शब्द आप-से-आप, वायु की हरहराहट, बारला की घरघराहट, चर-शर शब्द करनेवाली चढी, छोटी छोटी बूदिया का छिहरना सुकुमार अगा का हिंडोले पर थराना और कपडा का फरफराना और त्हराना सामने आकर उपस्थित कर दगें। शब्दाडवर नही है, पर शब्दा का निर्वाचन निस्सदेह ला-जवाब है ।<sup>१</sup>

देव की वात्सल्य प्रेम सवधी कुठ पकितया को उद्वत करने के पश्चात् उन्हान उन पर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं—

कितना स्वाभाविक, सरम वणन है। अनिष्ट भय के माता पुत्र को जाने में कसे स्वाभाविक ढग से रोकती है। गोपिया की सौहाद भक्ति के उदाहरण भी देवजी ने परम मनोहर दिये है। इसी तरह करण विग्रह का एक उदाहरण देकर उहाने देव की कला की प्रशंसा की है 'कैमा करण है कितनी हृदय द्राविनी है। काली-दह का कैमा रोमाचकारी वणन है। अनुप्रास और माधुय कैस मिल उठे है। कितना मनोमाहक है।'<sup>२</sup> कियोगी हरि का एक निवचन 'अहो! तुम्सी का दास्य भाव।' में आरम्भ हाकर त्रिस्मयादिवोधक चिह्ला का एक अदभुत अम्वार खडा कर देता है। सवत्र 'अहा अनुपमेय, 'अतुलनीय "धन्य", "ला" इत्यादि शब्द भर पडे हैं।<sup>३</sup> सन १८०५ में प्रकाशित शिवनन्दन महाय का "मन्त्रि हरिश्चन्द्र" नामक ग्रंथ भी यन्त्र प्रिठले आवेगोदगारा से आपूरित है।<sup>४</sup> रामचन्द्र द्विवेदी की तुलसी-साहित्य "लाकर" नामक पुस्तक में असत्य आलोचनात्मक तथ्या का निरूपण है, परंतु यह भी समालचना की प्रभाववादी पद्धति का ही एक विराट उदाहरण प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक की व्यावहारिक आलोचना "अहो" तथा 'अहृ, प्रश्नसूचक तथा विस्मय-बोधक चिह्ला के निम्न वैयक्तिक स्तर से ऊपर न उठ सकी।<sup>५</sup>

१ देव और बिहारी (ललनऊ), १९२५, पृ० ११७।

२ उपरिबत, पृ० १६०।

३ उपरिबत, पृ० २१२।

४ प्रेम-योग (गोरखपुर), पृ० २६५-२९१।

५ देखिए पृ० १२२, १५० इत्यादि।

६ दे० पृ० ४४३, ४४४ इत्यादि।

दा लगाता व विगरीत दुराणी ने परिासन, वगानित तथा विश्लेषणात्मक पद्धति अपनायी और हिन्दी-समीक्षा की सम्भावनाओं का उद्घाटन किया। प्रभावकारी समीक्षा का परित्याग करते हुए उन्होंने यह भी दगा शिक्कल पाश्चात्य ंगपा से पिस पिस विरुा उद्धरण एतर ही हिन्दी-समीक्षा का सम्बुधि विनात तही किया जा सतता। उाव समकालीन रचना की रचनाओं में अंगरेजी का अंगरेजी के विस्तृत उाहरण मिल सतत है किन्तु आधुनिकता के लिए वारा भावनाशीलता चित्रशिल्पिता और वदग्घ्य संवाम चला का नहा है और न समीक्षा को अंगरेजी से भारात्रान्न करने की ही आवश्यकता है। आधुनिक समीक्षक देगी विदेशी समीक्षा की जीवन्त परंपराओं को समर्पित कर वगानित विश्लेषण को ही महत्व देगा। उसके लिए समीक्षक के, उदाहरणार्थ निम्नलिखित आवोद्गार अपरिपृृत समीक्षा के ही ज्वलत दृष्टांत हो सतत है

सबसे अधिक उच्छ्वास श्री महादेवी की कविताओं में सबसे अधिक निराश आँसू श्री रामकुमार की कविताओं में। भगवती चरण की रचनाओं में तडित तीदणता है महादेवी की रचनाओं में मद जलन व्रदन, रामकुमार की रचनाओं में सलिल सिंदुओं की लघु लघु फुहर। जीवन की नस्वरता के प्रति तीनों कवियों की रज्ञान है।<sup>१</sup>

उनमें सूक्ष्मतरम विवेचन के लक्षण नहीं पाये जा सकते। 'गुबलजी ने रुचि परिष्कार' किया और यह दिखाया कि अच्छे आलोचक के लिए किन किन गुणों की अपेक्षा है। हिन्दी के वे ही पहले समीक्षक हैं जिनमें एक साथ ही साहित्यशास्त्र का ज्ञान, सौंदर्यशास्त्र में गति, सहज सहानुभूति, विश्लेषणात्मक बुद्धि तथा मनोविज्ञान का सुचिंतित अध्ययन प्रत्यक्ष जववा परीक्ष रूप में पाया जाता है।

वस्तुतः अंगरेजी उद्धरणों से समीक्षा को भारात्रात करनेवाले अधिकांश समीक्षकों ने अंगरेजी प्रभाव का दुर्ूपयोग ही अधिक किया है। उन्होंने पाश्चात्य समीक्षा को 'बिना विश्लेषण' स्वीकार ही नहीं किया, उसका अधानुकरण भी किया है।<sup>२</sup> आचार्य शुक्ल ने पाश्चात्य समीक्षा से प्रभावित होकर भी, प्रभाव-

१ श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, कवि और काय (प्रयाग, १९३६), पृ० ११६

२ इस श्रेणी में वे विद्वान भी हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में हिन्दी साहित्य पर पडनेवाले विदेशी प्रभावों का निरूपण किया है। डा० रवींद्र सहाय वर्मा ने अपने शोध प्रबंध में—“हिन्दी-काय पर आंग्ल प्रभाव” नामक पुस्तक में—बड़े पाश्चात्य मत “बिना किसी विश्लेषण के स्वीकार कर लिये

ग्रहण की प्रक्रिया में भी, कभी अपना व्यक्तिगत दृष्टिकोण विस्मृत होने नहीं दिया।  
 १० नगेन्द्र के अनुसार “आधुनिक आलोचना का युग वहाँ से प्रारम्भ होता है  
 जहाँ आचार्य गुकल ने उसे ले जाकर स्थिर कर दिया था।”<sup>१</sup> शास्त्रीय आलोचना-  
 पद्धति के सभी प्रतिनिधि लेखक—प० वृष्णशंकर गुकल, प० विश्वनाथप्रसाद  
 मिश्र, बाबू गुलाबराय, डा० रामकृष्ण चर्मा, डा० मलयद्व, प्रो० शिरीष—  
 आदि ‘गुकलजी की रस-पद्धति के अनुसार रस, भाव विभाव अनुभाव आदि की  
 विवेचना पारश्चात्य शैली में कर रहे हैं।’<sup>२</sup> विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने ‘गुकलजी  
 की हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ आलोचक तथा भारतीय काव्य-समीक्षा-क्षेत्र में नूतन  
 चिन्तन-दृष्टि का प्रतिष्ठापक कहा है।<sup>३</sup> उनके कथनानुसार “भारतीय पक्ष को अपा  
 द्य सं प्रस्तुत करनेवाले और उसके मानदंड से देगी विदेशी सभी प्रकार की  
 विचार-भारणियाँ को माप लेनेवाले सबसे पहले भारतीय समीक्षक गुकलजी ही  
 हैं।”<sup>४</sup> उन्होंने ही द्विवेदी-युग से आगे बढ़कर संस्कृत काव्य शास्त्र को अंगरेजी  
 में अनुस्यूत करते हुए नवीन शब्दाएँ सिद्धांतों का अपने ढंग से व्यवस्थित रूप  
 दिया और ‘अपने पूर्ववर्ती आलोचकों की निम्न-स्तुति-भूषण तथा गभीर तत्त्व-  
 चिन्तन से हीन रुढ़िवादी काव्यशास्त्रीय शब्दावली से बाधित, उथली समीक्षा-  
 प्रणाली से ऊपर उठकर हिन्दी-समीक्षा को पहली बार गहन एवं मौलिक  
 साहित्य-विवेचन से युक्त तथा रसप्राहिता से समन्वित व्यापक धरातल पर प्रति-  
 ष्ठित किया।”<sup>५</sup>

### महावीरप्रसाद द्विवेदी पर आंग्ल प्रभाव

द्विवेदीजी के कतिपय काव्य शास्त्रीय निबंध बड़े ही रोचक तथा ऐतिहासिक  
 दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने कथ्य विषय के अनुकूल वृत्त प्रयोग एवं

हैं। लेखक हिन्दी के प्रत्येक लेखक पर किसी-न किसी रूप में अंगरेजी  
 का प्रभाव बताने पर तुला हुआ है।” दे० आलोचना, ४, ४, १९५५,  
 प० ९९।

१ विचार और अनुभूति (दिल्ली, स० १९९१), प० ८९।

२ उपरिप्लव।

३ हिन्दी का सामयिक साहित्य (काशी, वि० २००८), प० ३९।

४ उपरिप्लव, प० ४३।

५ डा० जगदीश गुप्त, “शुक्लोत्तर समीक्षा”, दे० हिन्दी आलोचना की  
 सर्वांगीण प्रवृत्तियाँ (बम्बई), प० १०।

छन्द-योजना की सहायता की ओर गया कि श्लोक, गीताई मारुटा, घनाभारं, छण्य और सयया के जनित्विना और भी छन्द प्रयुक्त होना चाहिए। पाठान्त में अनुप्रास-हीन छन्द भी हिन्दी में लिख जा सकते हैं। अनुप्रास और यमकालि गद्य-छन्द-कविता का एक आधार नहीं है जिसका अभाव में कविता निर्जीव हो जाता है जयवा उससे कोई आरम्भ नहीं पहुँचती है। शिवेजीजी का मानना है कि गद्य और पद्य की भाषा पृथक्-पृथक् न होनी चाहिए। उद्योग गद्य-मध्यात्म साहित्य के लिए सम्य-मार्ग की भाषा को ही प्राकृत धारित किया और पद्य पर मत्तय व्यक्त किया कि आधुनिक कविता पर वाद्य-यज्ञ की हिन्दी भाषा न अपना प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया है। जय-मोरस्य का विवरण करते हुए उन्होंने कहा है कि 'विलास वाग्य करन में कवि के मन में यह भावना होनी चाहिए कि वह स्वयं विनय कर रहा है और वर्णित दुःख का स्वयं अनुभव कर रहा है। प्राकृतिक वर्णन लिखने के समय उसने अन्तःकरण में यह दृढ संस्कार होना चाहिए कि वर्ण्यमान नहीं पवत जयवा वन के सम्मुख वह स्वयं उपस्थित होकर उनकी गोभा देख रहा है। जब कवि की आत्मा का वर्ण्य विषय में इस प्रकार तिर्यक का संघट हो जाता है, तभी उसका किया हुआ वर्णन यथायथा होता है और तभी उसकी कविता पत्र-पत्र-बाला के दृश्य पर तत्रत भावनाएँ उत्पन्न होती हैं।<sup>१</sup> कवि के लिए कल्पना शक्ति-सम्पन्न तथा सहृदय होना अनिवार्य है।<sup>२</sup> अपनी कल्पना शक्ति से ही कवि जनजान पदार्थों और दृश्या का ऐसा मनाहारी चित्र चित्र करता है कि पढ़ने या सुननेवाले एकाग्रचित्त हो उसकी वाता पर चित्तन मनन करते हैं। वह अपने अवलोकन तथा कल्पना शक्ति से ही ऐसी गिफ्ट देता है कि वह तब तो आत्मा का रूप धारण करती है और न अपनी स्वाभाविक गुप्तरता ही प्रकट करती है। वस्तुतः शास्त्रोक्त गुणों के अनिरीकत कविता में पाँच और गुण होने चाहिए

- (क) उसमें साधारण लोका की अवस्था, विचार और मनोविकारों का वर्णन हो,
- (ख) उसमें धीरज साहस प्रेम और दया आदि के उदाहरण रहे,
- (ग) कल्पना सूक्ष्म और उभयान्तिक अलंकार गूढ न हो
- (घ) भाषा सहज स्वाभाविक और मनोहर हो
- (ङ) छन्द सीधा, परिचित सुहावना और वर्णन के अनुकूल हो।<sup>३</sup>

१ रसज्ञ-रजन (आगरा, स० २००६), पृ० २०।

२ उपरिक्त, प० २८।

३ उपरिक्त, प० ३१।

रोमांटिक कला के मूलभूत प्रतिमाना पर आधृत इन सिद्धांता मे वड्स्वयं की उस भूमिका की कितनी ही पक्किया प्रतिबिम्बित हो रही हैं जिसमे उसके काव्य-सम्बन्धी विचार निरूपित हैं। "लिरिकल वटोडस" के द्वितीय सस्वरण की भूमिका मे वड्स्वयं ने ऐमे अनेक मत ध्यनन किए हैं जिनसे द्विवेदीजी के ये सद्धात मिलत-जलत हैं और, ऐसा जान पडता है, प्रभावित हैं। जन द्विवेदीजी कहत है कि "भाषा वात् चाल की हो, क्योकि कविता की भाषा बोलचाल से जिननी ही दूर जा पडती है, उतनी ही उसकी सादगी कम हो जाती है" तब हम वड्स्वयं का स्मरण हो जाता है जिसने कहा था कि "जिस कविता का मैं यहाँ स्तवन कर रहा हूँ उसकी भाषा ययासभव उसी भाषा से ग्रहणकी जाती है जिसका प्रयाग मनुष्य, वास्तव मे बाल्चात् मे करता है।" जब द्विवेदीजी कहते हैं कि "गद्य और पद्य की भाषा पयक्-मूयक न होनी चाहिए"<sup>२</sup> तब हम इसी अंगरज कवि के इम कथन की भी याद आती है कि 'प्रत्येक सुन्दर कविता की भाषा अधिकाश मे मुष्टु गद्य की भाषा से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं हो सकती। उसे भी आगे बढकर हम निस्मकोच यह कह सकत हैं कि गद्य भाषा और छन्दावद्ध रचना की भाषा मे न तो काइ तात्त्विक अंतर है न हो सकता है।'<sup>३</sup> द्विवेदीजी न स्वाभाविक कवि को एक प्रकार का जवनार कहा है, जो 'धम-सस्यापनायाय' उत्पन्न होना है, जो लोभ-कल्याण का लक्ष्य बनाकर साहित्य-साधना करता है। उसकी कल्पना शक्ति तीव्र हाती है। पद्य के नियम कवि के लिए एक प्रकार की वेडियाँ हैं जिनसे जकट जाने पर "कविया का अपनी स्वाभाविक उडान मे कठिनाण्या का सामना करना पडता है। कवि का काम है कि वह अपने मनोभावा को स्वाधानतामूयक प्रकट कर।" उसके लिए कल्पना शक्ति अत्यन्त उपयोगी और अनिनाय है और साथ ही ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा भी जो जम्यास-मात्र से प्राप्त होने की नहीं। इसी प्रतिभा तथा कल्पना शक्ति के कारण कवि भूत और भविष्य को हस्तामलकवन् देखता है वतमान की बार्द बात ही नहीं। उसका काय है

१ वड्स्वयं, "कविता और काव्य-भाषा", दे० डा० (श्रीमती) सावित्री सिंहा (सम्पा०), पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा (दिल्ली, प्र० ति० २०), प० १४३-१४४।

२ रसज्ञ-रजन, प० १९।

३ वड्स्वयं, उ० प्र०, प० १४३।

४ रसज्ञ-रजन, प० ५०-५१।

प्रकृति विरासत का अनुगीर्ण, अपनी सूक्ष्मानिगूष्म दृष्टि से प्रकृति के विभिन्न रूपों का अवलोकन तथा मान्य से उचित सम्बन्ध प्रतिपादन ।

रिचार्ड्स ही आलोचना का <sup>1</sup> इस मतवाली के मूल में बच स्वयं का जयन्त साक्षात् प्रभाव देता । इसमें सन्देह नहीं कि बड़बुद्ध का पूर्वोक्त भवित्वा । द्वितीयजी के समीक्षात्मक निर्याद और उनका नीच्यतासम्बन्ध रिचार्ड्स प्रभावित किया था किन्तु प्रभावों की गहराई का इतना सरल-गुणमत्तना मान्य-मनन नहीं जैवता । जहाँ यह सत्य है कि 'विचारों के लिए विचारों का रूप' की भूमिका में ऐसे मान्यतास्त्रीय तत्त्व प्रतिपादित जिनका रीतिरालीन वाक्य-परिपक्वता के दुष्प्रभाव तथा ब्रजभाषा-मान्य की अनि-वृद्धि से सम्मानित हिन्दी-वाक्य के लिए प्रचुर महत्त्व था यहाँ यह भी स्मरणीय है कि 'दश भूमिका की रितनी ही मायताएँ अर्थात् रोमांटिक कवि आलोचना में मा पाया जाती है । बच स्वयं ने वाक्य को उद्दाम आवेगा का सहज उच्छ्वसन को कहा ही है साथ ही यह भी कहा है कि कविता कल्पना की एक ऐसी प्रक्रिया से आविर्भूत होती है जिसमें आत्मा की अन्तःस्फूर्ति और उससे प्रेरित भावों का स्थान अत्यन्त रहता है । एम. भक्त उस युग के प्रायः सभी रोमांटिक समीक्षकों की रचनाओं में पापित होत हैं । कार्लिज ने आवेगा की गहनता तथा अतिविस्तार का नवामध्यम प्रतिभा का एक अविच्छिन्न अंग माना है (यद्यपि उसने यह भी स्वीकार किया है कि इस गुण के विपरीत विचारों की ऊर्ध्वस्वता तथा निर्व्यक्तित्वता भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं) । गेली ने भी कवि की सवेदनशीलता पर जोर दिया है और जान स्ट्यूअर्ट मिल ने कवि का जो चित्र रूपायित किया है, उसके अनुसार कवि अत्यन्त भावप्रवण तथा सहज प्रभावदाही व्यक्ति होता है ।

### रोमांटिक भावधारा का अवतरण

एतिहासिक दृष्टि से कला विषयक इस विचार धारा का सूत्रपात उनीसवीं शती की रोमांटिक 'शक्ति' से नहीं होना । वस्तुतः ऐसे विचार प्लेटो की रचनाओं में भी वतमान हैं जहाँ कला को मनोवगा का अभिसेचक कहा गया है ।<sup>2</sup> ये अस्तु

१ उदाहरणार्थ—३० हिन्दी वाच्य पर आगल प्रभात (कानपुर, २०११), पृ० ९७-९८, डॉ० विद्यानाथ मिश्र हिन्दी नाट्य और साहित्य पर अग्रणी प्रभात (देहरादून, १९६३), पृ० ११५-११८ ।

२ It can be found as far back as Plato who describes art as 'watering the passion' Jerome Stolnitz, *Aesthetics and Philosophy of Art Criticism* (Cambridge, 1960) p. 159

तथा रागिनुस की रचनाआ म भी देखे जा सक्ते हैं और अभिजात चिंतन में अन्य भी। फिर भी, सर्वप्रथम उन्नीसवीं शती में ही यह धारणा अत्यंत बरकती झा उठनी है कि का मनुष्य के सहज आवेगा का आलेख तथा इनकी अभिव्यक्ति का एक उपकरण है। का के सभी क्षेत्रों में काकार उस मन में प्रभावित हुआ है और तदनुसर का-मण्डि की है। नव्यशास्त्रवाली परंपरा न बलकार पर जो नियमन आरापिन किए थ, उनके विरुद्ध ही उस क्रांति का उद्भेद हुआ था। नव्यशास्त्रवाद का म आवश्यकपूथ भावामयता एव भावनाजा के सहज उभरण का विरोधी था। आवगा का अतिशय प्रदग्गन आचित्य आर मयादा के जादगों का अतिरमग समना जाना था। इनके अतिरिक्त नव्यशास्त्रवादी चिंतक जिनके लिए का परिष्कृत अभिरचिवाले सभी मनुष्या के सामान्य अनुभवा की अभिव्यक्ति था, आवगा को ही स्वभावतः व्यक्तिपरक तथा आत्मनिष्ठ समयत थ।

“रगत रजन” म सरति निवद्य उस समय लिखे गए थे जब इंगलड म विम्बवाद की सत्ता स अभिन्ति एक नव्य प्रयोग का उभेप हो चुका था जिसके मू म उन्नीसवा गता की ह्यामो-मुख तथा दुर्बोय कविता के प्रति विद्रोह की भावना थी। विम्बवाद कविया न अपन घोपणा-मय में कहा है कि हम काव्य के लिए जन-साधारण की भाषा का प्रयोग करेंगे और हमारे गद उपयुक्त तथा संगीक हागे, न कि केवल प्रसाधन अथवा आलंकारिक। ध्यातव्य है कि यह घोपणा-पन १९१५ ई० म ही प्रकृति हो चुका था। टी० एस० एलियट के कितने ही निवद्य, जा बाद म ‘द सक्ड वूड’ में एकत्रीकृत हुए सन १९१७ और १९२० के अन्तराल म ही लिखे जा चुके थे। एलियट उन अधुआनन टेक्का म हैं जिन्हाने बार-बार यह घोपिन किया है कि काव्य-जगत में होनेवाली समस्त नातिया का एर ही उद्देश्य होता है—कविता को जन-साधारण की भाषा की ओर प्रत्यागमन के लिए बाध्य करना।<sup>१</sup> बड स्वयं ने अपनी भूमिकाआ म ऐसी ही क्रांति की घोपणा की थी बलर, डॅनहम टांडन प्रभति कविया ने भी यही किया था। कारिज की ‘वादाप्रापिया टिटरेरिया’ में काव्य सबधी विचार भी ऐसे हा हैं।

द्विवेदीजी के विचारा पर बड स्वयं की पूर्वोक्त भूमिका का प्रभाव स्पष्ट

१ ‘Every revolution in poetry is apt to be, and sometimes to announce itself as, a return to common speech’ T S Eliot, *The Music of Poetry* 1942



है परन्तु हो सता है कि रोमांटिक काव्यधारा व अन्य समाजरा व विचार भी उनके लिए उपलब्ध रहे हैं और व उन विचारों में परिचित हैं। उन्होंने एक स्थल पर मिल्टन को यह उक्ति उद्धृत की है कि कविता सार्थक है जो गीत में भरी हुई है और असलियत में गिरी हुई नहीं है।<sup>१</sup> उन्होंने मर विनियम जानने पर भी एक निरुध लिखा है जिसमें जानने व समझने-अध्ययन का वर्णन है।<sup>२</sup> जोग ने रोमांटिक कविता का भारतीय मर्मज्ञान एवं चिन्तन में परिचित कराया था और उन्हें एक अनूठे दृष्टिकोण में जिनसे उन्हें भारतीय सस्कृति की गौरव-गरिमा का परिचित आभास मिला था। परन्तु ट्विक्लीजी व किसी भी निरुध में ऐसा बात नहीं है कि अगरजी साहित्य में जो नानाविध नव्य प्रयोग तथा प्रगतिशील परिवर्तन उपस्थित हैं व उनमें व परिचित थे। उनके काव्य मरधी विचारों पर उस विम्बवानी प्रतिश्रिया व प्रभाव का लेण भी नहीं मिलता जिसमें हमें पाउडर लिखने आदिमकाल में मन्त्रिय भाग मिला था। अगरजी साहित्य में होनेवाले नवीनतम परिवर्तनों में उनकी रचनाएँ हमारा परिचय नहीं कराती और न कश्चित् कश्चित् यह उनके लिए सम्भव ही था। भारतीय विश्वविद्यालयों में उन्नासवा सती तक का या अधिक स-अधिक जाजियत कविता की रचनाएँ ही प्रविष्ट और लारप्रिय थीं।<sup>३</sup> जय नय मतवादा में अभी स्थायित्व का अभाव था और जब उन्नासवा

१ रसज्ञ-रजन, पृ० ५७।

२ साहित्य-सीकर (कानपुर), स० २०००), प० ४५-५२ इस पुस्तक के स्रोत और निरुध दृष्ट्य हैं 'पुराने अंगरेज अधिकारियों के सस्कृत पढ़ने का फल' (प० ५३-६४), 'योग्य के विद्वानों के सस्कृत लेख आदि देवनागरी लिपि' (प० ६४-७४), 'अगरजी का साहित्य-प्रस' (प० ७५-७८)।

३ वर्तमान सती के चौथे दशक तक हमारे विश्वविद्यालयों में रोमांटिक और विद्वानियत कवियों का ही सर्वाधिक अध्ययन-अध्यापन होता था। एक लेखक के एतद्विषयक अनुभवों का सजीव स्फाकन इन सदा में प्रस्तुत मिलता है —

'Let me try to make my position clear I said I hadn't heard of Leavis until 1947 and I must add that T S Eliot was no more than a name when I left the University in '42 with moderate success in the English School at

शरी की रामानी भावगत परंपराएँ बल्गरीनी धी, द्विवेनीजी का अंगरेजी काव्य-विषयक अध्ययन उन्नीसवा शती तर ही सीमित रहा होगा। यहाँ यह भी समझना है कि स्वच्छन्तावाद का जन्मदय आभिजात्यरानी का के हाग स हुआ था, आधुनिक हिन्दी-साहित्य का जन्मदय एडीवोनी के उन्नयन म। द्विवेनी-युग का ऐम ही निर्देश की आवश्यकता थी जो गडीवोली के घाज का पहचानवर उमे युग के बतत्व के सन्निकट का गये। जय बड स्वय ने दगा कि आभिजात्यरानी का युग के जग्निस्फूर्ति का बरेष्य नही है तर उगन स्वच्छन्तावाद का आवाहन किया जय द्विवेदीजी ने दगा कि श्रजभापा की मुकुमारता एव एरानता युग की नानाविध चिन्ता का व्याख्या करन म असमय है तर उन्ही बड मय के नव्य प्रतिपासित मतवाद म प्रणा ली और हिन्दी वादमय क अनल विरीट का सतीवाली पर रगा।<sup>१</sup>

द्विवेदीजी पर प्राड भारतीय साम्प्रतिक परंपराका का भी सघन प्रभाव था और उनम स्वन्ताप्यत्र परंपराका क प्रति जनेप श्रद्धा थी। इसलिए उनमे ममीशामर निरथा म रम मिद्वान को ही महत्वपूण स्थान मिला है। डा० बल्लभ लम्भण कोनमिर न उनके कृत्य एव उपाधिया का इस प्रकार म्भण किया है

द्विवेदीजी के समय म अंगरेजी साहित्य म विस्टोरिया-युगीन आलोचना की साम्प्रतीय पद्धति का प्रबल हा चुना था जो आदर्श एव

Mysore I must hasten to add that this wasn't peculiar to Mysore such was the literary and academic milieu that the Indian youth of those days were brought up much too much on the Romantics and the eminent Victorians both of whom we had been taught to admire—from afar. For one thing it must have suited the Indian mind of those days which was it will not be wrong to say, obsessed with the national struggle for the liberation of the country from the foreign domination. (Vide C D Narasimhaiah (ed) *FR Leavis Some Aspects of His work* (Mysore, 1963), p 12

१ बेसरी कुमार, 'द्विवेदीकाल की प्रतिनिधि शर्ली', साहित्य और समीक्षा (पटना, १९५१) प० ४१।

प्रभावशाली था। परन्तु अंगरेजी समालोचना का प्रभाव द्विवेदीजी के काँच में नहीं दिखाई पड़ता। उनका अंतिम कृतियाँ में रामा-ण्डिव भावधारा का भी कुछ प्रभाव लीत होता है। व एन सनातना हिंदू एक पुरातन सिद्धांतवादी भाँध जत कवियाँ या कलाकारों का प्रति उनकी भावना ईश्वरवादी थी अथवा व कलाकार का साहित्य के क्षेत्र में ईश्वर का ही अवतार मानत था। वे नवीनता का ग्रहण था परन्तु अपनी पुरानी परंपरा का रक्षा करके उन्होंने नवीनता का ग्रहण किया। शास्त्रीय समय में युक्त स्पष्टतावादी परंपरा का स्वरूप उनकी आत्मचरित्रात्मक कृतियाँ में मिलता है।<sup>१</sup>

जहाँ तक कलाकारों का ईश्वर का अवतार मानने का सन्ध है, ऐसी विचार-धारा में नवीनता नहीं दीखती। रोमीय साहित्य में कवियों का युगदृष्टा और पगम्बर तक बढ़ डाला गया है और शत्रु ने काव्य का दिव्यगुण-सम्पन्न माना है।<sup>२</sup> इसी प्रकार यह कथन कि 'अंगरेजी समालोचना का प्रभाव द्विवेदीजी के काँच में नहीं दिखाई पड़ता' अत्यंत मामक है। वह स्वयं का वह उपमूलक भूमिका अंगरेजी समीक्षा का ही अविच्छिन्न महत्वपूर्ण अंग है जिसने द्विवेदीजी का प्रभावित किया था। मक्समूलर और डा० ग्रियसन मरीचे ममन पाश्चात्य विद्वानों ने भी हिन्दी के द्विवेदी-कालीन का ग्लोबल एक साहित्य-इतिहासकारों का प्रभावित किया है। फिर भी डा० मोतमि का यह कथन स्वीकार है कि डा० श्यामसुन्दरदास ने जिस सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक ज्ञानाचना में भारतीय तथा पाश्चात्य कायसिद्धांतों का समन्वित करने की चेष्टा की थी उसको समुचित मुद्रा पीठिका पर स्थापित करने का कार्य जाचाय गुप्त की समीक्षात्मक कृतियाँ द्वारा ही सम्पन्न हुआ है।<sup>३</sup>

१ हिन्दी गद्य के विविध साहित्य-रूपा का उदभव और विकास (प्रयाग १९५८), पृ० २९८।

२ Among the Romans a poet was called Vates which is as much as a diviner foreseer or prophet' डॉ० सिडना, एन एपीलजी फार पीपटी (द वलड स कलसिक्स, १९४३), पृ० ५। इसी प्रकार गेल का यह कथन ज्ञातव्य है

'Poetry is indeed something divine. It is at once the centre and circumference of knowledge

डॉ० अ डिफरन्स जाव पीपटी (द वलड स कलसिक्स, १९४५), पृ० १५५।

३ हि० ग० वि०, पृ० ३०३।

द्विवेदीजी के जंगरजा भाषा-साहित्य विषयक परिचय का अनुमान उनके विषय अनुशासन में किया जा सकता है। उनकी "स्वाधीनता" और "शिक्षा" नामक पुस्तकें जान स्टुडेंट मित्र का "टिचर" तथा हवर्ट स्पेंसर की "एडुकेशन" ही अनुवाद हैं। "वेकन विचार-रत्नावली" में एडवेंचर के मुख्य-मुख्य विषयों का अनुवाद संकलित है।

परमिह राम ने अपनी समीक्षा में काव्य के शिल्प और रचना-कौशल पर—भाषा चमत्कार तथा उक्ति-वचन पर—अधिक बल दिया है। उनके प्रतिमान दश और गिहारी के भुक्तिका तथा काव्य प्रतिमानों से प्रभावित हैं।<sup>१</sup> इस कारण उनके विचार नवीन काव्य धारा का स्थापना न कर पाए। मिथवधुआ का 'मिथवधु विनायक' का कवि-वृत्त-संग्रह मान बहा गया है परंतु साहित्य-विद्वानों के प्रयासों के इस प्रयास का ऐतिहासिक महत्त्व है जिसे हम अस्वीकृत नहीं कर सकते। सरकार की आर्थिक सहायता से नागरी प्रचारिणी सभा ने सन् १८०० से पुस्तक की खोज का काम हाथ में लिया था और सन् १८११ तक अपनी खोज की आठ रिपोर्टों में सन् १८११ तक कविता तथा पाठ कवियों के अनेक ग्रंथों का पता लगाया था। 'मिथवधु विनायक' इस सारी सामग्री पर आधारित एक "व्याज्य भागी कवि-वृत्त-संग्रह" है। 'रीतिवादी कविता के परिचय' टिप्पणियों में गुकजी ने इसी 'विनायक' से विवरण लिए हैं और ऐतिहासिक आलोचना-मंडलिन का वास्तविक सूत्रपात इसी ग्रंथ में होता है। गुकजी के साहित्य-विद्वानों में काव्य-विभाग की जायजना है उस पर भी उनके प्राग्भूत इतिहासकारों का प्रभाव है उस पर 'स्पष्टतः न बल' ग्रियसन, वल्लि मिथवधुआ की याजना की भी छाप है यद्यपि गुकजी ने प्रथम का तो केवल नामोल्लेख किया है और दूसरे की अनावश्यक कृपा के साथ आलोचना ही की है।<sup>२</sup>

मिथवधुआ ने कविता की जाँच करत समय मुख्यतः दोषात्ता पर सर्वाधिक ध्यान दिया। अंगरेजी या वनमान विचारों से कविता की जाँच में दो मुख्य प्रश्न उठते हैं—कवि का कुछ कहना था या नहीं, और उसने उसे कहा कहा है?"

१ नन्ददुलार धारणेशी, आधुनिक साहित्य (इलाहाबाद स० २००७), पृ० २७१।

२ "प्रथम संस्करण का दशनम्"। दे० रामचंद्र गुकल, हिंदी साहित्य का इतिहास (द्वितीय), १९९९, पृ० १।

३ उपरिदित, पृ० ९।

४ मल्लिकविद्याचरण शर्मा, साहित्य का इतिहास-भाग, (पटना), १९६०, पृ० ८०।

‘हिंदी नवरत्न’ के कवियों की समीक्षा इही दा प्रश्ना को ध्यान म रखर की गई है। अयन भी मिश्रबधुआ की समीक्षात्मक रचनाएँ डाक्टर जानसन के ‘लाइज आव द पोयटस’ नामक ग्रंथ म सकलित समीक्षाजा के सन्श हैं। डाक्टर जानसन ने कवियों की कृतिया की समीक्षा करने के पूव उनम प्रत्यक का जीवन वत्त लिखा है। समीक्षा की इस प्रणाली का निस्सन्देह अपना महत्त्व है। जानसन ने अपनी समीक्षा का आधार कवि के जीवन को न बनाकर उनकी कृतिया को बनाया है—कवि के जीवन और उसकी कृतिया को पथक-पथक रखकर दोनों का परिचय और समीक्षा प्रस्तुत की है। समीक्षा की यह प्रणाली उस अद्यतन प्रणाली स सवथा भिन्न है जिसम कवि का जीवन वत्त और उसकी कलाकृतियों की व्याख्या परस्पर सयुक्त हो जाती है जिस हम जीवालोचनात्मक (bio critical) समीक्षा कहने है। इस परवर्ती प्रणाली का उदभव इंगलट मे उनी सवी शती मे हुआ। जानसन की समीक्षा-पद्धति से यह इस कारण भिन्न है कि जीवन वत्त और कलाकृति के पाथक्य का यह स्वीकृत नहा करती वरन एक का उपयोग दूसरे के अथ निणय अथवा स्पष्टीकरण के लिए करती है।

मिश्रबधुआ की समीक्षा म सुलझे हुए विचार मिलते है विचार-स्वानय एव आलोच्य ग्रंथो का गभीर व्यापक अध्ययन मिलता है। प्रत्यक निष्कप का आधार कवि की कलाकृति ही रहती है निराधार अनुमान या पूर्वग्रह नहा। प्रमुख विचार बिंदुआ का क्रमानुसार वणन और मत पुष्टि के लिए अनेकानक प्रसंगोचित उद्धरण प्रस्तुत मिलते हैं। मिश्रबधुआ की मानसिक दृढता और सत्यपरता उनकी उन रचनाआ म भलीभांति दखी जा सकता है जिनम उन्हान महाकवियों के दोषा का भी निस्सकोच उदघाटन किया है। द्विवेदीजी ने हिंदी नवरत्न के अनेक दोषा की जोर मरस्वती के पाठका का ध्यान जाकृष्ट किया था जिसके परिणाम स्वरूप मिश्रबधुआ ने लिखा

पुस्तक के रचयिता जसे अल्पन हैं वह पुस्तक दसन म ही प्रकट हा जाता है परंतु उन लोगा क वडे सीभाग्य की बात है कि सरस्वती के सम्पादक प० महावीरप्रसाद द्विवेदी के समान दिन पुष्प ने उस पर भारी समालोचना लिखन का श्रम उठाया। सपादक महाशय ने जनवरी एव फरवरी की सरस्वती के ४२ कालमा म इस समा लोचना’ को प्रनागित किया है। ऐमे जत्पना के तुच्छ ग्रंथा पर धुरधर पडिता के भारी श्रम उठान स ही उनका महत्त्व प्रकट है।<sup>१</sup>

१ भर्षादा, भाग ३, सख्या ५, माघ १९१२, प० २६४।

मिश्रवधु न तो "अल्पन थे और न उनका 'हिंदी नवरत्न' एक तुच्छ ग्रंथ ही। उनकी शालीनता के मूल में सत्समालोचक का व्यापक अध्ययन पाया जाता है वह आत्मविश्वास मिलता है जिसकी सिद्धि से उन्होंने द्विवेदीजी के प्रत्येक शब्द को निराधार प्रमाणित किया और 'हिंदी नवरत्न' में प्रयुक्त मूल प्रतिमानों का पुष्टीकरण भी। इस ग्रंथ की समालोचना में द्विवेदीजी ने कहा था कि मिश्रवधुआ न आचार्य और महाकवि की पदवियां बड़ी उदारता से वाटी हैं। द्विवेदीजी के अनुसार देव महाकवि नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने उल्लेखित भावा का उद्बोधन नहीं किया, समाज, दश या धर्म को कविता द्वारा लाभाहित नहीं किया। मिश्रवधुआ को ऐसे विचार ग्राह्य नहीं हैं। उन्होंने उन व्यक्तियों को आचार्य कहा है जिन्होंने 'एक या अधिक अच्छे ग्रंथों की रचना की है। रीति-ग्रंथ उन्हें कहते हैं जिनमें पाठकों का काव्यांग सिंगलर गए हैं। गद्य पद्य और संगीत के वास्तविक अंतर का विवेचन करते हुए उन्होंने जिस तथ्य का प्रतिपादन किया है, वह नातथ्य है

गद्य, पद्य और संगीत में वास्तविक अंतर यही है कि गद्य में विचारों का प्रयोग हृष वा शोकोत्पादक हृदयान्तरिक भावों की अपेक्षा विशेष अधिक, पद्य में प्रायः समभावस और संगीत में अति अल्प होता है। अतः जिन पद्य ग्रंथों में विचारों का प्रयोग बहुतायत में किया गया हो, वह पद्य गद्यवत् हो जाता है और इसी हृत् न्याय माह्य वदान्त, वैशेषिक मीमांसा, कोश, चिकित्सा गणित आदि शास्त्रों का पद्य में लिखन में वणन उत्तम कदापि नहीं हो सकता —यम ही जिस गद्य ग्रंथ में हृष वा शोकोत्पादक भावों का बड़ा समावेश होता है (जिसमें अयोव्यासिंह उपाध्याय वृत्त 'ठिठ हिन्दी का ठाठ' में), वह गद्य पद्यवत् हो जाता है।<sup>१</sup>

'हिन्दी काव्य' शीर्षक निबंध में उन्होंने हिन्दी भाषा में जिन ग्रन्थों की आवश्यक्ता थी उनका 'निष्ठा' कराया और एक वहत सूचीपत्र उपस्थित किया जो उन पर पड़नवाले अंगरजी प्रभाव का दानन करता है

(द) हिन्दी भाषा (एम या ऐम नाम का भाग साहज के चक्रस आन दि इन्ति ल्गुएज की तरह नागरी पर एक बृहत् ग्रन्थ)।

(घ) हिन्दी रचयिता गण (इस या एम ही नाम में "गाज मंनुय" आफ

१ उपरिखन, पृ० २७१।

२ सरस्वती, भाग १, सख्या १२, दिसंबर १९०० ई०, पृ० ४०५।

“गिल्ग लिटरेचर” तथा वाड्स इंग्लिश पोयट्स” की भांति हिंदी में एक बहुत बड़ा संग्रह)। इस ग्रंथ में भाषा के प्रायः सभी गद्य पद्य जीवनाटक लेखकों की रचनाओं के मनोहर भाग प्रत्येक लेखक पर एक समालोचनागर्भित भूमिका तथा समग्र संग्रह पर एक बड़ी उपक्रमणिका आदि विषय रहने चाहिए और इसका विस्तार लगभग दो ढाई सहेस पृष्ठ का हो। पर यह एक मनुष्य का काम नहीं है। १

स्पष्टतः मिथ्यवद् भी समीक्षा लेखन में उसी उद्देश्य से प्रेरित हुए थे, जिसमें डाक्टर जानसन और डाक्टर जानसन की तरह वे भी नीतिमूलक कलाकृतियों के पक्षपाती थे। वे चाहते थे कि हिंदी में प्राकृतिक तथा हृदयांतरिक भाव-प्रदर्शक साहित्य का नितना हो सके निर्माण हो और नाटक तथा गद्य गद्य वन जिनमें प्रसंगानुसार स्थान-स्थान पर कुरीतियों के सुधार तथा सुरीतियों का प्रचार का अनुरोध हो। ग्रंथों के पात्रों के शील स्वभाव का भी एकरस निर्वाह होना चाहिए।

अयोध्यासिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’ के समीक्षात्मक सिद्धांत “रमकल्स ‘बोलबाल’, ‘रस-साहित्य और समीक्षाएँ’ आदि ग्रंथों में मिलते हैं। बड़ही वनवास” के वक्तव्य और ‘प्रियप्रवास’ की भूमिका में भी भाषा-समुन्नयन में गद्य चयन का योग छद्म की बाधक स्थिति अत्यानुप्रास जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर लेखकों के विचारों का प्रस्तुतीकरण है। हरिऔध के अनुसार ‘नाटक’ आदि में भले-बुरे सभी प्रकार के पात्र होते हैं। भले की भलाई और बुरे की बुराई दिखला कर एक का उत्थप और दूसरे का पतन दिखलाया जाता है।’ (गक्सपियर के नाटकों में ‘विंग लियर’, आर्थेलो” जस दुष्पात नाटकों में ऐसी बात नहीं होती। जीवन में भले की भलाई की जगह भले की बुराई देगी गई है। इस दृष्टि में गक्सपियर के नाटक उत नाटकों की अपेक्षा अधिक यथायथमूलक है जिनमें भले की भलाई और बुरे की बुराई दिखायी जाती है।) हरिऔध के नाट्यसिद्धान्त में डॉ० जॉनसन पूणतया सहमत हैं। दोनों ही लेखक नाटकों में काव्यगत उपाय (पायटिफिस्टिफ) का समर्थन करते हैं यथायथमूलक चरित्र चित्रण नहीं। हरिऔध के मतानुसार ‘काव्य और नाटक’ आनंद का ही साधन हैं और उनमें आनंद ही प्राप्ति होती है।’ (रमकल्स भूमिका ३३) कहा जा सकता है कि हरिऔध का गद्य भी आनंद का ही एक कमनीय साधन है—रम-

१ उपरिखत पृ० ४०६।

१० :: आपूर्ति हिंदी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव

दीप्त एव वाच्यमय है। "रसकलस म शृगार रस-सवधी उनक भावोद्गार (भूमिना, पृ० १७०-१७१) गद्यकाव्य के ही सरस उदाहरण हैं। परतु अध्यता की भावनाआ का उदबोधित करना सत्समालोचक का लभ्य नहीं होता। हरि-औघजी की उक्त भूमिका हमारे मनोभावा की ही सबसे अधिक प्रोदीप्त करनी है, वुद्धि को नहा।

यह ऐतिहासिक सर्वेक्षण हरिऔघ तक जाकर ही समाप्त किया जाता है। इनके बाद की हिंदी आलोचना इस प्रवध का प्रतिपाद्य है।



## पाश्चात्य समीक्षा का ऐतिहासिक सर्वेक्षण

“आज जरस्तु बोलरिज और प्रोचे हमारे प्रायः उतने ही निवट हैं  
जितने भरत, अभिनवगुप्त और पण्डितराज जगन्नाथ ।”

—३१० रामप्रबोध द्विवेदी, साहित्य सिद्धांत (दो भाग)

### (क) उद्भव

पाश्चात्य समीक्षा परंपरा का प्रारम्भ होमर और हीसिओड की रचनाओं में पाए जानेवाले कतिपय ऐसे समीक्षात्मक सूत्रों से हाता है जिनके अनुसार काव्य का सृष्टि दैवी प्रेरणा से होती है ।<sup>१</sup> होमर के अनुसार काव्य का एकमात्र उद्देश्य रस-संचरण और पाठकों को श्रोताओं में आनंद आह्लाद का प्ररोचन है परंतु हीसिओड के अनुसार इसका एकमात्र लक्ष्य उस सदेश को संप्रेषित करना

१ “कवियां में अपनी कला के सबंध में धारणाएँ बनाने की सशक्त प्रवृत्ति पायी जाती है। वे अपनी इन धारणाओं को अपने काव्य द्वारा संप्रेषित सदेश का ही अविच्छिन्न अंग बनाकर इनका उपयोग करते हैं। इस कारण एक प्रकार का काव्य सिद्धांत उस समय से ही मिलने लगता है, जबसे कविताएँ रची जा रही हैं। जब होमर अपने महाकाव्यों के मंगलाचरण में कविता की अधिष्ठात्री देवी का जावाहन करता है, उस समय वस्तुतः उसके काव्य विषयक एक महत्त्वपूर्ण विचार सिद्धांत की ही अभिव्यक्ति होती है—वह यह कि कवि के महाकाव्य दैवी प्रेरणा से ही लिखे गए हैं या लिखे जाने चाहिए। यह उन विचारों में एक है जिनका साहित्य शास्त्र के इतिहास में स्थायी महत्त्व है।’ विलियम के० विमसेट (जूनियो) और विलियम ब्रुक्स, लिटररी क्रिटिसिज्म अ शाट हिस्ट्री (१९६४), पृ० ३४।

है जिस कवि काव्य को अग्निष्ठात्री देविया से प्राप्त करता है। पिण्डार की नम्बोद-  
 गोतिया म, जेनफनीज और हिरकितटस के तत्त्व-दशना म, इतस्तन दिवर  
 हुए विविध साहित्यिक मनो और मायताआ का ममाहार मिनता है। यद्यपि  
 परिमाण म य अत्यल्प है फिर भी ऐसा जान पडना है कि प्लेटो के काव्यगत  
 सिद्धान्त यूनान की एक बरिष्ठ समीक्षा-परंपरा के मबोंपरि विकाम का प्रतिनिधि ब  
 करत है न कि इस परंपरा के भूतपात का। ऐरिस्टोफनीज व अधिकांश उपलब्ध  
 नाटका म, जिनका अभिनय इमा के पूर्व पाचवी शती के अन्तिम चतुयाग तथा  
 चौथी शती के प्रारम्भिक वर्षों म हुआ था, सामयिक तथा विगत युग के लेखक-  
 विचारका का—विशेषत विश्व विश्रुत राम्पी-लेखक यूरिपीडीज का—व्यंग्यात्मक  
 चित्रण मिलता है। उदाहरणार्थ, 'द फ्रीज' म इस नाटककार ने दिखताया  
 है कि किस प्रकार रगमच के महोत्सवा के मरलक धार दवता डाइअनाइसम  
 प्रेनलोक से यूरिपीडीज का पुन लौग लान के लिए जान हैं, किंतु अन्ततोगत्वा  
 ईस्विलस का ही पुरस्कृत करत हैं। आलोचना के जिन प्रतिमाना से ऐसा निणय  
 किया जाता है, वे हैं कला-नपुण्य और स्वदेश अथवा राज्य के लिए समुचित पय  
 निर्देश। नाटककार न कविया मे पाय जानवाले कतिपय अवगुणा की गहणा भी  
 की है। उसे इस्विलस की अवाध अदम्य प्रगमता और यूरिपीडीज का पगुघा-  
 निखमगा के प्रति नाबुक्ताजय स्नह अगचिक्कर गगता है।

यूनानिया की यह धारणा कि काव्य अनाकिक आध्यात्मिक प्रेरणा मे स्वन  
 उच्छलित एक लोकान्तर कता है, अत्यन्त प्राचीन है। प्लेटो तक इस विचार  
 का मन्वक् प्रचलन दीन्य पडता है। स्वन प्लेटो न भी काव्य को देवी प्रेरणा मे  
 अभिमूत कवि के मन विभेद का परिणाम स्वैच्छा चिन्तन द्वारा 'आइजन'  
 म सुकरात से कहताया है कि कविता की अग्निष्ठात्री देवी स्वनदम स्वन स्वन्यों  
 का—कविया का—प्रेरित करती है, प्रेरणा कर्ता स्वन इ स्वन्या मे स्वन  
 व्यक्ति अनिप्रेरित हा उठन हैं और इस प्रकार स्वन-प्रेरणा की स्वन प्रेरणा की  
 एक अपूर्व गृहणा बनती जाती है। प्लेटो व अनुमा महासत्या मे स्वन मुक्तता  
 एक गाता तक के रचयिता अपन कता-वीगत म मुक्त अमर काव्य की मूर्ष्टि  
 नहा करत, अपितु इस कारण करत हैं कि व प्रेरित तथा देवी मक्ति द्वारा  
 अभिमूत हान है। जिन प्रकार कारिक्टिपन उत्पत्ता म भाग उनवाने नृतक  
 उमत्तता और बोधशीलता की अवस्था म नत्य करत हैं, भी प्रेरण गौत्रिकाव्य  
 के स्रष्टा भी अपन मनाहारी गीता की रचना करत समय, स्वनिय प्रेरणा क  
 वशीभूत होने व कारण, अपन मन का स्वाभाविक अवस्था में स्वन रहते। कवि  
 उन (कविक) कुमारिया के समान होत हैं, जा डाइअनाइसम क प्रभाव के कर्त

नर्तिका स मधु और दूध ग्रहण करती हैं। गीतनायक रचयिताओं के हृदय भी ऐसा ही करते हैं। उदाहरण के लिए उनका गान मधु के क्षरणास निम्न होते हैं। याम्बा के उपवनास निम्नत हैं, वे राग की मानुरी ग्रहण करत और कल्पना के परासे सज घञ्जर घपत भावाङ्गारा की अभिव्यक्ति करत हैं। कवि एक अत्यन्त हल्का समल, परायुक्त एवं पवित्र दत्तार्पित प्राणी होता है, उसकी उन्मादा-शक्ति तब तक सुप्त रहती है जब तक वह दिव्य शक्तियाँ स परामृत नहाहा जाता। प्रेरणा और प्रमाद के वश मही वह देव प्राणी के प्रनाशन का समुचित माध्यम बनता है। वह बड़े ही उदात्त शान्त्वर्ग मनुष्या के क्रिया कलाप का गान करता है परंतु वह कला के मिद्धाता और नियम के आधार पर ऐसा नहा करता वह ता वही कहन के लिए उत्प्रेरित होता है जो कविता का अधिष्ठात्री देवी का पसंद हाती है।<sup>१</sup>

इस प्रकार प्लेटो ने देवी प्रेरणा पर आवश्यकता से अधिक बल दिया है और बार-बार कहा है कि कवि अपनी कला से नहीं अपितु देवी शक्ति से सम्पन्न होत

२ 'For all good poets epic as well as lyric compose their beautiful poems not by art but because they are inspired and possessed. And as the Corybantian revellers when they dance are not in their right mind, so the lyric poets are not in their right mind when they are composing their beautiful strains but when falling under the power of music and metre they are inspired and possessed like Bacchic maidens who draw milk and honey from the rivers when they are under the influence of Dionysus but not when they are in their right mind. And the soul of the lyric poet does the same, as they themselves say for they tell us that they bring songs from honeyed fountains, culling them out of the gardens and dells of the Muses they like the bees winging their way from flower to flower. And this is true. For the poet is a light and winged and holy thing and there is no invention in him until he has been inspired and is out of his senses, and the mind is no longer in him when he has not attained to this state, he is powerless and is unable to utter his oracles they are simply inspired to utter that to which the Muse impels them, and that only for not by art does the poet sing, but by dower divine. *The Ion*

के कारण गाना और गीता की रचना करता है। काव्योत्पत्ति उमाद की निष्पत्ति-  
 चम्या से होती है, अतः उमसे जनहित सम्भव नहीं हो सकता। इस प्रकार जब  
 देवी प्रेरणा ही काव्य-स्रष्टि का एकमात्र साधन है, तब कलाशा के अनुशीलन-  
 मनन तथा अभ्यास से कुछ होने का नहीं है। मामूह न कहा है कि शब्दार्थों से  
 परिचित होकर, विद्वाना के समीप रहकर तथा दूसरा के निवृत्ता को देखकर  
 काव्य रचना में प्रवृत्त होना चाहिए। प्लेटो के अनुसार ऐसे प्रयास की कोई  
 आवश्यकता नहीं क्योंकि काव्यशास्त्र अलकार, पिंगल आदि के अध्ययन से  
 ही कोई कवि नहीं बन सकता। दण्डी ने काव्य-हेतु का उल्लेख करत हुए उन  
 व्यक्तियों की चर्चा की है जिनमें काव्य निर्माण का सामर्थ्य कम है परन्तु जो  
 आलस्य-रहित हाकर श्रमपूर्वक मरस्वती की निरंतर उपासना करते हैं। प्लेटो  
 कहता है कि ऐसा श्रम निरर्थक है दण्डी कहत है कि काव्यानुशीलन तथा  
 अभ्यास से वाग्देवी सरस्वती निश्चय ही कोई अलस्य अनुग्रह करती है।

अरस्तू ने अपने आचार्य प्लेटो की उन आतिमूलक मायताओं का खंडन किया  
 है जिनके अनुसार काव्य-संजन देवी प्रेरणा का परिणाम-मात्र हो जाता है। वस्तुतः  
 अरस्तू के काव्यशास्त्र में तथा राजशेखर की काव्यमीमांसा में प्लेटो के तर्कों के  
 पचास और सतापजनक उत्तर मिल जाते हैं। राजशेखर पर या अथ परवर्ती  
 भारतीय आचार्यों पर प्लेटो या अरस्तू का भी प्रभाव रहा होगा, यह वैज्ञानिक  
 प्रमाणा के अभाव में कस कहा जा सकता है? परन्तु स्याम से यायावरीय  
 राजशेखर ने कुछ ऐसे ही तक वितक उपस्थित किए हैं जिनके पृष्ठाधार उन  
 आचार्यों के काव्य-संघी विचार रहे होंगे जिन्होंने प्लेटो के समान कवि का  
 वैज्ञानिक सत्य एवं नतिवता की तुला पर रखकर उसकी विगहणा की होगी।

कुछ लोगो का मत है कि काव्यो में असत्य (आलंकारिक वाता) का उल्लेख रहता  
 है। अतः यह उपदेश करने योग्य नहीं है। इन कुछ लोगो में प्लेटो का  
 भी नाम सम्मिलित है, बल्कि सर्वोपरि है। राजशेखर और अरस्तू ने ऐसे आरोप  
 का निरस्तन करत हुए प्रतिमा का सर्वोपरि महत्त्व नहीं दिया। राजशेखर ने कहा  
 कि काव्य अतिशयाक्तिपूर्ण होने तथा असत्य वणनामय होने से त्याज्य है, यह  
 बात नहीं। काव्या में वणनीय व्यक्ति या विषय के प्रति जो अथवाद या  
 अतिशयाक्ति की जाती है, वह असत्य या असंगत नहीं है।<sup>१</sup> अरस्तू ने प्लेटो  
 के इस वचन को मबया समीचीन कहा है कि कवि चित्रकार तथा अथ  
 वनाकारों के समान अनुकरणशील होता है। वह ऐतिहासिक घटनाओं का—

१ डा० नगेन्द्र, भारतीय काव्यशास्त्र की, परंपरा (१९६४), पृ० १४०।

सत्य का—अनुकरण करना है, परंतु यदि वह चाहता जनश्रुति पर प्राचन घटनाओं का भी अनुकरण कर सकता है। कवि को उन घटनाओं के प्रतिबिंबन का पूर्णाधिकार है जो न कभी घटित हुई है न शायी पर जिनमें कवि का कौशल आदर्श अतिरिक्त है। इस तरह कवि वर्तमान अथवा अतीत का, जनसाधारण में घटित और गहीत घटनाओं का ही अनुकरण तथा रचाना करता है। प्लेटो के समान अस्तु भी यह मानता था कि अनुकरण में एक नैतिक मान्य है और अनुकरण मनुष्य की सहज जन्मात प्रवृत्ति है जो उसके शशय में भी क्रियाशील रहती है। कवि अथवा कलाकार भी एक ऐसा ही शिशु है जिस अनुकरण से भरपूर आनंद मिलता है। मानव मन की एक आरति सज्जित प्रवृत्ति है जिसे ताल लय और सामञ्जस्य की प्रवृत्ति कहते हैं। इसी प्रवृत्ति का कारण—न कि प्रमाद की बोधशून्य मन स्थिति में—कवि सुमनुर नरन सगीतमय काय की सृष्टि करता है। प्लेटो के अनुसार कवियों की अनुवृत्ति उनके चित्त सत्य की अभिव्यक्ति नहीं करते, बरन सत्य से दुगुना दूर हात है। मूल सत्य एक और अखंड है तथा यह वस्तु जगत—यह मौलिक जीवन—उस परम सत्य का अनुसरण है आप ही वह परम सत्य नहा। इसलिए कलाकार वस्तु जगत का अनुकर्ता हान के कारण परम सत्य से दुगुना दूर जा पडता है। अस्तु ने इन मतवाद का रडन करने हुए कहा कि काव्य में वर्णित सत्य सावमीम एक शाश्वत होते हैं और अनुकरण यथावत प्रतिवृत्ति—मान्य नहा है। कवि उन घटनाओं अथवा परिस्थितियों का वेवत अनुकरण अथवा प्रतिरूपण ही नहा करता जिह वट देयता या जिनकी परिकल्पना करना है यह इस प्रकार उनका वर्णन करता है कि उनमें सावमीम और विशिष्ट तत्त्व उदभासित हा उठते हैं। अनिर्णयता या सम्भावना का नियम का पालन और अनुमादन करता हुआ वह काव्य रचना करता है। 'कवि और इतिहासकार में भेद यह नहा है कि एक पद्य में लिखता है दूसरा गद्य में। वास्तविक भेद यह है कि एक तो उसका वर्णन करता है जा घटित हा चुका है और दूसरा उसका जा घटित हा सकता है। परिणामतः काव्य में तत्त्व-तत्त्व अधिन हाता है उसका स्वरूप इतिहास से भव्यतर है क्योंकि काव्य सामान्य (सावमीम) की अभिव्यक्ति है और इतिहास विशय की।' ताना में यही आचार है और इनी कारण काव्य का सत्य इतिहास के सत्य की अपेक्षा विमल-व्यापक और उमका लभ्य भी उच्चतर हाता है। जहाँ इतिहास कथन विविक्त सत्य की आर

१ डॉ० नगत्र (सम्पा०) पाश्चात्य काव्यशास्त्र का पर्यय (दिल्ली, प्र० नि० १०), पृ० ३३।

सक्ष्य करता है वही दूसरी ओर काव्य विश्वन्यायी सावजनीन सत्य का प्रति-  
फलन करता है।

अरस्तू के काव्यदृष्टि-मिथ्या उन पीरस्त्र आचार्यों के विचारा से बहुश  
मिलते-जुलते हैं, निन्दान व्युत्पत्ति तथा अम्याम पर यथेष्ट बल दिया है। काव्य-  
शास्त्रानुशीलन, अध्वयन-मनन से साधक चाहे ता, काव्य-मृष्टि की अपूर्व शक्ति  
अर्जित कर सकता है। तभी ता अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र तथा भाषण शास्त्र  
की रचना की। दण्डी, वामन रट्ट मम्मट आदि आचार्यों के समान उसने  
तिपुपना और अम्याम पर बल दिया और साथ ही अपने ग्रंथों में प्रतिभा की  
अनिवाय अपेक्षा की।<sup>१</sup>

महत्त्व की दृष्टि से अरस्तू के बाद डेमेट्रियस का नाम आता है। इस निष्णात  
रातिकार न गद्य शैली पर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक की रचना की, जिसमें  
चार प्रकार की शलिया का विवचन किया। डेमेट्रियस जहाँ प्राजलता को  
शैली का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गुण मानता है, वही उन्नत और सरल शैलिया,  
उमके अनुसार परस्परविरोधी हैं। इनके अतिरिक्त बाकी सभी गद्य शलियाँ  
एक-दूसरे में समाहित हो सकती हैं जैसे हामर के काव्य तथा प्लेटो के गद्य में  
उदात्तता और ओनम्बिता का बला ही सुन्दर-सुष्ठु संयोग पाया जाता है।  
डेमेट्रियस ने ही सर्वप्रथम मध्य प्रभावपूर्ण गीति को एक पृथक् शैली के रूप  
में प्रस्तुत किया। (कहा जाता है कि इस वर्गीकरण के मूल में लेखक का  
उद्देश्य डेमाम्बनीज के महत्त्व को प्रतिष्ठित करना था।) उमने बार-बार कहा  
है कि गद्य में कविया का अनुकरण अशानन होता है। कवता को चाहिए कि वह  
अपने भाषण के सभी प्रमुख विचार विदुआ का विस्तार न कर, उनमें कुछ का  
आता की प्रहारागता तथा अनुमान के लिए छोड दे। इसी प्रकार अध्वेता की  
निजी कल्पना और जान-ग्रहण के लिए कुछ छोड देना कुशल शनीवार के लिए  
अनिवाय होता है। अरस्तू के पत्रा के सम्पादक आर्टेमन ने कहा था कि पत्र  
उसी प्रकार निवे जान चाहिए जिस प्रकार मनापण या कथापकथन लिखे जाते  
हैं। डेमेट्रियस के अनुसार पत्रा की भाषा कथापकथन की भाषा की अपेक्षा अधिक  
व्यवस्थित एवं कलात्मक होती है। जहाँ कथापकथन मध्य स्फूर्त अभिव्यक्ति है,  
वहीं पत्र लिपि-बन्ध हान के कारण एक प्रकार के उपहार के रूप में भेजे जाते हैं।  
पत्र में लेखक के चरित्र का स्पावन होना चाहिए पत्र-लेखक अपने पत्रों में अपनी  
आत्मा का हा प्रकाशित करता है।

१ डॉ० गोत्र, अरस्तू का काव्यशास्त्र (इलाहाबाद, स० २०१४), पृ० ५६-५७।

तदुपरान्त हेमद्रियस उन्नास शंती व अतगत रूपवाचनारा और उपमाया वा विवेचन करता है। यद्यपि ममी प्रसार के वाग्जाल हेय हैं, श्रेयादि अलकारो वा गमयेंन तमी किया जा सनता है जय य रचिकर हा और श्रोचिय की कमोती पर गरे उतरें। जहाँ अनुमति प्रवल और गम्भीर हानी है वहाँ गरिष्णत तथा बलापूण भाषामिव्यजना की आवश्यकता नहीं होती और सरल-भाषाय परिवश म कविता या अलसार व हलके पुट मे ही प्रमाता विचलिन हा उठता है।

प्लौटस (ई० पू० लगभग २५८-१८४) के नाटका म मामयिन कायन्ती के अवगुणा पर नानाविध आनुपगिक टीरा टिप्पणियाँ अवश्य मिलती हैं पन्नु टेरेस के योगदान वा अपभाटत अधिक स्वाया महत्व है। उसने अपने प्रति दृष्टिया की रचनाया की कटु आनाचना की और कहा कि उनकी कामदी भूत यूनानी नाटका व अरण अनुवाद मात्र थे। उनके नाटका की दुस्हना ('अन्सकपुरा डिलिजेन्सिमा') की उसने सशक्त शान्त म निदा की और साथ ही दशका की निवृष्ट अमिरचि और नटराजी तथा मुष्टियुद्ध व प्रति उनकी अनिषाय उमुवता की और मवेत किया। सनमनीराज और अरहोती घटनाया को वह कामदी वा अनिवाय अग मानन को तयार न था और न उसके प्रतिमान जन साधारण की रुचि क आधार पर ही निमित्त हुए थे। एक स्थल पर तो वह स्पष्ट शब्दो म कहता है कि नाटयकना वा कुछ इने गिने लागे के हाथ म पडना और उनके द्वारा नियमित-संचालित हाना ठाक नहा है। उसके अनुमार कामन्ती म अतिरजित भावात्मक घटनाया वा समावश होता ठीक नहीं है कामदी एक ऐसी विधा है जो आसदी से सवया भिन्न है, जो साधारण जावन क स्तर पर ही गतिशील रहती है तथा जो शौममय अथवा कारुणिक वा यणत नहीं करता। उसकी कामदा जन जीवन म ही प्रविष्ट हा उससे उपयुक्त सामग्री ग्रहण करती है।<sup>१</sup>

मिसरो नामक रोमीय आचाय ने ईसा के प्राय ५५ वय पूर्व 'आन दि ऑरेटर' (De Oratore) नामक ग्रन्थ की रचना की जा भाषणकला शास्त्र पर अपने ढंग की बजोड वृति है। मिसरो के अनुमार वाग्मिता एक बडा ही दुलभ गुण है। नसार म श्रेष्ठ वक्ता विरल ही मिलत ह। इसका कारण योग्यता की कमी नहा, वरन भाषण-कला की अगम्यता और कठिनाता ह। इसकी मिद्धि के निए गहन-गभीर ज्ञान भाषा पर नमुचिन अधिकार अत प्रवशिनी मनोवज्ञानिक

१ दे० जे० डब्ल्यु० एच० एटकिंस, लिटररी क्रिटिसिज्म इन एटिक्विटी (लंडन, १९५२), भाग २, प० ५७।

नृष्टि, वाक्पटुता और हास्य-नृष्टि की क्षमता, उच्च काटि की निवेदन विधि और स्मरणशक्ति की आवश्यकता होती है। मिमरा भाषण-कला को सामान्य कलाप्रा की काटि में नहीं रखना, उसके अनुसार उस शक्ति से बढ़कर मत्सर में और कुद्ध भी नहीं जिममें सम्पन्न हाकर प्रवक्ता कोटिश मनुष्या को एक साथ प्रभावित कर उनकी शुभकामना प्राप्त करना और उनकी प्रवृत्तिया को इच्छानुसार संचालित करता ह। इमणिए मिमरो कहता है— मनी स्वतंत्र राष्ट्रा में जहाँ सुत्र शांति का प्राबुय रहता है भाषण-कला अथ मनी कलाप्रा की अपेक्षा अधिक समुन्नत रही है।<sup>१</sup> हमारे मन और धरणीन्द्रिया का उम भाषण से अधिक मुस्वाद् और क्या ला सक्ता है जा विवकपूष चिन्तन और उदात्त भाव भाषा से अलङ्कृत हो ? भाषण-कला में राजनीतिक अभिमान की उपस्थिति नहीं हानी परन्तु वक्ता को राजनीतिशास्त्र तथा शीलविज्ञान में निष्णात हाना चाहिए। कविया के सबध में मिसरो ने कहा है कि कवि वक्ता का बटुन निवृत्त-मवधी हाना है। यद्यपि वह छं ताल-सुक् आदि की नृष्टि से अपभासुत अधिक निगटित निरुद्ध हाना है फिर भी शत्रु चयन की नृष्टि में उम वक्ता की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रता रहती है। अलङ्कार प्रयाग की नृष्टि से कवि और वक्ता में काइ अंतर नहीं हाना।

### भाषण-कला-हेतु प्रतिभा

मिसरो ने अनुसार वक्ता के लिए प्रतिभा की उतनी ही अपेक्षा हाती है जितनी भामह और आनन्दबधन के अनुसार कवि के लिए। गुट के उपदान में जडबुद्धि भी शास्त्रा का अध्ययन कर मक्त हैं किन्तु काव्य रचना प्रतिभा-सम्पन्न कविया स ही हो मक्ती है।<sup>२</sup> काव्य रचना के अभिलाषी पुरुष का शत्रु, छं कोश-प्रतिपादित अथ, ऐतिहासिक कथाप्रा, लोक-व्यवहार तत्कालीन और कलाप्रा का मनन करना चाहिए।<sup>३</sup> आनन्दबधन ने कहा है कि प्राचीन

१ Haec una res in omni libero populo, maximeque in pacatis tranquillisque civitatibus, praecipue semper floruit, semperque dominata est (Cicero De Oratore Vol, I, Loeb Classical Library p 22-23)

२ गुरुपदेशादध्येतु शास्त्रं जडधियोऽप्यलम ।

काय तु जायते जातु कस्यचित्प्रतिभावत ॥११५

—वाय्याल्षार (भाष्य० देवेद्रनाथ शर्मा)

३ शत्रुच्छदोभिधानार्था इतिहासाश्रया कथा ।

लोको युक्ति कलाचेति मन्तव्या काव्यग्रहयमा ॥११९ (उपरिक्त)



कविया के प्रपञ्च के रहत हुए भी यदि कवि म प्रतिभागुण है, तो नवीन वणनीय तत्वों की समाप्ति नहीं हो सकती। प्रतिभा क न होने पर ही कवि क पास काइ वस्तु नहीं रह जाती जिससे वह अप्रुव चमत्कारयुक्त काव्य का निर्माण कर सके।<sup>१</sup> सिसरो ने भी प्रतिभा को जमान्तीय सस्कार (naturam defuisse) कहा है और भट्ट तीत तथा भूमिनव गुप्त के समान इमे "नववनामेशालिनी, "अप्रुववस्तुनिर्माणधमा" प्रना का पयाय माना है (qui et ad excogitandum acuti )। यह सत्य है कि कला नसर्गिक गुणा-उपादाना मे चमक ला सकती है और अभ्यास तथा व्युत्पत्ति स वक्ता याग्यतर हा सकता है, फिर भी उसमे जमान्तीय प्रतिभा का होना परमाश्वयव है। इसलिए व व्यक्ति ही व्युत्पत्ति और अभ्यास से लाभान्वित हो सकत है जिनमे स्वाभाविक प्रना होती है। कभी-कभी अभ्यास के बिना प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति का भी सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता, फिर भी सिसरो सबसे पहल प्रतिभा को और तब अभ्यास को महत्व दता है।<sup>२</sup>

जिस प्रकार प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास का प्रश्न भारतीय कायशास्त्र का एक जीता-जागता प्रश्न रहा है उसी प्रकार पाश्चात्य काव्यशास्त्रिया ने भी कायहेतुआ के विवेचन को अपनी कृतिया म प्रमुख स्थान दे रखा है। नवजागरण-युग मे कई इतालवी आचार्यों ने हारेस विरचित 'जास पायटिका' के आलोक म बार-बार इस समस्या पर विचार किया और विभिन्न मत-मतान्तर पेश किए। हारेस की अमर वृत्ति 'जास पायटिका' की रचना सभवत ई० पू० २३ स २० क अंतराल म हुई। तब से जाज तक इसकी उपादेयता अक्षुण्ण रही है और पाश्चात्य समीक्षक इसे पढते और इसका उपयोग करते आ रहे हैं। काव्यहनु के प्रश्न पर हारेस के विचार स्पष्ट थे—कवि क लिए प्रतिभा और अभ्यास दोनों ही अपेक्षित हैं। 'अच्छी कविताका के सबध म लाग प्राय पूछा करत ह कि वे नसर्गिक प्रतिभा से अथवा कला-अभ्यास से सर्जित हुइ है। जहा तक मरा सप्रध है मैं कटूंगा कि वह अभ्यास निरर्थक है जिनमे प्रतिभा का योग न हो। आर इसी प्रकार वह प्रतिभा भी बेकार है जा अभ्यास द्वारा चमकायी न गयी

१ ध्वनेरित्य गुणीभूतपग्यस्य च समाश्रयात् ।

न कायायविरामोऽस्ति यदि स्यात्प्रतिभागुण ॥४१६

—ध्वनालोक (ध्याएया० आचाय विश्वेश्वर)

२ देखिये *De Oratore* I, xciv, 113-116, II XX, 88-92 (Loeb Classical Library, pp 81, 265-266)

हो।<sup>१</sup> काव्य प्रयोजन के सबध में हारस ने कहा है कि उन कवियों ने ही प्रत्यक्ष जयन्ता में प्रशाना पायो है, जिन्हान अपन काव्य में गिव और सुन्दर का स्पृहणीय मयाग प्रस्तुत किया है—रसोद्भूति के साथ ही मगलकारी सिमाप्रद काव्य-मनन को अपना रस्य बनाया है।<sup>२</sup> कविता और चित्रकला में अविधि तथा शृजुता की जपेना होनी है। हम कवियों<sup>३</sup> को अतिवादा से बचकर रहना चाहिए और एक मू से बचने के लिए इसके विपरीत दूसरी मूल नहीं करनी चाहिए।<sup>४</sup> लेखकों को उन विषयो तक ही अपन को परिसीमित रखना चाहिए जिन पर वे माधिकार लिख सकते हैं। तभी उन्हें सजा के अभाव का एहसास न हागा और एक उचित ऋत में समय तथा प्रसंग के अनुसार, उनके मनोगत भाव अभिव्यक्त होते रहेंगे। जहा तक काव्य भाषा का सबध है उह इनके प्रति पर्याप्त सतर्कता रखनी चाहिए। वे चाहता अपने कान-नैपुण्य से परिचित गद्या को भी अभिनव स्वर-सज्जा में आनुपिन कर सकत हैं अथवा प्राचीन कविया की तरह सयतभाव में नय-नय सजा का मुद्रण-रचन कर सकत हैं। मुवात तथा ब्रासमूलक नाटक एफ-दूसरे से भिन्न हाकर भी कभी-कभी कुछ हद तक समान-गुणधर्मा हो जात ह। नाटक की रचना जन-ममूह के जावेगा के उद्दीपन के लिए और उसकी भाषा पात्रानुकूल हा। जहा ऐसा सामजस्य नहा पाया जाना वहा सभी उस रचना को उपहास्य समन बठने हैं। नाटका का पाच अका म विभाजित होना चाहिए और एक ही धार तीन न अधिक पान रगमच पर नहीं होन चाहिए। कोरस का नाटक की घटनाआ म नरिय भाग देना और जप्रासगिक गीना से दूर रहना चाहिए

१ *Natura fieret laudabile carmen an arte,  
quacsitum est ego nec studium me divite vena,  
nec rude quid prosit video ingenium alterius sic  
altera poscit opem res et conurat amice*  
—Horace (The Loeb Classical Library), p 484

२ *omne tulit punctum qui miscuit utile ducti  
lectorem delectando pariterque monendo  
hic meret aera liber Sossus, hic et mare transit  
et longum noto criptori prorogat aevum*  
—Ibid p 478

३ *Maxima pars vatum*

४ *in vitium ducit culpae fuga, si caret arte*

—उसे नैतिकता और धार्मिकता का पृष्ठपोषण करना चाहिए। कुछ लोग का धारणा है कि प्रतिभा और पागल्पन में मणिकाचन योग होता है जिसके परिणाम-स्वरूप कवि कहाने के लिए उत्सुक कुछ लोग अपने स्वास्थ्य का उपेक्षा करते और अस्त-व्यस्त दीस पड़ते हैं। मस्तिष्क और मथा को खाकर कविता करना समीचीन प्रतीत नहीं होता।

### लोगिनुस और विचण्टिलिपन

पहली शती में लागिनुस नामक जाचाय ने कहा था कि कलाकृति के मूल्यांकन का एक सहज निरूप यह है कि वह कहा तक भावका का अपन उदात्त मनावेग से प्रभावित कर सकी है। यदि उससे अध्येता का मन विचलित हो उठता है और उसका हृत्तन झट्टत हो उठती है, तो वह कृति सफल और महान है। लागिनुस इस बात का स्पष्ट और तर्कपूर्ण विवेचन प्रस्तुत नहीं करता कि जावग प्रवाह में वह जाना और जात्म विभार हो जाना अच्छा है जयवा बुरा परंतु वह इस बात का स्वीकार नहीं करता कि अनुभूतियाँ आनन्दप्रद होने के कारण ही महत्त्वपूर्ण हांती है। लागिनुस के लिए रसोद्रेक का कारण उदात्तता और भव्यता है। जिस यूनानी शब्द के लिए हम 'सल्लाडम' का प्रयोग करते हैं अँगरेजी में उसका वास्तविक अर्थ 'उच्च' से ध्वनित होता है। लागिनुस साहित्यिक कृतियाँ की उन विशेषताओं की ओर संकेत करता है जो अध्ययन में तत्काल इस भावना का संचार करती है कि वह प्रबल जावेगमय अनुभूतियाँ की नयी ऊँचाइयाँ का अवरोहण करता जा रहा है।

'आनन्द सल्लाडम' के लेखक का उद्देश्य उदात्त शली के प्राणभूत तत्त्वा का निदर्शन है। अनावश्यक स्फोटित बालिश्य तथा आडम्बर से रहित इस शली की प्रेरणा महान विचारा और गम्भीर उद्दाम जावेगा से मिलती है और इसकी अभिव्यक्ति उदात्त शान्त तथा समजित-सचटित रचना में होती है। समग्रत आनन्द सल्लाडम साहित्यिक समीक्षा पर एक ऐसा निबंध है जिसमें शली का विशिष्टता पर विशेष बल दिया गया है।<sup>१</sup> लागिनुस के अनुसार अभिव्यक्ति का

१ Its broad aim is to indicate the essential elements of an elevated style which, avoiding turgidity puerility, affectation and bad taste finds its inspiration in great thought and deep emotion and its expression in a noble diction and a well ordered composition, it is, in effect

उत्कृष्टता एवं भव्यता का ही दूसरा नाम उदात्तता है। इसी उत्कृष्टता के फलस्वरूप ऐश्वर्य अभय यग की प्राप्ति करत हैं। यद्यपि लागिनुम कभी-कभी विषयान्तर हो जाता है, फिर भी विवक्ष्य विषय को यथागन्ध अपने समक्ष रखता है और उन गुणा तथा विधिया का विवरण प्रस्तुत करता है जो उदात्त-सृष्टि में सहायक जयवा बाधक हानी हैं। उदात्त को एक समुचित परिभाषा में आरद्ध करन के अनन्तर वह पूछता है कि क्या उदात्त रचना की कोई कला भी हो सकती है? इस प्रश्न का जो उत्तर मिलता है उसमें हॉरन तथा अय आलोचकों का स्मरण हा आता है। आन्तत्य लागिनुम कहता है एक जन्मजात गुण है, परन्तु इसे हम उन महान् चका के अनुकरण न भी जर्जित कर सकते हैं जिनमें औदात्त्य की उपरिधि की क्षमता पायी जाती है। प्रतिभा के समुचित उपयोग के लिए अभ्यास परमावश्यक है।<sup>१</sup>

इस प्रकार लागिनुम ने उदात्त भाषा के मुख्य स्तम्भ का बणन करते हुए प्रतिभा की उपादयता बतायी है और कहा है कि काव्य में उदात्त तत्त्व की प्रतिष्ठा के लिए 'सबप्रथम आर सवाधिक महत्वपूर्ण है महान् विचारोदभावना की क्षमता। दूसरा तत्त्व है प्रेरणा प्रभूत एवं उद्दाम आवग। उदात्त के य दा तत्त्व अधिकतर न नसर्गिक हान हैं। शेष तत्त्व जगत बला की निष्पत्ति हैं।'<sup>२</sup> लागिनुम न 'एक मनीषी' की यह उक्ति उद्धन की है कि 'उदात्त प्रवृत्ति निमगजान हानी है गिथा न उनका अजन नहीं हाना—प्रकृति ही एकमात्र बला है जो उसे परिधि में बाँध सकती है।'<sup>३</sup> परन्तु प्रतिभा-मान में औदात्त्य का प्रस्ताना कभी मुष् नहीं हो सकती और न वह मन विक्षेप को ही प्राणभूत आधार तन्व मान सकता है। औदात्त्य के मन्वक् परिपाक के लिए प्रेरणा की तो आवश्यकता हानी ही है इसके लिए नियन्त्रण की भी आवश्यकता होनी है। देमोस्थेनेस के अनुमार सौभाग्य सबसे बडा वरदान है जब्य किन्तु सन्वुद्धि—जिसका म्यान दूसरा है—महत्व में किमी प्रकार कम नहीं, क्याकि उनके अभाव में अनिवायत

---

a short essay in literary criticism, with special refererence to distinction of style —W Rhys Roberts *Greek Rhetoric and Literary Criticism* ( New York 1963 ), pp 12 et seq

- १ दे० बलासिन्हा लिटररी क्रिटिसिज्म (पेंडिन बुक्स, १९६५), पृ० २५
- २ पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा, पृ० ५१।
- ३ उपरिखत पृ० ४९।

सीमाय या ताग निहित रत्ना है। इन प्रकार लागिनुम के अनुसार "अभ्यास" भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता। इसी कारण उनमें जीवित्य व मोला की चर्चा करा समय उसमें अंतरण और यदिरण दाना पदा की चर्चा की और जीवित्य को मूलतः जन्मजात तथा अतः प्रेरणा रूप स्वीकृत करत हुए भी कहा कि व्यवहार में यह अभिव्यक्ति की विगिष्टता और उत्कृष्टता का प्रमाण है।<sup>१</sup> जीवित्य व पाँच प्रमुख उद्गम-स्रोतों में केवल दो ही—आनंद प्रतिभा और उद्दाम प्रेरणा प्रमुख आवेग—निसर्गजात हात हैं, सोप तीन जात वग की उपज है।

जहाँ तक काव्य प्रयोजन का सम्बन्ध है, लागिनुम के विचार प्लेटो की अरस्तू के विचारा से सबका भिन्न हैं। प्लेटो ने कला का नतिवृत्ता व प्रसार का मायम और सत्य को ही काव्य की कमीटी कहा है। कविना तभी साधन हानी है जब वह सत-असत के भेद का प्रकाशित कर पाठकों का समुचित भाव निर्देश करती है उनको चरित्रमान् और राष्ट्रहित के लिए सुयोग्य नागरिक बनाती है। प्लेटो के अनुसार काव्य के श्रवण मनन से प्राप्त जानक का स्थान बहुत नीचे है और वही कवि श्रेष्ठ कलाकार कहाने योग्य होता है जो उच्च काटि का उपलब्ध और शिक्षक हो। उसके विपरीत अरस्तू ने काव्य प्रयोजना में आनंद को प्रमुख स्थान दिया है। यह सत्य है कि अपने काव्य शास्त्र में उनमें इस विषय पर अपने विचार पूर्णतया स्पष्ट नहीं किए परंतु पराप्त रूप में यह स्वीकार किया कि अत्यंत कलित कलाका की तरह कविता का उद्देश्य भी आनंद-संचरण है और कवि तालक सामाजिक एवं अनुकरण की मनावृत्तियाँ को जिनमें सत्काव्य आविर्भूत होता है इसलिए प्रथम देता है कि उनसे उमें आनंद मिले। इन मनोवृत्तियाँ से अभिसर्जित काव्य का भी, स्रष्टा एवं प्रमाता दाना के लिए आह्लादजनक होना चाहिए। किंतु अरस्तू के काव्य शास्त्र में हम वसा अतिवाद नहीं पाते जसा प्लेटो के सवादा में पाते हैं अतएव जहाँ अरस्तू आनंद पर प्रभूत बल देता है वहाँ वह उस उपदेश को भी स्वीकार करता है जिसे आनंद के साथ ही आनुपगिक रूप में हम उपलब्ध कर लेते हैं। वस्तुतः ऐसा ही आनंद सर्वोच्च कहा जाता है क्योंकि इससे एक साथ ही दो-दो लाभ होते हैं—आनंद के अतिरिक्त नागरिक धर्म की भी शिक्षा मिलती है। लागिनुस के अनुसार महान साहित्य वह है जो पाठकों को एक बार नहीं बरन बार-बार उत्तेजित और उत्प्रेरित करता है। जहाँ भी सच्चे जीवित्य का संयोजन होता है प्रमाता उनमें हर्षाकुल हा उठत

१ डा० नगेन्द्र जीर श्री नेमिचन्द्र जन (अनु०), काव्य में उदात्त तत्त्व (दिल्ली, २०१५), पृ० ४४।

जोर उह ऐसा जान पड़ता है जस वह स्वयं उन्हा की वृत्ति हो। उनका दय स्वन ऊपर उठकर गव म उच्चावाग म विवरण करने लगता है और उनकी भाषा उन्नत विचारा की ओर उम्यु हो उठती है। आनन्त्यातिरेक के कारण इनना भावाधान आर तमय हा जात है कि उनरी वीद्विकता पगु हा जाती है आर वाप विषय विद्युत्प्रसाग की तरह आलापिन हो उठता है। निष्पन्न गणिनुम के अनुमार वाव्य वा एकमात्र प्रयाजन केवल पाठका को जानन्दित या प्रभावित करना नहीं है, इमका एकमात्र उद्देश्य उह भावात्मत या आत्मविभार करना है।

क्विण्टिलियन का जन्म सन ३५ ई० म हुआ था। राम म एक वास्तविक पत्रिक स्कूल की स्थापना करनवाला और राज्य से वतन पानेवाग वह पहा भाषाशास्त्रविद् आचाय था। बीस वर्षों तर उसन इमी स्कूल म अध्यापन-कार्य किया और यहा म उस छाटे लिनी जमे शिष्य मिले। उमकी रचनाआ म एक का गापक है "रोमीय भाषणशास्त्र की अवनति के कारण" (*De causis corruptae eloquentiae*), दूसरी रचना एक भाषण है जिस क्विण्टिलियन न नवियम आर्पोनियनम के पत्रपापण के लिए इसलिए किया था कि आर्पोनियनम पर अपना पत्नी की हत्या का अभियोग लगाया गया था। उसकी तामरी रचना ही अब उपलब्ध है और *The Institutio Oratoria of Quintilian* के नाम से ख्यात है। उसम उसन स्पष्ट कहा है कि पुस्तक रचना का उद्देश्य सबगुण-सम्पन्न वक्ता का निमाण है (*Oratorem autem institutumus illum perfectum, qui es e nisi vir bonus non potest*)।<sup>१</sup> एम व्यक्ति के लिए यह अनिवार्य है कि वह चरित्रवान हो। उसम केवल अपूव वाग्मिता ही नहीं, बरन चरित्र का उत्कृष्टता भी हानी चाहिए। मैं यह नहा मानता कि साधु तथा सम्माय जीवन के सिद्धात मात्र दार्शनिका के लिए ही चिन्त्य हैं।' (*Neque enim hoc concesserim, rationem rectae honestaeque vitae (ut quidam putaverunt) ad philosophos relegandam*)<sup>२</sup> जाग्य वक्ता भी सच्चा दार्शनिक होता है, उसे केवल चरित्र का दृष्टि से ही निर्दोष नहीं होना है उसे भाषण-कला पर पूण अधिकार भी हाना चाहिए। पूण वाग्मिता निस्सन्देह एक ऐसी वास्तविकता है जिसे हम मानवीय बुद्धि

१ H E Butler, *Quintilian* (The Loeb Classical Library 1908), Vol I, p 9

२ उपरिवत, पृ० १०।

के परे मनुष्य मनुष्य है।<sup>१</sup> पर दूसरे ही मनुष्यगत प्रतिभा की आवश्यकता होती स्वभाविक प्रतिभा और गुण के बिना विद्या का ज्ञान विद्यात मित्र होता। स्वभाविक विद्या विद्याओं में प्रथम हो कर स्वयं स्वभावात् मनुष्य प्रकृत स्वभाविक मनुष्य हो कर स्वभाविक विद्या प्रकार बंध्या भूमि कृति पर ही ही विद्या मनुष्य होती ही मानी।<sup>२</sup> भूमि बंध्या का उत्पन्न प्रयत्न (कर्मणः) ही स्वभाविक विद्या के ही मनुष्यगत विद्या का उत्पन्न मनुष्य और तत्पश्चात् उत्पन्न विद्यात् प्रयत्नात्तरण आवश्यक है। स्वभाविक विद्या के औचित्य एवं स्वाभाविक विद्या<sup>३</sup> पर ध्यान देना चाहिए।

यह विद्या है कि विद्याविद्या के विद्योत्तर कर्म भावना में प्रयुक्त मनुष्य के ही ही मनुष्यगत है। विद्या मनुष्य का विद्या भी उत्तम मनुष्य है। विद्याविद्या के अनुगत विद्याविद्या विद्या और अन्तर्गत स्वभाविक मनुष्य साहित्य प्रकृत है और जहाँ तक स्वभाविक मनुष्य है वह प्रकृत का विद्या है। मनुष्य प्रकृत प्रतिविद्याभावात् स्वभाविक और स्वभाविक स्वभाविक प्रयत्नात् अतिरिक्त मनुष्य स्वभाविक का साधन है। प्रयत्न और स्वभाविक मनुष्यगत गुण का उत्पन्न होता चाहिए।<sup>४</sup> स्वभाविक मनुष्यगत का स्वभाविक प्रतिभा साधनात् (कर्म स्वभाविक<sup>५</sup>) और स्वभाविक (natura ars exercitatio) मनुष्यगत प्राप्त होती है। तत्पश्चात् विद्याविद्या न स्वभाविक स्वभाविक का विद्या विद्या है। आदर्श स्वभाविक अपन स्वभाविक का विद्या और नीति उत्पन्न होता है उत्तम विद्या और विमुक्त परता है (docere movere delectare)। दूसरा स्वभाविक का आवेग को उत्पन्न करने के लिए यह स्वयं उन आवेग की अनुभूति करता है। इसके लिए आवश्यक है कि यह अनुभव का स्पष्ट परिचयना और तदुपरान्त उत्तम साधनात् (रीयलिस्टिक) स्वभाविक कर। विद्या अपन साधनात् प्रयत्नात् को यह रीतिगत 'बीजस' और उत्तम प्रभाव का 'इल्युमिननास' कहना है।

विद्याविद्या के अनुगत रीति या नीति का आधार स्वयं-स्वयं मनुष्यगत जा

१ उपरिक्त, पृ० १४।

२ Quapropter ei, cui deest ingenium non magis haec scripta sint quam de agrorum cultu sterilibus terris (Ibid. p. 18)

३ आर्टिस्टिक अरेजमेंट।

४ नचुरल क्वेसिटी शुड बी फर्टिलाइज्ड बाइ आर्ट ऐंड इन्सूड बाइ प्रकृतिसः।





मध्ययुगीन पाश्चात्य राज्य गान्धिया न जर्मने द विन्साफ (Geoffroi de Vinsauf) का नाम विरम्भणीय है। उसकी कृति "पोयट्रिया नात्रा" को नाम न नाम गालीय पाण्डुलिपियां आज भी प्राप्य हैं। इस ममन काव्यशास्त्रविद केता के जीवित मेष्पू द वणाम (Mathieu de Vendome) ने 'आर्जे र्गिफिरोटारिया' तथा जी द गाली (Jean de Garlande) न "पोयट्रिया" को रचना की। काव्यशास्त्र-ग्रन्थी इस प्रथा की रचना प्राय उम नवजागरण का परिणाम है जो बारहवीं शती की एउ स्मरणीय एतिहासिक घटना है। उनम अनुकृति के लिए एम जनेरिंग पाठ संगृहीत हैं जिनका उद्देश्य प्रमाता को काव्यालाचन के सिद्धांत सिखाना रहा। प्रत्युन कविया का काव्य रचना-कौशल का गान कराना है। स्पष्टत इन प्रथा के रचयिता उस रामाटिक विचार धारा म विश्वास नहीं करत जिमने अनुसार गेली के स्वाइलाक की तरह हमारे कवि अपने हृद्गत भावावेगा का जनायास ही उडल देते हैं। मध्ययुगीन काव्यशास्त्री भावावेगा के सहज उच्छ्वसन, आजब, स्वाभाविकता जादि गदा से जान पता है अनभिन्न थ। फिर भी उनकी रचनाओं से चासर और उपदेश-पदधी रचनाओं से रैंगलड आदि कवि अत्यधिक प्रभावित है।

'जाटोज पोएटिकी म रचना-सघटन (dispositio) के सबद म विभिन्न नियमों का विवेचन हुआ है

- (१) कविता का आरम्भ लाकाक्ति-जसे किसी सामान्य सत्य न अथवा किसी दृष्टांत से हो सता है। सामान्य सत्य के लिए *sententia* और दार्ष्टांत कथा के लिए *exemplum* शब्द प्रयुक्त हुए हैं।
- (२) कथा म पल्लवन' (एमप्लिफिकेशिया) का प्रयोग न कि 'सक्षेपण (एत्रिमिणेशिया) का उपयुक्त कहा गया है। इसी पल्लवन वाले सिद्धांत के कारण मध्ययुगीन काव्य एव कथा साहित्य मे शब्द लाघव और कनावट के स्थान पर सबद विस्तार और प्रसरण पाया जाता है। मध्ययुग क काव्य शास्त्रा म रचना विस्तार के नियमों का जसा सवामीण विवेचन मिलता है वसा सक्षेपण (एत्रिमिणेशियो) के नियमों का नहीं।
- (३) रचना विस्तार के लिए वणना ( *descriptio* ) वक्रोक्ति ( *circumlocutio* ) और भावपूर्ण सम्वाधना ( *conduplicatio* ) का प्रयोग समीचीन कहा गया है।

(४) ज्याक्रे द विन्माफ न विपयान्तर (digressio) के कटात्मक प्रयोग का स्वीकृति ही नहीं दी, उसकी सराहना भी की है। उसके जम मध्ययुगीन काव्यशास्त्रियों ने निम्नलिखित अलकारा का सर्वाधिक उल्लेख किया है

- Repetitio जहा प्रत्यावर्ती (alternate) पक्तिया एक ही शब्द से आरम्भ हा।
- Transgressio जहा समान शब्दा का प्रयोग विभिन्न क्रम म हो।
- Interpretatio जहा दो पक्तिया समान दीवें पर उनमे एक-दा शब्दा का उलट फेर हो। (यह expositio का पर्याय कहा गया है।)
- Nominatio जहा अथानुसार नय व्यजन शब्द या शब्दा का निमाण हा।
- Traductio जहा एक ही शब्द की दो विभिन्न स्थितिया म आवृत्ति हो।

मध्ययुग के यथोचित मूल्यांकन के लिए इसके सबध म व्याप्त भ्रामक धारणाओ का निराकरण आवश्यक है। उस सदर्भ म हम उन लेखको का स्मरण हा घाना है जिन्हाने मध्ययुग की उपलब्धिया की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है और जो स्वयं इन उपलब्धिया से प्रभावित हुए ह। इन लेखका मे फ्रेडरिक हैगिन्स,<sup>१</sup> मेर्को, फ्रीमन,<sup>२</sup> हेनरी ऐडम्स और जेम्स जे० वाट्स<sup>३</sup> अप्रणी हैं। इन्हाने बताया है कि मानव-सभ्यता के विकास म मध्ययुग का समाधि अगणन समतुल्य है। मध्ययुग म, विशेषत तर्हवी शती मे, महान युगद्रटा दार्शनिक एव कलाकार अवतीण हुए थे। तर्हवी शती म ही जक्वायनस, रोजर बेकन सन्त फ्रांसिस सन्त लूई गिओटटा और दान्त प्रभति युगपुरुष उत्पन्न हुए व। तर्हवा शती के आरम्भ म ही पश्चिम के महान् विश्वविद्यालया की स्थापना स्कूला के रूप म हुई थी। पेरिस आक्सफोर्ड एव माण्टपेत्तियर के

१ Frederic Harrison *A Survey of the Thirteenth Century in the Meaning of History and other Historical Pieces* Macmillan, 1903

२ Freeman, *The Norman Conquest* (Oxford, 1876), Vol V p 606

३ James J Walsh, *The Thirteenth Greatest of Centuries* (New York 1952)



ने १५१६ ई० में अपनी 'यूटोपिया' की रचना पहले लैटिन में की थी और वक्त्र को यह विश्वास था कि देशी भाषा में प्रणीत ग्रन्थ स्थायी नहीं हो सकते। यहाँ तक कि मिल्टन ने भी अपनी 'अनेरानन' बखिताएँ लैटिन में ही लिखा और चेल्लिजियमवासी मेटरल्लिक ने फ्रांसीसी भाषा में लिखना हितकर समझा।

दान्ते (Alighieri Durante १२६५-१३२१) ने De Vulgari Eloquētia में सवमाय साहित्यिक भाषा की प्रकृति एवं विशेषताओं का विवेचन उपस्थित किया है और इतानवी काव्य की रूपगत विशेषताओं के उदघाटन के प्रथम काव्य के मामा य गुणा का भी उल्लेख किया है। दान्ते के विचारानुसार काव्यभाषा के चयन और गणना के प्रयाग में अत्यन्त सावधान रहना चाहिए, इसलिए उसने विशिष्ट तथा सर्वोत्कृष्ट शब्दों के उपयोग की ही सिफारिश की है। अशिक्षिता और बच्चा द्वारा प्रयुक्त निष्प्राण और भद्दे शब्द प्रयुक्त नहीं होने चाहिए। दान्ते ने यह भी कहा है कि काव्य को समीतारमक बनाने की क्षमता बखि प्रतिभा की तरह स्वतः उपलब्ध या जन्मातरीय सस्कार से प्राप्त नहीं हो सकती। इसके लिए प्रयत्न करने की अपेक्षा होनी है और सर्वोत्कृष्ट आदर्शों और रीतियों का अनुसरण करना पड़ता है।<sup>१</sup> दान्ते विरचित "डिवाइन कामेडी" में कला की एक अभिनव विधा का अवतरण हुआ है जो परम्परित वर्गीकरण में सम्मिलित नहीं है। अपनी महाकृति को उसने कामेडी इसलिए कहा है कि प्रथमतः इसका आरम्भ दुःख से होता है, अतः सुख से और दूसरे इसकी भाषा इतालवी है, जिसमें स्त्रियाँ वं भी सवाद रूपायित हैं। इसकी शली अनौदात्य तथा त्रासदी की गली के विपरीत है। अतः जहाँ तक इसके रूप-तत्त्व का संबंध है "डिवाइन कामेडी" एक अनोकी और प्रायः अश्रुतपूर्व कृति है। इसमें पारंपरीण श्रेणिविभाग की अपेक्षा कर दान्ते ने एक मौलिक प्रश्न उठाया है—क्या कला की समस्त विधाएँ अपरिवर्तनीय अथवा शाश्वत हैं?<sup>२</sup>

### नवजागरणयुगीन पाश्चात्य समीक्षा

कविया के विरुद्ध किए गए मध्ययुगीन प्रचारा के विरुद्ध प्रतिक्रिया का हाना अवश्यम्भावी था। इसलिए यूरोप के नवजागरणकाल में काव्य-सजका पर वितने

१ दे० George Saintsbury *A History of English Criticism* (Edinburgh, 1949), p 22

२ Bernard Bosanquet, *A History of Aesthetic* (1934), pp 152 et seq

ही प्रणाली का विषय प्रकाशित हुए और वाक्य-ज्ञान उच्चतम स्तर पर ऊपर-  
 पाया हुआ। कुछ लोगों ने वाक्य का दृश्य और दृष्टिमान से श्रेष्ठतर पाया  
 दिया और कुछ ने इसे दृश्य के भावों से सम्बन्धित दिया। इसमें म गिठना  
 न वाक्य के मूल्य का जगा सकारा समझा किया, वेग इतनी के नयनारण  
 का के कई सकारा का रचनामा म पाया जाता है और ऐसा प्रतीत हुआ है कि  
 गिठनी की रचना ही उपरतिपी इन दृश्यों का जगा के गिठनों पर हा प्राप्त  
 है। ऐंजता पालिजियानो ने समग्र तत्वा-गिठना को तीन श्रेणियों बताया है  
 —(१) प्रेरणाश्रिता घनमान्त्र, (२) पारनामिन दान और (३) इन  
 दाना से मुरा 'यवाता ( डिवा-गान ) । पुन दृश्य की तान उपरतिपी  
 ना बनी जा इन प्रकार है।

Spectativa	Actualis	Rationalis
(धनुष्यान-मरपी)	(द्वानहारिन)	(तरमूर)
De Anima	Mores	Grammatica
Mathematicae	Ethica	Historia
Arithmetica	Economica	Dialectica
Musica	Politica	Rhetorica
Geometria	Agricultura	Poetica
Sphaerica	Pastio	
Calculatoria		
Geodesia	Venatio	
Canonice	Architectura	
Astrologia	Grasice	
Optica	Coquinaris	
Mecanica	Tratrica	

इनमें "तकमूलन" विज्ञान (तकशास्त्र) का उद्देश्य परीक्षण वणन  
 विशदकरण, अभिप्रेरण और अधिवचन करता है। इस विधान में ही  
 वाक्यशास्त्र और वाक्य परिगणित है, परंतु संगीत एवं स्थापत्य से इनका कोई  
 संबंध नहीं बताया गया। इसके विपरीत वाक्य का संबंध तकशास्त्र याकरण,  
 वाग्मिता और रीतिमान से बताया गया है। अथवा पालिजियानो ने कवि को

१ Bernard Weinberg, *A History of Literary Criticism in the Italian Renaissance* (Chicago 1961), Vol I p 3  
 २ 'iudicat narrat, demonstrat, suadet, oblectat' Ibid

प्रवक्ता व ममान ग्ना है। सन १५४१ ई० व लगभग घाटोलामिउ लाम्याडो न भी काव्य का तन्त्रान्त्र और तन्मूत्र विधाना के अन्तर्गत रगा है। १५४० ई० म स्परान स्पेराना (Sperone Speroni) न काव्य का वाग्मिना बहुर बला भी दा श्रेणिया उपस्थित वा। इनम एग ता उपायोगी वनामा का श्रेणी है और दूगरी अलगाहीन वनामा का श्रेणी। दूगरी श्रेणा की दा उपश्रणिया हैं—एव शरीर का अन्त पहुँचानवागी वनामा का श्रेणा अर दूगरी आत्मा वा परितुष्ट करनवाली वनामा की श्रेणा। कविता और वाग्मिना का उन वनामा म समाहित किया गया है जिनम हमारी आत्मा म परमान का उत्पीपन हाता है। इगी प्रकार नवजागरण-वादीन पारचात्य समीक्षा की एक अरिष्ठ पररा काव्य को व्याकरण, तवशास्त्र, वाग्मिना एव इतिहास म अनुस्यूत करती है। इनके ममान काव्य भी शत्रु का ही अपन साधन के रूप म प्रयोग करना है। व्याकरण तवशास्त्र आदि के माथ काव्य का रान का पत्र यह हुआ कि अत्र जिन मिद्धता का प्रतिपादन होने लगा, उनम तान-नुक, अन्तर और उन शत्रुवली की समस्या पर विचार विमल आरम्भ हा गया, जा कविता का अत्र विधाया और बलाया से वशिष्ट्य प्रदान करती है।

नवजागरण-युग व पारचात्य समीक्षा पर यूनानी तथा रोमीय काव्यशास्त्र का प्रभूत प्रभाव पडा है। अरस्तू प्लेटा, हारम, लागिनुम, मिसरो और विरिष्टिनियन की विचारधाराएँ इनकी रचनाया म परिख्याज हैं। इतानवी समीक्षा का एक बहू दन अरस्तू और हारम के काव्यशास्त्रा की निम्न निम्न व्याख्याएँ प्रस्तुत करता है और इमी अत्र म वनामा तथा विधाना के अन्तर्गत श्रेणीविभाग उपस्थित हाते है। बुद्ध समीक्षा वाच को न बला मानन है और न विधान, प्रयुक्त इस एग मानमिव शक्तिवाप्यता अथवा वारमित्री क्षमता के रूप म स्वीकार करत है। कई अत्र समीक्षा जा काव्य को तवप्रधान (डिमरमिव) विधाना म परिगणित करते है इमकी माया की विशेषताया का विवचन करत है माथ ही व इस वान का निदशन करते हैं कि किस प्रकार काव्यमाया को पूर्वप्रतिष्ठित मानदण व अनुकूल बनाया जा सकता है। इतानवी समीक्षा म कई एस भी लगव मिलते ह जा काव्य का नाति-दशन (मोरल फिनामफा) का ही एक अविच्छिन्न अग या महत्वपूर्ण माध्यम मानते है। इनके विपरीत फ्रांसको राबर्टेला (Francesco Robortella) जसे समीक्षा न काव्य रचना का प्रयोजन धानाया का आनन्धित करना (dulce) और उह नोनि विपयक पान करना (utile) कहा है।<sup>१</sup> जूलियम सीजर सेलियर (Julius Caesar

१ Ibid, p 66 राबर्टेलो की पुस्तक *In librum Aristotelis de arte poetica explicationes* का प्रकाशन सन १५४८ मे हुआ था।

Scaliger) ने अपने "पोयटिकम लिब्रि सेप्टेम" (Poetices libri septem) नामक काव्यशास्त्र में तर्क, शब्दों को ही काव्य की आत्मा माना है।<sup>१</sup> काव्य में प्रयुक्त शब्दों का संग्रह (१) उन वस्तुप्राप्त हाता है जिनकी व व्यञ्जना करने या जिनके लिए प्रयुक्त होते हैं और (२) साथ ही वे उन श्रोताग्राह से भी संबद्ध होते हैं जिनके लिए उनकी अर्थवत्ता अभीष्ट होती है।<sup>२</sup> मिण्टुनी और कास्टल वेद्री ने भी प्राचीन यूनानी काव्यशास्त्र के आधार पर महत्वपूर्ण समीक्षा वृत्तियों की रचना की। मिण्टुनी (१५५८) ने अपनी पुस्तक De poeta के लिए प्लेटो के रिपब्लिक, 'ताज इत्यादि से अरस्तू के पोयटिकम और 'रिटोरिक' से, होरेस के 'आज पोयटिका' से और क्विण्टिलियन एवं सिसरो के अरेटर, डि अरेटर आदि से प्रचुर पाठ्य सामग्री का संचयन किया है। वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि "पोयटिक्स" और 'आज पोयटिका' मिण्टुनी के प्रबंध में पूर्णरूपेण आत्मसात कर लिये गए हैं। कास्टलवेद्री की पुस्तक Poetica d Aristotele vulgarizzata et sposta (१५७०) रावर्टेलो की रचना के समान ही अरस्तू के 'पोयटिक्स' का भाष्य है। किंतु, अपनी वृत्ति में कास्टलवेद्री ने कितने ही स्थलों पर अरस्तू के सिद्धांतों का उलटन भी किया है। इस कारण वह एक ऐसा प्रगतिशील आलोचक कहा गया है जिसने रंगमंच और श्रोता की संदर्भ अपने सामने रखकर यह घोषणा की कि काल की अर्कित — नाटक की घटनाओं का एक दिन तक ही परिसीमन—श्रोताग्राह की शारीरिक आवश्यकताओं की दृष्टि से अनिवार्य है। (' il quale io no veggo che possa passare il giro del sole siccome dice Aristotele cioe ore dodici, conciosiacosache per le necessita del corpo, come e mangiare, bere, disporre i superflui pesi del ventre e della vesica, dormire e per altre necessita, non possa il popolo continuare oltre il predetto termine così fatta dimora in teatro <sup>३</sup>)

१ ' Scaliger is essentially preoccupied with poetry as an art of discourse Poetry is conceived primarily as language ' Ibid, p 68

२ ' for whom the significance is intended ' Ibid

३ 'Quoted by H Bretinger, Un passage de Castelvetro sur l unite de lieu' Revue Critique d'Histoire et de Litterature, Nouvelle Serie, VII (27 December, 1879),

सन् १५८४ ई० म प्रवाशिन "डिस्कोसॅज" मे टैमो ने कहा है कि काव्य का सत्याश्रित ('आइन्स्टिक्') और इसमे वर्णित आश्चर्यजनक घटनाओं का विरचनीय होना चाहिए। फिर भी उसने हम वान पर भी अधिवाशिन बल दिया है कि कविता का सत्य सावर्भौम सत्य के समान है। काव्य प्रयाजन के सन्ध म ट्रिजिनो, सिथिया, मजाती आदि इतालवी समीपका के विचार अस्तू और होरेस की भावताओं पर ही आधत दीपन हैं। समाज म शिव के साथ ही सुंदर को प्रतिष्ठा करना व काव्य-मजन का लक्ष्य मानने हैं। कभी कोई सत्य पर बन देता है तो कभी बाइ सुंदर पर, कभी-कभी कोई दाना पर। वास्टेलवेद्रा ही इतम एक ऐसा समीपक हुआ है, जिनमे काव्य प्रयाजन म कवल रमोदीपन का ही प्रामुख्य दिया है।

(ख) विनाम (१) नवजागरण से बीसवीं शती तक की प्रतिनिधि अंगरेजी समीक्षाएँ

मर फिलिप मिडनी<sup>१</sup> मे इंग्लैंड म कवि-समीक्षका की एक ऐसी अभिनव परंपरा का सूत्रपात होना है जा विरप्रवहमान एक जोरत है। उसने इतालवी समीपका के सन्ध काव्य के गौरवोत्प की निर्भीक उदघोपणा की और उसे दशन, इतिहास आदि से श्रेष्ठ बताया। काव्य न ही सवप्रथम नाम की समुज्ज्वल रश्मियाँ विकीण का उमन हू सभ्यता के आन्ध्र युग मे भानव का भरण-पापण किया, जिनमे वह दुम्ह से दुम्ह शास्त्रा के ज्ञान को भी आत्मसात करन म ममय हा सका। कविया के पहल कोई लेखक हुआ ही नहीं, जा हुआ भी, वह मूलत कवि था। आफ्ठम, नाइनस आदि अपन देश के प्रथम लेखक थे। इमी प्रकार जिन व्यक्तिया ने इतानवी भाषा को श्री-सम्पन्न बनाया, वे भी कवि-पुंगव ही थे और उनमे दान, बुकवियो तथा पेटराक के नाम सर्वोपरि हैं। अंगरेजी भाषा के निमाता और आदि लेखक गावर तथा चौसर-सरीखे कवि थे। यहा तक कि दशन भी सवप्रथम काव्य की रूप-सज्जा म ही सज्जकवर अकनीण हुआ और यूनान के बेलीज, इम्पडाक्लीज तथा पार्मेताइडिज के अतस से दशन भी काव्य के रमदीपन रूप म उदगत हुआ। पाइयागरम तथा फासिलाइडिज न अपन

478 800 of Castelvetro, *Poetica D' Aristotele* Basil, 1576, p 109 (II 7) Bretinger quotes the edition of Vienna, 1570, p 60'

१ ऐन अपोलजी कॉर पोयटो, १५९५।



नीति-उपनिषा को भी काव्य का स्वरूप दिया। रोमनासी इना कारण कविया का 'वेदस' कहते थे, जो रहस्यपूर्ण, पूजनीय और पगम्बर का पर्याय है। कवि-कल्पना से उन्मूढ सृष्टि वास्तविक चरित्र सृष्टि से घपपया अधिन सुन्दर हाती है। यह कवि की कल्पना ही है जिससे एन नव्य सृष्टि का निर्माण हाता है और एनी वस्तुधा का भाविभाज हाता है जिह नीतिज जगत् म हम नहा दसन। काव्य अनुकृति की एन कला है, मास्तर चित्र है और इमका उद्देश्य अन्वयता का सत् प्रसत वा पान कराना एव उसका मनारजन करना है। अंगरजी भाषा की ऊर्धता के सबध म मिडनी का धारणा थी कि यह काव्य वा सम्मानित करन म ही समय नहीं है अपितु काव्य द्वारा सम्मानित जान याग्य भी है।

सत्रहवीं शता के आरम्भ म ही कम्पियन<sup>१</sup> न आब्जर्वेशंस इन दि आट आव इगलिश पोयट्री म तुका और अत्यानुप्रासा की गहणा की तथा उनसे प्रयोग म निहित कृत्रिमता-जस अय दोषा पर प्रसत प्रकाश टाता। समुएन डनियल<sup>२</sup> न अ डिफेस आव राइम<sup>३</sup> म तुकाता और अत्यानुप्रासा का पुरजोर समथन और उनके सौन्द्य तथा सगीत माजुय क प्रभावा का विषद विवरण उपस्थित किया। उनन तुकों के भावमाम प्रयोग का इनकी उत्कृष्टता एव उपादेयता का एक प्रतायकारी प्रमाण बताया और बडे हा व्यजब शब्दा म पूर्ववर्ती विपक्षियों क तर्कों का सशक्त निराकरण करने हुए घोषणा की कि यदि बबर जातियो म अत्यानुप्रासा का प्रयोग हाता रहा है ता उसका कारण यह है कि ये उनके हृदया को भी उद्वेगित-प्रभावित करने म समन रहे हैं। डनियल न नवजागरण की स्वच्छन्द चिंतनधारा के अनुकूल चिरम्भरणाय शब्दा म कहा ---हम न अतीत द्वारा चालित हान की आवश्यकता है न और इमक अधानुकरण की। प्राचीन ग्रामिजात्य लेखक हमारी ही तरह मनुष्य ध जिह नियति ने उसी प्रकार जन्म दिया था जिस प्रकार हम।<sup>३</sup>

१ आब्जर्वेशंस इन दि आट आव इगलिश पोयट्री, १६०२।

२ अ डिफेस आव राइम ?, १६०३।

३ 'Methinks we should not so soon yield our contents captive to the authority of antiquity, unless we saw more reason all our understandings are not to be built by the square of Greece and Italy We are the children of nature as well as they Edmund D Jones (ed), *English Critical Essays, XVI XVIII Centuries* (The World's Classics, 1943), pp 82 et seq

वेबन और वेन जॉनसन का जैकाबियन युग के प्रतिनिधि समीक्षका म मूषय स्यान् मिला है। दाना का एलिजाबीथन युग की सांस्कृतिक परंपरा का घराहर प्राप्त थी, जिनम उहान यथावश्यक परिवर्तन पटित किए। एव और जहाँ सिडनी के वाध्य मिद्वान के अनगत कल्पनाश्रित तत्त्वा का वेबन न प्रहण किया और उनसे ऐतिहासिक एव वनानिक तत्त्वा का सयाग कराया, वहां दूसरी और सिडनी के मिद्वाना के अभिजात पत्र का वेन जानसन न विवसित कर इतालवी समीक्षका द्वारा प्रतिपादित नियमा को अधिवाधिक प्रतिष्ठा दी और साहित्य-कला के वस्तुनिष्ठ एव वाह्य पत्र की ओर समीक्षका का ध्यान आकृष्ट किया। वेबन न नवजागरण के उन अनुवताप्रा की तीव्र आलाचना की, जा सिमरा की शली का अनुकरण ना करत ही थे, साथ ही रीति के वाह्य उपकरण पर ही सर्वाधिक ध्यान दत थे। बकन न कला और विज्ञान के सामान्य श्रेणिविभाजन म परंपरानुमादिन मनोविज्ञान का भाश्य लिया है और इतिहास का स्मृति ने दशन को धववाय म तथा कविता को कल्पना स अनुस्पृत किया है। इम चर्चाकरण पर स्पेनबायी टुमार्ते का प्रभाव परिलक्षित हाता है।<sup>१</sup> प्राचीन लखका न भी कल्पना का एक मानसिक प्रक्रिया मानकर इतका यथावश्यक विन्नेपण विवेचन किया था और नवजागरण के इतालवी लखका ने पोचा उना मिराण्डोला के समय म ही कल्पना पर कितने ही नियम (मानाग्राफ) लिख डान थे। किनु उनकी रुचि कल्पना के व्याधिविज्ञान (पैथाजो) म थी और व इमे एक ऐम मानसिक विन्नेप के रूप म दखन के अभ्यस्त थे जो कविया और प्रेमानु तथा मन वि त्त व्यक्तियता म पाया जाना है। दगलड म इम दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व बटन नामक लेखक करता है। वेबन के अनुसार कल्पना उम मानसिक प्रक्रिया का नाम है जा गद्यकत एव नीरम जा वीन चुका है' का कविक्रमय 'जा हा भवता है या जिसे होना चाहिए' म परिणत कर दती है। नहा इतिहास वाह्य जगन का प्रतिबिम्बन यथावत करता है वही कविता भी वाह्य जगन का प्रतिबिम्बन करती हुई उम कल्पना के माध्यम ने परिवर्तित कर पावती है। वेबन के लिए उन विद्याप्रा का स्यान् दशन या वाग्मिता के क्षेत्र म सुरा त्त है, जो हमारे अतमन का प्रतिपत्न करती हैं जिनके द्वारा हम आत्मा-म-यक्ति करते हैं।<sup>२</sup>

१ दे० जे० ई० स्पिनगान क्रिटिकल एसेज ऑफ द सेवेण्टिथ सेचुरी (१९५७), भाग १, प० १० (भूमिका) ।

२ 'Bacon does not recognize those forms which reflect the

आत्ममय वेद जौतंग का दृष्टिगत गिराव क शिरोम पौर पादः।  
 से रुपायि हृषा था। उगरी ममीपागमन वृत्ति म गाय। का कतिम भूमिती<sup>१</sup>  
 और 'गणित्ये देवितरी' (ममान-म) मर्मिता है परन्तु तिम कय ए  
 उगरी ममानात का गज तिमर है क शिरोम और शिरोमोज क नाम  
 म रुपा है। शेरगित्ये के प्रागता द्वाग मर्मिता द्वाग पारता का उग। शिरोम  
 तिया है ति तिम। म मय का ममाना-मर्मिता और रता का काय टांकर  
 ममाना-ममाना तिम कति की प्रतिमा का घात कना है। वेद जौतंग क  
 ममानुगार ममानित्य क दृष्टिया म कय था<sup>२</sup> और उगरी ममाना तिया  
 एव तिमनुय प्रतिमा कनाथ था। तिमनुय-कना उगरी ममाना ममाना  
 प्रोचित्य का प्रतिमता कय बटा था तिमर कारण उम ममाना कना ममाना  
 ममाना की मनुशाति एव तियति ममान का ममानता था। तिमरना ममान  
 काव्यता म इम कारण ममाना है ति दाता ही मनुशति है परन्तु वेद जौतंग  
 काव्य का चित्र से ममान उगत और ममानित्य मानता है। क मत्य है ति काय  
 ममान किय है और चित्र मूर काव्य कयति दोना ही कयति ममाना पर  
 ममान और उमी से निमत हाते हैं। दाता का ममाना द्वाग एव पाठन का कत्या  
 और उतम ममाना ममाना का ममान कना है। इन् निम्नति के ममाना  
 म विमुक्त रहना चाहिए। उच्च कति की ममान ममान क विमान और प्रोशन क  
 ति तीन ममाना की ममानता होती है — (१) ममाना एव शीप कति  
 क लेखना की वृत्ति का ममान (२) कयती ममाना क ममाना  
 ममाना का ममान मनुशीलन और (३) तिजी मती का निरतर ममाना  
 ममाना<sup>३</sup> परन्तु यह भी ममाना है कि कमी-कमी हम लेखना की उती ममान

inner soul of man satires elegies, sonnets, and all  
 other lyrical forms seem to him to belong rather to the  
 domain of philosophy or rhetoric'

१ उदाहरणाय देखिए Scarron, *His Fall* की भूमिका।

२ 'And to justify mine owne candor for I lov'd the man  
 and doe honour his memory on this side Idolatry, as  
 much as any'

३ 'For a man to write well, there are required three  
 Necessaries to read the best Authors, observe the best  
 Speakers and much exercise of his owne style'

स्वच्छाचारी तानाशाह बना डालत हैं जिम प्रकार मध्ययुगीन लेखका ने अरन्तू को बना डाला था। अरन्तू यज्ञ का भागी अवश्य है, किन्तु यदि हम मत्यान्वेषण में उससे भी आगे बढ़ सकें तो हज ही क्या? वेन जॉनसन को मूनानिया का बह मन स्वीकार्य है। जिसके अनुमार कवि को एन स्रष्टा और उद्भावक कहा गया है और उसकी कला को अनुकृति की कला मृमधुर स्वरा और ताल-नययुक्त पवित्रता म मानव-जीवन की अनिध्यक्त तथा मय का धार करानेवाली कथाआ की रचना करना ही काव्य का लक्ष्य है।<sup>१</sup> 'फेवल' और 'फिक्शन' काव्य के माना रूप-रत्न आर आत्मा हैं। काव्य-रचना कौशल का पर्याय है, स्वय कल्पना और उद्भावना है। इसके अनुशीलन म मद्जीवन के आदर्शों और नियमा विधिया का अभिमान होना है। उसकी मष्टि के लिए स्वाभाविक जमान्तरान प्रतिभा, अध्ययन अभ्यास व्युत्पत्ति अनुकृति-कला-नपुण्य आदि गुण अनिवार्य हैं। इनके गौरव एव वैशिष्ट्य का आरतन के लिए उच्च बोधि का कवि होना चाहिए।<sup>२</sup> तभी हम उसकी कला का अन्वी तरह परख सकने हैं। बामदो के सवध म वेन जॉनसन ने कहा है कि हास्यादीन ही इसका एकमात्र लक्ष्य नहा होना चाहिए। 'कवमेशन ऑव वेन जॉनसन एण्ड विलियम ड्रमण्ट' के साक्षानुसार वेन जॉनसन ने 'कमपिपर के रोमांटिक नाटका की उन अश्रुतपूर्व हास्यास्पद घटनाआ का हँसी उगर् है निनने उनके 'ऐज यू लाइव इट' 'द विण्टम टैज' आदि नाटक आन प्राप्त हैं। (स्पिनगान १, प० २१३)

जॉन बमटर के कविपय समीक्षात्मक विचार 'द ह्लाण्ट डेविल' (१९१२) का भूमिका म अनिन्वक्त हुए हैं। इसी प्रकार जॉज चपमन ने हामर की कृतिया के अनुवाद की भूमिकाआ म अपन समीक्षा मिडाना का उल्लेख किया है। इन युग की अवाय समीक्षा-मुल्लका के महत्त्वपूर्ण अश स्पिनगान की पुस्तक 'क्रिटिकल एमेज ऑव द मवण्टिथ सेन्चुरी' के तीना खंडो म सगृहीत हैं।

ड्राइटन (१६२१-१७००) की आभावनात्मक उपरतिपया म निम्न-लिखित निवधा भूमिकाआ आदि का त्रिरेष महन्व है

१ रादवल लेडीज म एपिण्ड डेडिक्टेरी १६६८,

१ 'A Poet is that which by the Greeks is call'd a Maker, or a fainer His Art, an Art of imitation or faining, expressing the life of man in fit measure, numbers, and harmony, according to Aristotle'

२ उपरिखत, पृ० ५७।



समय आ गया है जब इंग्लैंड में ही एक ऐसी भ्रूँडमी की स्थापना होनी चाहिए जो भाषा-सूधी बाना में सत्परामर्श दे सके और साथ ही नव्य प्रकाशित रचनाओं के गुण-दोषों का निणय कर सके। उसमें सशकन शब्दों में सभी निरत्यक्त धलकारों और वैदग्ध्यपूर्ण प्रयोगों का विरोध किया है और सामयिकों को रचना-मगठन में कनावट सरलता और पारदर्शिता लाने की सलाह दी है। राइमर<sup>१</sup> ने अपनी रचनाओं में प्राचीन अभिजात प्रनिमानों के अद्यप्रयोग को सराहा है और शेक्स-पियर की इन कारण तीव्र आलोचना की है कि महाकवि ने अचित्ति त्रय की उपेक्षा की है, विभिन्न साहित्यिक विधाओं को अपमिश्रित कर दिया है और पात्रों के चरित्र चित्रण घटनाओं के चयन आदि में कृती भी आचित्य का खयाल नहीं रखा है।<sup>२</sup>

१ फ्रांसिसो समालोचक रायों की पुस्तक का अनुवादक जिसको मौलिक कृतियों के नाम हैं (१) ट्रुजेडीज ऑव द लास्ट एज (१६७८) और (२) गॉट मिड ऑव ट्रुजेडी (१६९२)।

२ 'Thomas Rymer, who wrote in the late seventeenth century, attempted to ground his criticism on Aristotle's Poetics. Rymer uses these rules, as he understands them to criticize Shakespeare. Thus he applies the rule of psychological type', the neoclassical version of Aristotle's 'universal', to *Othello*. He condemns the play utterly, because this rule is violated throughout. Thus Shakespeare makes out Iago to be a liar. But this is not 'true to type', for Iago is a soldier, and soldiers are always 'open hearted, frank, plain-dealing'. Similarly, Desdemona could never love a black man. Othello could never become a Venetian general, and so on. Moreover, Shakespeare violates the rule of *purity of genre* because he introduces "comic relief into the middle of tragedy. And he is, clearly, no respecter of the "dramatic unities,"

'John Dryden wrote this note on the flyleaf of a book by Rymer. It is not enough that Aristotle has said

अठारहवीं शती के समीक्षका म एडिसन पोप और डा० जॉनसन अग्रगण्य हैं। एडिसन (१६७२-१७१८) ने स्पक्टेटर म प्रकाशित निबधा म मिल्टन क कथा-सघटन की भूरि स सराहना की है और पूबनिधारित नियमा क प्रयोग का गौण बनाने हुए कहा है कि फ्रासीसी लेखका की रचनामा स कतिपय सिद्धांत निचोड लेने और उनका स्वच्छापूर्वक प्रयोग कर नेन से ही कलावृत्तिया का मल्याकन नही हो सकता। आवश्यकता इस जान की होती है कि भाव कलावृत्ति के मम मे प्रवेश कर उन स्रोतो का उदघाटन करे जिनमे उनके मन मे अकथ ध्यान की अनुभूति हुई है। कवि की प्रभविष्णुता का रहस्य कल्पना क आनंद" म निहित है। कल्पना चाक्षुष अनुभूतिपा से उाबुद्ध होती है और आनंद की दो काटिया है—आद्य एव द्वितीयक। आद्य आनंदो पत्ति उन वस्तुभा स हाती है जो हमारे समक्ष बतमान रहते है द्वितीयक उन वस्तुमो के जान स होती है जिनका चित्रा प्रयवा वणना के महारे हमारे मन म स्मरण कराया जाता है। ऐसे आनंद इन्द्रिया क आनंद स श्रेष्ठतर हां नहा होत निर्दोष एव स्वस्थ होत क कारण जीवन के बहुभुवी आनंद का सवधन भी करत हैं। अलक्जेंडर पाप (१६८८-१७४४) के समीक्षा विषयक मत ऐसे आन क्रिटिसिज्म (१७११) 'प्रफिस टु शेक्सपियर' (१७२५), 'आट आव मिनिग (१७२७-८) "एपिस्त टु आगस्टम (१७३३) 'प्रफिस टु द ट्रासलशन आव दि इलियड (१७१५) आदि रचनामा म आकलित हैं। वह व्युत्पत्ति का प्रस्ताता है प्रतिमा का नही। शली प्रम्यास स सीखी जा सता है—अभिब्यक्ति की सुष्ठुना आप ही उपलब्ध नही हो जाती। रचनाकार को औचित्य का मन्व खयाल रचना चाहिए जमे भाव हा बसी ही भाषा, और जैसे प्रसंग हा, वसी ही शरी हाता चाहिए। बटु-कवश शब्दो के स्थान पर श्रुतिमधुर एव लातित्य व्यजक शब्द का प्रमाण समीचीन हाता है। आलोचरु के गुणा म स्वस्थ रचि इसोपम वक्ति और विद्वत्ता ही नहा है अपितु मत्य-व्ययन निष्पन्नता एव स्पष्टवादिता भी परिगणनीय हैं। पाप का सपूर्ण एम आन क्रिटिसिज्म' एम ही महत्वपूर्ण समीक्षा सूत्रा से आप्नुत और इसी कारण आज भी पठनीय है।

---

so, 'for Aristotle drew his models of tragedy from Sophocles and Euripides and, if he had seen ours might have changed his mind' Jerome Stolnitz, *Aesthetics and Philosophy of Art Criticism* (Boston, 1960), pp 445 et seq

डा० समुएल जासा (१७०६-८४) अठारहवीं शती के अंगरेज समीक्षकों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण तो हैं ही, व यूरोपीय वाङ्मय में उन प्रतिभाओं के साथ हैं जिनकी कृतियाँ कभी अनद्यतन नहीं हाना। आज पश्चिम में अमिजात मिद्धाता में पाठका और लेखका की रुचि बढ़ चली है और कवि की वस्तुनिष्ठता तथा निर्व्यक्तिवता पर अधिकाधिक बल दिया जाने लगा है। रोमांटिक आत्मनिष्ठता और अहम् का स्वामाविश प्रकय अब सदेह की दृष्टि से देखा जाता है। इस कारण अब डॉ० जानसन की आलाचनात्मक उपरिचिन्ना का यथोचित समीक्षण सम्भव हो सका है।

ऐसे तो डॉ० जॉनसन की समीक्षाएँ “द जेंटलमन मैगजीन”, “द रम्बलर” द आइडलर नामक पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुई थी और वे आज भी उपलब्ध हैं फिर भी उनका यद्यपि ‘द लाइव्ज आब द पायट्स’ नामक ग्रन्थ पर ही सर्वाधिक आश्रित है। उनकी कृतियों के अध्ययन से जो मिद्धात निष्कर्षित होते हैं वे संक्षेप में इस प्रकार हैं —

(१) काव्य का लक्ष्य प्रमाता का प्रमुदित करना और उसका कल्याण करना है। इस कारण जानसन को ‘जेनरल रचित कूपस हिलन’ की समधिक नतिकता और मिट्टन रचित ‘कामर’ में अट्रिब्यूट स्पिरिट के नीति-उपदेश रचिकर लगते हैं।

(२) जानसन को लयबद्ध कविता ने छुद ही अच्छे लगते हैं। कविता के संगीत में अयवस्था और बेमुरापन पसंद नहीं आता। इसी प्रकार पदों के सघटन में वे समरूपता का समयन करते हैं और एम समरूपता के अभाव के परिणामस्वरूप मिट्टन के ‘सीसिडम’ नामक शोकगीत की निंदा करते हैं।

(३) कवि का कृत्य सामान्य एवं सावभौम की अभिव्यक्ति करना है, न कि व्यक्ति विशेष की।<sup>१</sup>

---

१ “The business of a poet” said Imlac, “is to examine, not the individual, but the species, to remark general properties and large appearances. He does not number the streaks of the tulip, or describe the different shades in the verdure of the forest. he is to exhibit in his portraits of nature such prominent and striking features, as recall the original to every mind and must neglect the minutest discrimination, which one may have remarked,



(४) कविता यही साया हानी है जो हमार मनास का प्रादीन कर।  
 (५) कल्याणित कपाना और घटनामा का व गह की दृष्टि स दयन  
 है और उगी पाव्य का समथन करत है जा सत्य पर प्राप्ता है। व मित्तन व  
 नीनिदता की निरा दसानि भी करत है कि उगम व्यक्ति प्राक्क प्रगय है  
 उनम प्राजव नहा है। अपन दगी सिद्धांत व कारण जानमन न वाउन व शृंगार  
 पाव्य का गहणा का है और प्रातान नियम। व प्रति अपना अग्वि ध्यान का है।

(६) डॉ० जानसन काव्यगत 'याय और नतिक सय व अनय प्रनाता  
 है। उनने अनुसार लगना का यह वक्तव्य है कि व अपनी रचनामा म सत्य का  
 जमी और प्रसत्य का पराजित दिगात हुए गलनायका को प्रति करे और प्रता  
 गत्वा सच्चरित्रता एव निर्णयिता व उत्प की प्रतिष्ठा कर। शकमपियर व  
 मजर पार मजर' म एजलो का दडित न हाना जानमन का बहुत घुरा लगता  
 है। एजलो जैसे छत्री कपटी पात्रा को दडित होना चाहिए और काडिलिया  
 जमी निर्णय अप्रतिम नायिकामा को सुनी। इसलिए जानमन शकमपियर की  
 प्रासनी किंग लियर व लिए घटनामा की सुयात परिणति का समथन करत है।

(७) जिन ग्रथा न श्लीलता की उपशा कर साकसकि का अष्ट किया  
 जो प्रसत्य पर आधारित थ वे अथ जानसन द्वारा समथित न हुए। फील्डिंग  
 व टाम जास नामक उपयास को जानसन एक अत्यंत अपयप्रवत दूषित  
 वृति मानते है। फील्डिंग की अपशा रीचडसन उह अधिक प्रिय है। नी कारण  
 उहाने स्टन की भी रचनामा को अश्लील और दोषपूर्ण कहा है।  
 यद्यपि डा० जानसन का हम अभिजात समीक्षका की धणी म रखत  
 है फिर भी वे प्राचीन अभिजात साहित्य म प्रतिपादित सिद्धाता का  
 पशपोषण नहीं करत। वे प्रतिमा को सिद्धातो से परे मानते हैं और स्थान तथा  
 काल की अविचित्रय का निराकरण करत है। इसी प्रकार उह प्रासदी म कामदा  
 व तत्वा का समाहार अनुचित नहीं दीखता। उनके अनुसार नियमा के अनेकानेक

and another have neglected, for those characteristics  
 which are alike obvious to vigilance and carelessness  
 he must consider right and wrong in their ab tracted  
 and invariable state he must disregard present laws and  
 opinions, and rise to general and transcendental truths  
 which will always be the same '—Dr Johnson *The  
 History of Rasselas, Prince of Abyssinia* Chap X

प्रकार हैं। कुछ नियम ता ऐसे हैं जिन्हें हम अनिवाय और मौलिक कह सकें हैं। कुछ हमारी सुविधा के लिए और उपयोगी हैं कुछ आवश्यकता के कारण साहित्यकारों की बुद्धि द्वारा निर्मित हात हैं और कुछ प्राचीन स्वेच्छाचारी लेखकों द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। जम रोमांटिक भावधारा से डा० जानसन का कोई संपर्क नहीं जा कहता है कि कवि अपने ही भावावेग और अपनी ही वैयक्तिक मन स्थिति (मूड) को अभिव्यक्ति करता है। इसलिए बगसा और ब्रोच के मध्यक उनके सिद्धांतों का स्वीकार नहीं करेंगे। परंतु, समग्रत, जानसन और रॉजरजी के चार-पाच इने गिने समीक्षकों में परिगणित हान योग्य हैं।

### अभिजात और रोमांटिक

अठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में रोमांटिक समीक्षा का आविर्भाव एडवर्ड यंग (१६८३-१७६५) टॉमस ग्रे (१७१६-७१) टॉमस पर्सी (१७२६-१८११), विलियम शेक्सपियर (१७१४-६३), जासेफ वाटन (१७२२-१८००), टॉमस वाटन (१७२८-६०), रिचर्ड हड (१७२०-१८०८) आदि की रचनाओं से होता है। इसी समय सजनात्मक साहित्य भी अभिजात प्रवृत्तियों से काल क्रमानुसार मुक्त होकर स्वच्छंद विचार-मरणिया पर अग्रसर हो चलता है। नेशनशास्त्र, घमशास्त्र, राजनीति और स्थापत्य संगीत तथा चित्र आदि कलाओं में भी परिवर्तन होने लगते हैं। कलाओं में पुरुष-तत्त्व के स्थान पर नारी-तत्त्व की प्रतिष्ठा होती है और समीक्षा में भी कुचनीयता मधुता कोमलता आदि गुणों का समावेश होता है। सामान्यतः अभिजात समीक्षा में पुरुष-तत्त्व का प्राधान्य दिया जाता है और साथ ही वह इस अनुमान पर आधारित रहता है कि साहित्य बुद्धि से उत्पन्न होता है। उसके अनुसार समालोचना बुद्धि से उद्गम करने वाला साहित्य का ऐसा मूल्यांकन है जो स्वयं बुद्धि विवेक पर आधारित होता है। समालोचना वादिक क्षेत्र में ही त्रिधाशील रहती है वह तत्त्वतः वस्तुपरक होती है और समालोचक के मस्त भावों-गारा का व्यक्तन कर पूर्वनिर्धारित प्रतिमानों से आलोच्य कृति का समाक्षण करती है। अभिजात समीक्षक गीति-काव्य की अपेक्षा कर वस्तुनिष्ठ विचारों पर अपना ध्यान सर्वाधिक केंद्रित करता है। उसके लिए नाट्य साहित्य, व्यंग्य प्रधान रचनाएँ और प्रबंध-काव्य आदि आत्मनिष्ठ काव्य की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् हात हैं। इसके विपरीत रोमांटिक आलोचना का सवध काव्य-कला से अधिक काव्यकार से, सामान्य से अधिक विशिष्ट में और साहित्यिक विधा से अधिक कृति विशेष से रहता है।

बट्सवर्थ (१७७०-१८५०) ने 'लिट्रल बलेड्म' के द्वितीय संस्करण

का भूमिका म काव्य एव काव्य भाषा क मरप म निता हा मनोर वात कहा है जिनसे प्रभावित हारर भानल्ड न उस एर महान् समालाचन घापित किया था।<sup>१</sup> परतु वड स्वय म गत्समालाचन क लिए अपेणित न वदुष्य था और न प्रतिभा ही। (१) उसका अप्पयन व्यापन न था (२) उसकी अभिग्वि म नम्यता न थी और (३) उमन अपनी कविता का ही साहित्य-ममाणा क लिए एरमाय कपीटी वता रगा था और वह उसा क भालान म दूसरा की कृतिमा का भी परगता था। (४) उसम काव्य-समयो निश्चित धारणाएँ थी जिनम परिवतन लाना या नयी कविता के भालान म जिनका विस्तार करना उस पसन् न था। (५) वह द्रुत्स के समान अत्यत आत्मनिष्ठ और आत्मनद्रित था उसका मन न ता नमनशील था और न सूभ ही। (६) उसम तन वितक करन और अपन तनों से पाठका को प्रभावित करन की क्षमता न थी। फिर भी लोकगीता की पूर्वोक्त भूमिका एव अभिनव दष्टिकोण का द्योतन और नय रामाटिक काव्य के प्रवतन के साथ ही अभिजात परपरा क विघटन की पापणा करती है। वड स्वय काय भाषा का मानव की यथाय भाषा क निकट पहुँचान का यत्न करता है और अंगरजा काव्य मे जन साधारण की सहज भाषा की प्रतिष्ठा हाती है। इस भूमिका के प्रकाशित हाते ही काय समीक्षा मे शिल्पगत कौशल के स्थान पर आवंगा और भावनामा पर प्रभूत बल दिया जाने लगता है और कविता अभिव्यक्तिगत सात्य

१ 'Wordsworth was a great critic, and it is to be sincerely regretted that he has not left us more criticism' Matthew Arnold, 'The Function of Criticism' in *Essays In Criticism* First Series, 1865

२ 'He (Wordsworth) carried into literature the temperament of the narrowest theological partisan and would rather that a man were not poetically saved at all, than that he were saved while not following "W W's" own way His reading, moreover, was far from wide and his intense self-centredness made him indifferent about extending it while he judged everything that he did read with reference to himself and his own poetry' George Saintsbury, *A History of English Criticism* (1949) p 316

न होकर बलवती भावनाया का महान उच्छ्वसन बन जाती है। "शान्त अवस्था में भाव के स्मरण से उसका उद्भव होता है। उस भाव का भावन किया जाता है—यहां तक कि एक विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया द्वारा—शून्य शून्य शांतता का साप होकर बसा ही भाव उत्पन्न हो जाता है, जो पहल भावन का विषय रहा हो और वह भाव वास्तव में मन में अस्तित्व ग्रहण कर लेता है।"<sup>१</sup> कवि कवि जन-साधारण के लिए लिखना है उसे कल्पित ऊँचाई में उतरकर इस प्रकार अपने मनोभाव का संप्रेषित करना चाहिए कि जो उसकी बात समझ सकें और समझकर सराहना और सहानुभूति दे सकें। बड़ स्वध के अनुसार कवि और सामान्य मानव में एक अंतर यह भी है कि जहां किसी तात्कालिक बाह्य उत्तेजना ने बिना कवि अपेक्षाकृत शीघ्र विचार और भावन कर सकता है, साधारण व्यक्ति की कल्पना बाह्य उत्तेजना से ही प्रादुर्गता होती है। इसके अतिरिक्त कवि के मन में जो विचार और भावनाएँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें रूपायित करने और मूर्त अभिव्यक्ति देने की उसमें अपेक्षाकृत अधिक क्षमता होती है। सत्य को मूर्तिमान मिन और अपने अमिन्न सृष्टि के रूप में उपस्थित पाकर कवि खुशाल के शीत ताप रहता है, जिसमें प्रमाता उसका साथ देता है। वस्तुतः कविता पान की शुद्ध-बुद्ध आत्मा और ऐसी रागदीप्त अभिव्यक्ति है, जो समस्त विनाश का आश्रय है। मानव-स्वभाव के संरक्षण के लिए कवि अजय भूमि है, वह पापक एवं संरक्षक है जहां-जहां जाता है, सह-सवध उसके साथ रहते हैं।<sup>२</sup>

कोलरिज (१७७२-१८३४) की समीक्षा-मुस्तक 'दायाग्राफिया निटररिया' का वही महत्त्व है जो जानसन के 'लाइव्ज ऑफ द पोयट्स', आनल्ड के एनेज इन क्रिटिसिज्म' और एलिगट के 'द सक्कड वूड' तथा 'सेलेक्टेड एन' जैसे ग्रन्थों का है। कोलरिज में कवि, समालोचक और दार्शनिक का अमूर्तपूव संयोग पाया जाता है। उसे सत्यमालाचक की सबदनशीलता और विचारक की प्रखर चिंतनशक्ति भी प्राप्त थी, उसके कवि में कल्पना और सजनात्मक प्रतिभा का अपूर्व समाहार था। इसी संयोग के फलस्वरूप वह साथे कवि के मनव्या की परीक्षा करता है, सजनात्मक प्रक्रिया को पुनः सजित करने और अपने पाठकों के मन में प्रवेश करने में सफल होता है। साथ ही वह

१ डॉ० नगेन्द्र (प्र० सम्पा०), पाश्चात्य काव्य-शास्त्र की परम्परा (दिल्ली, प्र० ति० २०), पृ० १५२।

२ उपरिक्त, पृ० १४८-५०।

द्वारी ग्रहणशीलता का त्वरा क्षर इट पत्रि के भ्रमम् म प्रवण कराना धार स्वय  
 पयनम विचारो की उद्भावना करता है। कोलरिज का पान का न्यानुमानन  
 ता ही मीगिता न था और उमन भगरजा तथा जमन साहित्यकारा का ही अध्ययन  
 गही किया था, अपिपु दशन पमगास्य, गृह्यवात् राजनीतिशास्त्र इतिहास  
 यात्रा-साहित्य का भी सुचिन्तित अध्ययन कर विश्वप्रशोय विद्वत्ता अर्जित की था।<sup>१</sup>  
 एमी क पनस्वरूप उम व्यापन परिश्रेष्य प्राप्त हुआ था जा कवल साहित्यिक  
 पान से कतापि न होता। परन्तु साथ ही यह भी निर्विवाद है कि उमम एकाग्र-  
 चितता का अत्यत अभाव था जिसका कारण वह विवच्य प्रसंगा पर ध्यान  
 केन्द्रित न कर विभिन्न शिशाया म भाग रडा हाता है और अप्रामाणिक विषया  
 पर उतर आता है।<sup>२</sup> उसके कई उत्कृष्ट सिद्धांत ऐसी पाठ-एव उपात  
 टिप्पणियां म पाय जाते है जहां उनके पाये जाने की समावना नहीं रहता। इतना  
 ही नहीं, "बायाग्राफिया लिटरेरिया ही एक ऐसी पुस्तक है जो पूणता क  
 निवट आ सकी है नहा तो कोलरिज पुस्तका का आरम्भ करना जानता था उह  
 ममाप्त करना नहीं। वह व्यवस्था और सामजस्य का प्रस्तोता तथा अप्रासंगिकता  
 और विसर्गति ("इनाग्रुइटी") का विरोधी था परन्तु उसकी निजी रचनाएँ

१ स्वय कोलरिज ने अपन पत्रो मे लिखा था "आई ऐम एण्ड एवर हैव बान  
 अ ग्रेट रीडर, एण्ड हैव रेड आलमोस्ट एव्रीथिंग" 'एस० टी० कोलरिज,  
 लेटस, १७९६।

२ 'Our author's mind is (as he himself might express it)  
 tangential There is no subject on which he has not  
 touched, none on which he has rested With an unders-  
 tanding fertile, subtle, expansive, "quick, forgettive  
 apprehensive", beyond all living precedent, few traces  
 of it will perhaps remain He lends himself to all  
 impressions alike, he gives up his mind and liberty of  
 thought to none He is a general lover of art and scie-  
 nce, and wedded to no one in particular He pursues  
 knowledge as a mistress with outstretched hands and  
 winged speed

—William Hazlitt, Mr Coleridge' in *The Spirit of the  
 Age*, 1825



‘पद्मी’ स्मृति की अपेक्षा उच्चतर हानो है क्योंकि कवि का मन जान-बूझकर विभ्या का ध्यान और उच्च शृंगार प्रदान करता है। फिर भी ‘पद्मी’ का स्थान कल्पिता के नीचे है, क्योंकि यह असदृश पदार्थों, धारण का अथवा उपमान का एक ही स्थान पर सजाती ता है, उच्च समीचीन नहीं करती। लोह-वर्णा और बालुका के घोल के समान यह इतना एक साथ रख देती है, पर इन्हें परिवर्तित नहीं करती, कल्पिता में यथा उपमान द्वारा अपनी निमित्तता तब तक धमिनव मृजल का रूप धारण करत हैं।

शेला (१७८२-१८२२) के पत्रा और उसकी कविताप्रा की मूढिकाप्रा में कितने ही महत्त्वपूर्ण समालोचनात्मक अनुच्छेद पाये जाते हैं परन्तु उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण कृति जिस पर उसका समालोचक का महत्त्व निर्भर है ‘डिफेंस ऑफ पोयट्री’ (१८२१) का नाम से अमिहित है। यद्यपि यह एक न्युनियम मात्र है, फिर भी इसकी रोचकता निर्विवाद और इसका महत्त्व असादिग है। इस पर प्लेटो का अल्पाधिक प्रभाव परिलक्षित होता है परन्तु जिस व्यक्ति को काव्य विषयक अत्र धारणाप्रा ने शेला को इस निबन्ध की रचना के लिए वाध्य किया, वह था टामस सब पीवक। शैली कवि को केवल कलाप्रा का उद्भावक नहीं मानता। उसके अनुसार कवि समस्त नीतिशास्त्रा का जनक और धर्मों का शिक्षक प्रचारक रहा है। वह शाश्वत अनन्त एक अद्वैत का सहभागी होता है और उसकी कविता शाश्वत मत्स्य रूप में अमि-युक्त जीवन का यथावत् प्रतिबिम्ब ज्ञाती है। वह जिन प्राणा का स्था करती है, वे उसमें अन्तर्निहित दुद्धिमत्ता और भान को ग्रहण करने के लिए उन्मुक्त हो जाते हैं। शैला के मतानुसार काव्य स्रष्टा काल की सीमाओं में बाध नहीं होता, वह तो उस बलबल की भाँति होता है, जो अंधरे में बैठकर अपने नीरस क्षणा को आह्लाद से आपूरित करने के लिए सुमधुर स्वरों में गाती है। उसके भावक श्रोता अदृश्य गायक की मधु स्वर-लहरी से विमुग्ध हो जाते हैं। वस्तुतः काव्य दिव्य शक्तिसम्पन्न होता है, शैली के माध्या नुसार वह ज्ञान का केन्द्रबिन्दु भी है और परिधि भी उसमें समस्त विज्ञान अन्तर्भूत है और चिंतन की समस्त प्रणालियाँ की वह मूल तो है ही, फूल भी है। ‘सबका उद्भव उसी से होता है और सब उसी से मुशोभित है यदि उसका धय हो जाय तो यह वैश्व जीवन-वृक्ष के अक्षुर के उत्तमधिकार और पोषण से वचित हो जाय—उसके बीज और फल का निरोभाव हो जाये। कविता सर्वाधिक सुखी एवं श्रेष्ठतम मना के श्रेष्ठतम और सबसे अधिक सुखी क्षणा का लेखा जोखा है।’

१ डा० नगेन्द्र (प्र० सम्पा०), उत्क० प्र०, प० १७८-१७९।

१३० आधुनिक हिन्दी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव

प्रेरणा में ही शैली काय का उत्तम देखता है और जिन परिस्थितियों में इसका वर्णन करता है, वे प्लेटो, टॉसो और ब्रूनो की याद दिलाती हैं।<sup>१</sup> शैली के विचारानुसार कवि का मन नितांत निष्क्रिय होता है "द भाइण्ड इन क्रिएशन इज अ फेटींग कोल, ह्विच सम इविजिवल इफनुएस, लाइव ऐन इनका मटेण्ट विण्ड, अवेकस टु ट्राजिटरी आइटनस।" अतः जब रचना का आरम्भ होता है, उस समय प्रेरणा हासिल मुख हुई रहती है और ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वोत्कृष्ट कविता कवि के मूल भावों की एक दुर्लभ निष्प्राण प्रतिच्छाया मात्र ही होती है। कविता कोई कला नहीं है अपितु एक मन सृष्टि (वीजन) है, एक अकथ्य, अवर्णनीय मन सृष्टि और मन स्थिति ("स्टेट ऑफ माइण्ड") है। कविता का जो नैतिक प्रभाव पड़ता है उसका वर्णन शैली ने अभिजात शब्दावली में किया है। कविता का लक्ष्य ऐसे आदर्श नायकों की सृष्टि करना है जिनके अनुकूल हम अपना चरित्र निर्माण कर सकें। शैली के अनुसार प्रमीथियस सेटन की अपेक्षा अवित्र सरस एवं कवित्वमय पात्र है, परंतु सेटन मिल्टन का भगवान की अपेक्षा अधिक नीतिमान एवं साधुवत्त है। समग्रतः, शैली के अतिरेकपूर्ण विचारों ने बांसवी शैली में रामाटिक काव्य सिद्धांतों के विरोधी त्रेखका की अतिरिक्त बल प्रदान किया है और ह्यम, पाउड, एलियट प्रमति समीक्षकों को अभिजात सिद्धांतों की आरंभ अधिक उमुख किया है।

हेजलिट (१७७८-१८३०)<sup>२</sup> ने काव्य को कल्पना और मनोवेगा की अभिव्यक्ति कहा है। इसका संबंध उन सभी वस्तुओं से है, जो मानव मन को तत्काल आनंद या कष्ट पहुँचाते हैं। जिस व्यक्ति में काव्य के प्रति अपेक्षा और धना की भावना हो उसमें अपने अपने प्रति भी श्रद्धा नहीं हो सकती। काव्य कोई निम्नकोटि के मनोरंजन का साधन नहीं है और न विलासप्रिय अकथ्य व्यक्तियों के सस्ते मन उहलाव के लिए ही रचा जाता है। अनादि काल से ही मानव-समाज ने इसके अध्ययन से अपना मनोरंजन किया है। कुछ लोगो की

१ Rene Wellek, *A History of Modern Criticism The Romantic Age* (London, 1955), p 125

२ हेजलिट की सभीभात्मक कृतियों के नाम हैं (१) करक्टस ऑव शेक्सपियर (१८१७), (२) लेक्चर ऑन द इंगलिश पोयटस (१८१८), (३) द इंगलिश कॉमिक्स राइटस (१८१९), (४) एलिजाबेथन लिटरेचर (१८२०), (५) द प्लेन स्पीकर, (६) द स्पिरिट ऑव द एज, इत्यादि।



‘पगो’ रमृति की प्रयोगा उच्चारण होता है यद्यपि कवि का मन जान-भूझकर रिम्या का घमा और उह भृगना प्रणा करता है। फिर भा “पगो” का स्यात कल्याण के गीव है यद्यपि वह प्रसदृश पन्था धारण प्रा धयया उपमाना का एन ही स्यात पर गजाती सा है, उह समीटा नहा करती। लोट-यथा और वातुता व घाल के समात यह दह एन साथ स्य दती है पर दह परिवर्तित नहा करती, कल्याण म य पन्थ, उपमान प्राणि अपना रिशिष्टता गानर अभिनव गृजन वा स्य धारण करत है।

शेली (१७८२-१८२२) के पत्रा और उसकी कविताप्रा की भूमिकाप्रा में वितो ही महत्त्वपूर्ण समानाचनानात्मक अनुच्छेद पाय जात ह परंतु उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण कृति जिस पर उसका समालाचन का महत्त्व निभर है डिफस ऑव पायट्रा (१८२१) के नाम स अभिहित है। यद्यपि यह एक लघु निबंध-मात्र है, फिर भी इसकी राचकता निर्विवाद और इसका महत्त्व असदिग्ध है। इस पर प्लेटो का अल्पाधिक प्रभाव परिलक्षित होता है परंतु जिस व्यक्ति की काव्य विषयक भ्रात धारणाप्रा न शेली को इस निबंध की रचना के लिए बाध्य किया, वह था टामस लव पीनक। शेली कवि को केवल कलाप्रा का उदभावक नहीं मानता। उसके अनुसार कवि समस्त नीतिशास्त्रा का जनक और धर्मों का शिक्षक प्रचारक रहा है। वह शाश्वत, अनंत एक अद्वैत का सहभागी होता है और उसकी कविता शाश्वत सत्य स्य स अभियन्त जीवन का यथावत् प्रतिबिम्ब होती है। वह जिन प्राणों का स्पश करती है वे उसमें अतर्निहित बुद्धिमत्ता और नान को ग्रहण करने के लिए उमुक्त हो जाते हैं। शली व मतानुसार काव्य-स्रष्टा बाल की सीमाप्रा में आवद्ध नहीं होता वह तो उस वुलवुल की भाति होता है, जो अंधेरे में बैठकर अपने नीरस क्षणा को आह्लाद से आपूरित करने के लिए सुमधुर स्वरो में गाती है। उसका भावक श्रोता अदृश्य गायक की मधु स्वर-लहरी से विमुग्ध हो जाते हैं। वस्तुतः काव्य शिव्य शक्तिसम्पन्न होता है शेली के साक्ष्यानुसार वह ज्ञान का केन्द्रविन्दु भी है और परिधि भी उसमें समस्त विज्ञान अतर्भूत है और वितन की समस्त प्रणालियां की वह मूल तो है ही फूल भी है। सबका उदभव उसी से होता है और सब उसी से सुशोभित हैं यदि उसका क्षय हो जाय तो यह बाध्य जीवन-वक्ष के अकुर के उत्तराधिकार और पोषण से वंचित हो जाय—उसके बीज और फल का तिरोभाव हो जाये। कविता सर्वाधिक सुखी एवं श्रेष्ठतम मना के श्रेष्ठतम और सबसे अधिक सुखी क्षणा का लेखा-जोखा है।<sup>१</sup>

१ डा० नगेद्र (प्र० सम्पा०), उल्ल० प्र०, प० १७८ १७९।

प्रेरणा में ही शैली काव्य का उत्पन्न देखता है और जिन पवित्रता में इसका वपन करता है, वे प्लेटो, टमा और ध्रुवों की याद दिलाती हैं।<sup>१</sup> शैली के विचारानुसार कवि का मन निरान निष्क्रिय होना है "द माइण्ड इन क्रिएशन इज अ फेडिंग कोन, व्हिच सम इविजिबल् इफ्नुएंस, लाइक् ऐन इनकासटेण्ट विण्ड, अवेकन्स टु द्राफ्टरी ब्राइटनेस।" अतः जब रचना का आरम्भ होता है, उस समय प्रेरणा हलामा मुख हुई रहती है और ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वोत्कृष्ट कविता कवि के मूल भावा की एक दुबल निष्प्राण प्रतिच्छाया-भाष्य ही होती है। कविता कोई कला नहीं है, अपितु एक मनसृष्टि (बोजन) है एक अकथ्य, अवगनीय मनसृष्टि और मनम्यिति ("स्टेट ऑफ माइण्ड") है। कविता का जा नतिक प्रभाव पड़ता है, उसका वपन शैली न अभिजात शब्दावली में किया है। कविता का लक्ष्य ऐसे आदर्श नायका की सृष्टि करना है जिनके अनुकूल हम अपना चरित्र निमाण कर सकें। शैली के अनुसार प्रमीयियम सेटन की अपेक्षा अधिक सरस एवं कवित्वमय पात्र है, परंतु सेटन मिल्टन के भगवान की अपेक्षा अधिक नातिमान एवं नाधुवत्त है। समग्रतः, शैली के अतिरिक्पूण विचारा ने वीमवी शती में रामाटिक काव्य सिद्धाता के विराधी लेखका को अतिरिक्त बल प्रदान किया है और ह्यूम पाउड, एलियट प्रमनि समीनका को अभिजात सिद्धाता की आर अघिकाधिक उमुख किया है।

हजलिट (१७७८-१८३०)<sup>२</sup> ने काव्य को कल्पना और मनावेगो की अभिव्यक्ति कहा है। इसका सबब उन सभी वस्तुघ्रा से है, जो मानव-मन को तत्काल आनंद या कष्ट पहुँचान हैं। जिन व्यक्ति में काव्य के प्रति उपेक्षा और घृणा की भावना हो, उनमें अपन आपके प्रति भी श्रद्धा नहीं हो सकती। काव्य कोई निम्नकाटि के मनारजन का साधन नहीं है और न विलासप्रिय अकमण्य व्यक्तिता के सस्त मन-बहलाव के लिए ही रचा जाना है। अनादि काल से ही मानव-समाज ने इसके अध्ययन से अपना मनारजन किया है। कुछ लागा की

१ Rene Wellek, *A History of Modern Criticism The Romantic Age* (London, 1955), p 125

२ हेजलिट की सभीशात्मक कृतियों के नाम हैं (१) करक्टस ऑफ गेवसपियर (१८१७), (२) लेक्चर ऑन द इगलिंग पोयटस (१८१८), (३) द इगलिंग कॉमिक राइटस (१८१९), (४) एल्लिजावीयन लिटरेचर (१८२०), (५) द प्लेन स्पेकर, (६) द स्पिरिट ऑफ द एज, इत्यादि।

पायपा है कि कविता केवल सुगंध म हा पाया जाता है और गुण। एवं विच्छिन्न  
 एवं म ही विच्छिन्न जाती है। मय, धारा, पता प्रम र्व्या र्वानि, भद्रा  
 धारणम वागा मीगम—म मय नमय वाग है। मयुत कविता हमम  
 धारिच्छिन्न मय गूम मय है जो हमारे मयुत धारिच्छिन्न वा धारिच्छिन्न एव उपास  
 करता है। इतर धमय म ममम जायत धिन्नादिमय एव मयुत हा माग है।  
 नेत्रिण्ट । धारण वाग वा प्ररति की धारुति धोर कानता गया मनागगा वा  
 हारी धार प्ररति वा धारिच्छिन्न धंग कटा है। कविता मिय म जायत धोर  
 मति वा मधार कगा है। इमम मयुतमय वा कानत हाग है मियर धमय  
 मयन वा गता। जहा मय मयारी वा मयारन कगा है। यहा मय उनत धारा  
 धार एक धमय धारिच्छिन्न पना एना है। कगात कविता मकाधित धारणगुण  
 हाग है धोर धोरिच्छिन्न एव कगा के धरम विच्छिन्न धनुमूनिवा वा मयुतान वा  
 प्ररत करतो है। प्रयन धारणा स धारुति कविता हमारा प्ररति क नरिच  
 एव धोरिच्छिन्न धम स निमन तो हाग ही है। माय हा मय उग मय म मा उमूत  
 हागी है जो धमयन सवन्नाशील है जिमम मनाजने वा उदरेडा कम करन  
 की मरिच्छा धोर धनुमूनि वा धमता पायी जाती है। इगलिए कविता वा पूणा  
 पात क लिए धारिच्छिन्न कि यह हमारे इन ममी धगा उपागा वा मयिचर लगे। वाध्य  
 नापा क सवध म हजलिठ न कहा है कि धुंति वाध्य कल्पना धोर धारणा वा  
 धमिच्छिन्न है। इमवा भापा युद्धि धोर साधारण पात के स्तर पर नही उतारी  
 जा सवती। इमम कल्पना धोर मनागगा क माध्यम स धवनारित प्ररति क  
 प्रनिबिचन वा धमता हानी चाहिए।

हेजलिठ वा साहित्य पात सीमित वा उसका धारुतिक साहित्य वा  
 धमयन धर्यरप धोर धमिजात साहित्य म गति नाममात्र की थी। उसने उन  
 धर्मरेज लेखवा वा ही धमयन लिया था, जो मूधय ध धोर वह नध्य की पुरातन  
 प्रतिमाना स ही धारिच्छिन्न वा प्रयत्न करता था। इमी प्रवार नवाभावनाधा धोर  
 नवयणाधा म उसकी रुचि न थी धोर उमन मोच रखा था कि विस्मय हस्तिवा  
 प्राय गीण हा दुघा करती है। राजनीति म जा गणतण वा पोपक धा वही हेजलिठ  
 साहित्य म धमिजात-सत्रा वन जाता है। वह उन समी कृिया वा समथन करता  
 है जो जीवन की समीक्षा धोर इसके लिए कुछ मूल्य रखती है जिनम कुछ सारगम  
 ठास वस्तु रहता है।

धारस लम्ब की समीक्षाधा म नाटको वा ही सवाधिक विवेचन दुघा है।  
 उसने अपन सामयिका का ध्यान विस्तत नाटकीय सम्पदा की धोर धारुष्ट  
 किया धोर इस प्रक्रिया म सचयन की धपनी धनुमूनि प्रतिभा ( 'जीनिधस धार

नेनेक्शन")<sup>१</sup> का परिचय दिया। उसकी अभिरचि अत्यन्त कोमल थी और वह एक साहित्यिक इन्द्रियपरायण "एपिकयर" कहा जाता है। उसकी दृष्टि से रमणीय कृतियाँ बच नहीं पाती, इतना ही नहीं वह विवेचित कृतियों को सुदृग्तर बना डालने में अप्रतिम है। उसकी रचनाग्रा से ऐसा प्रतीत होता है कि कोई श्रद्धोमत्त ("एपुजिएस्ट") व्यक्ति किसी प्रिय अनुच्छेद का पाठ और उससे मक्षिप्त टिप्पणी सयाजित कर रहा है। लैम्ब ने शेक्सपियर के नाटका का अभिनेय घोषित किया है और कहा है कि 'दटम्पेस्ट', "भेकवेथ", "किंग लियर" जैसे नाटका का अभिनय नहा हो सकता।

मथ्यू आनल्ड (१८२२-८८) की प्रायः सभी कविताएँ पँतालीस वर्ष की अवस्था के पहले ही लिखी जा चुकी थी। परन्तु जहाँ तक उनके गद्य का संबंध है उनकी रचना लखक की प्रौढावस्था में हुई। १८५७ से ही जब वह ऑक्सफोर्ड में काव्यशास्त्र का प्रोफेसर निर्वाचित हुआ, उमन गद्य लिखना आरम्भ किया और १८६१ में अपने भाषणा का प्रथमाण "आन ट्रांसलेटिंग होमर" प्रकाशित कराया। "लास्ट बड स आन ट्रांसलेटिंग होमर" सन १८६२ में प्रकाशित हुआ।

आनल्ड अपनी आलाचनाग्रा में सूक्ष्म विश्लेषण विरले ही प्रस्तुत करता है परन्तु हमर-सवधी इन गार्याना में सूक्ष्म विवेचन के कितने ही महत्वपूर्ण दृष्टांत वनमान हैं जिनसे समीक्षक की अध्ययन विषयक ग्रहणशीलता और तत्परता का सम्यक वाप होना है। आनल्ड मूल्यांकन के सच्चे और वस्तुनिष्ठ प्रतिमाना के अस्तित्व में विश्वास करना है किन्तु साथ ही वह नहीं चाहता कि समीक्षा बाह्य मूल्या और मिद्धाता के मनमान प्रयोग के कारण गतिहीन और निष्प्राण हो जाय। कायालाचक में सर्वोच्च कोटि का चातुर्य और व्यवहार-कौशल, सर्वोत्कृष्ट समय नियंत्रण तथा नमनशील, स्वच्छद एवं उदात्त हृदय होना चाहिए। उस दुराग्रह रहित, जानाजन के लिए समुत्सुक तथा सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए। ऐसा जान पडता है कि आनल्ड का उद्देश्य एक ऐसे मध्यम भाग का आवेपण था जो १० जानमन मरावे आलोचका के वस्तुनिष्ठ निष्प्रायत्न दृष्टिकोण और जैजिट सरीखे रामाटिक आलाचका के श्रौत्युक्त्यपूर्ण, सवेदनाश्रित दृष्टिकोणा के बीचारीच जाना हो। ऑक्सफोर्ड में किए गए दो अन्य भाषणों में एक तो वह बौद्धिक एवं मान्यशास्त्रीय प्रतिमाना के श्रकुश का स्वीकार करने की

१ एडिनबरा विश्वविद्यालय में १४ ११ १९५७ को डा० ए० एम० क्लार्क द्वारा किए गए एक स्नातकोत्तर भाषण से।



है। समालाचना का लक्ष्य कलाकृति ही नहीं, अपितु सामान्य जीवन भी होता है।

आनल्ड न वाक्य का जीवन की आलाचना कहा है। यह विवादग्रस्त कथन "ए स्टडी ऑफ पायट्री" शीपक निबंध में पाया जाता है, जिसमें आनल्ड की पुस्तक "एमेज वन क्रिटिसिज्म मेकण्ड मिरिज" (१८८८) का आरम्भ होता है। इस पुस्तक में अंगरेज रोमांटिक कविता का पुनर्मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है और इसके प्रथम निबंध में चौमर में नेन्स वन्स पर्यंत अंगरेजी काव्य का संक्षिप्त पर्यालाचन समाहित है। इसमें अन्तर्ज्ञानक तथा का मार्मिक उद्घाटन है और इसके निष्कर्षों में पर्याप्त प्रामाणिकता मिलती है किंतु आनल्ड ने इसमें जॉन डन की उपेक्षा की है और ग्रे का अनावश्यक महत्त्व दिया है। इसी प्रकार उसने चौमर, ड्राइडन पाप और बस के महत्त्व को ठीक-ठीक मूल्यांकित नहीं किया। स्पष्ट है कि अपने यथाशक्य प्रयासों के बावजूद आनल्ड अपने रोमांटिक पूर्वग्रहों से मुक्त नहीं है।

### प्रभाववादी समीक्षक

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में ही एक ऐसे साहित्यिक निकाय की प्रतिष्ठा होनी है जो मूलतः प्रभाववादिभ्यः समीक्षा लिखना है। इस प्रकार की समीक्षा का प्रतिनिधित्व वगनैड में, पेटर स्विनब्रन, आथर साइमन्स प्रभृति आलोचकों की कृतियाँ करती हैं। इनकी आलाचनाएँ विविध प्रभावों का यथावत अभिव्यजन हैं और इनके हृदय हमारे हृदयों को अपेक्षा अधिक प्रभाव्य एवं संवेदनशील हैं। यहाँ यहाँ भी ध्यातव्य है कि प्रभाववादी आलाचनाएँ विवेच्य कृति की व्याख्या उम पर आधुनिक भाष्य और अनुवाद हानती हैं और इनका उद्देश्य हमारे हृदयों में प्रभावों का उद्घाटन-मात्र होता है। इनकी तुलना हम साहित्यकारों के उन सामान्य व्याख्याना से कर सकेंगे कि जिनमें नाटक या उपन्यासों की कथाओं का पुनराख्यान और उनके पात्रों के मनोव्यक्तियों का उद्घाटन होता है और इस प्रकार कलाकृति नव-मिथुनों के लिए मरल-मुनम बना दी जाती है।<sup>१</sup> यह भी देखा गया है कि कभी-

१ द्रष्टव्य ' the impressions of Mr Symons come to resemble a common type of popular literary lecture, in which the stories of plays or novels are retold, the motives of the characters set forth and the work of art therefore made easier for the beginner '

—T S Eliot, *The Sacred Wood* (London, 1957), p 4

भावश्यकताओं पर जोर देता है और दूसरे नमनशास्त्रों और सत्त्वशास्त्रों को भी समीक्षा के लिए परमावस्था धारित करता है। द लिट्लरी इन्फ्लुएंस ऑफ अरिस्टोटील' शीघ्र प्रथम ध्यानात्मक आनन्द न समीक्षा के प्रतिमानों में विश्वास रखने के कारण राष्ट्र के साहित्यिक एवं बौद्धिक जीवन में उत्पन्न सारा का सोश्लररुण यथा किया है। इन प्रतिमानों में विश्वास की अभिव्यक्ति एक ऐसी अज्ञानता की स्थापना में ही सारणी है जो साहित्यिक जीवन में सर्वोच्च ध्यानात्मक का नाम करती है और जो अभिरुचि एवं चिन्ता के क्षेत्र में उत्कृष्ट ध्यानात्मक मान्यताओं का प्रतिष्ठित कर सकती है। जहाँ एता विश्वास नहीं मिलता वहाँ समाज का बौद्धिक जाया हुआ अज्ञान अथवा अज्ञानता और अज्ञानता की अज्ञानता निम्नाभिमुख है उठता है। आनन्द के अनुसार उन अज्ञानता अज्ञानता में समाज का ऐसी ही अवस्था थी।

द फाशा ध्यानात्मक एंड द प्रजेंट टाइम शीघ्र ध्यानात्मक का आनन्द का सर्वोत्कृष्ट निवृत्त माना गया है। इसमें उसने अपने कायकर्म के दूसरे भाग की अज्ञानता सामयिक पाठना का ध्यान ध्यानात्मक किया है। सर्वप्रथम वह उन व्यक्तियों के आशेषों का प्रत्युत्तर देता है जिन्होंने उस पर यह अभियोग लगाया था कि वह आलोचना को आवश्यकता से अधिक महत्व देता था। आनन्द इस बात से सहमत है कि सजना से समीक्षा का स्थान नीचे है, परंतु वह इस बात पर जोर देता है कि महान् बलावृत्तियों की सृष्टि सभी युगों में हर समय समव नहीं होती। रोमांटिक कविता में जो महान् थे, उन्हें भी ऐसे प्राणवान् बौद्धिक जीवन के अभाव में अज्ञानता विफल होना पड़ा जिससे सोफोकलीज शकसपियर जैसे भाग्यशास्त्री लेखकों ने पोष्य सामग्री ली थी। जीवित बौद्धिक विरासत के अभाव में वायरन सार-तत्त्वहीन हो गया है शैली अस्पष्ट एवं अज्ञानस्थित है और यहाँ तक कि वह स्वयं जिसमें प्रभूत गामीय का समाहार पाया जाता है पूणता और विविध्य से रहित है। समालोचना से हमारे बौद्धिक जीवन में गति और त्वरा आ सकती है और अपने वास्तविक उद्देश्य का पालन करके यह भविष्य में सजनात्मक प्रतिमाओं की सहायता कर सकती है। समालोचना का उद्देश्य विश्व की उन सभी सर्वोत्कृष्ट वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करना है जिन्हें लोग जानते या जिन पर विचार करते हैं और इस ज्ञान को प्रसारित करके चिरंजिवन एवं अनुच्छिन्न विचारों के अतन्वरीत जीवन प्रवाह का निर्माण करना है। निष्पन्न एवं निर्धरित मन से उत्पन्न और अतन्वरीत-जय समालोचना ही सच्ची समालोचना कही जायगी। आनन्द के अनुसार समालोचना अत्यंत वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए और इसमें वास्तव, राजनतिक एवं व्यावहारिक बातों का समावेश अशोभन होता

है। समालोचना का लक्ष्य कलाकृति ही नहीं, अपितु सामान्य जीवन भी होता है।

ग्रानल्ड ने काव्य का जीवन की आलोचना कहा है। यह विवादग्रस्त कथन "द स्टडी ऑफ पायट्री" शीपक निबंध में पाया जाता है, जिससे ग्रानल्ड की पुस्तक 'एमज इन ब्रिटिसिज्म सेक्ण्ड मिरीज' (१८८८) का आरम्भ होता है। इस पुस्तक में अँगरेज रोमांटिक कविया का पुनर्मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है और इसके प्रथम निबंध में चौमर से लेकर बन्म पर्यंत अँगरेजी काव्य का सन्निष्ठ पर्यालोचन समाहित है। इसमें अनेकानेक तथ्या का मार्मिक उद्धाटन है और इसका निष्कर्षों में पर्याप्त प्रामाणिकता मिलती है, किन्तु ग्रानल्ड ने इसमें 'जॉन डन की उपेक्षा की है और ग्रे का अनावश्यक महत्त्व दिया है। इसी प्रकार उमने चौमर, डाइटन, पाप और बस के महत्त्व को ठीक ठीक मूल्यांकित नहीं किया। स्पष्ट है कि अपन यथाशक्य प्रयासों के बावजूद ग्रानल्ड अपन रामांटिक पूर्वग्रहों से मुक्त नहीं है।

### प्रभाववादी समीक्षक

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में ही एक ऐसे साहित्यिक निकाय की प्रतिष्ठा होती है जो मूलतः प्रभावाम्बिव्यजक समीक्षा लिखता है। इस प्रकार की समीक्षा का प्रतिनिधित्व, इगल्टन, पेटर स्विनजन आथर साइमंस प्रमति आलोचकों की कृतियाँ करती हैं। इनकी आलोचनाएँ विविध प्रभावों का यथावत अभिव्यजन हैं और इनका हृदय हमारे हृदयों का अपेक्षा अधिक प्रभाव्य एवं सवेदनशील हैं। यहाँ यह भी ध्यानव्य है कि प्रभाववादी आलोचनाएँ विवेच्य कृति की व्याख्या उस पर आधुनिक भाष्य और अनुवाद होती है और इनका उद्देश्य हमारे हृदयों में प्रभावों का उद्दीपन-मात्र होना है। इनकी तुलना हम साहित्यकारों के उन सामान्य व्याख्यानों से कर सकते हैं जिनमें नाटकों या उपन्यासों की कथाओं का पुनराख्यान और उनके पात्रों के मतव्याओं का उद्धाटन होता है और इस प्रकार कलाकृति नव-सिन्धुओं के लिए सरल-मुलम बना दी जाती है।<sup>१</sup> यह भी देखा गया है कि कभी-

१ द्रष्टव्य ' the impressions of Mr Symons come to resemble a common type of popular literary lecture, in which the stories of plays or novels are retold, the motives of the characters set forth and the work of art therefore, made easier for the beginner '

—T S Eliot, *The Sacred Wood* (London, 1957), p 4



कभी प्रभाववादी लेखकों के मनावग आवश्यकता से अधिक उद्दीप्त हो उठते हैं<sup>१</sup> और वे अपने प्रभावा को अभिनव बाणी देने के लिए व्यग्र रहते हैं। चूकि वे कवि नहीं होते, उनके प्रभाव समीक्षा में स्थापित होते हैं। इस कारण कविया द्वारा प्रणीत समीक्षा अधिक प्रत्यक्षकारी होती है—उनकी समीक्षा किमी दमित कामना की तृप्ति नहीं होती, वे अपनी समीक्षाओं में कविता नहीं करते। इनके विपरीत प्रभाववादी आलोचकों के अन्त में प्रतिष्ठित कवि न ता सच्चा कवि हो पाता है और न आदर्श आलोचक ही।<sup>२</sup>

एलियट ने स्वतन्त्रता का समीक्षक न कहकर एक गुणग्राहक—अथवा प्रशंसक—माना कहा है।<sup>३</sup> पेटर (१८३८-८३) इस समीक्षक की दृष्टि में एक नीतिवादी आलोचक है।<sup>४</sup> परंतु यह भी निर्विवाद है कि पेटर सौंदर्य का मर्मज्ञ सवेदनशील उपासक था और उसके अनुसार सांख्यिक परलक्ष की एकमात्र कसौटी मन पर पड़नेवाले प्रभावा में मिलती है। उसका लक्ष्य प्रभावा का मूल अभिव्यक्ति देना तथा अपने उस आनंद की अभिव्यक्तता है जिसकी उसे अनुभूति हुई थी। काव्यानुशीलन से उत्पन्न रसदशा के सन्ध में प्रचलित मूढ एवं दागनिष्ठ मतवालों से उसने अपनी असहमति प्रकट की है और कहा है कि प्रमाता के मन पर पड़नेवाले प्रभाव अधिक प्रामाणिक होते हैं और समाक्षक को चाहिए कि वह वही प्रभावा का यथावत चित्रण करे।

### जन्मनातन पश्चात्त्य समीक्षा

सटसवरी हिले, ब्रडल, टब्ल्यू० पी० केर प्रमति समीक्षका की प्रतिनिधि कृतियाँ बणन एवं वर्गीकरण से ही अधिक संवध रखती हैं समाक्षा से अपेक्षा कम। आनल्ड द्वारा निर्दिष्ट सबेना को वे पर्याप्त एतावत्य के साथ पल्लवित तो करती हैं परंतु नय प्रश्न नहीं उठाती समीक्षा की नयी समस्याओं पर प्रकाश नहीं डालती। अमरीका में भी इविंग थविट-जस आनाचक समाज के साथ कृतिकार के चिंतन-दशन के आधुनिक संवध निर्माण में अपने का यस्त रखते हैं कला की विशेषताओं के सम्यक् उच्चारण में नहीं। प्रथम विश्वयुद्ध के

१ उपरिक्त, पृ० ६। (Some writers are essentially of the type that reacts in excess of the stimulus )

२ उपरिक्त, पृ० ७।

३ उपरिक्त पृ० १९ (Swainburne is an appreciator and not a critic')

४ T S Eliot *Selected Essays* (London, 1949), p 400

टोक पहले टी० ई० ह्यूम और एजरा पाउड की रचनाओं और विचार वितक से समीक्षालोक में नवजीवन का उभेप हुआ और इससे ही एलियट का साहित्यगत विकास प्रणादित हुआ। ह्यूम के लिए अनुशासन उतना ही वरुण्य था, जितना अयक्तिवाद और कविता में तितात कठिन स्थूल मूल विव। नवजागरण से लेकर अद्यपय त जितन भी दाशनिक हुए उनगे जीवन-बोध (बेलोगशाग) के विरुद्ध उमने आवाज उठाई और रसा के इस मतवाद का भशकन खडन किया कि मनुष्य तत्त्वत विभल विशुद्ध प्राणी है। ह्यूम की यह निश्चित धारणा थी कि बिना प्राथमिक पाप ('अरिजिनल सिन') में विश्वास किए हम महनीय कालजयी कला-कृतियां का सजन नहीं कर सकते।<sup>१</sup> इसलिए उमन प्रगति में विश्वास करनेवाले साहित्यकारों की आलाचना की, "वाइटलिस्टिक" कला का बहिष्कार किया और इमकी जगह बाउजैण्टाइन कला के रक्विकीय (ज्यामितीय) गुणों का ही अनुकरण किया।<sup>२</sup> इसी प्रकार उमन मानववादी दृष्टिकोण के स्थान पर धार्मिक दृष्टिकोण की स्थापना की। उसकी शिल्प-मन्थी विधि-व्यवस्था से अमरीका और इंगलड के कवि तथा आलाचक (जा गोल्ड फनेचर हिल्डा लिल्टन, एफ० एस० पिण्ट, रिचड आल्डटन एमी लॉवेल आदि) प्रभावित हुए। माद्वेल रावट स सरीखे आलोचकों ने भी उसके महत्त्व को स्वीकारा है और ह्वट रीड जमे आलाचक जिनकी समीक्षा-मद्धति ह्यूम की पद्धति से कदापि मिनती-जुलती नहा है उसके विचारात्तेजक बकनव्या से उद्दीप्त होते रहे हैं।

यद्यपि साहित्यालोचन के क्षेत्र में नई आलोचना ('न्यू क्रिटिसिज्म') नामक नय आंदोलन का आविर्भाव अमरीका में वत्तमान शती के तीसरे दशक में हुआ, फिर भी जब सवप्रथम जान थो रसम नामक अमरीकी समीक्षक ने सन १८४१ में 'द न्यू क्रिटिसिज्म' नामक पुस्तक का प्रकाशन किया, तभी इस आन्दोलन का नामकरण हुआ।<sup>३</sup> आधुनिक समीक्षका में प्रायः एक दजन समीक्षक ऐसे हैं जिनके लिए इस नाम का प्रयोग हाता है, फिर भी नय आलोचका में

१ टी० ई० ह्यूम, स्वरयुलेशस (लडन, १९६०), पृ० ८।

२ उपरिक्त प० ९।

३ Spingarn had called for "the new criticism" in 1910, without receiving very much response John Crowe Ransom called again in 1941—and this time spirits came from the vasty deep Harry Levin (ed.), *Perspectives of Criticism* (Cambridge, 1950), p. X

प्रायः वे अथ समीक्षण भी समाहित कर लिये जाते हैं, जो पाठक सम्यक् अनुमान तथा उनकी व्याख्या पर प्रभूत बल देने हैं<sup>१</sup> और जो ऐतिहासिक अथवा जीवनवृत्त मूलक समीक्षा प्रस्तुत नहीं करत। यद्यपि सभी नये आलोचना पाठ निश्चयपण म विश्वास करत और इस ही अपनी समीक्षा का लक्ष्य बनाते हैं फिर भी इनम प्रमुख समीक्षक की आलोचना-पद्धति और इनर द्वारा प्रयुक्त सिद्धान्त म परस्पर साम्य नहीं मिलता। इतना अवश्य है कि ये सभी समीक्षण कविता का कविता के रूप म ही विवर्चन करना युक्तियुक्त समगत हैं। इनर द्वारा प्रयुक्त अनुशालना म कविता समाजशास्त्र दर्शन अथवा नीतिशास्त्र के रूप म समीक्षित न हानर कविता के रूप म समीक्षित होती है और इसके समीक्षण जो निविड निगूढ कविताका की व्याख्या म निपुण होत हैं, इसकी भाषागत संयोजना पर—इसके शिल्प-कौशल पर ध्यान केंद्रित करत हैं तथा ज्ञान की विविध शाखाका का अभावश्यक उपयोग करत हैं। स्पष्टतः आई० ए० रिचर्ड्स के उन प्रारम्भिक अथ विषय (सिम्पेण्डेक्स) अनुशालना से ये प्रभावित हुए हैं जिनम प्रतानात्मक भाषा के गुण-वैशिष्ट्य पर बल पडा है। आई० ए० रिचर्ड्स के अतिरिक्त उसके शिष्य विलियम एम्पसन न भी नये आलोचका (ऐनन टेट आर० पी० ब्रुकमर आदर विण्टस, केनेथ बक, ग्लिय द्रुकम और राबट पेन बरेन) को प्रभावित किया है। टी० एस० एलियट का नाम नये आलोचको म परिगणनीय नहीं है, फिर भी उसने सूक्ष्म पाठानुशीलन के महत्व का निदर्शन किया है और इस दृष्टि स नये आलोचका को प्रभावित भी किया।

स्टेनली एडगर हाइमन के अनुसार आधुनिक समीक्षा की विशेषताका म

- 
- १ 'A phrase of Mathew Arnold's can be taken as its motto To see the object in itself as it really is The new critics attempt to concentrate solely upon the intrinsic nature of the work By the same token, they shun what lies 'outside the work Emphasis should be kept on the poem as a poem' —Jerome Stolnitz, *Aesthetics and Philosophy of Art Criticism* (1960), p 481
- २ 'More positively, by its preoccupation with craftsmanship this new criticism provides a special impetus for, and exerts a living influence over, our students of literature' Harry Levin, loc cit

संवादात्मक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि साहित्य को परखने-आकने के लिए यह असाहित्यिक पद्धतियाँ एव ज्ञान की विभिन्न शाखाओं का सुव्यवस्थित उपयोग करती हैं।<sup>१</sup> इस कथन में "सुव्यवस्थित" शब्द ध्यानव्य है। परंपरित समीक्षा में भी इन पद्धतियाँ और ज्ञान की भिन्न भिन्न शाखाओं का विनियोग होता था, परन्तु ये व्यवस्थित एव आवश्यक ढंग से प्रयुक्त न होकर, यदाकदा अविचारित एव अव्यवस्थित ढंग में प्रयुक्त होती थीं। जॉन प्रो रैसम के मतानुसार आधुनिक अंगरेजी और अमरीकी समीक्षा परिमाणत ही नहीं प्रकारत भी प्राग्भूत समाप्ता में भिन्न है और गामोप्य तथा आनुरूप्य की दृष्टि से सामयिक आलोचना-साहित्य अंगरेजी भाषा में प्रणीत पहले के संपूर्ण आलोचना-साहित्य की अपेक्षा अधिक समृद्ध है।<sup>२</sup> मनोविश्लेषण की पद्धतियाँ से युगीन आलोचका तथा अति दस्तुवादी लोगका न अचेतन मन की सक्रिया से सबद्ध कल्पना मूल धारणाएँ गृहीत की हैं। फ्रायड के अनुसार मानव-मन में कल्पना ऐसी ज-मानरीय सहज प्रवृत्तियाँ और वासनाएँ होती हैं, जिनकी समाज के भीतर पूर्ण तुष्टि नहीं होती। इसलिए हम या तो इन प्रवृत्तियों और इच्छाओं का परित्याग अथवा इनका नियमन करना पड़ता है। किंतु चूँकि इन दुर्दमनीय इच्छाओं का सहज अवदमन (रिप्रेशन) नहीं हो सकता वे किसी-न किसी प्रकार के परित्याग के लिए प्रयत्नशील रहती हैं, चाहे वह परित्याग मनालील्य एव कल्पना में ही क्यों न हो। कल्पना में मनुष्य बहिर्जगत् के वधना से मुक्ति पा लेता है। 'दिवास्वप्न' और "निशास्वप्न" इसी कल्पना के दो प्रमुख रूप प्रकार हैं जिनमें उन इच्छाओं का कल्पित तृप्ति की अनुमति होती है जो कभी वृत्तकाय में हुईं। कलाकार भी इस सावभौम विधान के अनुसार मान-मर्यादा, धन-श्रेयस्य, शक्ति, स्याति, नारी प्रेम आदि के लिए पिपासित रहता है, किंतु उसके पास इनकी परिनृप्ति के लिए पर्याप्त साधन नहीं होते। इसलिए वह भी कल्पना के सहारे इनकी तुष्टि के लिए यथाशक्य प्रयत्नशील रहता है। किंतु, जिन कल्पना का वह निर्माण करता है, वह साधारण व्यक्ति की कल्पना से प्रकारत, सबधा भिन्न होती है। कला विहीन व्यक्ति की

१ 'What modern criticism is could be defined crudely and somewhat inaccurately as the organized use of non literary techniques and bodies of knowledge to obtain in sight into literature Stanley Edgar Hyman, *The Armed Vision* (New York, 1952), p 3

२ उपरिखत, पृ० ४ ।

चरपना मे ऐसे विम्ब और विचार समविष्ट हाने हैं जो वैयक्तिक हान के कारण केवल उसे ही बोधगम्य होते हैं। पर कलाकार अपने सपना को इस प्रकार रूपांतरित करता है कि व दूसरो तक संप्रेषित तो होते ही हैं, साथ ही दूमरे भी उह आस्वादनीय समथते है।

फ्रायड के मतानुसार कामवृत्ति ही मनुष्य की सर्वाधिक प्रबल एव महत्वपूर्ण प्रेरक शक्ति है। इसी वृत्ति के दमन को मानसिक विकारा का जनक समझना चाहिए। किंतु सिगमंड फ्रायड के शिष्य युग ने इस सिद्धांत का ध्रामक कहा और काम वृत्ति को उतना महत्त्व नहीं दिया जितना फ्रायड ने दिया था। उसन व्यक्तित्व विषयक एक नय सिद्धांत का प्रतिपादन किया और कहा 'प्रत्यक सज्जनशील व्यक्ति परस्परविरोधी रूचिया का एक द्वित्व या सशयण है। एक तरफ तो वह व्यक्तिगत जीवन रखनवाला मनुष्य है और दूसरी ओर वह निव्यक्तिगत सज्जनात्मक प्रक्रिया है। चूकि मनुष्य होने के नात वह सुस्थ या उदभात हो सकता है, इसलिए हम उसकी मानसिक बनावट पर ध्यान देना आवश्यक है जिससे उसने व्यक्तित्व को निर्धारित करनवा न तत्त्व समझे जा सकें। किंतु उसरी सज्जनात्मक उपलब्धि को देखने स ही कलाकार के रूप में हम उसे समझ सकते हैं।<sup>१</sup> एक मनुष्य के रूप में युग ने ध्याने लिखा है, उसमें विभिन्न मन स्थितिया और इच्छाशक्ति और व्यक्तिगत आकाक्षाएँ हो सकती है किंतु कलाकार के रूप में वह एक उच्चतर अथ म मनुष्य है—वह सामूहिक मनुष्य है—एक ऐसा प्राणी जो मानव मात्र के अचेतन मानसिक जीवन का प्ररित और रूपायित करता है। इस कठिन वृत्तव्य को प्रतिपन्न करन के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपने मुख और उन सभी वस्तुओं का उत्सर्ग कर दे जिनसे साधारण मनुष्या का जीवन जीने योग्य बनता है।<sup>२</sup> वस्तुतः अतर्लोक अथवा मानस (साइकी) के तीन स्तर है। सबसे ऊपरी स्तर चेतन मन का है जिसमें अह (आत्मा) काय

१ *Modern Man in Search of a Soul* डे० साहित्य, ४, ४, जनवरी, १९५४, प० ६७-६८।

२ उपरिवृत, प० ६८। फ्रायड की कामवृत्तियाले सिद्धांत का खडन करते हुए युग ने लिखा है

‘The whole Freudian movement has settled firmly for the sexual theory. There is certainly no unprejudiced thinker or investigator who would not instantly acknowledge the extraordinary importance of sexual or erotic

करता है। इसके नीचे उपचेतन या अचेतन मन का स्तर है, जो स्वयं दो अग्र-स्तरों में विभक्त है (क) व्यक्तिगत अचेतन मन (व्यक्ति अचेतन) और (ख) सामूहिक या निर्व्यक्तिक अचेतन मन (समष्टि अचेतन)। व्यक्तिगत अचेतन मन चेतन मन के नीचेवाला वह स्तर है जिसमें उन सभी वासनाओं का आवास होता है, जो कभी चेतन मन में नहीं आती और जागृत होकर नीचे संचित हो गई हैं तथा जो अक्सर पाकर फिर कभी चेतन मन में प्रविष्ट हो जायेंगी। स्वप्न, काव्य और कला के क्षेत्र में अधिकांश अचेतन मन के विषय और छाया-वृत्तियाँ ही गहरी जाती हैं। मानस का तीसरा और सबसे व्यापक तथा विस्तृत स्तर सामूहिक या निर्व्यक्तिक अचेतन मन का है, जिसमें वे सभी बातें होती हैं जिनकी स्थिति व्यक्ति के अस्तित्व के पूर्व से ही होती है और जो सावर्ग्य एव सावर्जनिक विवाह के रूप में व्यक्त होती हैं। उन विवाहों को युग ने आद्य विवाह कहा है। ऐतिहासिक उत्तराधिकार के रूप में बाहर से प्राप्त न होकर ये विवाह मानस-स्थान के स्वाभाविक, सस्कारगत एव अविच्छिन्न अंग होते हैं। फ्रायड के एक अग्र शिष्य ऐडलर ने भी कामवृत्तिवादी सिद्धांत का सशक्त खंडन किया और कहा कि चरित्र और कामवृत्ति को ही मूल प्रेरक शक्ति तथा हर प्रकार की चार्ित्रिक विचित्रताओं एव मानसिक व्याधियों का कारण मानना उचित नहीं है। ऐडलर के अनुसार बड़े होने की प्रवृत्ति—महान होने की भावना ही सब-कुछ है "हर आदमी के अंदर महान होने की भावना (विल टु पावर) सहजात है जब इसमें बाधा पड़ती है तो तरह-तरह के चार्ित्रिक दाप एव विचित्रताएँ पैदा होती हैं।"<sup>१</sup>

experience and conflicts But it will never be proved that sexuality is the fundamental instinct and the activating principle of the human psyche Any unprejudiced scientist will, on the contrary, admit that the psyche is an extremely complex structure No matter what instincts, drives or dynamisms biologists may postulate or assume both now and in the future, it will assuredly be quite impossible to set up a sharply defined instinct like sexuality as a fundamental principle of explanation' —C G Jung, *Civilization in Transition* (London, 1964), p 7

१ "फ्रायड" का मनोविक्षेपण और हिंदी के विद्वान । दे० साहित्य, १, ४, जनवरी १९५१, पृ० ५६ ।

मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रतिपादित इन क्रांतिकारी विचारों और सिद्धांतों का प्रभाव पाश्चात्य साहित्य तक ही सीमित नहीं रहा है। जहाँ तक अँगरेजी समीक्षा का संबंध है इसकी अनेकानेक आलोचनात्मक कृतियाँ उक्त मनोवैज्ञानिकों द्वारा उदभावित सिद्धांतों का ही पल्लवित एवं व्यावहारिक रूप हैं। माड वाडकिन की कृतियाँ, “आर्किटाइपल पटर्स इन पोयट्री” और ‘द क्वेस्ट फॉर सल्वेशन’ मुख्यतः युग के सिद्धांतों और विचारों पर आधारित हैं। सन् १८१२ में फ्रडरिक क्लॉक प्रेस्कॉट ने “जनल आब एबनामल साइकालोजी” में ‘पोयट्री एण्ड ड्रीम्स’ नामक एक निबंध लिखकर फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धांत का सर्वप्रथम प्रयोग किया। प्रेस्कॉट ने फ्रायड द्वारा स्वप्नों की व्याख्या (‘दि इण्टरप्रिटेसन आब ड्रीम्स’) के आधार पर कहा कि स्वप्नों की तरह कविता भी कवि की अव्यक्त इच्छाओं की परीक्षा पूर्ति होती है। सन् १६२२ में उसने ‘द पोयटिक माइण्ड’ नामक ग्रंथ प्रकाशित किया, जिसमें एम्पसन की “वक्रता” (‘एम्बगुइटी’) का ईष्यत प्रामाण्य मिलता है। सन् १६१६ में वानरेड ऐकेन ने फ्रायड के कला संबंधी सिद्धांतों के आधार पर ‘स्केप्टिसिज्म नोटस आन कण्टेम्परेरी पोयट्री’ की रचना की और इसमें फ्रायड के सिद्धांतों के साथ कास्टिलेफ (Kostyleff) के उस काव्य सिद्धांत का सामंजस्य स्थापित करना चाहा, जिसके अनुसार काव्य एक “गार्बिक-नामक अनुष्ठान (verbo-motor discharge)” है। राबर्ट ग्रेज के ग्रान इग्लिश पोयटस (१६२२), ‘द मीनिंग आब ड्रीम्स’ (१८२४) और ‘पोयटिक अरीजन (१८२५) नामक ग्रंथों से मनोविश्लेषणात्मक आलोचना का सम्यगारम्भ हो चलता है। उसने कीटस की “ल वेल दामर्स”, कोलरिज की कुजला खा’ और स्वरचित एक कविता का विश्लेषण अवचेतन मनाविज्ञान की पद्धति पर प्रस्तुत किया किंतु उसने सिद्धांत ड्यूं एच० आर० रीवज के मनोविश्लेषण-सिद्धांतों पर आधारित हैं न कि फ्रायड और युग के सिद्धांतों पर। इसी प्रकार विलियम एम्पसन ने ऐलिस इन वण्डरलैंड’ के विवेचन में मनोविश्लेषण के सिद्धांतों का पूर्ण सफलता के साथ प्रयोग किया।

हबर्ट रीड ने समीक्षा के लिए मनोविज्ञान तथा फ्रायडिय अवचेतनावाद का सम्यक ज्ञान अत्यावश्यक बताया है और ‘साइकोनलसिस एण्ड त्रिटिसिज्म’ में मनोविश्लेषणात्मक समालोचना के पक्ष में, इसकी समावनाओं और सामाग्रियों पर बड़े ही विचारोत्तेजक तथा गंभीरतक उपस्थित किए हैं किंतु वे स्वयं समीक्षा में मनोविश्लेषण के प्रयोक्तृओं में विशेष महत्त्व नहीं रखते। बड स्वयं, शेली और ब्राटी बहना पर उनकी समीक्षाएँ, अवश्य ही मनाविज्ञानात्मक हैं, परंतु

इनके और फ्रायड तथा युंग द्वारा प्रयुक्त कतिपय पारिभाषिक शब्दा के प्रयोग के अनिरीकित उहाने ऐसा कुछ नहीं लिखा जिसे हम मनोविश्लेषणात्मक कह सकते हैं। माजेज की तरह उहाने स्वप्नलोचन के दशन तो किए, किंतु व उसमें प्रवेश न कर पाय। डब्ल्यू० एच० आडेन ने भी 'माइकॉलजी एण्ड आर्ट टु-डे' में कला के लिए फ्रायड के महत्त्व का विश्लेषण किया है, किंतु उन्होंने अपनी आलोचनाओं में फ्रायड के मिथ्याता का समुचित प्रयोग नहीं किया। अमेरिका के लायनल टिलिंग भी इसी श्रेणी के समीक्षका में परिगणित होंगे। अर्थात् मनोविश्लेषणात्मक समीक्षका में एडमण्ड विल्सन और वी० डब्ल्यू० ब्रुक्स उल्लेखनीय हैं। विलियम टॉय न स्टार्टाल की इंडिपेंडेंस ग्रिथि पर एक गंभीर मनोविश्लेषणात्मक ग्रंथ की रचना की है। फ्रांस में सबसे प्रथम आविर्भूत अतिवस्तुवाद (surrealism) भी फ्रायडीय अवचेतनावाद से प्रभावित है। जिस प्रकार मार्क्सवादो साहित्यकार समाजवादी वस्तुवाद की अभिव्यक्ति को लक्ष्य बनाकर साहित्य-सृष्टि करते हैं, उसी प्रकार फ्रायड से प्रभावित अवचेतनावादी लेखक भिन्न भिन्न मनोप्रक्रिया से निर्मित अवचेतन के यथावत अंकन को अपना लक्ष्य मानते हैं। आलोचना के क्षेत्र में भी जिस प्रकार अतिवादी साहित्यिक कृतियाँ का मूल्यांकन द्वि-द्वैतात्मक पद्धति पर करते हैं, उसी प्रकार अवचेतनावादी आलोचक साहित्यिक कृतियाँ का परीक्षा अवचेतन मनोविज्ञान की पद्धति पर करते हैं।

मनाविश्लेषण के अनिरीकित मनोविज्ञान से उदभूत अर्थात् पद्धतियाँ से भी साहित्य की समीक्षा हुई है। आई० ए० रिचर्ड्स ने सघटित (इण्टिग्रेटेड) मनाविज्ञान से साहित्यिक कृतियाँ को आंकन का प्रयत्न किया है और अवचेतन-मनाविज्ञान गेस्टाल्ट चैनीकीय मनाविज्ञान (यूरोलाजिकल साइकॉलजी) आचारवाद (बिहेवियरीज्म) और अपने आनुभाविक (इम्पीरिक्ल) विचारों से वे एक साथ ही प्रभावित दीख पड़ते हैं। इसी प्रकार केनेथ बक ने भी सभी आधुनिक मनाविज्ञानिक विचारों से सहायता लेकर एक ऐसे सघटित मनाविज्ञान की सृष्टि की है, जिसे वे 'फिनामिनोलाजिकल' मनाविज्ञान कहते हैं। इस सघटित मनाविज्ञान का आधार, मुख्यतः गेस्टाल्ट है और गेस्टाल्ट सम्प्रदाय के सम्स्थापक मेक्स वर्दंडमर, कर्ट काफका तथा वुल्फगैंग कोहलर हैं।

अद्यतन पाश्चात्य आलोचका का एक बड़ा प्रगतिवादी मार्क्सवादी कला चिंतन से भी प्रभावित है।<sup>१</sup> जर्मनी के फ्रज मेहरिंग (१८४६-१९१६) और रूस के

१ दे० रेनी वेलेक, कान्सेप्ट्स ऑव क्रिटिसिज्म (थेल यूनिवर्सिटी, १९६३), पृ० ३४६, रेमण्ड विलियम्स, कल्चर एण्ड सोसायटी (एडिनबरा, १९६१), पृ० २५८-२७५।



जार्ज प्लेसानाव (१८५६-१८१८) सवप्रथम मार्गीय समाजवादी थे, जिन्होंने उहाने सोवियत सिद्धांत का यथावत पालन नहीं किया। मर्हिंग ग्रौर प्लेसानाव कला की स्वायत्ता को स्वीकार करते हैं। मन् १८३० व लगभग उा गिद्धान का प्रतिपादन हुआ जिसके अनुसार र्णन का उद्देश्य प्रथम, यथाय का यथावत रूपान्तरण और समसामयिक समाज का तथा इसका गणन का वर्णन है। इसका अतिरिक्त समाजवादी यथायथा म जास्या र्णन के कारण यह बन्नुनिष्ट भाव स यथाय का रूपान्तरण नहीं करना, प्रत्युत अपनी कला का मात्मवाद व प्रचार का माध्यम बनाता है। बीसवीं शती के तीसरे शतक म माकमवादी विचारधारा अन्यान्य दशा म भा प्रचलित हा कली। अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र म प्रचलित हिव्स न अमरीकी साहित्य का पुनर्मुद्रण प्रस्तुत किया और वनाड म्मिय ने 'फोर्सेज इन अमेरिकन लिटिरेचर (१८३८) म समाजवादी दृष्टिकोण से अमरीकी आलोचना के इतिहास की रचना की। एडमण्ड विल्सन और वेनय वक भी समाजवादी जीवनबोध मे अत्याधिक प्रभावित हुए। इंग्लंड म सवाधिक महत्वपूर्ण प्रगतिवादी समीक्षक थिम्पफर काडवेल' हुआ। अद्यतन माकमवादी समीक्षका म हगरी के जाज ल्यूवाकच का नाम अविस्मरणीय है। उसने अपन अधिकांश ग्रंथ जमन भाषा म लिखे।

१ इससे निम्नलिखित ग्रंथ उल्लेखनीय हैं (१) इल्यूजन एण्ड रायलिटा, (२) स्टडीज इन अ डाइग कल्चर और (३) फरदर स्टडीज इन अ डाइग कल्चर। यहाँ डॉ० नगेंद्र का यह कथन ज्ञातव्य है "माक्सवादिया ने मानव इतिहास की जो आधिकारिक व्याख्या का है यह अचूरी और अनेक स्थानों पर असंगत एवं अविश्वसनीय है। उदाहरण रूप मे काडवेल का 'इल्यूजन एण्ड रिप्रेजेंटिटी' पुस्तक के उस चर्चर एवं महत्वपूर्ण परिच्छेद की ओर संकेत किया जा सकता है जिसमे वे अमेरीकी साहित्य के इतिहास का विवेचन करते हुए केवल उहाँ मोटी मोटी बातों को ले सके हैं जो उनका प्रयोजन सिद्ध करती हैं। अमेरीकी-साहित्य की अनेक सूक्ष्म और उलझी हुई प्रवृत्तियों को उहाने बिल्कुल छोड़ दिया है। जहाँ फ्रायड जैसे अतलदर्शी मनोवैज्ञानिक मानव-मन की परीक्षा करते हुए अंत मे नेति नेति कह देते हैं, वहाँ माक्स का साधारण अनुयायी भी सिर्फ पदावार की बातचीत करता हुआ उसके अंतिम सत्यो तक शट से पहुँच जाता है।" आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ (दिल्ली, १९६२), प० १०३

पाश्चात्य साहित्य गाम्त्र में लिप्स टालस्टॉय और नाचे का योगदान उल्लेख्य माना जाता है। लिप्स न ही सबसे प्रथम Einfühlung (Einfühlung) शब्द का प्रयोग किया जिसमें उस विशिष्ट मनोदशा का बोध होता है जिसके कारण हम उन वस्तु के साथ एकाकार हो जाते हैं जिसमें हमारा ध्यान लगा होता है। जब मे कौन के एडवर्ड वी० टिचनर ने "एम्पथी" (सहवेदना, तदनुभूति) शब्द का प्रयोग Einfühlung के अंगरेजी पर्याय के रूप में किया, तभी से इसी रूप में यह शब्द प्रचलित रहा है। तदनुभूति प्रकट करने या "एम्पथाइज" करने का अर्थ यह नहीं होता कि हम शारीरिक सहवेदना का अनुभव अवश्य करें। तदनुभूति शारीरिक कल्पनाजन्य (विभावक) अथवा एक साथ ही शारीरिक और कल्पनाजन्य हो सकती है। इस प्रकार 'एम्पथी' एक प्रकार का "व्यक्तिव अन्तर्ग्रहण" (पमनात् इत्वान्वमेष्ट) तथा "अनुभूति का आह्वान" ("इवो-केशन ऑफ फीलिंग") है। हमारी तदनुभूति उस समय भी वास्तविक "एम्पथी" ही होगी जब हमारे शरीर में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता और हम केवल कल्पना में दूसरे व्यक्ति की स्थिति में जा पहुँचते हैं। हमारी कल्पनाशक्ति हम उन व्यक्ति का स्थिति में प्रणोदित (प्रोप्टेड) कर देती है जिनके साथ हम तादात्म्य का अनुभव करते हैं। तदनुभूति में हम अपना ध्यान दूसरे व्यक्ति के हृदय भावा और स्थिति पर केन्द्रित करते हैं, गाउनर मर्फी के शब्दों में हम अपने हृदय में उसकी अनुभूति करते हैं, जो अन्य गोचर व्यक्ति अथवा पदार्थों का अंग होता है। तदनुभूति का मनुष्या के बीच की प्राचीन प्रतिबन्धन है। जब हम एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं उस समय हमारी अन्तरात्मा में निहित चिर-साहचर्य द्वारा प्रतिष्ठित वासना जाग्रत हो उठती है और इस प्रकार आदिजात तदनुभूति ("प्राइमॉर्डियल एम्पथी") का उत्प्रेषण होता है। हम किसी पैबलोवा की श्रृंगार चेष्टाओं पर इसलिए मुग्ध नही होते कि हम भा उसकी तरह नृत्यकला में निपुण होते हैं, बल्कि हमारे आकर्षण का कारण हमारी भास-प्रेमिया की बनावट है जो पैबलोवा की तरह ही है। यद्यपि हममें प्रभूत व्यक्तिगत वगिष्ठ्य और पाथक्य देखा जा सकता है, फिर भी हमारे हृदय में मौखिक औत्पत्तिक एकरूपता विद्यमान है।

- १ 'It is experiencing within oneself what actually belongs to other perceived persons or objects' (Quoted by Robert L. Katz *Empathy Its Nature and Uses* London 1963, p 8)

टाँसटॉय के अनुसार क्या एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य के साथ सम्पर्क स्थापित करने के विभिन्न माध्यमों में एक महत्वपूर्ण माध्यम है। क्या द्वारा संप्रसारित अनुभूतियाँ का प्रारंभ केवल उस व्यक्ति ही के साथ एक प्रकार का संपर्क स्थापित नहीं करता जिसने क्या की मूर्ति की है, बल्कि उन लोगों से भी सम्बन्ध हो जाता है जो उसके साथ ही यही ही क्यागत अनुभूतियाँ ग्रहण कर रहे हैं जिन्होंने अतीत में यही ही अनुभूतियाँ प्राप्त की हैं और जो भविष्य में उन्हें प्राप्त करते रहेंगे। जिस प्रकार हमारे वे शत्रु, जिनकी सहायता में हम अपने विचारों एवं अनुभूतियों की व्यंजना कर रहे हैं हम एक-दूसरे से सम्पर्क कर रहे हैं उसी प्रकार बला भी हमारे हृदयों को परस्पर गुम्फित करती है। जहाँ जहाँ हमारे विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यम हैं वहाँ बला हमारे हृदयों भाषा की अभिव्यंजना और संप्रसारण में हमारी अनन्य सहायिका होती है। क्यागत मूर्ति का आधार यह सत्य है कि श्रवण अथवा दृशन द्वारा हम दूसरों की अनुभूतियाँ से बल प्रभावित हो नहीं होते, बल्कि हममें उन आवृत्तियों को यथावत् अनुभूत करन की क्षमता भी होती है जो बलाकार के हृदय में उद्बुद्ध हुए थे।

सत्त्वमीमांसा में बला के सौंदर्य के रहस्यमय आदिरूप ईश्वर को प्रव्यंजना<sup>१</sup> कहा गया है और सौंदर्यगाम्त्र ममत्त शरीरविमानवत्ता<sup>२</sup> इस एक ऐसा प्रीडा मानते हैं जिसमें मनुष्य अपनी शक्ति और ऊर्जा के आधिक्य को निष्कासित करता है, कम करता है। यह बाह्य प्रतीक। एवं चिह्न के माध्यम में मानव-अनुभूतियों की अभिव्यक्ति नहीं है, यह सुखद वस्तुओं का निर्माण भी नहीं है और न जानद ही है यह तो वह साधन है जिससे एक ही अनुभूति में अनन्य हृदय गुम्फित हो जाते हैं और इसलिए यह व्यक्तियों और मानवता के जीवन तथा विकास के लिए अनिवाय है। इसके द्वारा हम अपने समसामयिकों की अनुभूतियों का ग्रहण करते हैं और उन लोगों के साथ तादात्म्य का अनुभव करते हैं जिनकी अनुभूतियों से हम सक्का बंध प्रभावित हो रहे हैं। यदि हममें विचार करने और दूसरों की अनुभूतियों से उद्दीप्त होने की क्षमता न होती तो (टाँसटॉय कहता है) हम असम्य तथा एक-दूसरे से पृथक् ही नहीं एक-दूसरे के शत्रु भी होते। इसलिए बला का बहिष्कार नहीं हो सकता और न यही उचित है कि हम केवल उसी बला को प्रश्रय दें जिसमें सौंदर्य की व्यंजना हो और जो केवल आनंद प्रदान करे। टाँसटॉय के अनुसार, सच्ची बला की पहचान उसकी सामाजिकता

१ मनिफेस्टेशन।

२ इस्थेटिक फिजिऑलोजिस्ट्स।

से हो जाती है। यदि कोई व्यक्ति बिना किसी प्रयास के, बिना अपना दृष्टिकोण बदले, दूसरे व्यक्ति की कृति से इस प्रकार प्रभावित हो उठे कि वह कृतिकार के साथ अथवा ऐसे अन्य व्यक्तियों के साथ जो उसके समान ही प्रभावित होते हैं सामंजस्य का अनुभव करने लगे तो यह मानना होगा कि उसने एक श्रेष्ठ कलाकृति का अनुगोहन किया है।

श्रोचे द्वारा प्रवर्तित अभिव्यजनावाद जिसे आचार्य शुक्ल ने वक्रोक्तिवाद का विलायती उत्थान कहा है पारश्चात्य काव्यशास्त्र में (और अब आधुनिक भारतीय काव्यशास्त्र में भी) एक विशिष्ट स्थान रखता है। चूंकि काव्यशास्त्र पर श्रोचे की प्रथम पुस्तक की रचना मन् १९०२ में हुई थी, इटली के बाहर कुछ ममीसको की धारणा रही है कि श्रोचे का काव्यशास्त्र विषयक यही एकमात्र यागदान है। वस्तुतः इसके प्रकाशन के पश्चात् पचास वर्षों तक श्रोचे ने साहित्य और समालोचना विषयक अपने सिद्धांतों का संप्रोधान-परिवर्धन किया और, जैसा कुछ लोग कहते हैं, उसने चार भिन्न भिन्न काव्यशास्त्र रचे। इसमें सदेह नहीं कि श्रोचे के विचारों के विकास की चार पृथक्-पृथक् अवस्थाएँ हैं। सर्वप्रथम उसका यह सिद्धांत है कि सहजानुभूति ही अभिव्यक्ति है। यह उसके १९०२ में प्रकाशित "इम्पेटिव" में मिलता है। दूसरी अवस्था में उसका गीतात्मक सहजानुभूति<sup>१</sup> का सिद्धांत आता है, जो दो दशकियों तक उसकी व्यावहारिक आलोचना का आधार रहा था और जिसका प्रतिपादन सन् १९०८ में हुआ। उसका तीसरा सिद्धांत जागतिक सहजानुभूति<sup>२</sup> का है जिसका प्रतिपादन सन् १९१८ में हुआ और जिसका प्रतिबिम्ब एरिआस्टो शेकमपियर तथा गेटे पर लिखी गई समीक्षाओं में मिलता है। चौथी और अंतिम अवस्था वह है जिसमें वह साहित्य को काव्य से पृथक् करता है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन सन् १९३६ में तथा इसका प्रयोग परवर्ती आलोचनाओं में हुआ है। स्पिनगान ने सन् १९२३ में ही लिखा था कि युवावस्था में लिखे गए 'इम्पेटिव' में श्रोचे के दान और समीक्षा विषयक यागदान का समुचित मूल्यांकन नहीं हो सकता। यहाँ यह भी स्मरणयोग्य है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे भारतीय समीक्षक श्रोचे को ठीक-ठीक तभी समझ सकत थे जब कि उसके समस्त सिद्धांतों अंगरेजी अनुवादों में उपलब्ध रहने। श्रोचे के १९०२ वाले "इम्पेटिव" का अंगरेजी अनुवाद जब १९०६ में तैयार हुआ था उस समय श्रोचे अपने सिद्धांत की दूसरी अवस्था में

१ लिखित इम्पेटिव।

२ शैक्षणिक इम्पेटिव।

प्रकाश पर पुनः या भीरु जन् १८२२ में उमर विभाग का एक जन्म गणनाजित गणना प्रकाशित हुआ, उमर समय तक जो जो आता जाया जाता महजानुभूति-गणना विज्ञान का प्रतिपादन कर दिया था। जब भाषा का विज्ञान का प्रतिपादन करता था तब-तब वह गाम्भीर्य और प्रकाश अभिजात गणना पर भिन्न भिन्न रूप प्रकाशित करता था। १८६१ तक 'नमः अधिजात विषयों के रेगरेजी अनुवाद तक नहीं हुए थे।

पूर्ति अभिव्यक्त्यावा आधुनिक हिन्दी-भाषा का एक बहुमूल्य विषय रूप है। प्रायः वे सहजानुभूति आर अभिव्यक्त्या विषय कनिष्ठ विज्ञान का गणित विवरण देता यहाँ अप्रागणित नहीं होता। प्रायः अनुवाद महजानुभूति को निती स्वाधीनी की जाय-यवता नहीं होता और न इस बाई आधार ही चाहिए। इस दूसरे में नेत्र भी नहीं चाहिए, क्योंकि इस भाषा ही उच्च भाषा के रूप प्राप्त हैं। सभी-सभी सहजानुभूति में प्रतिपाद्य या विचार का भी अन्तभाव पाया जाता है<sup>२</sup> परन्तु अनन्तों सहजानुभूतियाँ म एम बाध का लक्षण भी नहीं रहता जिससे स्पष्ट है कि सहजानुभूति में एम बाध का रहना आवश्यक नहीं है। सच्ची सहजानुभूति के लिए वास्तविकता और अवास्तविकता का पथक्य बहिर्गम और गौण है। वस्तुतः सच्ची सहजानुभूति अभिव्यक्ति होता है।<sup>३</sup> जो अभिव्यक्ति में मूल या व्यक्त नहीं हो सकती वह सहजानुभूति न होकर केवल एक सव्यक्त मात्र है। जो व्यक्ति अभिव्यक्ति में सहजानुभूति का पथक्य करता है वह पुनः समोजित करने में उस समयपि सफलता नहीं मिलती। अभिव्यक्ति (अभिव्यक्त्या) के अर्थ को भी ठीक-ठीक समझने का प्रयास करना चाहिए। प्रायः इसमें प्रायः भाषागत या शाल्किक अभिव्यक्ति ही समझते हैं। परन्तु अभिव्यक्ति केवल भाषा के माध्यम से ही नहीं, रंग और स्वर के माध्यम से भी होती है। अभिव्यक्ति चाहे चित्रात्मक शाल्किक या सगतात्मक ही क्या नहीं वह सहजानुभूति का ही एक अभिभाष्य अंग है। सहजानुभूति सच्ची तभी होती है जब उसमें अभिव्यक्ति की भी क्षमता निहित रहे। उदाहरणार्थ किसी रंग चित्र की सहजानुभूति तभी सच्ची समर्थ। सत्यगी जय उसका विम्ब हमारे

१ "इष्टयुक्ति नॉलेज हैज नो नोड आव अ मास्टर"। श्रोत्रे, इस्थेटिक (१९६०) पृ० २।

२ "इट इज पासिबल टु फाइण्ड कसेप्टस मिगल्ड विद इष्टयुक्ति"। उपरिक्त.

३ "एवरी टू इष्टयुक्ति आर रिप्रजेण्टेशन इज ऑलसो एक्सप्रेसन"। श्रोत्रे, इस्थेटिक, पृ० ८।



different to later empirical discriminations, to reality and to unreality, to formations and apperceptions of-space and time which are also later intuition or representation is distinguished as form from what is felt and suffered from the flush or wave of sensation or from psychic matter, and this form thus taking possession is expression To intuite is to express, and nothing else ( nothing more but nothing less ) than to express <sup>1</sup>

ये विचार ही प्राचे के अभिव्यजनावाद व भूलाधार हैं। उसके अनुमार 'वस्तु', भाव और अलवार की पृथक् सण्ड-व्यवस्था अनगण्य है। इसी प्रकार "प्रस्तुत और अप्रस्तुत का भेद भी सवया मिय्या है—जिसे प्रस्तुत अथ कहा गया है वह भिन्न अथ है उक्ति का समग्र अथ ही प्रस्तुत अथ है। <sup>2</sup> कुछ लाग सहजानुभूति को पदाय-बोध <sup>3</sup> का पर्याय समझते हैं जो भ्रामक है। कभी-कभी सहजानुभूति का प्रमाण किसी तथ्य के तत्काल ज्ञान के लिए वरत है किंतु प्राचे के मतानुसार सहजानुभूति किसी तथ्य का उल्लेख या कथन मात्र नहीं है। दगन म इस शब्द का प्रयोग स्वयसिद्ध तत्त्वार्थों और सूत्रों के ज्ञान के लिए होता है। इसे हम "कोर्टेसियन सहजानुभूति कह सकते हैं किंतु यह श्रोचे की सहजानुभूति से भिन्न है, क्योंकि उसकी सहजानुभूति किसी तथ्य का औपचारिक विवरण या कथन नहीं है—वस्तुतः यह विवरण या कथन तो बिलकुल ही नहीं है। श्रोचे की सहजानुभूति "कोर्टेसियन" सहजानुभूति से भिन्न और वाण्ट की सहजानुभूति के अनुकूल है। जमन म इण्टयूशन के लिए Anschauung शब्द का प्रयोग होता है जिसका जर्मनेजी म कोई ठीक-ठीक पर्यायवाची शब्द नहीं मिलता। Anschauung की परिभाषा एक जमन दगनशास्त्रीय शब्दकोश मे यह मिलती है दि इम्मिडियट काग्निशन आव अत्रा-नीट आब्जेक्ट इन इट्स डिटेमिनेशन्त आव स्पस एण्ड टाईम।" <sup>4</sup> इस प्रकार यह शब्द श्रोचे के intuzione से मिलता जुलता है।

१ उपरिखत, पृ० ११।

२ डा० नगेद्र, भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका (दिल्ली, १९३३), पृ० २३६।

३ पसंशन।

४ दे० गायन एन० जी० आसिनी, बेनेडेट्टो श्रोचे (१९६१), पृ० ३२।

सहजानुभूति पदाय-बोध नहा है, क्याकि पदाय-बोध म पदाय की स्थिति अनिवाय है, पर सहजानुभूति उसके अभाव म भी हाती है।

यदि हम काव्य को सहजानुभूति-मात्र मान लें ता हमसे एक साथ ही कितनी ही समस्याया का समाधान हो जाता है। यदि काव्य केवल सहजानुभूति है ता इसके विवेचन म आलोच्य कवि के जीवनवृत्त और कलाकृति की शलीलता-अशलीलता आदि का परीक्षण निरर्थक हो जाता है। अपने सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप देते समय आंचे ने 'डिवादन कॅमिडी' में निहित उपदेशों की व्याख्या, गेटे की जीवनवृत्तमूलक आलाचना आर शेक्सपियर के पात्रों का मनावज्ञानिक विक्षेपण प्रस्तुत नहीं किया। इस प्रकार उसके सिद्धांत सामयिक आलोचना की कतिपय मूल मान्यताया का समयन करते दीव पडते हैं।

सहजानुभूति सावभौम की अभिव्यक्ति न होकर व्यक्ति की व्यजना है—सावभाम का ज्ञान कब तक शक्ति से हाता है। आंचे के अनुसार अभिव्यजना के पूव हमारे पास कुछ भी नहा होना। सहजानुभूति व्यक्ति की व्यजना है, या या कह कि सहजानुभूति विगिष्टीकरण की क्रिया है। अस्पष्ट और धुंधले चित्र उस सहजानुभूति के घातक है जो स्वयं स्पष्ट नहीं है। यह अस्पष्ट सहजानुभूति एक "अनुभव" मात्र है, सहजानुभूति का धुंधला अस्फुट आरम्भ मात्र है। रोमांटिक कविया म उम समय भी काव्य-सृजन की प्रवृत्ति मिलती है जब उनकी सहजानुभूति अस्पष्ट रहती है कारण व अपने का उस समय यथाय की अनुभूति के निकट समझन हैं। आंचे के विचारानुसार जहा निम्नकोटि के कलाकार अपने व्यक्तित्व के चिन्ह अपनी कलाकृति म छोड देते हैं, वही उच्च कोटि के कलाकार उन चिन्हां को पूणतया मिटा डालते हैं।<sup>१</sup>

इसम सतह नहीं कि प्रत्येक युग अपनी आवश्यकताया और उपलब्धिया के आलोक म अतीत का मूल्यांकन करता है। आधुनिक पाश्चात्य समीक्षका ने भी यही किया है। फिर भी ममीशा के क्षेत्र म वहा भी सक्क की घर्चा होने लगी है<sup>२</sup> और एम० रेमण्ड पीकड तथा एम० आर० वायेंज के रसीन-संबंधी वाद विवाद में एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गई है। इधर हिन्दी म कतिपय समीक्षक यह

१ "द बड आर्टिस्ट लीव्ज टुसेज ऑव हिज पसनलिटो इन द बक ऑव आर्ट, ह्याइल्ट द ग्रेट आर्टिस्ट एण्टायली इरेजेज देम" —दे० ए० इ० पविल, द रोमांटिक थियरी आव पोपट्री (लंदन, १९२६), प० २९।

२ द टाइम्स लिटररी सप्लिमेण्ट, जून २३, १९६६, प० १ ("थाइसिस इन प्रिटिसिज्म")।



कहते सुने जा रहे हैं कि 'हिन्दी आलोचना का गुरु से ऐसा रग-ढग रहा है कि आलोचना के नाम पर जो भी जा कुछ लिख दे, उस आलोचक की सना दे दी जाती है।'<sup>१</sup> वाद विवाद, तर्क वितर्क, खडन मटन के बीच ही समीक्षा का उत्भव और विकास हुआ है और ऐसा अनुमान करने में कोई आपत्ति नही होनी चाहिए कि भविष्य में भी समीक्षा क्षेत्र में ऐसे ही स्वस्थ वाद विवाद, तर्क वितर्क एवं खडन-मटन होत रहेंगे ।

---

१ डा० कुमार विमल(सम्पा०), अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, (पन्ना, १९६५), प० ४६ ।

## हिन्दी की सैद्धांतिक आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव

“स्वतंत्रता के बाद हमारे बहुत से तरुण लेखकों और कलाकारों की पर्यभ्रष्ट करने में पाश्चात्य साहित्य की इन प्रवृत्तियों का बड़ा हाथ रहा है।”

—शिवदान सिंह चौहान, साहित्य की समस्याएँ, पृ० ५

नये सिद्धान्तों की स्थापना एवं प्राचीन मतों की नयी व्याख्या से तथा साहित्यालोचन के क्षेत्र में एकदेशीयता और गतानुगतिकता के परित्याग से हिन्दी की आधुनिक समीक्षा का सूत्रपात होता है। नवीन चिंतन पर आधृत यह समीक्षा सम-वयशील बही गई है। ‘आधुनिक समीक्षा की मौलिक विशेषता यह है कि वह सम-वयशील रही है। स्वतंत्र चिंतन, उदार दृष्टिकोण और तत्त्वावेपी मनोवृत्ति का परिणाम है किसी हीन वृत्ति या मोहाव दृष्टि का नहीं।’<sup>१</sup> इस प्रकार प्रवृत्तियों में ऐसे मेधावी एवं स्वस्थ-मुग्धी समालोचक रहे हैं जिनके व्यक्तित्व और संवेदनशीलता पर प्राचीन भारतीय चिंतन तथा उन अधुनातन विचार-भरणियों का प्रभूत प्रभाव पड़ा है जो पाश्चात्य सभ्यता-संस्कृति के विभिन्न तत्त्वों से निर्मित हुई हैं। वस्तुतः आधुनिक समीक्षा ही नहीं जपितु आधुनिक भारत का भी विकास पश्चिम के ‘पूर्णाधिक’ प्रभाव तथा उसके विरुद्ध प्रतिनियता के फलस्वरूप हुआ है। सिद्धांत विवचन में जनक ऐसी उपयोगी वस्तुएँ मिल जाती हैं जो पाश्चात्य साहित्य से अपने मूल रूप में उद्धृत कर ली गई हैं।<sup>२</sup> फिर भी आधुनिक हिन्दी समीक्षा पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्तों का यथावत आकलन और पुनरावृत्ति

१ आलोचना, जनवरी १९५९, पृ० २९२।

२ आलोचना, अप्रैल १९५९, पृ० ७।

नहीं है। इसमें रुढ़ सिद्धांत और इसके भावना द्वारा गृहीत प्रतिमान चिर ग्रन्थ पौरस्त्य परंपराओं से उतना ही संश्लिष्ट हैं जितना अंगरेजी समीक्षा यूनानी तथा रोमीय समीक्षा-परंपराओं से। कुछ नये समीक्षा की रचनाओं के मूल में अनुकरणवाद का प्राधान्य अवश्य लक्षित होता है परंतु हिन्दी के मूधय अधुनातन समीक्षा ऐसे अतिवाद से सवया मुक्त हैं और जानते हैं कि प्रभाव और अनुकरण दो पृथक् वस्तुएँ हैं—एक के द्वारा जीवन मिलता है ता दूसरे के द्वारा जीवनापहरण होता है प्रभाव गति और शिक्षा प्रदान करता है अनुकरण जड़ और पगु बनाता है।<sup>१</sup>

सिद्धांत प्रधान आलोचना में ससृष्ट काव्य शास्त्र तथा पारंप्रात्य साहित्य-सिद्धांत के आगे के म अथवा दोनों के समन्वय पर सिद्धांत प्रतिपादन की प्रवृत्ति मिलती है।<sup>२</sup> सद्धांतिक आलोचना सामान्य मूत्रा के आधार पर उन भंग-उपभंग और बर्णों की स्थापना करती है जिनका साहित्य के परीक्षण-मूल्यांकन में प्रयोग होता है। इसमें उन प्रतिमानों का निश्चितीकरण हाता है जिनसे साहित्य के गुण-दोषों को नापा-तोला जाता है। इस प्रकार की आलोचना में अनुगम विधि से युगीन साहित्य के आधार पर साहित्य-सवधी सामान्य सिद्धांतों के निरूपण का प्रयास किया जाता है। किन्तु सिद्धांतों का निरूपण-सचयन कोई सरल कार्य नहीं होता क्योंकि साहित्य की जितनी विधाएँ हैं उनमें प्रत्येक के अपने-अपने तथा प्रत्येक साहित्यकार के पथ-मथक सिद्धांत होते हैं। इतना ही नहीं प्रत्येक उत्कृष्ट कलाकृति कुछ-न-कुछ वशिष्ट्य लिये होती है तथा नव्य अनुभूतियों का सप्रपण करती है। वह पूर्वनिर्मित सिद्धांतों की उपेक्षा करती हुई चाहे नव्यतर सिद्धांतों का निर्माण करती है या सवया उन्मुक्त होती है। समीक्षा सिद्धांतों के क्षेत्र में जो “अराजकता” अथवा अस्त-व्यस्तता देरी जाती है उसका मूल कारण यही है कि साधारण वस्तुएँ भी दशकों में विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उदीप्त करती हैं। एक साधारण-सी कविता विभिन्न पाठकों में (तथा एक ही पाठक में विभिन्न अवसरों पर) विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ प्ररोचित करती हैं। तब तो इस बात में सदेह नहीं रह जाता कि दुरूह तथा सकुल काव्य के अध्ययन में उदबुद्ध प्रतिक्रियाएँ और भी नानारूप तथा बहुरंगी होगी।<sup>३</sup> इसलिए समीक्षकों

१ आलोचना, अक्टूबर १९५७, पृ० ४८।

२ हिन्दी साहित्य की, १, पृ० १२४।

३ आई० ए० रिचर्ड्स से, द प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म (लंदन, १९४७), पृ० ९।

द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त अपनी नानारूपता, विविधता के कारण "वर्गीकरण की समस्या" उपस्थित करते हैं।

सामान्यतः साहित्य के सिद्धान्तों के निर्माण, सवलन तथा विवेचन को सद्भातिन आलोचना कहते हैं। उपलब्ध साहित्य के आधार पर समीक्षक उसके मूलभूत सिद्धान्तों का आवलन प्रस्तुत करते हैं अथवा उन सिद्धान्तों का निर्माण करते हैं जो कालान्तर में संपूर्ण वादमय के नियामक प्रतिमान बन जाते हैं। इसी प्रकार कभी-कभी कवि भी पाठकों की सुविधा के लिए अथवा अपने आश्रयदाताओं और सरकारों के लिए अपने काव्य के प्राणभूत तत्त्वा, अंगोपांग, उसमें प्रयुक्त अलंकारों और काव्यगत विशेषताओं का सामान्य परिचय देते हुए सद्भातिक समीक्षा की जीवन्त परंपरा को गतिमान रखते हैं। जब समीक्षक और कवियाँ द्वारा निर्मित सिद्धान्त और समीक्षा के प्रतिमान रुढ़ हो जाते हैं तब वे साहित्य की नई विधाओं का समावेश नहीं करते। काव्य-कविकाव्य वृत्ति वाले कुछ परंपरावादी (टामस राइमर-भरीखे) समीक्षक प्राचीन सिद्धान्तों के निरूपण पर नये साहित्य और नयी विधाओं की परीक्षा करना चाहते हैं जिसके फलस्वरूप उद्धार नैराश्य का अनुभव होता है। अरस्तू द्वारा निर्धारित मानदंडों में जब शेक्सपियर के नाटकों के मूल्यांकन का प्रयत्न हुआ तब उसमें दोष-ही-दोष दृष्टिगत हुए। इस कारण प्रत्येक युग के लिए यह आवश्यक है कि वह नये-नये प्रतिमान बनाये और प्राचीन साहित्य का नये ढंग से, नये मानदंडों और सद्यः निर्मित साहित्य के आलोक में, परीक्षण-समीक्षण करे। "साहित्य की अखंड अविरल धारा का तभी उचित विश्लेषण एक मूल्यांकन संभव होता है। अतः सद्भातिक आलोचना के अन्तर्गत काव्यशास्त्र सबंधी सभी प्रकार की नवीन प्राचीन तत्त्व-निरूपिणी आलोचनाएँ आती हैं। सस्कृत में दंडी का काव्यादर्श, विश्वनाथ का साहित्यदर्पण, राजशेखर की काव्यमीमांसा, जगन्नाथ का रस-जगाधर आदि पाश्चात्य साहित्य में अरस्तू, लाजिनस, ड्राइडन पोप, कालरिज, आनरड, एलियट, रिचर्ड्स, त्रोचे आदि की सद्भातिक रचनाएँ, हिंदी में रीतिकाल के लक्षणप्रय, श्यामसुन्दरदास का साहित्यालोचन गुलाबराय का सिद्धान्त और अध्ययन, सुधागु का काव्य में अभिव्यजनावाद आदि ग्रंथ सद्भातिक आलोचना के उदाहरण हैं।"

बाबू श्यामसुन्दरदास के काव्य सिद्धान्तों पर पाश्चात्य समीक्षा-परंपरा का

१ एस० पी० खत्री, शिवदान सिंह चौहान, आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त (दिल्ली, १९६४), पृ० ३३२ से क्र० क्र० ५०।

जितना प्रभाव पगा है उतना भारतीय साहित्यशास्त्र का रहा। जहाँ उतान कला, साहित्य, कविता उपन्यास आदि का विषय किया है यही उनकी पद्धति पश्चिमी है, जहाँ नाटका का समीक्षा और कला का विश्लेषण हुआ है उन पर दोनों साहित्यशास्त्रों का समीक्षित प्रभाव दृष्टिगत होता है।<sup>१</sup> उनका द्वारा प्रस्तुत केवल एक विषय विवेचन मुख्यतः भारतीय परंपरा पर समाहित है। उन्होंने ललित कलाओं में शीघ्र स्थान काव्य-कला का दान हुए कहा है—इसका आधार कोई मूल पन्थ नहीं होता। यह गाम्भीर्य सेना के आधार पर अपना अस्तित्व प्रदर्शित करती है। काव्य-कला का छात्ररूप का कारण—ललित कलाएँ बाह्य ज्ञान का आश्रय लेकर मानसिक भावनाएँ उत्पन्न करती हैं—कला काव्य-कला पूर्णतया आंतरिक ज्ञान पर अवलम्बित रहती है।<sup>२</sup> इस मतवाक्य का मूल में पश्चिम की वह विचारधारा ही है जिसके अनुसार काव्य भी ललित कलाओं में अन्तर्भूत है। 'हमारे यहाँ काव्य की गिनती ६४ कलाओं के भीतर नहीं की गई है। सौंदर्य की भावना को रूप देने में मनोविज्ञान के क्षेत्र से आय हुए उस सिद्धांत का भी असर पड़ा है जिसके अनुसार अतस्मना में निहित अनूप काम-वासना ही कला निर्माण की प्रेरणा करनेवाली अंतर्बल है। योरोप में चित्रकारी मूर्तिकारी नक्काशी, बल्बूटे जादि के समान कविता भी 'ललित कलाओं के भीतर दाखिल हुई, अतः धीरे धीरे उसका लक्ष्य भी सौंदर्य विधान ही ठहराया गया।'<sup>३</sup>

१ डा० नगेंद्र, 'डा० श्यामसुन्दरदास की आलोचना पद्धति', दे० विचार और विवेचन (दिल्ली १९६४), प० ७७।

२ साहित्यालोचन (कांगो, स० १९८४), प० ११-१३।

३ रामचन्द्र गुबल, हिंदी-साहित्य का इतिहास (बनारस, स० १९९९), प० ६३७। इसी सदभ में डा० नगेंद्र की यह समुक्ति ज्ञातम्य है—कला में कविता का अन्तर्भाव सबंध पश्चिमीय सिद्धांत है—जिसका सूत्रपात जमन दाशनिक् 'हीगेल' ने किया था। भारतीय साहित्यशास्त्र काव्य को कला से सबंध पथक रखकर देखता आया है। कला का स्थान हमारे यहाँ काव्य की अपेक्षा अत्यंत निम्न रहा है—काव्य का सबंध जहाँ अभीतक रस-वेतना से है, वहाँ कला का सबंध नतिक जावन विलास से है। इसीलिए एक को जहाँ ब्रह्मानंद सहोदर की पदवी दी गई है, दूसरे को नागरिक जीवन का शृंगार-भात्र माना गया है।—विचार और विवेचन, प० ७७।

- वाबू साहब पर पाश्चात्य समीक्षा-परंपरा के प्रभाव की गम्भीरता का अनुमान निम्नलिखित पंक्तियाँ में लिया जा सकता है। 'साहित्यालोचन' की भूमिका में पुस्तक-प्रणयन के लक्ष्य की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा है

मेरा उद्देश्य इस ग्रन्थ का लिखन में यह रहा है कि भारतीय तथा यूरोपीय विद्वानों ने आलोचना के संघर्ष में जो कुछ लिखा है उनके तत्त्वा को लेकर इस रूप में सजा दूँ कि जिसमें हिन्दी के विद्यार्थियों का किसी ग्रन्थ के गुण-दोष की परख करने और साथ ही ग्रन्थ निमापण या काव्य-रचना में कौशल प्राप्त करने अथवा दोषों से बचन में सहायता मिल जाय। इस दृष्टि से मैं कह सकता हूँ कि इस ग्रन्थ की समस्त सामग्री मैं दूसरा से प्राप्त की है। परंतु इस सामग्री को सजान, विषय का प्रतिपादन करने तथा उसे हिन्दी भाषा में व्यंजित करने में मैं अपनी बुद्धि से काम लिया है। अतएव मैं कह सकता हूँ कि एक दृष्टि से यह ग्रन्थ मौलिक और दूसरी दृष्टि से दूसरे ग्रन्थों का निचोड़ है।<sup>१</sup>

- 'साहित्यालोचन' भारतीय तथा पाश्चात्य समीक्षा-विद्वानों का 'मिलाने का ययासक्ति उद्योग' है। वाबू साहब के अनुसार केवल विचारों की नयनता और विनिष्टता ही मौलिकता नहीं कहलाती। विचारों का अभिव्यक्ति करने की मौलिकता भी एक प्रकार की मौलिकता ही है। इस दृष्टि से 'साहित्यालोचन' में पूर्वाप्त मौलिकता का समाहार है- इसमें पाश्चात्य समीक्षकों के विचारों को 'जहाँ भी परिभाषित और संस्कृत करके' आगे बढ़ाया गया है और अन्यान्य विचारों की छाप' में उन्हें अभिनव रूप दिया गया है। किसी कलाकृति के मूल्यांकन की 'सच्ची कमीठी तो यह है कि उसने समाज के ज्ञान भांडार का कुछ बढ़ाया या नहीं। यदि वह उसमें वृद्धि करने में समर्थ होता है, तो अवश्य वह अपनी सच्ची मौलिकता का परिचय देता है।' इस निष्कर्ष पर परखन से 'साहित्यालोचन' में भरपूर अभिव्यक्तिगर्ण मौलिकता दीख पड़ती है।

परंतु 'साहित्यिक आलोचना' के इस आद्य ग्रन्थ से "हमारे अपने साहित्य की परंपरा के अनुकूल एक सलिल आधुनिक काव्यशास्त्र का निर्माण नहीं हो पाया है। उन दिनों यह समझ भी न था कि "पूर्वात्य तथा पाश्चात्य का मिश्रण ही समझौता का अन्वेषण कर विश्व-संस्कृति की सापेक्षता में आलोचना का अन्तराष्ट्रीय मानक का निर्धारण" हो सके। वाबू साहब को

१ साहित्यालोचन (सं० १९८४), पृ० ७।

घमी प्रसस्त आधारभूमि नहीं मिल पायी थी, जसी डा० नगेन्द्र को मिली है और न हिन्दी समीक्षा भांडार उन दिना यसा समुद्र ही था, तसा आज है। इस कारण वाचू साह्य ने प्राचीन भारतीय वाच्यशास्त्र का नई आलोचना-पद्धति से विचार विवेचन नहीं किया है और न पाश्चात्य सिद्धांत का विवेचन भारतीय आलोचना-पद्धति से। "वाच्यालोचन म अधिवांगत पाश्चात्य समीक्षा सिद्धांत की "यथायत् अवतारणा' ही हुई है। पुस्तक के अंत म समर्पित तथा सहायक ग्रन्था की अनुक्रमणी दी गई है जिससे इसने उत्गम-स्रोत का पता चलता है

वेन—रेट्रिक, दि इमोशन ऐंड द विल,

डोवी—साइकोलाजी

हडसन—ऐन इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी आव लिट्टरेचर,

वीथ—द वदिक आल्यान ऐंड दि इडियन ड्रामा, जे० आर० ए०

एस०, १६११,

मैकडनेल—सस्रृत लिट्टरेचर,

मिण्टो—मनुअल आव इग्लिश प्रोज लिटरेचर

एम० ए० हरप्रसाद शास्त्री—दि आरिजिन आव इडियन ड्रामा

जे० ए० एस० वी०, १६०८,

रावलिनसन—फौरन इन्प्लुएस इन द सिविलाइजेसन ऑव एसिएट

इडिया ८०० वी० सी० —४०० ए० डी

रिजवे—ड्रामाज ऐंड ड्रामैटिक थैसेज

वास्वनी—द सिनेट आव एगिया

वसफोल्ड—जजमेण्ट इन लिट्टरेचर

इ साइकलोपीडिया ब्रिटनिका—आर्टिकलस् आन पोयट्री डामा, ऐंड

पाइन आटस

इ साइकलोपीडिया आव एथिक्स ऐंड रीलीजन—आर्टिकल आन ड्रामा।<sup>१</sup>

इनसे लेखक ने पुस्तक प्रणयन म सहायता ही नहीं ली इनम कुछ के महत्त्वपूर्ण लेखानो और परिच्छेदो का अनुवाद मात्र भी सकलित कर दिया है। परंतु उसका उद्देश्य किसी मौलिक ग्रन्थ की रचना अथवा भारतीय तथा पाश्चात्य वाच्यशास्त्र का सामंजस्यपूर्ण विवेचन प्रस्तुत करना न था। 'साहित्यालोचन' मूलत एक सामयिक जभाव की पूर्ति का प्रयास और 'स्टापगप' प्रबंध है—एक प्राध्यापक

१ साहित्यालोचन, पृ० ३३३। सशोधित संस्करण मे अंगरेजी पुस्तकों की संख्या ८८ और संस्कृत हिन्दी की केवल ११ है।

के "नोट्स" का संग्रह है। इसके 'सम्पादक' का निम्नलिखित मत है कि साहित्यक आलोचना का यह प्रारम्भिक प्रय इस "गहन विषय के लिए प्रस्तावना का काम दे सकता है।" उसने स्वीकार किया है कि इसमें वैचारिक मौलिकता नहीं है। पाठक तभी शिकायत कर सकते हैं जब इसमें अभिव्यक्तिगत मौलिकता न मिले, क्योंकि पुस्तक का महत्त्व इसमें ही समिहित बताया गया है।

"साहित्यालोचन" तथा 'ऐन इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ लिटरेचर' की निम्नलिखित पंक्तियों के युगपत् विश्लेषण से बाबू साहब की अभिव्यक्तिगत मौलिकता पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। यह मौलिकता बोरे सम्पादक और अनुवादक की मौलिकता नहीं है अनुदित पंक्तियाँ म लेखक की सजनात्मक प्रतिभा का पर्याप्त प्रतिबिम्बन हुआ है

साहित्यालोचन (द्वितीय संस्करण)

ऐन इन्ट्रोडक्शन

(प ४४) अतएव किसी साहित्य के (p 31) Thus in our study of अध्ययन में ऐतिहासिक दृष्टि से हम दो literature on the historical side बातों पर विचार करना पड़ता है—एक we shall have to consider two बातों उनके परंपरागत जीवन पर अर्थात् things—the continuous life or उसके जातीय भाव पर और दूसरे national spirit in it and the उस जीवन के परिवर्तनशील रूप varying phases of that continuous life, or the way in which जातीय जीवन किस प्रकार मिला- it embodies and expresses the मिला समयों के भावों को अपने में changing spirit of successive अन्तर्हित करके उह व्यक्तित्व करता है। ages First, what do we mean अतएव किसी जाति के काव्य-समूह when we speak of the history या साहित्य के अध्ययन से हम यह जान of any national literature of the सकते हैं कि उस जाति या देश का history of Greek, or French, मानसिक जीवन कैसा था और वह or English literature ? श्रमण किस प्रकार विकसित हुआ।

(पृष्ठ ४६) साहित्य का अध्ययन (p 33) The study of literature भी एक प्रकार का पर्यटन या देश-दृशन is a form of travel it enables ही है। उनके द्वारा हम अन्य देशों और us to move about freely among जातियों के मानसिक तथा आध्यात्मिक the minds of other races with जीवन से परिचय प्राप्त करते और this additional advantage that,



उनस निपटस्य सग्रह स्थापित कर्णे as Professor Barrett Wendell  
 उपाजित पान भाडार व रगाम्बान्न म has happily said it gives us  
 ममय होते हैं। देग-रगा के लिए की the power of travelling also in  
 गई साधारण यात्रा और गार्हसा यात्रा time We become familiar  
 म बडा भेद है। साधारण यात्रा तो not only with the minds of  
 किसी निदिष्ट काल म ही कर सात हैं other races but with the minds  
 पर साहित्यिक यात्रा के लिए काल का of other epochs as well  
 कोई बघन नहीं। यह यात्रा हम चाहे The history of 'any nation s  
 जिस काल म कर सकते हैं। तात्पर्य यह literature then is the record  
 कि हम किसी भी जाति की, किसी भी of the unfolding of that nation s  
 काल की विद्वन्मंडली से, जब चाह, genius and character under one  
 परिचय प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए of its most important form of  
 किसी प्रकार का अवरोध या बघन expression  
 नहा है।

(पृष्ठ ६४) पश्चिमीय विद्वाना (p 64) Poetry says Johnson is  
 ने कविता का लक्षण भिन्न भिन्न प्रकार "metrical composition it is  
 से किया है। जानसन का मत है— the art of uniting pleasure  
 'कविता पद्यमय निबन्ध है। मिल्टन with truth by calling imag-  
 के अनुसार 'कविता वह कला है जिसम ination to the help of rea-  
 कल्पना शक्ति विषय की सहायक son and its 'essence is  
 होकर सत्य और आनन्द का परस्पर invention What is poetry  
 समिश्रण करती है। कार्लायल के asks Mill but the thought  
 अनुसार कविता संगीतमय विचार and words in which emotion  
 है। रस्किन का कहना है— कविता embodies itself ? By poe-  
 कल्पना शक्ति द्वारा उदात्त मनोवस्तिया spontaneously try says Mac-  
 के श्रेष्ठ जालबना की व्यञ्जना है।" aulay we mean the art of  
 कार्लायल कहता है "कविता वह कला employing words in such a  
 है जो संगीतमय भाषा म काल्पनिक manner as to produce an  
 विचारा और भावा को यथाय व्यञ्जना illusion on the imagination  
 से आनन्द का उद्रेक करती है।' वाटस the art of doing by means  
 डटन का कहना है— 'कविता मनो of words what the painter

वगमय आर मगातमय भाषा म मानव does by means of colours ' अनकरण की मूल और कामक व्यजना है।" मन्कृत माहिकवारा ने बविना (वाव्य) का "रमाय अथ का प्रतिपादक" जववा "रमायक वाक्य" क्त है। पर इन मत्र राना से हमार मनाप नहा हाका।

(पठ ३११) इम प्रकार वह हम (p.268) Thus explaining, unfolding illustrating he will show आदि की दृष्टि में वह ग्रन्थ क्या है। us what the book really is—its इस दशा म उम ग्रन्थ के गुण या दाप content its spirit its art and लोका के सामने आपने आप आ thus done he will leave it to जाएंगे। पन्तु आलाचना का यह काम justify and appraise itself वह अपनी निज की रीति से करेगा। 'To feel the virtue of the poet or the painter to disengage it to set it forth—these says Walter Pater are the three stages of the critic's duty

उन मने उद्धरण में यह स्पष्ट है कि वावू साहब केवल अनुवाद-मात्र से अनुष्ट हानवात व्यक्तिया म न ये। उनका सबध हटमन के मूल भावा से है उनकी भाषा म नहीं। इम कारण अंगरेजी माहित्य की इन लोकप्रिय भूमिका का बडे ही स्वतंत्र टग में अनुवाद" किया गया है। वही मूल पक्तिया की व्याख्या की गई है, वहा उनस नय विचार मपकत किय गए हैं और वही उन पर भारतीय रग षडान के लिए उनम प्रयुक्त पश्चिमी नामा को हटा दिया गया है। वहा-वहा रानक न विवच्य विषय का अधिकाधिक मौलिक बनाने के लिए उससे भारतीय आचार्यों के मत अनुमूत कर दिय हैं। परिवर्द्धित संस्करण तक आते-आते पुस्तक का मातिकता निखर उठती है—उनका स्वरूप और भी बदल जाता है। पुस्तक के प्रथम संस्करण की बात कुछ और थी। उन समय न तो लेखक

१ दूसरे संस्करण में (जिसका इस प्रबंध में उपयोग हुआ है) पहले की आवृत्ति

हिंदी की सहायिक आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव :: १६१

का दृष्टिकोण ही परिपक्व हुआ था और न उसे पारचात्य साहित्यशास्त्र को पचाकर आत्मसात करने का अवकाश ही था।<sup>१</sup> सशोधित सस्करण तक आते आते "उसके विषय प्रतिपादन में अपनापन आ गया है और इसे पढ़कर एक साथ सखलित अथवा अमोलिक नहीं कहा जा सकता।"<sup>२</sup>

"साहित्यालोचन" के सशोधित सस्करण (मवन १८८४) में 'साहित्य' को रसात्मक काव्य के पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयुक्त किया गया है। इसका उद्देश्य (काव्य प्रयोजन) केवल मानव मस्तिष्क को सतुष्ट करना ही नहीं मानव जीवन को अधिक सुखी और सुन्दर बनाना भी है।<sup>३</sup> साहित्य का लक्ष्य प्रमाता को रसाभिभूत करना ही नहीं उसके जीवन में 'सुन्दर' की प्रतिष्ठा करना भी है। सत्साहित्य में शिव और सुन्दर का मणि-वाचन संयोग मिलता है। होरेस के काव्य प्रयाजन संबंधी विचार इतालवी समाक्षका की रचनाओं के माध्यम से नवजागरणयुग का प्रभावित करते हुए तथा सिडनी आदि लखको और स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के संशुद्ध पठपोषण के फलस्वरूप यहाँ तक आ पहुँचे। श्यामसुन्दरदास में बिकटोरियन नतिकता और रामाटिक पाशयनवादिता का युगपत समाहार है। साहित्य का लक्ष्य पाशयन क्रिया में साहाय्य प्रदान करना है साहित्यकार कीटस की भाँति ललित-कल्पना के पला पर व्याम विहार करता है। 'साहित्य के सहारे मनुष्य जीवन के दुःख और सतटा को क्षण भर के लिए

मात्र हुई है। इसकी भूमिका में लेखक ने इसके कारण का निर्देश किया है 'इधर प्रायः डेढ़ वर्षों से मैं निरंतर अनेक प्रकार की मानसिक चिन्ताओं तथा शारीरिक व्याधियों से पीड़ित रहा हूँ, और मुझे इतना भी अवकाश न मिला कि मैं इसे दोबारा पढ़ सकूँ। इसलिए विवग होकर यह सस्करण ज्यों का त्यों प्रकाशित किया जा रहा है। यदि ईश्वर की इच्छा हुई तो अगले सस्करण में आवश्यक सुधार कर दिए जायेंगे।" परन्तु प्रथम चार आवृत्तियों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया था।

१ डा० नगेन्द्र, "विचार और विवेचन" (१९६४), प० ८४ (इस पृष्ठ पर सशोधित सस्करण के समय में डा० नगेन्द्र के विचार द्रष्टव्य हैं।)

२ उपरिक्त (श्यामसुन्दरदास की आलोचना-शाली पर डा० नगेन्द्र के विचारों के लिए पृष्ठ ८५ देखिए)।

३ साहित्यालोचन (सं० २००६), पृ० ४३।

भूत सकता है वह आपदाओं से भरे हुए वास्तविक संसार को छोड़कर कल्पना और भावना के सुन्दर लोक में भ्रमण कर सकता है”<sup>१</sup> शैली के अनुसार मन्वाव्य एक ऐसा चिर-प्रवहमान निचर है, जिससे तत्त्वज्ञान और आनन्द का म्निग्ध-भावन सल्लि बराबर उमड़ता-छल्लकता रहता है। कविता आत-आविग्न क्षणा में स्नेहाद्र आस्वासन का संचार करती है। इसी प्रकार जेम्स हनरी ले ह्प्ट न कविता का सत्य और सौंदर्य के लिए एक प्रवत् राग (पेशन) कहा है। उन्नीसवीं शती की रामाटिक कविता आत्मनिष्ठ आत्माभिव्यक्ति है—दस युग के कवि-समीपक कविता का आत्माभिव्यजन का माध्यम मानते आर अपनी कविताओं में स्वानुभूति का बड़ा ही मार्मिक स्पाकन करते हैं। श्यामसुन्दरदास पर इन्हीं कविता की विचार धारा का प्रभाव है। उनकी अभिरुचि विकट्राग्यिन काव्य पर, पा-ग्रेम की ‘गाल्डेन ट्रेजरी’ पर, हटसन और बेसिल वसफान्ड की समीक्षा पर जाश्रित है। ब्लेक, शैली, विकटर ह्युगो नोचे वार ह्लिटमन आदि की तरह उनकी भी धारणा है कि “साहित्यकार में स्वानुभूति एक अत्यन्त आवश्यक गुण है, आर अनुचित रीति से दूसरे का पदानुगामी हाना अत्यन्त दाय है।

‘अभिव्यजना का शक्ति’ में लेखक ने जिस अभिव्यजना की खचा की है वह नोचे की महजानुभूति (अभिव्यजना=कला) नहीं है—यह एक सामान्य मानव-गुण है। मनुष्य के मन पर बाह्य सष्टि की विविध वस्तुओं के नानाविध प्रभाव पड़ते हैं, जिन्हें अभिव्यजित करना मनुष्य के लिए अनिवाय-सा<sup>२</sup> होता है। अभिव्यक्ति का यह गुण मनुष्या में नैसर्गिक होता है उनके अस्तित्व का माय लगा हुआ होता है। मनुष्य का मन्तिष्क जिस पर सपूण जीव-जगत् के चित्र स्वतः प्रकित होन रहते हैं वडा ही सवेत्नशील एक भावप्रवण हाता है आर चाहता है कि उन चित्रों को गोचर रूप में प्रकित कर लिया जाय। तभी कला की उत्पत्ति हानी है। इस तरह के विचारा में नहीं अपितु उनकी प्राजत् सगकन अभिव्यक्ति में अभिनवता आर मालिकता दखी जा सकती है। इन समस्त विचारा का भूत में पास्चाय सौंदर्यशास्त्र है, जिससे पर्याप्त उपयोगी सामग्री का आकलन हुआ है। प्राचे के अनुमाग कता “प्रभावा” की—इम्प्रेसान्” की—अभिव्यक्ति है श्यामसुन्दरदास के अनुसार ‘बाह्य जगत् की भिन्न भिन्न वस्तुओं का जमा प्रतिबिम्ब मानस-मुकुर पर पड़ता है कला का मौघा स्रवण उन्नी स है। <

१ साहित्यालोचन, पृ० ४३ ।

२ साहित्यालोचन, पृ० ४ ।



मान्यताओं में समसादर्य की आरंभ भी सकेत दिया गया है। हमारी "सतत वद्धमान विवेकशक्ति" एवं "सतत उत्तरीणील इच्छा-शक्ति" हमारी भावना-शक्ति के साथ जुड़ी हुई है, अभिन्नतया संपन्न है, और साहित्य का सबंध उन मानव-व्यापारों से है जिनमें भाव की प्रधानता रहती है। एक पाद टिप्पणी में लेखक ने स्वीकार किया है कि 'हम भाव और भावना का एक ही अर्थ में प्रयोग करते हैं, पर जागे चतुर्भुज भाव का पारिभाषिक अर्थ में भी प्रयोग होगा।' पहले के मनावनानिका के अनुसार सबप्रथम चान की उत्पत्ति हानी है, फिर भाव उठते हैं और अन्ततः अंततः कम में प्रवृत्ति हानी है। यद्यपि आज यह प्रश्न विवाद-ग्रस्त है, फिर भी मन की वस्तुओं के सबंध में (जो चानप्रधान भावप्रधान एवं कमप्रधान हैं) मनावनानिका में मतभेद पाया जाता है। भारतीय साहित्य में इहा तीनों की चर्चा ज्ञान, भक्ति और कम के नाम से बार-बार हुई है।

वाकू साहब ने संपुष्ट एवं अनेक्य दृष्टांतों के आधार पर अपने विवेचन का गितान्यास नहीं किया और न उन भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियों के नाम बताए, जिनके मन यहाँ उद्धृत हैं। विवेचन का सामान्य इतिवृत्तात्मक स्तर पर रखने का कारण गायद उनकी यह धारणा रही हो कि पाठकों के लिए ये मनवाद विर-परिचित सिद्धांत होंगे, न कि भौतिक तथ्य अथवा गहन गवेषणा-मूलक अध्ययन पर आधुनिक कतिपय बहुमूल्य निष्कर्ष। सबप्रथम प्रमाता विवेचन का प्रासंगिकता और गभीरता का दखते हुए ऐसे विचार का निराधार कहेंगे और पूछेंगे कि यदि लेखक में ऐसी ही धारणा थी तो उसने जान-बूझकर ऐसे छिछले विवेचन से पुस्तक के वांछित स्थापत्य को दुबल क्या होने दिया? परंतु यह भी ध्यानव्य है कि पुस्तक का उद्भव विद्यार्थियों के लिए प्राध्यापकों के "नाट्स" के रूप में हुआ था गायद प्रबंध के रूप में परीक्षकों के लिए नहीं। फिर भी पाद-टिप्पणियाँ जाड़ी जा सकती थीं अथवा विवेच्य सदम में ही आवश्यक सूचनाएँ समाहित की जा सकती थीं। जब संपूर्ण पुस्तक का सहायन-परिवेक्षण हुआ, तब तो इन अभावों की सम्यक पूर्ति हो ही सकती थी। दूसरी बात जो बार-बार खटकती है (परंतु जो अत्रासंगिक-भी लगती है) वह यह है कि 'साहित्यालोचन' में पुनरुक्ति और साधारण-मस्ती पिष्टाक्तियाँ का बाहुल्य है।<sup>१</sup> एक ही बात

१ उदाहरणार्थ 'कला और प्रकृति' (पृ० ७) तथा 'कला और अभिव्यक्ति' (पृ० ३) में इस बात को बार-बार बहुराया जाना देखिए कि बाह्य जगत की भिन्न भिन्न वस्तुओं का प्रभाव मनुष्य के मानस-भुंज पर पड़ता है।

को याद-याद कुछ उल्ट-गल के साथ बड़े की अनुसंधान प्रवृत्ति भी गुणा का छावोदयोगी बानो के मीन्य का समीप बानी है।

'क्या और प्रवृत्ति' म बाबू साह्य ने क्या का रम म उद्भूत क्या प्रवृत्ति क विता की एक ऐसी अभिव्यक्ति का है जो मान्य हून का रगारिा करता है। रम की विगति मातिर मे ही मता अन्य बाना म भा है। विता प्रवृत्ति रम का रगार बानार के हून म रग भावता विना रीगा अपना र्वाविा क साथ उर हागे क र्गि उता हा बागारिता (गर्वाई) क रग उर र्वा कता कता म समीप हा ता उर अभिव्यक्ति म रग र्वाता अपना पाता समान की भी उता ही तुलि हा मता है। मनुष्य मनुष्य क हून-गाम्य का मी रग्य है कि बानार का आगम्य का मर्या भार उमता क्या बग्यु म विगि हातर अधिराधिर मान-ममान का रगारिा करन म सम्य हा है। बग्यु उर कभी बानार का जाता अपना जग-मर्या अनुभव मर्या तहा हाता सब क उर उरिा रीति म र्वा कता कता म कृताय रग हाता और मान-ममान उमती वृति म तुलि तहा प्राप्य कता। <sup>१</sup> रग र्वाविा क र्वाता का उद्भूत साधारणीकरण का विवषय प्रगुा करना नग है कता हगता का र्वाविा का उल्ट-गरार भारतीय रग-मरिधा म र्वा का प्रपल क र्वा हा है। <sup>२</sup> 'प्रयता' रगारिा कि कहा-नहीं उमके विवषय म अग्यता एय रगिगता क दोष पाय जाते हैं। बाबू साह्य ने कहा है कि 'प्रवृत्ति की आर मनुष्य निगमन आरुष्ट रहता है क्वाकि उमग उमती वासनाभा की तुलि हाता है। <sup>३</sup> 'निसमन का कारण वाक्य के र्ग रिया विगपनारमा वाक्यगड म वनग्या गया है— 'क्वाकि उमता वासनाभा की तुलि होती है। कि वासनाभा की? उत्तर बुवाजी की इन र्वाविा म मिलता है 'सच्चे कवि का हून्य उमक (प्रवृत्ति क) हा सब र्वा म लीन होता है क्वाकि उमके अनुराग का कारण अपना राम गुण भाग नहीं बलि विर-साहषय द्वारा प्रतिष्ठिा वासना है। <sup>४</sup> बाबू साह्य

१ उपरिक्त, प० ७ ।

२ हडसन के अनुसार किसी कलावृत्ति के मूल्यांकन की सर्वोत्तम कसौटी 'वास्तविकता' ('सच्चाई—'सिरोटि') ही है (दे० १९५८ वाले संस्करण में पृष्ठ २७, ९०, १३३ इत्यादि) बाबू साह्य की इन र्वाविा के भावाय हडसन की पुस्तक के प्रथम परिच्छेद में देखे जा सकते हैं।

३ साहित्यालोचन (सं० २००६), पृ० ७

४ चिन्तामणि (१९४०), भाग १, पृ० २०४, द्रष्टव्य 'शोभा और सौंदर्य

इस सबध में मौन हैं। वे पुन कहते हैं "इम नसगिक् आवपण का परिणाम यह होना है कि मनुष्य प्रकृति के उन चित्रों को अपन हृदय के रस से मिकत कर अभिव्यक्ति करता है और वे ही भिन्न भिन्न कलाओं के रूप में प्रकट हो मानव-हृदय का समाहित करत है।" एतदय प्रकृति के चित्रों की अभिव्यक्ति कला-सृष्टि है, प्रकृति के भिन्न भिन्न चित्र कला हैं और कला-सृष्टि का मूल कारण "नसगिक् आवपण" है। परन्तु पूर्व पृष्ठा में लखन ने अभिव्यक्ति की नैसर्गिक प्रवृत्ति को ही कला-सृष्टि का मूल कारण कहा है। एत अन्य स्थल पर (पृष्ठ ३) उनमें अभिव्यक्ति की विभिन्न विधियाँ का कला को सना से अभिहित होने का उल्लेख किया है। 'अभिव्यक्ति की शक्ति के अन्त में "अभिव्यक्ति" की कभी अभिव्यक्ति नहीं रह जाती, श्रोत्रों की "अभिव्यक्ति" बन जाती है जो कला है या सहजानुभूति है।

हडसन की पुस्तक में ही मानसिक क्रिया के निदिष्ट विभागों का उल्लेख और विशदीकरण मिलता है,<sup>२</sup> परन्तु बाबू साहब ने इस प्रसंग के संशोधन के अनन्तर इसे इम ढंग में प्रस्तुत किया है कि इममें नवीनता आ गई है। किन्तु "कविता और संगीत" कविता का "कला-मन" जस अनेक प्रकारों में, जो कितने ही पाश्चात्य उदयम-मन्याना से निम्न जान पड़ते हैं कई ऐसे कथन समाविष्ट हैं जिनसे साहित्यालोचक सहमत न होंगे। एवं स्थल पर बाबू साहब ने कहा है कि "भावा की अभिव्यक्ति की शली ही कविता और कला का रूप धारण करती है।"<sup>३</sup> यहाँ "मोड" जयवा "स्टाइल" और "एक्सप्रेसन" को कविता कला की सना दी गई है। अभिव्यक्ति की शली में रीति में, काव्य निहित होता है। यह अभिजात दृष्टिकोण है बाबू साहब का मौलिक और बुनियादी दृष्टिकोण नहीं। इसी प्रकार यद्यपि यह मत्व है कि संगीत द्वारा हृष, करुणा आदि मनोभावा की अच्छी अभिव्यक्ति होती है, फिर भी यह कहना युक्तिसंगत नहीं जैचता कि बाह्य जगत के चित्रण में संगीत का कोई हाथ नहीं और कि संगीत-

---

की भावना के माय जिनमें मनुष्य-जाति के उस समय के पुराने सहचरों की वापसपरगत स्मृति वासना के रूप में बनी हुई है जब वह प्रकृति के खुले क्षेत्र में बिचरती थी, वे ही पूरे सहृदय या भावुक कहे जा सकते हैं।" (पृ० २०५)

१ साहित्यालोचन, (स० २००६), पृ० ७

२ ऐन इष्ट्रोडक्शन (१९५८), पृ० १४।

३ साहित्यालोचन (स० २००६), पृ० ९३।



द्वारा एम दिगी मुद्र का घटनाभा का घना नहीं कर साता।<sup>१</sup> अन्त एम हा धर्नात दग स बाबू साह्य । पहा है ति भागीत का का जाना न अपन पनित्त सवध र्हा है। यह एा अध्यापन सामाजाति क र्हा म हा स्वीटा होगा। भागीत का जीवतार भाष्यामिा मूल्या म भी जपन पनित्त सवध र्हा है। दगिा जाप्यामिा धामिा पन को विम्भुा करन हुए दगता पापियता पर क दना जीता र्हा जात पना । तिनु एगत क पन म यह यात अक्य कही जा सता है ति उगत जागन' म घानिाति अथ का विगपिा र्हा तिवा—रा गता है उमम पास्तीतिा जीवन की आर षगिा उपलभिता हा । का प्रवाजन (वाप्याता) विषय विषय म उगत प्लेटा और जस्नु क विाारा क साप ही "का क तिा का" माल मिडान की आर भी सवा तिवा है। उता विषय म उगमीर सव्यनिाता है उवानिा विन्तेपण। दम सव्य पर भी गहनप्राप्य पाचाय मना का समजिन सार-मभापन नहा मिलता। विवधन का स्तर यही भी निम्न है । सपना एा प्राजना की दष्टि स "साहित्यालापन' क प्रारम्भिन अनाधिन सस्वरण अनेगाहन अधिन निर्णय थे। सागाधिन सस्वरण म नवान सामग्रा का जास्वर र्हा विस्तार प्रसारण अवश्य हुआ है<sup>२</sup> परन्तु इससे कही नहीं पुनरुक्ति वधनविग्राध विषय आदि दोष आ गए हैं। उाहरणाय बाबू साह्य की निम्नलिखित उक्तिया म चितनी साधकता है यह नय वजानिा सिद्धता के आलाव म छिपी नहीं है। उन्हाने कहा है

- (१) "साहित्य का प्रभाव भी साधारण जीवन की घटनाभा की जेगा अधिन तीव्र और गहरे रूप म पन्ता है। वह प्रभाव वह रस इसीलिए अलौकिा कहा गया है।"<sup>३</sup>
- (२) "यूरोपियन कलाास्त्री शोचे भी साहित्य की प्रक्रिया का

१ जान पडता है, 'सगात' का प्रयोग इसके अत्यन्त सीमित-सकुचित अय में हुआ है। प्रीनींग लेम्बन, हडसन प्रभृति तदयुगीन समीक्षकों के कला सागीत विषयक विवेचन पर बाबू साह्य का यह प्रकरण आधारित जान पडता है।

२ सशोधित सस्वरण मे ३१७ पृष्ठ हैं जिनमे प्रत्येक पर सामान्यत २८ पक्तिया मिलेंगी, आरम्भिक सस्वरणों मे कुल ३३२ पृष्ठ हैं और प्रत्येक पर २४ पक्तिया।

३ साहित्यालोचन (स० २००६), प० ३५ ३६।

आध्यात्मिक कहता है। प्रायः रस संप्रदायवाला का अलौकिक और त्राचे का आध्यात्मिक एक ही है।<sup>१</sup>

यदि प्रमाता की दवात किसी दुघटना के कारण चोट पहुँचे तो उससे जो व्यथा हागी, वह क्या प्रसरता में उमसे कम होगी जो साहित्य में वर्णित किसी घायल व्यक्ति की व्यथा को पढ़कर होती है? इसके अतिरिक्त, जमा त्राचे ने कहा है, क्या अन्वेषण को अनुभूति नहीं बनने इनकी अभिव्यक्ति है— क्या मैं अभिव्यक्ति आवग जीवन में अनुभूत उत्पीड़न-उद्वेगन का यथावत अनुभव नहीं करता, जावन मैं वे स्यू भौतिक द्रव्य हाते हैं, परन्तु क्या मैं रूपावार और स्फूर्ति, जीवन में वास्तविक और मन्चे आवेग हाते हैं क्या मैं सहजानुभूति तथा अभिव्यजना। त्राचे साहित्य की प्रक्रिया को आध्यात्मिक नहीं कहता। उमके अनुसार साहित्य की प्रक्रिया सहजानुभूति की प्रक्रिया है न ता यह प्रयत्न ऐंद्रिय अनुभूति है और न आयात्मिक। त्राचे न तो ऐडिगन से सहमत है, न ता उमके सिद्धांत आई० ए० रिचडस के सिद्धांत से मित्त-जुलते हैं। उमके द्वारा प्रतिष्ठित सहजानुभूति की शक्ति को भी स्वतंत्र शक्ति मान लेने के लिए मनाविना आज तैयार नहीं है। मनोवैज्ञानिक न एक स्वर से कह दिया है कि इस विचित्र शक्ति के लिए मनोविज्ञान में कोई पृथक स्थान नहीं।<sup>२</sup> वावू साहव ने आचार्य गुकल की तरह अभिव्यजनावाद का परोक्षत वनोक्तिवाद का विलापती संस्करण मान लिया है। चकि 'वक्राक्ति चक्र में रस का न्यान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है',<sup>३</sup> और कुन्तक काव्य का चरम लक्ष्य आनंद माते हैं,<sup>४</sup> वावू साहव ने झटपट यह निष्कष निबाल लिया कि 'रस-संप्रदायवाला का अलौकिक और त्राचे का आध्यात्मिक एक ही है।

परन्तु अनुवादों में अभिव्यक्ति मत-मतांतरों का अनुवादकों का अपना विचार मानकर उनकी आगेचना करना न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता। यदि इन पृष्ठों में ऐसा ही किया गया है तो इसका कारण है कि 'साहित्यालोचन' के मंगोदित मन्वरण में पर्याप्त मौक्तिका दखी गई है। यद्यपि अपने मूल संस्करण में भी

१ उपरिदत्त, पृ० ३६।

२ डॉ० नगेद्र, रीति-शास्त्र की भूमिका (दिल्ली, १९६५), पृ० ६८।

३ डॉ० नगेद्र, भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका (दिल्ली, १९३३), पृ० २८९।

४ डॉ० नातिस्वरूप गुप्त, पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धांत (दिल्ली, १९६३), पृ० २०९।



अनुवाद-शली के जीवन गौरव-रूप को देना हो तो सशोधित सस्वरण के पृष्ठ ११४ को देखिए। इस पृष्ठ पर हडमन की पुस्तक के १६५८ वाले सस्वरण के तीन पृष्ठा (६०, ६८, १०३) की विषय-वस्तु केवल एक पन्ने में सम्मोहित है। गद्यकाव्य के विवेचन में भी पाश्चात्य ग्रन्थों का सम्यक् उपयोग हुआ है। दृश्यकाव्य के विवेचन में सक्त्तत्रय ("मानविकी पारिभाषिक कोश" के अनुसार "अन्वित्रय"), अनुकरण सिद्धान्त आदि का भी समीक्षण हुआ है। इससे यूनानी तथा रोमीय नाटका की उत्पत्ति और विकास का वह समिप्त विवरण भी अनुम्यून है, जो गिल्बर्ट मरे पर बहुत आधारित है। इस समीक्षा की परिणति शेक्सपियर, कानॉल, रमीन, ह्यूगा मालियर, गेटे, शिल्लर, राबर्टसन डब्लन आदि के विवेचन में होती है। उनके उपरान्त समालोचना नई भूमिकाओं की आरंभ-पडती है और नाट्य साहित्य नाट्य-तत्त्वा, नायिका भूतों पर परंपरित किन्तु महत्वपूर्ण विश्लेषण होता है।

पुस्तक के सातवें अध्याय पर भी आलोचना के सिद्धान्त और मानदंड के प्रभूत प्रभाव दबे जा सकते हैं। वावू साहब ने जेफ्रे के उस मतवाद का खंडन किया है जिसके अनुसार 'काव्य का मुख्य उद्देश्य मन का आनंद देना है।' वावू साहब सबप्रियता को ग्रन्थ की श्रेष्ठता का प्रमाण नहीं मानते। पश्चिम में इस विचार-धारा का अब अच्छा प्रचलन है (जो इसकी श्रेष्ठता का प्रमाण नहीं) और रिचर्ड स, पाउट एलियट इसमें निरखनेपन सहमत होंगे। "साहित्यालोचन के सिद्धान्त" (प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म) के उननीमवें अध्याय में जार्ज ए० रिचर्ड स ने "आश्चर्यता का उत्कृष्टता की कसौटी अस्वीकार्य घोषित किया है। अधुनातन पाश्चात्य समीक्षक लोकप्रियता और सनातनत्व का कटाकृति के परोक्षण में मापदंड नहीं बनाते। कभी-कभी विश्व की छिटली-सस्ती रचनाएँ भी लावण्य के अत्यधिक अनुकूल होने के कारण पाठकों में लोक-रुचि-ममत्त एवं सबप्रिय हो जाती हैं और कभी-कभी उच्च कोटि की किन्तु जन-भाधारण के लिए दुर्लभ, रचनाएँ भी अवमान-उपेक्षा पाती हैं। "साहित्यालोचन" में आधुनिक समालोचना का जो वर्गीकरण हुआ है वह भी पाश्चात्य ढंग पर ही हुआ है और विभिन्न समीक्षा प्रणालियों के नाम अंगरेजी समीक्षा प्रवृत्तियों के रूपान्तर

to the fashion of some one else's expression Imitate as he may the native qualities of a man—his inherent strength and weakness—will ultimately show through.

(ऐन इण्ट्रोडक्शन, प० २७) ।

हैं। लेखन में इनके पारस्परिक पार्थक्य वपरीत्य का सम्यक स्पष्टीकरण नहीं किया—उदाहरण न देकर केवल इनके आधारभूत सिद्धान्तों का निरूपण मात्र किया है। बाबू साहब ने निष्णातम समालोचना को भ्रमात्मक कहा है— अंगरेजी गद्यान का अनुकरण करते हुए इसका 'मूल्य का भ्रम' कहा है। उन पर पारश्चात्य आलोचना का कितना गभीर प्रभाव है इसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि उन्होंने निष्णातम समीक्षा का दावा का स्पष्टीकरण के लिए हिन्दी साहित्य से उदाहरण नहीं लिए। उन्होंने राइमर एडिसन जानसन का उल्लेख किया है और कहा है कि 'कैक्सपियर और मिल्टन पर फर्मा दनबाळे इन जागेवका का भिन्न भिन्न जोर कभी-कभी मिलकुत विचरीत निगमा को देखकर इन निष्णातका की विचार धारा का ही पता लगता है, 'कैक्सपियर और मिल्टन की कला का नहीं'।<sup>१</sup> पुस्तकालय में लेखक पश्चिमी आलोचना का इतिहास प्रस्तुत करता है।

बाबू साहब की ऐतिहासिक एवं व्यावहारिक समीक्षा पर जो प्रभाव चिह्न दृष्टिगत होते हैं उनका परीक्षण अन्यत्र किया गया है।

#### आचार्य रामचन्द्र गुरुल (क) अनुवाद

गुरुलजी के कतिपय अंगरेजी निबंधों तथा अंगरेजी पुस्तकों के सफल अनुवाद एवं पारश्चात्य मनोविज्ञान पर आद्यत मान्यताओं से उनके अंगरेजी भाषा-साहित्य के ज्ञान का सम्यक परिचय प्राप्त होता है। इस ज्ञान के मूल में जगदीश चरि और लगन रही होगी जिसके कारण गुरुलजी छात्रावस्था में ही स्थानीय मेयो मेमोरियल लाइब्रेरी से अंगरेजी की पुस्तकें लेकर एक एक बजे रात तक पढ़ा करते थे। इन दिनों सरकारी नौकरी के प्रति अपनी उग्र अरिधि दिखलते हुए उन्होंने 'हिंदुस्तान रिब्यू' में एक ओजस्वी निबंध प्रकाशित करवाया जिसका शीर्षक था 'ह्लाट हैज इडिया टु डू ?' इसी प्रकार सन् १९८६ में हिन्दी लेखकों में प्रचलित जननिर्गत कुप्रथाओं की तीव्र गहणा करते हुए उन्होंने प्रयाग के इडियन पीपुल नामक पत्र में एक लेख माला प्रकाशित करवाया जो अतिशय भावोत्तक प्रमाणित हुई। इतना ही नहीं उन्होंने एडिसन के सर्वाधिक उपयोगी निबंधों में ऐसे आनंद इमेजिनगन का सचयन कर उसका एक सरस रोचक अनुवाद किया जो कल्पना का आनंद नाम से अभिहित है।<sup>२</sup>

१ साहित्यालोचन (२००६), पृ० ३४७।

२ 'कल्पना का आनंद' वस्तुतः एडिसन के 'द प्लेजस आफ इमेजिनगन', 'द

सिद्ध भाषांतरकार मूल ग्रंथ की आत्मा का हमारे सामने यथानुसृत प्रकाशित करना है और अनूदिन रचना से वही इस बात का आभास मिलने नहीं देता कि अथवा वे समस्त मूल पाठ नहीं, वरन् कोई नौरस अथवा अभिस्रवित रचना है। विश्व के सिद्ध-सफ़्त अनुवादक का गौरव-वैशिष्ट्य इस बात में निहित रहता है कि वह बहुभाषाविज्ञ होता है कम से कम वह उन भाषाओं पर अपूर्व अधिकार रखता है, जिनमें उसका मूल पाठ है और जिनमें उसे अनुवाद करना है। जिन ग्रंथ का अनुवाद अभीष्ट होता है, उसके अन्तर्गत् में पहुँचकर ही वह उसके मर्म तथा वैशिष्ट्य से अभिज्ञ होता है और उनसे साक्षात्कार करता हुआ उन्हें अभिनव अभिव्यक्ति देता है।<sup>१</sup> शुक्लजी ऐसे ही सिद्ध एवं मर्मो अनुवादक थे।

प्लेजस आफ साइट', 'द ब्यूटी ऑफ द नेचुरल वर्ल्ड', 'नेचर ऐंड आर्ट' जैसे ग्यारह निबंधों का अनुवाद है जो दिसम्बर सन १९०४ ई० की 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित हुआ। शुक्लजी के सभी अनुवादों में इसका एक विनिष्ट स्थान है।

- १ हिंदी के समीक्षकों और अनुवादकों के सामने मातृभाषा में समीक्षा भांडार की संपूर्ण एवं सवृद्धि का प्रश्न था। कभी-कभी वे स्वतः प्रेरणा से नहीं, अपितु पुस्तकों के अभाव के कारण अनुवाद करने को बाध्य होते थे। श्याम-सुंदरदास का 'साहित्यालोचन' इसका एक ज्वलंत प्रमाण है। इसी स्वतः प्रेरणा के अभाव के कारण और परिस्थितियों से विवश तथा अभिबाध्य होने पर कभी-कभी हिंदी की आद्य अनुवाद-पुस्तकों नितान्त नीरस गद्दानुवाद-सा प्रतीत होती हैं। मूलस्रोत की ओर जाने के बजाय इनके लेखक कभी कभी अनुवाद के अनुवाद से, उच्छिष्ट के उच्छिष्ट से सतुष्ट हुए जान पड़ते हैं। (इस संबंध में डा० प्रभाकर माचवे का 'सजनात्मक प्रतिभा और अनुवाद' शापक निबंध द्रष्टव्य है। दे० आनंदप्रकाश खेरमाणी तथा वेदप्रकाश, अनुवाद कला कुछ विचार, नई दिल्ली, १९६४, पृ० १११) सफल अनुवाद में मूल कृति के साथ अभिन्नता देखी जाती है, सफल अनुवादक अनुवादकाय को "प्रीति का काम" समझता है, निरे परिश्रम का नहीं। मौलिक लेखक से इन्हें प्रीति से भी {काम} चल सकता है। अनुवाद में स्व रति से तो चल ही नहीं सकता। बल्कि स्व से शून्य होने की प्रक्रिया उसके लिए आवश्यक होगी।" (जनेद्र कुमार, 'अनुवाद एक विचार'। दे० अनुवाद कला कुछ विचार, पृ० १३१४)

शुक्लजी ने सामयिक लेखकों और पाठकों के सामने अनुवाद का एक

एडिसन के मल्पनावाले निबंध के अनुवाद के अतिरिक्त गुबलजी न टी० माधवराव के "माइनर हिण्टस" का भी अनुवाद किया। "विश्व प्रपच",<sup>१</sup>

मध्यतर आदश उपस्थित किया जिससे फलस्वरूप इन लोगो ने गुबलजी के अनुवाद की भाषा को 'अपनी विचार पद्धति के प्राय अनुदध' पाया। 'विश्व प्रपच' के दकतव्य मे अनुवादक ने कहा या "पुस्तक के भीतर भी स्थान-स्थान पर टिप्पणियाँ लगा दी गई हैं। भाषा के सबध मे इतना कह देना अनुचित न होगा कि उसे केवल हिंदी या सस्कृत जाननेवाले भी अपनी विचार-पद्धति के प्राय अनुदध पाएँगे। कीन-सा वाक्य किस अंगरेजा वाक्य का अक्षरानु अनुवाद है, इसका पता लगाने की जरूरत किसी को न होगी।" (मनोरजन पुस्तकमाला ३३। विश्वप्रपच, १९००, दकतव्य) यह कोई निराधार और अहम्भयतामूलक आत्म-लाघा-मात्र नहीं है। पुस्तक की पाद टिप्पणिया पाश्चात्य चिंतन एव भारतीय दशन मे सामञ्जस्य की प्रतिष्ठा करती हैं अथवा आवश्यकतानुसार दोनों चिंतन प्रणालियों के अंतर पर प्रकाश डालती हैं।

१ 'विश्वप्रपच' और हेकल की 'द रिडल आव द यूनिवर्स' की कुछ महत्वपूर्ण पक्तियों को यदि हम सामानान्तर रखकर उनका योगपदिक विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि गुबलजी ने अपनी पुस्तक मे जमन प्राणितत्त्व वेत्ता के भावो का शत प्रतिशत रूपांतरण नहीं किया है। अनुवाद प्रक्रिया मे

(क) हिंदी या सस्कृत जाननेवालों की विचार-पद्धति का खयाल रखा गया है। इस कारण भाषा-शली पर अधिक बल दिया गया है और मूल पाठ के प्रति कहीं-कहीं अत्यधिक स्वेच्छापुण दष्टि अपनायी गई है। महत्वपूर्ण तथ्य, भाव, वाक्यादि अछूते रह गए हैं।

(ख) लेखक का उद्देश्य सरल-सुल्भ तकनीकी पदावली का निर्माण भी रहा है जिसके फलस्वरूप एक जोर तो बडे ही सच्चे श्रमसाध्य प्रयास के चिह्न धतमान मिलते हैं, वहीं दूसरी ओर अत्यधिक सक्षेपण के कारण उन सभी तकनीकी शर्दों के हिंदी पर्याय रचे नहीं गये जिनका प्रयोग हेकल की पुस्तक मे हुआ है।

निस्संदेह हिंदी मे ऐसी विज्ञान-संबधी पुस्तक के प्रणयन का यह प्रयास स्तुत्य है। इसमे सहज दष्टिगत अनेकानेक दोषावगुण इसकी परम उपादेयता के समक्ष नगण्य-से लगते हैं। परंतु सबत्र ऐसा जान पडता ह कि "विश्वप्रपच" हेकल की श्यात पुस्तक पर आधित एव एसी रचना है, जिसे

“अखंडत्व” तथा आदर्श जीवन” भी क्रमशः “द रिडल जॉव द यूनिवर्स”, “कण्टिन्यूइटी” और “प्लेन लिविंग एंड हार्ड थिंकिंग” के अनुवाद हैं। हिन्दी भाषा-साहित्य की श्री-वृद्धि के लिए यह अत्यावश्यक था कि इसमें अंगरेजी पुस्तक के अनुवाद हो जिनसे पाश्चात्य साहित्य की अमूल्य निधियों से हिन्दी-भाषा का परिचय तो हा ही, साथ ही भाषा में नय-नय भावा के अनुरूप नये-नये शब्द भी निमित्त ह। आधुनिक भौतिकवादी सम्यताशा की दौड़ में सर्वाधिक सफल अंगरेजी सम्यता-संस्कृति ने नयी-नयी चिन्तन-सरणियाँ एवं साहित्यिक बातों को जन्म दिया था और सदय-वृत्त वैज्ञानिक आविष्कारों ने विचारों के व्यापक सूत्र जगत् में नये मतवाद प्रवर्तित किये थे। सत्रहवीं शती में डेक्न से ही इंग्लैंड में बौद्धिक-वैज्ञानिक युग का प्रारम्भ हुआ था जो विकास की अनेकानेक व्यवस्थाओं से हाना हुआ आद्यवर्धि चलता आ रहा है। वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक उन्नति ने साहित्य का भी विविध प्रकार से प्रेरित तथा प्रभावित किया था और उसमें अधिकाधिक बौद्धिक, वैज्ञानिक तत्त्वा की प्रतिष्ठा की थी। सत्रहवीं शती के गद्य की रॉयल सोमायटी के सदस्या और समर्थक ने सर्वाधिक प्राजल बनाया था, स्प्रेट ने ‘मिमरोनियन’ गद्य शैली की तीव्र जालाचना की थी और ड्रायडन, ऐडिसन स्विफ्ट के अभिसरल एवं परिभाजित गद्य शैली के लिए मार्ग प्रशस्त किया था। उन्नीसवीं शती की आध्यात्मिक जाति ने अनेक लेखक और कवियों के आदर्शवाद पर ऐसा सतक प्रहार किया था कि उनकी आस्था डगमगा उठी। वास्तव जगत् का एसी भीषण-व्यापक जाति ने साहित्य-स्रष्टा के अन्तर्गत अनिश्चितता और सदृ के कुहासे से आच्छन्न कर दिया।<sup>१</sup> अभिनव भावानुकूल शब्द और शलिया

हम अनुवाद नहीं कह सकते। हम चाँसर की ‘ट्रायलस’ नामक कविता को जो बुकेचियो की ‘इल फिलोसोफ़ी’ पर आश्रित है अथवा ‘द नाइटस टेल’ को जो बुकेचियो की ‘तेसेद’ पर आश्रित है, अनुवाद-मात्र नहीं मानते। वस्तुतः हम जिन प्रतिमानों से गेक्सपियर के ऐतिहासिक नाटका को और सोलहवीं सत्रहवीं शती की अंगरेजी समीक्षा को (जो यूनाना, इतालवी तथा फ्रान्सीसी की समीक्षा-परंपरा से प्रभावित है) मूढपाकित करते हैं, उन्हीं प्रतिमानों के आधार पर यह निस्संकोच कह सकते हैं कि ‘विश्वप्रपञ्च’ में प्रभूत मौलिकता है और यह हेबल की पुस्तक की अनुकृति मात्र नहीं है। यही बात “अखंडत्व” के संबंध में भी कही जा सकती है।

१ ‘इसी तरह भौतिक विज्ञानों के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए पदार्थ की प्रकृति के नियम, कारण-कारण-प्रकृति आदि के संबंध में पूर्वाग्रहों की



सर्ग—भैरवदेवी साहित्य उन्नतोगर समुद्र होता था। जो साहित्य के एक  
 साहित्य का अनुवाद कई रूपों में किया गया। हिन्दी के दूरगामी सर्ग-सिद्धि  
 । जो साहित्य के संस्कृत और विद्या, के लिए भैरवदेवी का सर्ग-सिद्धि  
 उन्नतोगर एवं संस्कृत कविता के अनुवाद हिन्द-संस्कृत भाग भाग ४  
 गूना साहित्य था। के निर्माण के लिए गुण भूमिका था। भैरवदेवी  
 भाग-साहित्य के विभाग में अनुवादों के जो संस्कृत साहित्य का उन्नत का  
 उन्नतोगर विद्या का। सुवर्ण-संस्कृत-सु ५ संस्कृत में जो संस्कृत का  
 उन्नत हुआ कि भैरवदेवी भाग-साहित्य का संस्कृत एवं संस्कृत विभाग इन  
 साहित्य, सब बड़ी संस्कृत-संस्कृत के अनुवाद हुए और इनका था। हीम-सिद्धि के  
 साहित्य पर अनुवाद रचनाओं के प्रकार का ऐसा संस्कृत का अनुवाद हुआ जो  
 सर्ग-भैरवदेवी के समुद्र अनुवाद-भाग में प्रतिष्ठित है। भैरवदेवी कविता  
 में संस्कृत रचनाओं का अनुवाद में प्रतिष्ठित है। भाग का उन्नत हुआ  
 और भाग, टमा, परिश्रमों को संस्कृत उन्नत भागों के। कि  
 ता संस्कृत के 'संस्कृत विद्या' का रचना की जा साहित्य रोमांचित संस्कृत  
 है अधूरा है। मित्रा, काउंटे, टकाट आदि में भी संस्कृत का ही संस्कृत  
 का संस्कृत साहित्य का संस्कृत है। संस्कृत साहित्य तथा संस्कृत का म  
 एक छा-साठे संस्कृत एवं संस्कृत ( epyllia and epics ) की  
 याद-मा आयी, कि पर भावि-संस्कृत कविता का संस्कृत प्रभाव है। मालों विद्युत्  
 'हारा एण्ड विद्युत्' की, माद-संस्कृत संस्कृत विद्युत् एण्ड विद्युत् एण्ड फीरो  
 आदित्य-संस्कृत की, जो साहित्य संस्कृत संस्कृत-संस्कृत और कि  
 विद्युत् संस्कृत की तथा जम्म संस्कृत संस्कृत-संस्कृत संस्कृत-संस्कृत की  
 संस्कृत भावि-संस्कृत की "संस्कृत-संस्कृत" में उन्नत है। साहित्य का म  
 संस्कृत के साहित्य है अनुवाद प्रकाशित हुए थे किम आभर साहित्य का  
 अनुवाद ( १५६५-६७ ) बड़ा ही प्रभावशाली मित्र हुआ। इसी प्रकार हिन्दी  
 के संस्कृत के लिए कुछ एम ही प्रकाशित हुआ। संस्कृत संस्कृत पुस्तकालय में  
 निम्नलिखित अनुवाद या विद्युत् पुस्तक पर अधुन संस्कृत प्रकाशित हुए

क आद-संस्कृत—संस्कृत और संस्कृत की नीति तथा संस्कृत का साहित्य

पुरानी निष्कयात्मकता मेट हो गली। ललित कला और साहित्य की  
 कला में भी, संस्कृत और प्रकृतवाद के विद्वद, तथा प्रतीकवाद और अन्य  
 आधुनिक धारा की दिशा में, प्रतिप्रिया हुई। " दे० नलिनदिलोचन  
 गर्मा, साहित्य का इतिहास-भाग (पटना, १९६०), प० ५३।

देने तथा उनके चित्त में उत्तम सम्भार उत्पन्न करने के लिए रामचन्द्र गुकल द्वारा प्रणीत। इसका आधार "प्लेन लिविंग ऐण्ड हार्द थिंकिंग" है।

ख आत्मोद्धार—अमरिका के सुप्रसिद्ध हृषी विद्वान् ब्रूकर टी० वाशिंगटन लिखित "अप फ्रॉम स्लेवरी" के आधार पर रामचन्द्र बर्मा द्वारा प्रणीत।

ग जावन के आनन्द—पंडित गणपत जानसीराम ट्रे, बी० ए०, की यह पुस्तक मर जान ट्रेवल्स की 'प्लजस ऑव टाइफ' नामक पुस्तक पर जाघत है।

घ मितव्यय—स्मात्स की "थ्रिफ्ट" के आधार पर रामचन्द्र बर्मा द्वारा प्रणीत।

ङ आत्मनिक्षण—उनकी की रचना "सल्फ-क्वैरर" के ढग पर पंडित श्यामविहारी मिश्र तथा पंडित गुरुदत्तविहारी मिश्र द्वारा लिखित। - -

च जमनी का विकास (दो भाग)—डॉ० हर्बट डॉसन कृत प्रसिद्ध अंगरजी पुस्तक 'दि डवान्म्यान-आफ माइन जमनी' की सहायता से रची गई इस पुस्तक के रचक ह ठाकुर नूयकुमार बर्मा। -

छ विश्वप्रपञ्च—(इसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है।) ल० रामचन्द्र शुक्ल।

## (ख) पांच सिद्धांत

चूँकि गुकलजी का समीक्षा पाश्चात्य एवं पौरस्त्य समीक्षा सिद्धान्त और प्रतिमानों का एक समन्वित तथा प्राणवन्त प्रस्तुतीकरण है इस कारण कहीं-कहीं स्रोत-वचन में लीन समीक्षक कतिपय मूल सिद्धान्तों का विस्मृत कर लेने के कारण शुक्लजी के कतत्व का ठीक-ठीक मूल्यांकित नही कर पाते। गुकलजी उन उच्च कोटि के समीक्षकों में प्रणीत हैं, जिनमें गुण-शाय के सप्रह-स्वाग की नीर-शीर विवकिनी शक्ति कूट-कूट कर मरी रहती है। उनमें किसी वस्तु के गुण-शाय की परत का बड़ी ही तीव्र प्रज्ञा थी, और इसी शक्ति के कारण य आलोचना के क्षण में इतने सफा हुए।<sup>१</sup> निम्नदेह उनके ऊपर पश्चिम का पमूत ऋण है 'किन्तु साहित्य-शास्त्र के मूल प्रज्ञा पर विचार करने समय वे गायद ही किसी पाश्चात्य समीक्षक से आतंकित हुए हैं। रिचर्ड्स बटन अथवा अन्य किसी पाश्चात्य आलोचक का जब कभी भी वे प्रसासपूर्वक नाम लेते हैं, तब उनका उद्देश्य केवल इतना ही होता है कि अपने पक्ष का समर्थन उन विद्वानों के वाक्या

१ निवनाथ, आचार्य रामचन्द्र गुकल (बनारस, २००० वि०), पृ० ८।

से कर सकें। ऐसे आलोचना व विपारा की उद्धरणों अथवा उनका आलोचनात्मक सिद्धांत का भारतीय साहित्य के ऊपर अध्याप्य प्रयोग उद्देश्य नहीं किया।<sup>1</sup> "गुण-शेष की पराई" की इसी "तांत्र प्रणाली व कारण व अन्त और अतिशयता से बचकर मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुए आदर्शरत्ना में अतिशय न पारम्परिक सिद्धांतों को प्रश्रय दिया, न पाश्चात्य प्रतिमानों का। दाना का सामंजस निरूपण बनाया। उनका ध्येयतन्त्र भी समन्वय का ही जन्म अथवा आदर्श था, जिसमें बुद्धि-शक्ति और हृदय-शक्ति का सामंजस और हार्मोनिक प्रयुक्ति का स्पष्टतया समन्वय दीया पड़ता है। इस प्रकार उनका हिन्दी भाषा साहित्य प्रेम और रस की पुनर्जागरण व अनुशीलन-मापान्तरण में अत्यन्त प्रयत्नशील था। बुद्धि की तुलना पर प्रत्येक सिद्धांत अथवा मनःशास्त्र का तान्त्रिक-युद्धियात्न भावक पूर्व-भूत-कारणों का रक्षण है। इसी कारण गुण-शेष की समीक्षा पूर्व-निश्चय की समीक्षा के मान-मूल्यों का एकाग्रण है। निर्गुण व अध्याप्य आश्रय नहीं। एव और ता के उस "मर्यादावादी" का समन्वय करने है जिस तीन सौ वर्ष पूर्व स्वयं शास्त्राचार्य तुलसीदास ने ग्रहण किया था, वही दूररी आर के पश्चिम में आविर्भूत 'विवादावाद' के सिद्धांत एव मनाविज्ञान-ममथित नीतिवादिता का आश्रय लेते हैं और रूढ़ भारतीय तर्कों का निरसन करते हुए इस बात की घोषणा करते हैं कि आरम्भ में ही ईश्वर ने सवरूपण पूर्ण तथा प्रौढ़ मूर्ति का निर्माण नहीं किया था।

शुक्लजी की समीक्षा पर पाश्चात्य मनाविज्ञान एव विवादावाद के जो प्रभाव दृष्टिगत होते हैं उनका विवेचन डा० जयचन्द्र राय, डा० गुलाबराय डा० रामविलास शर्मा प्रभृति समीक्षकों की रचनाओं में हा चुना है।<sup>2</sup> डा० जयचन्द्र राय ने शुक्लजी के मनावज्ञानिक निवेद्यों तथा उनके काव्यगत सिद्धांतों का सूक्ष्म एव सश्लिष्ट विवेचन किया है और बताया है कि शुक्लजी के काव्य सिद्धांतों के मूल में भी मनोविज्ञान का ही सार्वभौमिक प्रभाव था। डा० गुलाबराय के अनुसार

१ डा० जयचन्द्र राय, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सिद्धांत और साहित्य (दिल्ली, १९६३), पृ० ३०-३१। 'रस सीमासा' की भूमिका में विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने कहा है कि शुक्लजी ने 'भारतीय परंपरा को मानते हुए भी अध्याप्य-संरक्षण वही नहीं किया है।'

२ डा० जयचन्द्र राय, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (१९६३), पृ० २७-३३, गुलाबराय और विजयेन्द्र स्नातक, आलोचक रामचन्द्र शुक्ल (दिल्ली, १९६२), पृ० १६१-१७०।

“गुल्जी के मनोवैज्ञानिक निवर्धो मे उनके जीवन सिद्धांत निहित हैं तथा उनकी व्यावहारिक आलाचनाओं के विचारात्मक अंश के बीज भी इन्हीं में मिलते हैं। इस प्रकार इन निवर्धों में वे सम्बन्ध-तन्तु मिलते हैं, जो उनकी सारी कृतियों को संगठित और समन्वित किए हुए हैं।”<sup>१</sup> जहां तक गुल्जी की साहित्यिक मान्यताओं पर साहित्यशास्त्र और समीक्षा के प्रभाव का प्रश्न है, यह मानना पड़ता है कि उनकी समीक्षाओं पर ऐंम प्रभाव के चिह्न बहुत नहीं मिलते, परन्तु उनकी सभी मान्यताओं के मूल में पाश्चात्य मनोविज्ञान के गहन अध्ययन और प्रकाश बंदुप्य का स्वरूप अवश्य दृष्टिगत होता है। जहां डा० जयचन्द्र राय की उपपत्तियां में पर्याप्त सच्चाई है वही इनसे लेखक के यत्किंचिन् दुराग्रह और एकांगिकता का भी बोध होता है। उसने कहा है कि “आचार्य गुल्जी के मुख्य आलाचनात्मक सिद्धान्त (भाव-योग) के घुर मूल में ही पाश्चात्य मनाविज्ञान का बड़ा गहरा प्रभाव है। जो आलाचक किसी पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र का प्रभाव उनकी मान्यताओं में टूटन जायेंगे उन्हें अधिकांश निराश ही होना पड़ेगा। आचार्य गुल्जी ने किसी आलोचक से श्रृण न लेकर पश्चिम से मनोविज्ञान के नूतन सिद्धांतों का श्रृण लिया और अपने मौलिक साहित्यशास्त्र की प्रतिष्ठा की।”<sup>२</sup> यह सत्य है कि गुल्जी ने मनाविज्ञान की पुस्तकों का धर्मसाध्य एवं बहुमुखी अध्ययन किया था, जिसके फलस्वरूप उनके काव्य सिद्धांतों पर मनाविज्ञान का प्रभूत प्रभाव दीर्घ पड़ता है और उन्होंने काव्य-सृष्टि एवं काव्यानुशीलन के क्षेत्र में भावा और भावात्मक हृदय का जो सशक्त समयन किया है उसका भी कारण उनका मनोविज्ञान के प्रति अगाध प्रेम ही था, परन्तु गुल्जी की समस्त साहित्यिक मान्यताओं का सौण्ड, स्पेंसर वेन, मेग्डूगल आदि की रचनाओं से हर घड़ी बलान्त जनुस्यूत करना और ‘विनामणि’ के मनोभाव-मवधी निवर्धों पर आवश्यकता से अधिक बल देना असमीचीन जान पड़ता है। वस्तुतः गुल्जी न भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षा-पद्धतियों का ‘समन्वय करके हिन्दी में आलाचना का नवीन माग निकाला है,”<sup>३</sup> पाश्चात्य समीक्षा-पुरम्परा की उपेक्षा नही की है और न वे उससे प्रभाव से अछूते ही रहे हैं। डा० जयचन्द्र राय ने जिम श्रृण की बात कही है साहित्य-क्षेत्र में उसका अर्थ कुछ और ही होना चाहिए। हम श्रृणी उन लोगों के भी मानते हैं जिनकी भाषा-शैली चिंतन प्रणाली हमारे भाषा-

१ गुलाबराय और विजयेन्द्र स्नातक, उल्ल० प्र०, पृ० १६७।

२ डा० जयचन्द्र राय, उल्ल० प्र०, पृ० ३१।

३ गवीरानी गूर्त (सम्पा०), हिन्दी के आलोचक (दिल्ली, १९५५), पृ० ४७।

गली एव भाव धारा को प्रभावित करती है तथा जिनकी साहित्यिक कृतियाँ के अध्ययन से हमारे जीवनाभ्यास और सारी को गरी मनाप्रतियाँ का सम्पूर्ण हाना है। कभी-कभी प्रभाव शालनकारी शक्तियाँ एव साथ ही ममन्वित रूप में हमारे व्यक्तित्व को विशिष्ट स्थायित्व प्रदान करती हैं। सघनतरण करती हैं। एमी अवस्था में यह कहना कठिन हो जाता है कि किन कवि का योगदान किना है परन्तु यह तभी कि लेखक किमी एव न ही प्रभावित हुआ है।

गुल्ज़री की रगवादी मान्यताओं के मूळ में कवना भारतीय चिंतन-ज्ञान और वाच्य-सांस्कृतिक अध्ययन तभी है। उनकी अभिरुचि के निमाण में पाश्चात्य स्वच्छदतावाद का भी अगदान स्मृतव्य है। अपनी अटूट-अगाध भाषानिष्ठा के कारण ही वे उस अतिवादिता के शिवार न हुए जिसकी गहना उन्हाने इम प्रकार की है

- - ठीक-ठीकाने में धरनवाली समीक्षाओं को दग जितना सनोप हाना है किसी-कवि की समीक्षा के नाम पर उसकी रचना से सबका असबद्ध चित्रमयी कल्पना और भावुनता की सजावट दग उतनी ही शानि होनी है। यह सजावट अंगरजी के अथवा बगला व समीक्षा-भ्रम से कुछ विचित्र कुछ विरग्य, कुछ अतिरजित घल्लत शब्द जाग वाक्य अ-सावर सखी की जाती है। बहान-कही तो किमी अंगरजी कवि के सबध में की हुई समीक्षा का काइ खड ज्या का त्या उठाकर किसी हिन्दी-कवि पर मिडा दिया जाता है। ऊपरी रग-भग में ता - ऐसा जान पडेगा कि कवि के हृदय के भीतर सघ लगाकर घुसे हैं और बडे-बडे गूड कोने खान रहे हैं पर कवि व उन्धन पद्या स मिलान कीजिए तो पता चलेगा कि कवि के विवक्षित भावा में उनके वाग्बिलास का कोई लगाव नही। पद्य का आणय या भाव कुछ और है आलोचकजी उसे उदधत करके कुछ थोर ही राग अलाप रहे है।

गुल्ज़री में प्रभावा का पचाने और पूणत आत्मसात करन की अनाखी प्रतिभा थी। इस कारण पाश्चात्य प्रभाव उनकी चनना में इम प्रकार घुलमिग गए हैं कि उनकी स्वतन सत्ता विलुप्त सी हा गई है। गुल्ज़री की समीक्षा-कृतियाँ में अनेक पाश्चात्य कवियाँ और समीक्षका के नाम इतस्तत विखरे मिलते है। कभी प्रस्तुत रूप विधान चर्चा में थियाडार वाटस डटन का नाम आता है कभी प्रत्यक्ष रूप विधान की चर्चा में आर्द० ए० रिचड्स का नाम, कभी शक्सपीयर

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास (स० १९९९), प० ६२५।

आता है कभी बड़-स्वय और शैली । परन्तु इनकी ओर जो सचेत किए जाते हैं उनसे लेखक के प्रभावित होने का बोध नहीं होता—वरन इस बात का द्योतन होता है कि उमने पाश्चात्य साहित्य का गम्भीर तथा व्यापक अध्ययन किया था। वस्तुतः भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षा-परम्पराओं को आत्मसात् कर अपनी चेतना में प्रविलीन कर ही हिंदी के स्वतंत्र काव्यशास्त्र का निर्माण हो सकता था। गुक्लजी की समीक्षा इसी दिशा में एक उत्कृष्ट प्रयास है। यह न केवल एक परम्परानिष्ठ काव्यशास्त्र का पुनराख्यान है, न पाश्चात्य समीक्षा-मिथ्याता का एकनाशही समर्थन। दोनों प्रभावों के सतुलित विलयन पर आधुनिक सतंत्र समीक्षा सर्वप्रथम गुक्लजी की कृतिया में ही देखी जाती है।

अपने स्वतंत्र, वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण के कारण ही वे अपनी समीक्षा में किसी एक ही पद्धति का स्तवन नहीं करते। आवश्यकतानुसार वे भारतीय प्रतिमानों का उसी प्रकार खडन या समर्थन करते हैं जिस प्रकार पाश्चात्य काव्य मूल्या का। उदाहरणार्थ उन्होंने कुन्तक की वक्तव्य ("वक्तव्य काव्य जीवितम्") पर बसा ही 'प्रखर प्रहार' किया है, जसा श्रोत्रे के अभिव्यजनावाद पर। उन्होंने सत्काव्य में वक्तव्य के स्वतंत्र महत्त्व का नहीं माना और न यही स्वीकार किया कि अलंकार-अलंकार में भेद नहीं है। जहां श्रोत्रे के अनुसार वस्तु भाव और अलंकार की पर्याय खड-कल्पना असंगत है, वहीं शुक्लजी के अनुसार अलंकार और अलंकार में अनिवार्य भेद है। श्रोत्रे प्रस्तुत-अप्रस्तुत के भेद का नहीं मानता शुक्लजी इस भेद को स्वीकार करते हैं। शुक्लजी स्वभावोक्ति की अलंकारता में विश्वास नहीं करते, कुन्तक ने भी स्वभावोक्ति के विरुद्ध कई तर्क दिये हैं। फिर भी जहां तक अभिव्यजनावाद (श्रोत्रे) और वक्तव्यवाद (कुन्तक) का मन्त्र है शुक्लजी ने दोनों आचार्यों के साथ अन्वय किया है।<sup>१</sup>

बता जा चुका है कि शुक्लजी की अभिरुचि के निर्माण में स्वच्छन्दतावाद का योगदान अवश्य देना जा सकता है। उन्होंने स्वच्छन्दतावादी कविता और आलोचना की तरह सख रीतिवादिता का खडन किया है और जिस प्रकार रामाटिक कविता ने अठारहवीं शती में नव्यशास्त्रवादी अंगरेज कविता की आलोचना की है उसी प्रकार शुक्लजी ने भी रीतिकालीन कविता के प्रति पूर्ण अन्वय नहीं किया है। रीति-ग्रन्थों की परम्परा के दाया का उदघाटन करते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि प्रकृति की अनेक रूपता, जीवन की भिन्न भिन्न चिंत्य बातें तथा

१ डा० नगेन्द्र, भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका (दिल्ली, १९६३), प० ३१७। श्रोत्रे और कुन्तक के संबंध में शुक्लजी के विचारों के लिए दे० रस भीमाता, प० ३३।

जगत् के नाना रहस्या की ओर (रीतिकालीन) कविया की दृष्टि नहा जान पाई। वह एक प्रवार से बद्ध और परिमित-सी हो गई। उमरा क्षत्र सङ्कुचित हो गया। वाग्धारा बँधी हुई नालिया म ही प्रवाहित हान लगी जिससे अनुभव के बहुत से गाधर और अगोचर विषय रससिक्न हाकर सामन आने स रह गए।<sup>१</sup> रीतिकालीन कविया की तरह नव्यशास्त्रवादी भी पुरातन मान्यताआ का समथन करते थे और जन-जीवन से प्रेरणा न लकर अपनी काव्यसामग्री प्राय राजदरवारा और देश की राजनतिक श्रियागोलता से लत थे। वड स्वथ ने ऐम मिलटनाचित उदात्त काव्य और इसकी भाधारमूत मान्यताआ का तिरस्कार किया और जनजीवन से प्रेरणा लेने तथा उसकी स्वाभाविक भाषा म कविता रचन की ऐतिहासिक घोपणा की। स्वच्छदतावादी काव्यधारा राजदरवार म न निवलकर प्रकृति की सरस गोद से फूटी है और पुरातन रड बघना स 'कप्लेट' के सङ्कुचित क्षेत्र से, सबया उमुक्त है। यही एक और दृष्टि से गुक्लजा तथा स्वच्छदतावादी कविया एव आलोचका म साम्य दीवना है। यद्यपि इन्हान रीति-भरपरा पर सशक्न प्रहार किए और कर्षों अपन पूर्ववर्ती लेखका की गौरव-गरिमा को अपनी आलाचनाआ से आच्छन्न रखा, फिर भी अब पौरस्त्य रीति के प्रति वैसी ही सहानुभूति का उभेप हो खला है, जसी पश्चिम म शास्त्रवाद के प्रति। पश्चिम म रीति की प्रतिष्ठा के लिए जो आदोलन हुआ है उसका नेतत्व टी० ई० ह्यूम, एजरा पाउड, टी० एस० एलियट प्रभति लेखका ने किया और यहा—अपने दश म—प० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० नगेद्र आदि ने।

इगलंड के ब्लेक, यग, शेली आदि कविया ने और जमनी के लेसिंग गिलर गेटे आदि ने कवि प्रतिभा एव भावोत्प्रेरक काव्य का प्रवल समथन एव पोषण किया था। इन स्वच्छदतावादी कविया और लेखको की तरह गुक्लजी भी उसी काव्य का समथन करते हैं जिसम भावोदबोधन की क्षमता हो। इगलड म वड स्वथ ने वक्रता-बधित्रय पर उसी प्रकार प्रहार किया जिस प्रकार भारतवप मे गुक्लजी ने, परतु दाना ने ही भाव प्रेरित वक्रता की उपयोगिता को स्वीकार किया है। वड स्वथ ने जन साधारण की शब्दावली मे काव्य रचना करने का सकल्प किया था परतु उसने आवेग प्ररित अलकारो के प्रयोग का निषेध नहीं किया और कहा—'कुछ अलकार ऐसे भी हैं जो आवेग प्रेरित होते है और मन उनका इसी रूप

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २६४। द्रष्टव्य रस भीमाता मे 'रीति-प्रया का बुरा प्रभाव' (पृ० ७४ ८०)। प० ८९, १००, १०३ आदि पर ध्यक्त ऐसे ही विचार पठनीय हैं।

में प्रयोग किया है।" शुक्लजी ने भी "विदग्धता" को वही तब काव्योपयोगी समझा है 'जहाँ तब वह भाव प्ररित हो—जहाँ तब उसका कारण कोई भाव या कम से कम कोई रागात्मक दशा हो।"<sup>१</sup> काव्य की भावोद्गोचन-सबधी उनकी मान्यताओं के सम्बन्ध विद्वेषण से अनेकत्र उनके रामाटिक पितृत्व और पाश्चात्य मूर्धोत्पत्ति का पता चलना है। उनके अनुसार वन पर्वत, नदी, नाले, नियर आदि हमारे 'चिर महेश्वर रूप हैं," जिनमें 'वगानुगत वासना की दीध-परम्परा के प्रभाव से भावा के उद्वोचन की गहरी शक्ति संचित है।" इनके द्वारा जैसा विगुद्ध रस-परिपाक सम्भव है वसा क-कारवाना से नहीं। कविता इन्हीं प्राकृतिक दृश्या और रूपा के साथ हमारा रागात्मक सबध स्थापित करती है। इतना ही नहीं कविता से हमारी भावात्मक सत्ता का प्रसार हाता है, हम हृदय की मुक्तावस्था का प्राप्त करते हैं। शुक्लजी चाहते हैं कि हम "लहलहाते हुए खेता काला चट्टाना पर चादी की तरह टलत हुए झरना, मजरिया से लगी हुई जमराइया का दल क्षण भर" लीन हो जाय करुण करत हुए पक्षियों के आनन्दान्मव में याग दें आर खिले हुए फूला को देख खिल उठें इत्यादि इत्यादि।

इन पंक्तियाँ में डाविन के विकासवाद, युग के "सामूहिक अचेतन" और पाश्चाय स्वच्छन्दतावादी कवियों के प्रकृति-सबधी दान चिंतन का स्मरण हो आता है। शुक्लजी आर उनके सामयिका ने रामाटिक काव्यधारा के मूधन्य बलाकारों का और वही नहीं तो कम से कम अपन पाठ्य सप्रहा में—पाल्ग्रेन की गाल्टेन टेंजरी—जमी रचनाओं में—साप्तात्कार किया ही होगा। उदाहरण के लिए वडम्बथ की प्रकृति विषयक मनोदृष्टि का विश्लेषण करें। उसके अनुसार 'प्रयक नैसर्गिक चम्त् को एक नैतिक-आध्यात्मिक जीवन मिला होना है, जो मनष्य के साथ साहचर्य स्थापित कर सकता है जो अयन अभिव्यजक होना है और जिसमें अनिवचनीय सादश्य तथा परस्पर-सबध का सौरस्य होता है।"<sup>२</sup> कवि के लिए मानव-जीवा इम मनोहर भूष्य से जुडा सपूरक लात्तिय है। उसके अनुसार मनुष्य प्रकृति के नसर्गिक दृश्या से 'चिर-साहचर्य के कारण

१ अमरगोत सार (द्वनारम, स० १९९६) प० ७१।

२ To him every natural object seemed to possess more or less of a moral or spiritual life to be capable of a companionship with man full of expression of inexplicable affinities and delicacies of intercourse Pater (*Appreciations* 1874)



संपृक्त" जोर उनसे अत्यन्त प्रभावित होते हैं।<sup>१</sup> हो सनता है अपन ललित निष्कप को प्रमाणित करन के लिए ही हमन गुबुजजी के गान्ध्या म पेटर की पकिया का अनुवाद किया हो। पेटर के अंतिम वाक्य म य गान्ध्यातय हैं 'एड लिक्ड टु देम वाइ मनी एमोनिएशंस । डॉ० हरनेव याहरी के अनमार "एसासिएशन के हिन्गी पर्यायवाची गान्ध्या है 'साहचय ममग अनपग मेल।" साहचय ही सत्रसे पहल आया है।

यहाँ यह भी ध्यातय है कि गुबुजजी डाविन के विकामवाद् के प्रति आम्यावान् ये और 'विश्वप्रपञ्च' की विस्तृत भूमिना म उद्दान एनद्रिपयक विचारा का सर्वांगीण जोर सारगभ विवचन प्रम्नुत किया है। 'ट रिप्ल जाव द यनिवस भी जो भापातरित होकर विश्वप्रपञ्च के नाम से अभिहित हुआ विकासवाद का ही पुनराख्यान है जिसम डाविन की वजानिक और जविक उतरतिया का प्रशस्य विशदीकरण हुआ है। विकामवाद के अनुसार मनष्या का विकास प्रकृति की पुरातन व्यापक गोद मे हुआ है इसलिए उनका प्रकृति प्रम जमान्नीय सम्कार से उन्भूत तथा सहजात है। हमारे पूवज के पूवज—जादिम पूवज जिह एक घटक अणुजीव' कहा गया है—प्रकृति की म्निग्ध अनप गान्ध्या म पने और क्रमग विकसित हुए। क्युवियर और लिन के विचार नय तथ्या के प्रकाग म भ्रातिमूत्रक दीख पडे और उनकी जगह नय सिद्धाता को प्रतिष्ठित किया गया। यह सिद्धात अब पूणतया स्थिर हो गया है कि मनुष्य का शरीर अनेक पूवज जतुआ के शरीर से परपरानुसार परिवर्तित होते होते उत्पन्न हुआ है। अत उसके मनोनापाग को हम उसके और शारीरिक यापारा से अलग नहा कर सकते। हम यह मानना पन्ता है कि शरीर और मन दाना का विकास क्रमग हुआ है। अत मनोविज्ञान म यह देखना अत्यन्त आवश्यक है कि किस प्रकार की पशु की जात्मा स क्रमग मनुष्य की आत्मा का विकास हुआ है। जात्मा के जाति-परपरागत विकामक्रम का निरूपण मनस्तत्व विद्या का प्रधान अंग है। एक जाति के जतु स विकास द्वारा दूसरी जाति के जतु की जा दीषपरपरा खी जाई है उमके अवपण क द्वारा आत्मा के विकासक्रम का भी बहुत कुछ पना चत्ना है।<sup>२</sup> चूकि मनुष्य अपने

१ When he thought of man it was of man as in the presence and under the influence of these effective natural objects and linked to them by many associations (Ibid)

२ रामचन्द्र गुबुल, विश्वप्रपञ्च (स० १९७७), मनोरजन पुस्तकमाला २२, नवा प्रकरण ।

जादिम रूप म प्रकृति से अविच्छिन्न था, इस कारण आज भी उािम प्राकृतिक दुःखा के प्रति अनरिमित ममत्व दया जाता है। स्पेसर, डार्विन आदिस उपर्युक्त विकासवाद के इसी मतवाद स जुड़ा हुआ 'गुक्ली' यर वह मिडान भी है जिमके अनुसार साहित्य म मनुष्यतर प्राणिया का भी स्थान भिना चाहिए। मनुष्य मनुष्य के बीच भानु भाव का अवस्थान, निश्चय ही एक अत्यन्त उदात्त रूप की आर मनेन करता है, परन्तु हम यह विस्मय करता नही चाहिए कि हमारे पूवज इन प्राणिया के बीच रहकर ही विकसित हुए म और हमारा भी अधिक विकास 'जरायुज जनुआ' से ही हुआ है।

यद्यपि युग न 'कॉन्ट्रिब्यूशन्स' के मिडान का प्रतिपादन और पल्लवन सन् १९३३ ई० म किया था, फिर भी इसके बीजाकुल जनकी मवप्रथम रचना आन द साइजोंजी एण्ड पयाजी ऑव मा-बान्ड आण्ट फिनामिना' (१९०२) म वतमान है। युग के मतानुसार अचेतन का एक ऊपरी स्तर व्यक्तिगत अचेतन कहा जा सकता है। यह एक एम गहरे स्तर पर जाधिन रहता है जा न ता व्यक्तिगत अनुभूति से सख होता है और न व्यक्तिद्वारा उर्जाजित ही हाता है। अचेतन का यह रूप महजा हाता है और "सामूहिक" भी, चूंकि यह व्यक्तिगत न होकर सावभौम हाता है, व्यक्तिगत मनोघातु (सादवी) के विपरीत इसका आचरण सबके और सभी व्यक्तिया म समान होना है। इसी सामूहिक अचेतन की अन्तवस्तु (contents) का "आर्किटाइप्स" बहन है।

गुक्ली के सादयानुसार कविया का प्रकृति प्रेम सहजान होता है, "सामूहिक अचेतन" म विद्यमान होता है। प्रकृति एक सावभौम आदिमजान (primordial) प्ररूप है जा हमारे अचेतन म मदव वतमान रहता है। मियकों और पगिया की कहानियाँ भी युग के मनोविज्ञान म आचरणा की ही अभिव्यक्ति कही गई हैं। गुक्ली युग के इसी मिद्वान को प्रतिध्वनित करने हुए कविया के प्रकृति प्रेम को 'चिर-साहचय द्वारा प्रतिष्ठित वासना' कहते हैं। "साहचय-मभूत रन क प्रभाव से सामाय भीधे-भादे चिर-परिचित दुःखा मे कितन माघुम की अनुभूति हाती है।' साहचय की भावना हमारे इसी सामूहिक अचेतन मे वतमान हाती है और परिचित दुःखा का दयकर अचानक उन्मुद्ध हो उठनी है। आचरणा ( आर्किटाइप्स ) का उत्प्रेय युग के बहन पहले फिला जूडीयस तथा जारैनिथस न किया था। 'कॉर्पस हेर्मेटिकम' (Corpus Hermeticum) म ईश्वर को 'आर्किटाइप्स लाइट' कहा गया है और यद्यपि मॅट ऑगंस्टीन म 'आर्किटाइप्स' का प्रयोग नही हुआ है, फिर भी इसका भाव De diversis quaestionibus LXXXIII म वतमान है, जहाँ व ideae principales का उल्लेख करते हैं।

“रस-भीमासा” म मनुष्यजी ने कहा है

- (१) सौंदर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है। जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना स तन्माहार-परिणति जितनी ही अधिक होगी उतनी ही वह वस्तु हमारे लिए सुन्दर वही जायगी। किसी वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से हमारी अपनी सत्ता के बोध का जितना ही अधिक तिरोभाव और हमारे मन की उस वस्तु के रूप म जितनी हा पूण परिणति होगी उतनी ही बढी हुई हमारी सौंदर्य की अनुभूति वही जायगी। (प० २४-२५)
- (२) कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वाथ-सबधो के सवुचित मडल स उपर उठाकर लोक सामान्य भावभूमि पर ल जाती ह इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता का लोक सत्ता म लीन किए रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति हाती है या हो सकती है। (प० ५)
- (३) ऐसे आदिम रूपा और व्यापारा म, वशानुगत वासना की दीध-मरपरा के प्रभाव से, भावा के उद्बोधन की गहरी शक्ति सचित है। (प० ६)

स्पष्टत कविता तदनुभूति (एम्पथी) का सवश्रेष्ठ साधन है। इससे पाठका के हृदय म तदनुभूति का—*emfuhlung* का—उद्दीपन होता है और अध्येता वर्णित वस्तुओ से मिलकर एकरूप हो जाते है। काव्यानुशीलन से हृदय को स्वाथ-सबधो से मुक्ति मिल जाती है और हम लोक-सामान्य भावभूमि पर आ जात हैं। इसका कारण यह है कि कविता म उन आवेगा की मूल और कशत्मक अभिव्यक्ति होती है जो कवि के ही नहीं समस्त मानवता के आवेग हीत है। जब कविता प्रकृति के विभिन्न दश्या का रूपायन करती है तब उसकी प्रभावात्पादकता बढ ही नहीं जाती उससे प्रमाता की अन्तस्सत्ता की अविलम्ब तदाकार परिणति” भी हो जाती है। हमारे अचेतन म ही मानव इतिहास की प्राचीन अवस्थाआ की याद अन्तहित है अचेतन के किसी सुदूर काने म मानव-जाति की आदिम अनुभूतियाँ सचित हैं। इसी कारण प्राचीन जातिया म आज भी सामूहिक रूप से जीवन-यापन करने की प्रबल भावना—‘द से स जाव अ टाद्वल मिस्टीक —पायी जाती है। कविता इन्ही अनुभूतिया और भावनाआ को उद्दीपन करती है प्रकृति का वणन इसी कारण प्रभावोत्पादक होता है। इससे

हम तदनुभूति के द्वारा दूसरे के भावा को अपना लेते हैं और हमारे अहम् का इतना प्रसार हो जाना है कि यह पुन अस्तित्व की एक बृहत्तर इकाई का अंग बन जाता है।<sup>१</sup>

हृदय के अनक भावात्मक होने का भाव शैड, स्पेंसर, फ्रायड आदि के मनाविज्ञान से संपन्न है और इन पकितया पर

ऐसे जादिम रूपा और व्यापारो म, बगानुगत वासना की दीध-परपरा के प्रभाव से, भावा के उद्बोधन की गहरी शक्ति सचित है अत इनक द्वारा जैसा रस-परिपाक संभव है वसा कल, कारवाने, गादाम ऐसी वस्तुआ द्वारा नहीं। (२० मी० प० ६)

युग आदि मनोवैज्ञानिका का प्रभाव दीखता है। एक स्थल पर तो शुक्लजी के विचार लिप्स, वॉरिंगर आर युग क विचारा के अनुवाद से दीयते हैं। शुक्लजी के अनुसार 'किसी वस्तु के प्रत्यक्ष गान या भावा से हमारी अपनी सत्ता क बोध का जितना ही अधिक तिरोभाव और हमारे मन की उस वस्तु के रूप म जितनी ही पूण परिणति होगी, उतनी ही बढी हुई हमारी सौंदय की अनुभूति वही जायगी।' (२० मी० पृ० २४-२५) वॉरिंगर के मतानुसार 'इस्थेटिक इज्वायमेण्ट इज आइजैक्टिफायड प्लजर इन वनसेरफ'—सौंदयानुभूति का आनद अपन आप म विषयाश्रित आनद है। अत हम उस ही सुन्दर वहेंगे जिसके रूप म हमारी पूण परिणति हा सक्ती है। (Only that form is beautiful into which one can feel oneself) लिप्स ने कहा है कि सुन्दर वही है जिसके साथ तदनुभूति हो सके। (Only so far as this feeling into extends are forms beautiful Their beauty is simply

- १ We have within our own unconscious a memory of primitive stages of man's history. Traces of these memories may persist as residual deposits which in moments of empathy come more forcibly to dominate our awareness. In some recess of the unconscious which is common to all men the earliest experiences of the race are preserved. The sense of a tribal mystique a feeling of living collectively rather than individually survives in more obvious forms in primitive tribes even today. Robert L. Katz *Empathy* (London 1963) p 66

this my ideal freely living itself out in them<sup>1</sup>) यही इम वान का उल्लेख बाछनीय प्रतीत होता है कि बनाड बोजनविट की पुस्तक 'अ हिस्ट्री आन्ड इन्वेस्टिगेशन सवप्रयम सन् १८८२ म प्रकाशित हुई थी और सन् १८१० तक जाते आते इसने दो जीर सस्तरण निकल चुके थे गुल्जी सम्मनन इम पुस्तक स परिचित थे। इमने आरम्भ म ही लेखक न सौंय को दगन की कल्पना और दष्टि म पस्त कहा है। (हि० इ०, प० ३)

काव्य जीर सष्टि प्रसार के समय म गुल्जी न कहा है 'कविता बाह्य प्रकृति के साथ मनुष्य की अतः प्रकृति का सामजस्य घटित करती हुई उमकी भावात्मन सत्ता क प्रसार का प्रयास करती है।<sup>२</sup> कविता भावा या मनाविचारा के क्षत्र को विस्तृत करती हुई उनका प्रसार करती है। वड स्वयं न कहा है कि 'लेखक का कतव्य पाठका को अनुभूतिशील बनाना या उनकी सवेदनशीलता को अधिन प्रसर बनाना है। उसका (लेखक का) यह कतव्य ऐसे तो बराबर ही सुंदर समुज्ज्वल रहा है, फिर भी उसकी आज जितनी आवश्यकता है उतनी पहले कभी न थी। आज इस सवेदनशीलता को कुठित करनेवाली अगवानेक शक्तियाँ उत्पन्न हो गई हैं।' जब गुल्जी की इन पक्तियाँ पर पुन विचार कीजिए 'एसे आदिम स्था जीर व्यापारा म बशानुगत बासा का दीघ परंपरा के प्रभाव से भावा के उबोधन की गहरी शक्ति सचित है जत इनके द्वारा जसा रस-भरिपाक संभव है वसा कल बारखान गोदाम जमी वस्तुआ द्वारा नही।'<sup>३</sup> 'रस-मीमासा के 'काव्य' (कविता क्या है ?) शीषक निबध म एक स्थल पर उन्हाने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि 'जगल कट-कटकर खेत, गाँव जीर नगर बनते चले जा रहे है। पशु-भक्षिया का भाग छिनता जा रहा है।'<sup>४</sup> वड स्वयं ने भी अपने देश की 'यावसायिक प्रगति पर विशेषत लेत्र डिस्ट्रिक्ट तक रेलगाडिया के विस्तार पर एसा ही शोभ प्रकट किया था।'<sup>५</sup>

'रस-मीमासा' के पष्ठ २० पर कविता के मगलकारी प्रभावा का विगद उल्लेख करते हुए गुल्जी ने उसी स्वर म "कवि-वाणी क प्रसाद" का गान किया

१ देखिए C G Jung *Psychological Types* (London 1949)

p 360

२ रस-मीमासा (कागी, स० २०१७), प० ७।

३ उपरिबत, प० ६।

४ उपरिबत, प० १२।

५ दे० वड स्वयं सेटिनरी स्टडीज (१९६३), प० १२३ १२४।

है जिममें शली न अपनी 'टिफेन्स ग्रॉव पोयट्री' में कविया की गौरव-गानिना की मुक्त-कठ स सराहना की है। कवि-वाणी के प्रमाद से हम भौतिक मुक्त-मुक्त, जानद-स्रोत आदि का स्वायमुक्त भाव में अनुभव करते हैं जिममें 'हृदय का वधन बुलता है और मनुष्यता की उच्च भूमि की प्राप्ति हाणी है।' कविता ही अथपिणाच वृषणा व हृदय में दया श्रद्धा भक्ति जादि सरस भावनाया का उगीपन कर सकती है। यही उनकी एकमात्र दवा है। गेली न एम ही भावा का अभिव्यक्त करत हुए कवि की तुलना उस बुलबुल ("नाडटिंगेल") में की है जो अघकार में बड़ा हुआ मधुर मूच्छना और स्वर राग से अपनी प्रगाट नीरवता को रमदीप्त करने के लिए गाता है। उसके श्रोता उन मनुष्या के समान होते हैं, जो किनी जदृश्य गवये के संगीत में मन्मगध तथा मनु तो हो जात हैं, पर यह नहीं जानत कि क्या और कैसे। गेली न कुछ आगे चलकर कहा है 'श्रोताया की भावनाएँ (हामर की चनाआ में) ऐम महान् एव भव्य परम्प-धारण ('डम्सॉन-नान') में निश्चय ही परिष्कृत एव परिवर्तित हो जाती होगी।' यदि गुक्-जी की भाषा-शैली में कहना चाहें तो कहेंगे कि उनका हृदय ऐसी उच्च भूमि पर पहुँच जाता हागा, जहा उनकी वृत्ति प्रसात और गम्भीर हो जाती हागी उनकी अनुभूति का विषय ही कुछ बरत जाता हागा। - -

काव्य-श्रष्टि के व्यापकत्व एव औदाय का विवचन करते हुए गुक्-जी न कहा है कि यह (काव्य-श्रष्टि) मजीब सृष्टि तत्र ही सीमित न रहकर अपने भीतर जट प्रकृति का भी समाहार करती है। अंगरज स्वच्छदतावादी आलोचना आ-कविया के लिए इस उक्ति में रवमात्र भी नवीनता नहा। दड्-म्वयु के लिए 'सबदना' का एक ऐसा आवेष्टन ही पवांश है, जिममें कवि अपने पत्ता को धारित कर मके। उसके विचारा के लिए सबत्र कुछ न कुछ मौजूद है। चकि कविता मनुष्य एव प्रकृति का प्रतिबिंब है उनका विषय-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हागा ही। सझार व समस्त ज्ञान विज्ञान का आदि और अत कविता ही है—यह बनी ही अमर है जसा मानवहृदय। शक्ति न 'आस्ट्रियान टुवाड ज फिलॉसफी आव नचर' में कहा है कि प्रकृति एक दृश्यामा (भिजिवू-स्पिरिट) है और आमा जन्म प्रकृति, हममें जन्तहित जात्मा एव प्रकृति की आत्मा में पूर्ण साम्य है। एम ही विचारा से अभिप्रेरित हान के कारण स्वच्छदतावादी कवि बन प्राता जात निजम म्वला में भी प्रकृति की जाना का सामान्यार करते हैं। साहचर-

१ Edmund D Jones, *English Critical Essays Nineteenth Century* (World's Classics) p 130

सम्भूत रस के प्रभाव से सामान्य तथा सीध-सादे चिर-परिचित दृश्या से भी उह अन्तर माधुर्य की अनुभूति हाती है। कवि जड पदार्थों में भी उमी प्रकार लीन होता है, जिस प्रकार सजीव प्रकृति और उसके नाना सुन्दर मधुर रूपा म, क्योंकि "उसके अनुराग का कारण अन्तः तम सुख भोग नहीं बल्कि चिर साहचर्य द्वारा प्रतिष्ठित वासना है।"

कविता में "रमानेवाली" शक्ति के कारण ही यूरोपीय समीक्षका ने जानद को काव्य का चरम लक्ष्य ठहराया है जिसके कारण तरह-तरह की भ्रातियाँ फैली हैं।<sup>१</sup> भारतवर्ष में पंडितराज जगन्नाथ ने रमणीयता का काव्य का साध्य स्थिर किया पर गुरुजी के अनुसार मन को अनुरजित करना ही कविता का अंतिम लक्ष्य नहीं स्वीकारा जा सकता—कविता कलात्मक मान की वस्तु नहीं है। इसी कारण के लक्षणा प्रधान 'विद्यापती वक्रोक्तिवाद' का समर्थन नहीं करते। कुतब का 'वक्रोक्ति वाच्यजीवितम्' वहाँ तक ग्राह्य है जहाँ तक वह भावानुभूति हो या किसी मार्मिक अंतर्वृत्ति से संबद्ध हो उससे आगे नहीं।<sup>२</sup> उक्ति-वचित्रप से सत्वाच्य की मुद्रा-स्वाति नहीं बरसती और न उक्ति के अनूठे स्वरूप में ही कविता निहित होती है। इसी कारण गुरुजी ने कर्मिज के काव्य का समर्थन नहीं किया। अभिजातवादी परम्परा पौन के गंगा म कहेगी कि अभिव्यक्ति ही सब-कुछ है रीति और शैली ही काव्य की आत्मा है

टू बिट इज नेवर टु एटवाष्टेज डेस्ट

हवाट आपट वाज थॉट वट नेवर सा वेल एकस्प्रेस्ट।

परन्तु गुरुजी कहेंगे— उक्ति ही काव्य होती है यह तो सिद्ध बात है, परन्तु काव्य का अंतिम लक्ष्य प्रमाता को चमत्कृत करना ही नहीं है। उसका अंतिम लक्ष्य तो जगत के मार्मिक पक्षा का प्रत्यक्षीकरण करने उनके साथ मनुष्य हृदय का सामंजस्य-स्थापन है। चूँकि गुरुजी की विचार धारा पर रोमांटिक विक्टोरियन परम्परा का समीकृत एक युगपत् प्रभाव है के पलायनवादी भाव प्रवणता पर आश्रित रोमांटिक प्रवृत्ति का समर्थन नहीं करने—मनोविज्ञान के एस ममन अधमता से जीवन-वास्तव में पर्याय की जागृ नहीं की जा सकती। अपन युग की प्रतिनिधि समीक्षा होने के कारण गुरुजी की रचनाओं में युग की आत्मा भूत हा उठी है। इसलिए वह एक ओर ता भावना पर व दनी हुई क्षणी का समर्थन करती है और दूसरी ओर जीवन तथा माहित्य के भावा में कोई बुद्धिमान

१ रस-मीमांसा, पृ० २२।

२ उपरिक्त, पृ० ३३।

अन्तर नहीं देखती।<sup>१</sup> इतना ही नहीं, वह रस की स्थिति साहित्य से अलग लाविक जीवन में भी मानती है और रस-दर्शा को लोक हृदय में लीन होने की दशा घोषित करती है। भावना पर, काव्य-सृष्टि में हृदय-मग्न पर, वह दते हुए भी उसका लेखक तत्त्वतः विवासवाद का समर्थक सिद्ध होता है। "वे डार्विन की विचारधारा से प्रभावित ही नहीं, बरन उसे सामाजिक क्षेत्र में स्वयं भी लागू करते हैं।"<sup>२</sup> मैथ्यु ऑनल्ड की तरह एक ओर तो गुब्बोजी स्वच्छतावादी परंपराओं से अनुप्राणित हैं दूसरी ओर ईषत भौतिकवादी "ऐंटी-रामाटिक" परंपराओं से। इसलिए एक ओर तो उनकी समीक्षा में शेली की बार-बार अनुश्रुति है उसका समय है वहीं दूसरी ओर रीति-काव्य की निमग्न बटु आलाचना के साथ ही कविता में नव्य प्रयोगों की अस्वीकृति भी। समन्वयवादी प्रवृत्ति समाप्ता में साकार हो उठी है—एक ओर प्रमाण इस परिभाषा में निहित है "कविता का अंतिम लक्ष्य जगत के मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण करने उनके साथ मनुष्य हृदय का सामंजस्य-स्थापन है। 'सामंजस्य-स्थापना' ही गुब्बोजी की समीक्षा का भी लक्ष्य है—पौरस्त्य समीक्षा के साथ पाश्चात्य समीक्षा का स्वच्छतावादी प्रवृत्तियों के साथ विक्टोरियन मान-भूना का धीरे-धीरे साथ स्पेंसर एवं डार्विन का।

गुब्बोजी ने 'रस-मीमांसा' में जिन पाश्चात्य कवियों की ओर संकेत किया है अथवा जिनकी रचनाओं में उद्धरण लिये हैं—उनमें सर्वाधिक चर्चा शेली की ही हुई है। गेली की 'रिवोल्ट ऑफ़ इस्लाम' का इलियड, आडेसी, पैर-टाइज टाइट के साथ उन काव्यों में परिगणित किया गया है जो "आनंद की माधनावस्था या प्रयत्न-मग्न का लेकर चलते हैं।"<sup>३</sup> इस द्वायक संगबद्ध महाकाव्य में गेली ने 'मनुष्य जाति के उद्धार में रत नायक और नायिका में मगल-शक्ति के अपूर्व सचय की छटा दिखाकर तथा उनके द्वारा एक बार दुर्दान्त अत्याचार के परामर्श के मनोरम आभास से अनुरजित करके अंत में उस शक्ति की विफलता की विपादमयी छाया से लोक का फिर आवन दिखाकर छोड़ दिया है।"<sup>४</sup> जिन रचनाओं में मगल-अमगल का संघर्ष वर्णित होता है उनके रचयिता अंत में

१ डा० रामविलास गर्मा, आचार्य रामचंद्र गुब्बोजी और हिंदी आलोचना (आगरा, १९५९), पृ० ५।

२ उपरिषत, पृ० २४।

३ रस-मीमांसा, पृ० ४६।

४ उपरिषत, पृ० ४८।



बहुधा मगल शक्ति की ही विजय दिखा दिया करते हैं। कुछ लोग रचनाओं को ऐसी परिणति में शिभावाद—डिटकिटसिज्म—की गंध पाकर नाक भी सिनाते हैं। गुलजी उनकी इस प्रतिश्रिया को युक्तियुक्त नहीं समझते। अस्वाभाविकता केवल रचना के अंत में अमगल शक्ति की पराजय दिखाने में नहीं आ सकती। कला-वृत्तियाँ तभी अस्वाभाविक हो जाती हैं जब उनके बीच का विधान ठीक नहीं होता अथवा जब प्रत्येक अवसर पर सत्पात्र विजयी एवं दुष्ट पात्र पराजित दिखाया जाते हैं। कभी-कभी एक ही पात्र में विभिन्न सौंदर्यों का एकीकरण दिखाया जाता है। एक ही पात्र पराक्रम रूप माधुर्य शील स्वभाव सब में लोकांतर बनाया जाता है। इसका कारण कवि की कला विषयक अनभिन्नता नहीं है और न एमा विल्कुल अस्वाभाविक ही होता है। वस्तुतः 'लोक हृदय आकृति और गुण, सादर्य और सुशीलता, एक ही अधिष्ठान में देखना चाहता है। इसी से यत्रावृत्तिमत्त गुणा वसति सामुद्रिक की यह उक्ति लोकनेत्रिण के रूप में चल पड़ी।<sup>१</sup> सब-गुणसम्पन्न नायकों की सृष्टि के मूल में कवि की एक रहस्यमयी हृदयगत वासना है, एक 'रहस्यमयी प्रेरणा' है, जिसके कारण उसकी कल्पना में विभिन्न प्रकार के सौंदर्यों का मल आप-से-आप हो जाया करता है। शैली के साथ भी यही बात हुई है। उसने भी अपने प्रवचन काव्या में रूप सौंदर्य और कम सौंदर्य के अदभुत संभव का विधान किया है। उसके नायक और नायिकाएँ पराक्रमी, उदार और धीर तो होती ही हैं वे रूप माधुर्य में भी अद्वितीय होती हैं। (गुलजी शैली से उदाहरण देकर ही सतुष्ट नहीं हो जाते। उनमें निहित समीपता की दृष्टि से भारतीय वाङ्मय कभी ओझल नहीं जाता इसलिए प्राचीन तथा अर्वाचीन भारतीय साहित्य से भी कुछ और उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं।)

गुलजी काव्य का उत्पन्न केवल प्रेमभाव की कोमल व्यञ्जना में नहीं मानते टालसटाय तथा कलावादियों के उन मतवादों को वे स्वीकार नहीं करते, जिनके अनुसार काव्य का उत्पन्न साधुता सहनशीलता और गत वृत्ति के चमत्कारपूर्ण प्रयोग में है। उनकी कसौटी तो गैली के 'महाकाव्य द रिचार्ड चार्ल्स इस्लाम' के पात्र हैं जो अत्याचारियों के पास जाकर न ता गिडिगिडाते हैं न अपना गत वृत्ति का जाडवर प्रदर्शन करते हैं। वे कमठ एवं सात्विक तज में तमतमान बातें एस व्यक्ति हैं जिन्हें आततायियों की सेवा करनेवाला क प्रति स्वामानिक चिन्त है। गुलजी के अनुसार गैला न भी प्रेम भाव का ही अपनी काव्यकला का आधारभूत तत्त्व माना था, परन्तु यह प्रेमभाव टालसटाय के प्रेमभाव से सबथा

भिन्न है। चूँकि गैली का नायक लोकपीठा और अत्याचार को सहन नहीं कर सकता, वह उत्साह में भरकर प्रचंड वेग से अपने प्राणा की बाजी लगा देता है। टाल्सटॉय ने साम्प्रदायिक कारणों से अभिभूत हो, मनुष्य मनुष्य में भातृ-प्रेम-संसार को ही एकमात्र वाच्यत्व कहा और कलावादियों ने “मनोरजन-मान की हल्की रुचि और दृष्टि की परिमिति के कारण” केवल कोमल और मधुर की लीक पकड़ी। परंतु माधुय भाव की कोमल व्यजना को ही अपना धर्म लक्ष्य न मानकर शैली ने भावा की अनेक रूपता का विन्यास किया। उसके प्रवर्ध वाच्य में स्थिर सौंदर्य के साथ गत्यात्मक सौंदर्य का एक उपभोग-पक्ष के साथ प्रयत्न-पक्ष का मणिकचन संयोग दीव्य पड़ता है। भारतवर्ष में रवीन्द्रनाथ ठाकुर सरीखे लोग आनन्द की साधनावस्था या प्रयत्न-पक्ष का लेकर चलनेवाले युरोपीय लोकमगल-वादियों के अनुयायी हैं। ये लोग ‘मनुष्य-मनुष्य के बीच घ्रात प्रेम को ही वाच्य-भूमि का एकमात्र आधिकारिक भाव मानते हैं।’ इतना ही नहीं, लोकमगलवादी साधनावस्था को लेकर भी माधुय भाव तक ही अपने को बद्ध रखते हैं—माधुयें तथा कोमलता के साथ “तीदणता, कठोरता और उग्रता का सामंजस्य” नहीं कर पाते। गुल्ज़री कर्णा को एक ऐसा व्यापक भाव मानते हैं जिसकी प्रत्यक्ष या दाम्भिक अनुभूति सदैव रसात्मक होती है और अपने विवेचन की पुष्टि यथाम्यान भवभूति तथा शैली के विचारों से ही करते हैं। भवभूति ने कथन रस को ही रसानुभूति का मूल कहा है और शैली के साधयानुसार “आवर स्वीटेस्ट मांस थार दोज डैट टैट ऑव सैडस्ट थॉट”।—अर्थात् सबसे मधुर या रसमयी वाग्धारा वही है जो कथन प्रसंग लेकर चले। शैली के वाच्य की एक और विशेषता रही है—उसके विषय वाच्य में विषय विधान निस्तदेह बड़े महत्त्व का होता है। वाल्मीकि, कालिदास आदि प्राचीन कवियों में यह (वाच्य में विषय-स्थापना) पूर्णता को प्राप्त है। इन कवियों के साथ ही शैली को भी रखते हुए आचार्य शुक्ल कहते हैं—“अंगरेजी कवि शैली इसके लिए प्रसिद्ध हैं।” इस स्थल पर विवेचन और इसके मानव पाश्चात्य समीक्षा से अनुप्राणित तथा प्रेरित हैं। भाषा के दो पक्ष बड़े गए हैं—एक सांकेतिक (सिंघ्वात्मिक) और दूसरा प्रत्यक्षरत्मक (प्रेजेटिव) और अप्रस्तुत रूप विधान में हार्डपेलेज, मेटानिमी आदि ‘अलंकार’ की चर्चा निवेशित कर दी गई है।

गुल्ज़री के शैली-संबंधी इन निर्देशों से सबप्रथम यह सिद्ध होता है कि समीक्षक न महाकवि की रचनाओं का समुचित अध्ययन ही नहीं किया था, उनमें मनोनुकूल जीवन-वाद्य की अभिव्यक्ति देखी थी और इससे अपनी धारणाओं में स्थायित्व उत्पन्न किया था। हो सकता है, शैली के वाच्य से ही गुल्ज़री के साहित्य तथा

बहुधा मगल शक्ति की ही विजय दिया दिया करते हैं। कुछ लोग रचनाओं का ऐसी परिणति में शिक्षामाद—डिडविटसिज्म—का गंध पाकर नाक भी सिरात्त है। गुकलजी उनकी इस प्रतिनिया को युक्त्तियुक्त्त नहीं समथत। अस्वाभाविकता केवल रचना के अत में अमगल शक्ति की पराजय दिव्यान में नहीं आ सकती। कला-श्रुतिया सभी अस्वाभाविक हो जाती है जब उनके बीच का विधान ठीक नहा हाता अथवा जब प्रत्यक् जबसर पर सत्पात्र विजयी एव दुष्ट पात्र पराजित दिव्याय जाते हैं। कभी-कभी एक ही पात्र में विभिन्न सौदर्यों का एकीकरण दिखाया जाता है। एक ही पात्र पराक्रम रूप माधुय शील-स्वभाव सब में लोकोत्तर बनाया जाता है। इसका कारण कवि की कला विषयक अनभिनता नहीं है और न एसा विल्कुल अस्वाभाविक ही होता है। वस्तुतः “लोक हृदय आकृति और गुण, सात्य और सुशीलता, एव ही अधिष्ठान में देखना चाहता है। इसी से यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसति सामुद्रिक की यह उक्ति लोकोक्ति के रूप में चल पडी।” सब-गुणसम्पन्न नायको की सृष्टि के मूल में कवि की एक रहस्यमयी हृदयगत वासना है, एक ‘रहस्यमयी प्रेरणा’ है, जिसके कारण उसकी कल्पना में विभिन्न प्रकार के सौंदर्यों का मेल जाय से-आय हो जाया करता है। शैली के साथ भी यही बात हुई है। उसने भी अपने प्रवध काव्या में रूप सौंदर्य और कम-सौंदर्य के जदभुत संमन्वय का विधान किया है। उसके नायक और नायिकाएँ पराक्रमी, उदार और धीर तो होती ही है वे रूप माधुय में भी अद्वितीय होती हैं। (गुकलजी शैली से उदाहरण देकर ही सतुष्ट नहीं हो जात। उनमें निहित समीपक की दृष्टि से भारतीय वाग्मय कभी आझल नहीं हाता इसलिए प्राचीन तथा जवाचीन भारतीय साहित्य से भी कुछ और उदाहरण प्रस्तुत किए जात ह।)

गुकलजी काव्य का उत्कृष्ट केवल प्रेमभाव की कोमल व्यञ्जना में नहा मानत टालसटाय तथा कलावादियों के उन मतवादा को क स्वीकार नहीं करत जिनके अनुमार काव्य का उत्कृष्ट साधुता, सहनशीलता और गान्त वक्ति के धमत्वारपूण प्रत्यान में है। उनकी कसौटी तो शली के महाकाव्य द रिवाट्ट पात्र इसलाम के पात्र हैं जो अत्याचारिया के पास जाकर न ता गिडिगिडात ह न अपनी गान्त वक्ति का आडवर-प्रदान करते हैं। वे कमठ एव सात्त्विक ता में तमतमान बाल एसे व्यक्ति है जिह आतनायिया की सेवा करनेवाला के प्रति स्वाभाविक चिद्ध है। गुकलजी के अनुसार शैली में भी प्रेम भाव का ही अपनी काव्यकला का आधारभूत तत्व माना था परन्तु यह प्रेमभाव टालसटाय के प्रेमभाव से सबया

भिन्न है। चूँकि शैली का नायक लीम्पोडा और अत्याचार को सहन नहीं कर सकता, वह उत्साह में भग्न प्रचंड वेग से अपने प्राणा की बाजी लगा देता है। टॉन्सटाय ने साम्प्रदायिक कारणों से अभिभूत हो, मनुष्य-मनुष्य में भ्रातृ-प्रेम-संचार को ही एवमात्र वाच्यत्व कहा और कलावादियों ने “मनोरजन मात्र की हल्की रक्ति और दृष्टि की परिमिति के कारण” केवल कोमल और मधुर की लोक पकड़ी। परंतु माधुर्य भाव की कोमल व्यंजना को ही अपना धर्म लक्ष्य न मानकर शैली ने भावा की अनवरूपता का विन्यास किया। उसके प्रबल वाच्य में स्थिर सौंदर्य के साथ गत्यात्मक सौंदर्य का एक उपभाग-पक्ष के साथ प्रयत्न-पक्ष का मणिकाचन मयोग दीख पड़ता है। भारतवर्ष में रवीन्द्रनाथ ठाकुर सरीखे लोग आनंद की साधनावस्था या प्रयत्न-भंग को लेकर चलनेवाले युरोपीय लोकमगल-वादियों के अनुयायी हैं। य लोग “मनुष्य-मनुष्य के बीच भ्रातृ प्रेम को ही वाच्य-भूमि का एवमात्र आधिपत्यिक भाव मानते हैं।” इतना ही नहीं, लोकमगलवादी साधनावस्था को लेकर भी माधुर्य भाव तक ही अपने को बद्ध रखते हैं—माधुर्य तथा कामलता के साथ ‘तीक्ष्णता, कठोरता और उग्रता का सामंजस्य’ नहीं कर पाते। गुच्छा वरुणा को एक ऐसा व्यापक भाव मानते हैं जिसकी प्रत्यक्ष या वास्तविक अनुभूति सदैव रसात्मक होती है और अपने विवेचन की पुष्टि यथास्थान भवभूति तथा शैली के विचारों से ही करत है। भवभूति ने वरुणा रस का ही रसानुभूति का मूल कहा है और शैली के साक्ष्यानुसार “आवर स्वीटेस्ट साग्स जार दाज दट टेल ऑव सटेस्ट थॉट”।—अर्थात् सबसे मधुर या रसमयी वाग्धारा वही है जो वरुणा प्रमग लेकर चले। शैली के वाच्य की एक और विशेषता रही है—उसके विव। वाच्य में विव विधान निस्सदेह बड़े महत्त्व का होता है। वारमीकि, कालिदास आदि प्राचीन कवियों में यह (वाच्य में विव-स्थापना) पूर्णता को प्राप्त है। इन कवियों के साथ ही शैली को भी रखते हुए आचार्य शुक्ल कहते हैं—“अंगरेजी कवि शैली इसके लिए प्रसिद्ध हैं।” इस स्थल पर विवेचन और इसके मानक पाश्चात्य समीक्षा से अनुप्राणित तथा प्रेरित हैं। भाषा के दो पक्ष कह गए हैं—एक सांकेतिक (सिम्वाटिक) और दूसरा प्रत्यक्षात्मक (प्रेजेंटैटिव) और अप्रमत्त रूप विधान में हाइड्रोजन, मेटानिमी आदि अलंकारों की चर्चा निवसित कर दी गई है।

शुक्लजी के शैली-संक्षेप इन निदर्शनों से सबसे प्रथम यह सिद्ध होता है कि समीक्षक ने महाकवि की रचनाओं का समुचित अव्ययन ही नहीं किया था, उनमें मनोनुकूल जीवन-वाद्य की अभिव्यक्ति देखी थी और इससे अपनी धारणाओं में स्थायित्व उत्पन्न किया था। हो सकता है गली के वाच्य से ही शुक्लजी के साहित्य तथा

जीवन-सबधो कतिपय विचार निस्सत हुए हो। यह भी समभव है कि "रिवोल्ट ऑव इसलाम" के प्रति इन निर्दोषों का मूल प्रभाव न होकर केवल भाव-सादश्य हो, शैली की धारणाओं से मिलती जलती शुक्लजी की कतिपय पूर्वनिर्मित धारणाएँ रही हों। साहित्य जगत में ऐसी बातें प्रायः देखने-सुनने की मिलती हैं। कोई लेखक यदि किसी की प्रशंसा करता है तो इसका यह अर्थ नहीं होता कि वह प्रशंसित व्यक्ति से प्रभावित ही हुआ है। समादर एवं श्रद्धा के मूल में विचार सादश्य ("लाइव माइण्डेडनेस") भी हो सकता है। उदाहरणार्थ, कनाडव एक्सटन यदि स्ट्रीचिंग की ओर जान आर्डेन ब्रेस्ट की प्रशंसा करता है तो इसका यह कारण नहीं कि एक्सटन तथा आर्डेन स्ट्रीचिंग और ब्रेस्ट से प्रभावित ही हुए हैं। वस्तुतः प्रशंसा का कारण यहाँ भाव सादश्य ही है।

किंतु समीक्षा अनुमाना और अधकधरी उपकल्पनाओं पर जीवित नहीं रह सकती। 'ही सबता है समभवतः', 'जान पडता है इत्यादि समीक्षकों की रचनाओं को अधक्षरित (अडरमाइन्) करते और उसके तर्कों को दुबल बनाते हैं। इसलिए अनुसंधानों को चाहिए कि वह शुक्लजी की समीक्षात्मक कृतियाँ में कुछ ऐसे स्थलों का चयन कर लें जिन पर पाश्चात्य प्रभाव के अमिट एवं अभ्रात चिह्न वर्तमान हो ही। परंतु जसा पूर्व पृष्ठा में दिखाया जा चुका है, शुक्लजी के समीक्षकों में प्रभावों की आत्मसात करने पचाने और उनमें एक अभिनव स्वरूप निर्माण करने की प्रतिभा थी। इसलिए "अत्यंत आत्मविश्वास के साथ" उसने एक ओर वर्तमान पान का उपयोग करते हुए प्राचीन सिद्धांतों को व्यापक आधार प्रदान किया है और दूसरी ओर पाश्चात्य वादात्मकता की बुद्धिगतता में से निर्भ्रान्त हाकर केवल ऐसी ही प्रशंसा-कथा को ग्रहण किया जिनके पीछे विवेक का दृढ़ आधार था और जो भारत की मूलवर्ती चिन्ताधारा के अनुकूल थे।" यही कारण है कि प्रभावा की दृष्टि से शुक्लजी के कृतित्व का विश्लेषण-वर्गीकरण तरह-तरह की समस्याएँ उत्पन्न करता है। जहाँ हम पाश्चात्य प्रभाव समझ लेने को तत्पर होते ही हैं कि वहाँ सूक्ष्म परिनिरीक्षण से पौरस्त्य परम्पराओं का ही सर्वाधिक आश्रयण दीप्त पडता है जहाँ पाश्चात्य परम्पराओं के प्रभूत श्रेण का अनुमान होता है वहाँ तत्त्वन पारस्त्य साहित्यशास्त्र का ही सर्वाधिक प्रभाव रहता है।

"रम-मीमांसा" में वह स्वयं की आर भी नितन ही सक्न हुए हैं। शुक्लजी के अनुसार 'अंगरेजी के पिछने कवियाँ में'—उन्नीसवीं शती के रामाटिक

१ डा० नगे ड, रस सिद्धांत (दिल्ली, १९६४), प० ७३।

१६४ .. सापुनिक हिंदी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव

कवियो म—वड् स्वय की दष्टि सामाय, चिर-परिचित, सीधे-सादे, प्रशात आर मधुर दश्या का आर रहनी थी, परतु शेली की असाधारण, भव्य तथा विशाल की आर। इस कयन म निहित सत्य की पुष्टि वड् स्वय तथा शेली की कविताओ के ममज्ञ पाश्चात्य समीक्षक भी करते हैं किंतु प्रस्तुत सदभ मे इसके महत्व का एक आर भी कारण है। इस कयन से इस बात को अतिरिक्त प्रामाणिकता भी मिलती है कि गुल्ज़री न इन कविया के प्रकृति चित्रण का—प्रकृति विषयक काव्य का—तुर्नात्मक दष्टिकोण से अव्ययन किया था। समवत रोमांटिक कविता और काव्यसवधी मायताआ से प्रभावित अभिन्धि के कारण ही गुल्ज़री न भावना और कल्पना पर इनका बल दिया है। जसा अन्यत्र कहा जा चुका है उटाने एडिसन के 'कल्पना का आनद' शीषक निबध का स्पातर किया था और वे इम बात से पूणतया अवगत थे कि पाश्चात्य काव्य-भीमासा में कल्पना को बहुत प्रधानता दी गई है। परन्तु वे कल्पना को यथेष्ट महत्व देकर भी उभे साध्य नहीं मानत। "काव्य के विभाग" के अतगत माधुय-मक्ष के विवेचन मे उटाने दो बडे सटीक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं—एक भारतीय वाङ्मय से और दूसरा पाश्चात्य साहित्य से। लेखक ने पहले महाकवि वालिदास के प्रकृति प्रेम की ओर निर्देश किया है फिर 'परम भावुक' अंगरेज कवि वड् स्वय" की एक कविता की आर संकेत करते हुए अपने इस मत की पुष्टि की है कि सामाय से सामान्य, तुच्छ से तुच्छ वस्तुआ और श्या म माधुय का पूरा आकषण रहता है।<sup>१</sup> वस्तुत वड् स्वय प्रकृति का अनय उपामक था और उसकी कविताआ मे ऐसे अनेक प्रगीत (िरिक्म) हैं जो इम बात का धातन करते हैं कि कवि के लिए 'सामाय मे सामाय प्राकृतिक वस्तुआ' का वही महत्व था, जो असामाय दश्या का। इम प्रकार गुल्ज़री यदि "साहित्य-दषण" से प्रभावित हुए जान पडते हैं तो उनके विचारा के दनीकरण एक सम्यक् षोषण म 'द रिवर डडन', "ऐरा रिविजिटेड" सन्ग कविताआ और सग्रहा का भी योग दीख पडता है।

सामान्यत वड् स्वय का पथक् उल्लेख न कर आचाय शुबल की सम-वयकारी प्रतिभा एक ही अनुच्छेद म पूव एक पश्चिम का आह्लादजनक सुमगत सयाग उप स्थित करनी है वड् स्वय का कभी वाल्मीकि के साथ रखती है और कभी वालिदास तथा भवभूति के साथ। वाल्मीकि और वड् स्वय म एक तार्विक समानता पायी जाती है। दोना ही प्राकृतिक दश्या का वणन "पूण तल्लीनता से

१ रस-भीमासा, प० ६७। इष्टव्य "काव्य मे रहस्यवाद" ( चिंतामणि, भा० २ ) पृ० १३२ १३५।

करत है” उन्होंने केवल “महफिली शायरी न की, न घमन, गुल, बुलबुल आदि का ही “विलास की सामग्री के रूप में’ बर्णन किया। दोनों ने जंगली पडा और नदी-नाले के किनारे उगनेवाली चाड़िया का बर्णन प्रस्तुत कर यह स्पष्ट कर दिखाया है कि ‘मनुष्य की उसके व्यापार-गत से बाहर प्रकृति के विशाल और विस्तृत क्षेत्र में ले जान की शक्ति फारस की परिमित काव्य-पद्धति में नहीं है—भारत और यारप की पद्धति में है।’<sup>१</sup>

शेली, बड स्वय मेरिडिय आदि कवि गुल्जी के साक्ष्य के अनुसार तथ्य-ग्रहण में अत्यन्त निपुण थे। इन बड़े-बड़े कवियों ने भारतवर्ष के प्राचीन कवियों की रचना गली पर बोरे प्राकृतिक दृश्यों का बिना किसी दूसरे तथ्य विधान के, बडा ही सूक्ष्म और सश्लिष्ट चित्रण किया है—और बहुत अधिक किया है।<sup>२</sup> गुल्जी ने काव्य में रहस्यवाद’ गोपक निवध में बड स्वय की ‘एक शिक्षा’ (“अ लेसन ) नामक कविता की कुछ पक्तियाँ उद्धृत की हैं और कविता का भावाय देकर यह दिखाया है कि बड स्वय में अभिव्यक्ति की प्रकृत प्रतीति के भीतर प्रकृति की सच्ची व्यञ्जना के आधार पर जा भाव तथ्य या उपदेश निकाले जायेंगे वे भी काव्य हाग।<sup>३</sup> बड स्वय और रामाटिक सम्प्रदाय के अन्य कवियों की तरह गुल्जी उपयुक्त निवध में ‘कवि का मूल गुण भावना अथात अनुभूति की तीव्रता’ ही मानत है। कल्पना के बिना कवि अपनी अनुभूति संप्रेषित नहीं कर सकता और चूकि अनुभूति को दूसरे तर पहुँचाना ही कवि का काम है कवि के लिए कल्पना और भावुकता दोनों अनिवार्य हा जाते हैं।<sup>४</sup> बड स्वय कोलरिज शेली प्रभृति कवियों के काव्य-सदधा विचारों के मूल में भी कल्पना और भावुकता ही हैं न कि नव्यशास्त्रवादियों का यह विश्वास कि कविता बुद्धि प्रधान रचना होती है एक सचेतन प्रक्रिया है।

गुल्जी ने बड स्वय तथा शेली की कविताओं का चितना गहन अध्ययन किया था इसका ईषत अनुमान काव्य में रहस्यवाद’ गोपक आलोचनात्मक निवध में भी किया जा सकता है। वस्तुतः यह निरघ हा हम बात का अकाट्य प्रमाण है कि गुल्जी ने पाश्चात्य साहित्य का—समीक्षा और सजनात्मक श्रुतियों का—अत्यन्त गभीर अनुगहन किया था और व इसकी अनन्यमान्य परम्पराओं

१ उपरिदत्त, पृ० १३ ।

२ कवितामणि (भाग २), पृ० ६४ ६५ ।

३ उपरिदत्त, पृ० ६२ ।

४ उपरिदत्त, पृ० १०४ ।

तथा प्रवृत्तिमा से अच्छी तरह जवगन थे।<sup>१</sup> इसी निवघ म उन्हाने वड्स्वय और शैली की रहस्य भावना की आर निर्देश किया है आर वड्स्वय की कविताआ म सबवाद (पथेइज्म) की झलक पायी है। ब्रैडले, श्रोदे, क्लाडव वेल् आदि पाश्चात्य लेखना के आधारभूत सिद्धान्त से भी वे पूर्णतः परिचित थे आर इन सबकी निष्पन्न आलोचना करने की अपूर्व क्षमता रखत थे। वाटरिज की "कवना" की तरह उनकी भी प्रतिभा समबद्ध थी और वे कभी किसी कलाकृति को परम्परा से अथवा ऐसी ही अन्य कृतिया से पृथक् रखकर परवन म असमय थे। पन्तु स्वच्छन्दतावाद पर आघृत एव उत्तम परिपापित रमवादी अभिवृत्ति पर युगीन विज्ञान के प्रभाव के कारण उनम भी वसा ही द्विध पाया जाता है जसा टेनिसन ऑनल्ड म अथवा अधुनातन कविया म। उनम एक ओर तो पारम्परीय रीति-काव्य की गहना मिलती है, दूसरी ओर नव्य प्रयोगा की अस्वीकृति तथा उनके प्रति उदासीनता। इसलिए ई० ई० कर्मिज की कविताआ को उन्होंने 'विलक्षण तमागा' कहा है और उनम प्रयुक्त पदमग, पदलोप, वाक्यलोप तथा अक्षरविन्यास, धरण विन्यास इत्यादि को "कलावाजी" की सना दी है। तन्वर आचार्य गुबल ने यह प्रश्न किया है "इस प्रकार के ढकानला पर सहृदय समाज क्या ध्यान देने जायगा?"<sup>२</sup> इसके उत्तर म कहा जाता है कि इन 'टकोसला' को पाश्चात्य समाज का अनुमोदन प्राप्त है और

१ "योरप के समीप-क्षेत्र म उठते रहनेवाले षादों के सबध में" गुबलजी ने कहा है कि वे प्रायः "एकाग्रदशों होते हैं, वे या तो प्रतिवस्तन (रिऐकशन) के रूप में अथवा प्रचलित मतों में कुछ अपनी विलक्षणता या नवीनता दिखाने की झोंक में, जोर-गोर के साथ प्रकाशित किए जाते हैं, इससे उनमें अत्युक्ति की मात्रा बहुत अधिक होती है।" (चिंतामणि, २, पृ० ९७) योरप में साहित्य-सबधी आदोलनों के सबध में एक और बात विचारणीय है वह यह कि वहा "आदोलना की आयु बहुत घड़ी होती है। कोई आदोलन १२ या १२ वष से ज्यादा नहीं चलता। ऐसे आदोलनों के कारण वहाँ इस बीसवीं शतादी में आकर काव्यक्षेत्र के बीच बड़ी गहरी गडबडी और अन्यवस्था फली। काव्य की स्वाभाविक उमग के स्थान पर नवीनता के लिए आकुलता मात्र रह गई।" (रस-मीमासा, पृ० २६३)। इस सबध में पुन दे० 'काव्य में रहस्यवाद' (चिंतामणि, २) पृ० १०७।

२ रस-मीमासा, पृ० २७०। चिंतामणि, २, पृ० २३३।

हिंदी की सद्वातिक आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव = १६७



करते हैं”, उन्होंने केवल “महफिली शायरी’ नकी न चमन, गुल, बुलबुल आदि का ही “बिलास की सामग्री के रूप में’ वणन किया। दोना ने जगली पडो और नदी-नाले के बिनारे उगनवाली झाडिया का वणन प्रस्तुत कर यह स्पष्ट कर दिखाया है कि “मनुष्य को उसके व्यापार-मत से बाहर प्रकृति के विशाल जीव विस्तृत क्षेत्र में ले जाने की शक्ति फारस की परिमित काव्य-मदति में नहीं है—भारत और योरप की पद्धति में है।<sup>१</sup>

रोली बड स्वय, मेरिडिय जादि कवि, गुल्जी के साक्ष्य के अनुसार, तथ्य-ग्रहण में अत्यन्त निपुण थे। इन ‘बड़े-बड़े कवियों ने भारतवर्ष के प्राचीन कवियों की रचना शैली पर ‘कारे प्राकृतिक दृश्या का बिना किसी दूसरे तथ्य विधान के बड़ा ही सूक्ष्म और सद्दिष्ट चित्रण किया है—और बहुत अधिक किया है।”<sup>२</sup> गुल्जी ने काव्य में ‘रहस्यवाद’ शीपक निबध में बड स्वय की ‘एक शिक्षा’ (“अ लेसन्”) नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की हैं और कविता का भावाय देकर यह दिखाया है कि बड स्वय में अभिव्यक्ति की प्रकृत प्रतीति के भीतर प्रकृति की सच्ची व्यञ्जना के आधार पर जो भाव तथ्य या उपदेश निकाले जायेंगे वे भी काव्य हाग।<sup>३</sup> बड स्वय और रामाटिक सम्प्रदाय के अन्य कवियों की तरह गुल्जी उपयुक्त निबध में ‘कवि का मूल गुण भावुरता अर्थात् अनुभूति की तीव्रता’ ही मानते हैं। कल्पना के बिना कवि अपनी अनुभूति संप्रपित नहीं कर सकता और चूँकि अनुभूति को दूसरे तर्क पढ़वाना ही कवि का काम है कवि के लिए कल्पना और भावुरता दोनों अतिवाय ही जाते हैं।<sup>४</sup> बड स्वय कालरिज, रोली प्रभूति कवियों के काव्य-समूची विचारों के मूल में भावुरता और भावुरता ही है न कि न-यशास्त्रवादियों का यह विश्वास कि कविता युद्धि प्रधान रचना होती है एक सचेतन प्रक्रिया है।

गुल्जी ने बड स्वय तथा रोली की कविताओं का चिन्तना गहन अध्ययन किया था इसका ईषत अनुमान काव्य में ‘रहस्यवाद’ शीपक आत्मनात्मन निबध में भी किया जा सकता है। वस्तुतः यह निबध ही हमें वात का अनाटय प्रमाण है कि गुल्जी ने पारश्चात्य साहित्य का—गमीना और सजनात्मन कृतिया का—अत्यन्त गभीर अनुगालन किया था और व इसकी अनवरतपामन परम्पराओं

१ उपरिखत, पृ० १२।

२ चिन्तामणि (भाग २), पृ० ६४-६५।

३ उपरिखत, पृ० ६२।

४ उपरिखत, पृ० १०४।

तथा प्रवृत्तियां मे अच्छी तरह जवगन थे।<sup>१</sup> इसी निग्रह में उन्तान बड़ स्वयं और गेली की रहस्य भावना की आर निर्देश किया है और बड़ स्वयं की वविताया में सबवाद (पथेइज्म) की ज्ञान पायी है। ग्रैडले, प्राचे, ब्राडव वेल् आदि पारश्चात्य लेखका के आधारभूत सिद्धांतों में भी व पूणत परिचित थे और इन सभकी निष्पन्न आलोचना करने की अपूर्व क्षमता रखत थे। काल्पित की 'वचनता' की तरह उनकी भी प्रतिभा समवयन थी और वे कभी किसी कलाकृति को परम्परा से अथवा ऐसी ही अन्य कृतियां से पयन ग्यनर परगने में अममय थें। परंतु स्वच्छदतावाद पर आघत एव उसमें परिपोषित रमवादी अभिवृत्ति पर युगीन विज्ञान के प्रभाव के कारण उनमें भी वसा ही द्वय पाया जाता है जसा टेनिसन, ऑनरट में अथवा जघुनातन कवियां में। उनमें एक ओर तो पारम्परिक रीति-न्याय की गहना मिलती है, दूसरी ओर नव्य प्रयाग की अस्वीकृति तथा उनके प्रति उदासीनता। इसलिए ई० ई० बर्मिगज की वविताया को उन्होंने 'विलक्षण तमासा' कहा है और उनमें प्रयुक्त पदभंग, पदलोप वाक्यलाप तथा अक्षरविन्यास, धरण विन्यास इत्यादि को 'कलावाजी' की सजा दी है। तदनंतर आचार्य गुकल ने यह प्रश्न किया है "इस प्रकार के ढकासलो पर सहृदय समाज क्या ध्यान देन जायगा?"<sup>२</sup> इसके उत्तर में कहा जाता है कि इन 'ढकोसला' का पारश्चात्य समाज का अनुमोदन प्राप्त है और

- 
- १ "योरप के समीक्षा-क्षेत्र में उठते रहनेवाले बादा के सबध में" शूबलजी ने कहा है कि वे प्राय "एकाग्रदर्शी होते हैं, वे या तो प्रतिबन्धन (रिप्रेकशन) के रूप में अथवा प्रचलित मतों में कुछ अपनी विलक्षणता या नवीनता दिखाने की क्षा के लिए, जोर-जोर के साथ प्रकाशित किए जाते हैं, इससे उनमें अत्युक्ति की मात्रा बहुत अधिक होती है। (चिंतामणि, २, पृ० ९७) योरप में साहित्य-सबध आंदोलनों के सबध में एक और बात विचारणीय है वह यह कि वहाँ "आंदोलन की आयु बहुत थोड़ी होती है। कोई आंदोलन १२ या १२ वय से ज्यादा नहीं चलता। ऐसे आंदोलनों के कारण वहाँ इस बीसवीं शताब्दी में आकर काव्यक्षेत्र के बीच बड़ी गहरी गड़बड़ी और अयवस्था फली। काव्य की स्वाभाविक उमर के स्थान पर नवीनता के लिए आकुलता मात्र रह गई।" (रस-भीमासा, पृ० २६३)। इस सबध में पुन दे० 'काव्य में रहस्यवाद' (चिंतामणि, २) पृ० १०७।
- २ रस-भीमासा, पृ० २७०। चिंतामणि, २, पृ० २३३।

कर्मिगज की रचनाएँ उत्तरोत्तर लोकप्रियता पाती रही हैं। गुलजी का यह बयान कि "वर्तमान कविता में कर्मिगज का नाम शायद ही काई लेना है" उपलब्ध तथ्या के आलोक में वायसगत नहीं दीयता। कर्मिगज के सन्ध में ऐसे विचार गुलजी सरीखे प्रातदर्शी समीक्षक के लिए अशामन प्रतीत हात हैं। ऐसे निणया में वाग्वाच्य की प्रधानता मिलती है तब-सगत विवेचन और विश्लेषण नहीं। इसी कारण प्रस्त दिए गए हैं और लेखक ने अपनी ओर से सन्ध में तथा बड़े हा आस्वस्त भाव से, उनका एक ही उत्तर देकर अपनी पूरी समस्या का एक अत्यन्त सरल समाधान खोज निकाला है। केवल 'साधारणीकरण' के प्राचीन निवप पर आधुनिक काव्य की (कर्मिगज जस कविता की रचनाओं की) भीमासा असमीचीन हागी। साधारण पाठका की तरह सभी नव्य प्रयोगों को नई लिखा एय नम छदा और जलकारा का सदेह की दष्टि से देखना युक्तिसगत न होगा। स्वयं गुलजी के साध्यानुसार

अलकार है क्या? सूक्ष्म दष्टिवाला न काव्या के सुन्दर सुन्दर स्थल चुने और उनकी रमणीयता के कारणों की खोज करने लगे।

कौन कह सकता है कि काव्यों में जितने रमणीय स्थल हैं, सब ढड डाने गए वणन की जितनी सुन्दर प्रणालिया हो सकती हैं सब निरूपित हा गइ अथवा जो-जो स्थल रमणीय लगे उनकी रमणीयता का कारण वणन प्रणात्नी ही थी? आदिकाव्य रामायण से लेकर इधर तक के काव्या में न जाने कितनी विचित्र वणन प्रणालिया भगी पडी है जा न निर्दिष्ट की गइ हैं और न जिनके कुछ नाम रखे गए हैं।<sup>१</sup>

कर्मिगज, पाण्ड, हापिकर्म मलामें आडेन आदि ने परम्परागत छदा अलकारों, शब्दों का यथाशक्य परित्याग कर इस विश्वास से कि वर्तमान युग की नयनम अनुभूतियों के अनुकूल भाषा शली, पद वियाम तथा विराम चिन्हों के प्रयोग होने चाहिएँ शब्दा की तथाकथित कलावाजी दितायी है। परम्परागत पद विन्यास से अब काम चलने को नहीं है इससे तथा अय कारणों से रामट ग्रेज ने कर्मिगज की 'कलावाजी' का समथन किया है और एक अधुनातन समीक्षक ने इस सन्ध में कहा है कि 'मुद्रण-तथा विराम चिह्न-सबधी कतिपय प्रचलनों से हम इतना अभ्यस्त हा गए हैं कि उनकी उपेक्षा हाते ही हम पूणतया व्यग्र हो उठते हैं, चकरा जाते हैं। किसी कविता का इस प्रकार मुद्रित होना

१ रस-भीमासा, पृ० ४२ ४३।

कि उसका प्रत्येक छंद मणि के आकार का हो अथवा किसी चामितीय आकृति के समान तबे अधिकांश पाठकों को इस हद तक अरुचिकर लगना है कि (यदि यह कविता जान-बूझकर हास्यप्रद न हुई तो) वे इसे दुर्बोध तथा निष्प्रयाजन घोषित करने का बहाना ढूँढने लगते हैं। कुछ पाठकों के अनुसार अंगरेजी कविता को प्रत्येक पंक्ति बड़े अक्षर से आरम्भ हो परन्तु ऐसे ही पाठक लटिन कविता के मुद्रण में विपरीत परम्परानुसरण की मांग करते हैं। हापकिंस की कविताओं के रूपाकार से ही उसके कुछ सामयिक पाठक क्षुब्ध हो उठे थे। कर्मिग्न की मुद्रण-भवदी नवोद्भावनाओं का समयन राउट ग्रेव्स ने इस आधार पर किया है कि इसमें कर्मिग्न को अधिकाधिक काव्यगत विगुहता और यथायता उत्पन्न हुई है और साथ ही इसमें भविष्य में मुद्रकों एवं सम्पादकों द्वारा कविताओं के मूलपाठ में अनधिकृत परिवर्तन नहीं हो सकेगा।<sup>१</sup> पश्चिम के अधिकांश समीक्षकों के लिए यह निर्विवाद है कि कर्मिग्न की कविताएँ इकोसला

- १ We have grown so accustomed to certain conventions of typography and of punctuation that any flouting of them is apt to baffle us completely. The printing of a poem in such a way that each stanza assumes the form of a diamond or of a geometrical figure irritates most readers (unless the poem is avowedly comic) to such an extent that they look for any excuse to condemn it as obscure. Some readers are prejudiced against English poetry unless each line begins with a capital letter although these same people demand precisely the opposite convention in the printing of Latin verse. The mere physical shape of some poems by Hopkins upset certain of the few contemporaries who read his verse the nearest approach to such a system is to be found in the typographical eccentricities of E. E. Cummings which Robert Graves has defended on the grounds that Cummings has thereby attained a new degree of poetic accuracy as well as ensuring that no future editors or printers shall tamper with his text. John Press, *The Chequer d Shade* (London 1958) pp 14 et seq.

नहीं हैं—ये वसी ही प्रवृत्त अभिव्यक्ति है जसी घडस्वय की वविताएँ और शली के प्रगीत। इस सदम म निम्नलिखित वविता प्रस्तुतोपयोगी है

### प्रतिमा

यफणे विल

निपियम है

जो जलसुधिवक्त्रण रगतवत्

जननाद्व पर

आरोहण म जम्भस्त था

और एकदातीनचारपाँच मत्तिना वपोनाको

एसे ही तोड डालता था

प्रभो

वह सुंदर था

और मैं जानना चाहता हूँ कि

तुम्ह अपना नीलाप लडका कसा लगता है

मिस्टर डेथ<sup>१</sup>

इस वविता म रुडिया का जो निभय परित्याग दील पडता है, उसी म इसकी सफलता का मम निहित है। अत्यंत साधारण से विषय का लेकर उमम ववि ने अभिनव जीवन का सचार किया है और उसे मूल अभिव्यक्ति दी है। मत्यु के सर्वाधिकार का वणन बिद्व के प्रत्येक कोने म, प्राय प्रत्येक युग म हुआ है।

१

### PORTRAIT

Buffalo Bill's

defunct

who used to

ride a watersmooth silver

stallion

and break onetwothreecourfive pigeonsjustlikethat Jesus

he was a handsome man

and what i want to know is

how do you like your blueeyed boy

Mister Death

नेक्सपियर के जमाने में, जान टा और बेमटर के युग में, दजना कविताएँ इसी विषय पर लिखी गई थी। विद्व के शतक कवि-मुगवा ने मृत्यु के मृष्टिब्यापी प्रमुत्र का वणन किया है। इसलिए ऐसे विषय पर कविता रचने का अय होना है जानी-महचानी या परायी अनुभूतिया की भाववतापूण अभिन्यक्ति और पिष्टपण। निप्राण विवा और कुठित शब्दों के माध्यम से ही मृत्यु की विभीषिका का चित्रण हुआ करता है। कवि जीवन की क्षणभंगुरता का वणन करत हुए कनिषय उच्छिष्ट एव पर्युपित उपमाया द्वारा अपने भावा का सप्रेपण करत हैं और प्रत्यय पद को अपने अथुआ से सिक्त कर इठती-गविन फूगे और बुदबुदा की नवगता की याद दिलाते हैं। कर्मिज ने इन परम्परागत गीया का परित्याग कर अपन विषय के प्रति एक अभिनव मनोदृष्टि का परिचय दिया है। वह मृत्यु में भयभीत नहीं होता और न उसके सामने नतशिर हा होता है। वस्तु मृत्यु के प्रति उसके दृष्टिकोण में उषेया और तिरस्कार के भाव सनिहित हैं

वफ़ा विल

निष्क्रिय है

कवि यह नहा कहता कि वफ़ा विल का स्वगवास हो चुका है अथवा वह मर गया है। कवि स्वर्गीय आत्मा के प्रति श्रद्धा का वसा प्रदर्शन नहीं करता है जसा कविगण प्राय करत हैं। उसकी अभिन्यक्ति उतिवत्तात्मक निर्भीक, यत्किचित अपमानपूण तथा हास्य विनोद से सयुक्त है। इसके अतिरिक्त हमारे समक्ष जो चित्र प्रस्तुत है वह एक जीवन्त और गतिमान चित्र है। अश्व को 'जलमुच्चिकरण रजावन' कहा गया है। इस विरोपण के द्वारा घाडे का एक दार्ष्टिक (visual) वणन ही प्रस्तुत नहा किया गया इसमें एक गतिक (kinetic) चित्रण भी निहित है। इसके बाद इस मुन्दर अदमारोही की कमठना एव निपुणता का वणन यह कहकर किया गया है कि वह त्वरित क्रम से पाच-भाच मत्तिका-कपोता (claypigeons) का ताड डालने में समर्थ था। अत में मयु में जो प्रदन किया गया है, उसमें भी कवि का वही अनादरभाव निहित है जिसस कविता का आरम्भ हाना है।<sup>१</sup>

यदि कर्मिज की कविताया का यथाचिन मूम्म विश्लेषण हा तो उनमें अधिकांश ऐसी ही भारगभ एव सटीक प्रतीत हागी। ऊपर से वे गला की कला

१ दे० ब्लॉय वृक्स तथा रॉबट पेन वरेन, अडरस्टडिंग पोयट्री (यू यॉक, १९६०), पृ० १८६।

वाजी भले ही दीस पड़ें, परतु उनम प्रचुर भाव-गाभीय होता है और उनम प्रयुक्त विवादि बडे सटीर हात हैं। इमलिए उनके प्रत्येक शब्द पर प्रत्येक मवनाम और प्रत्येक विराम चिह्न पर ध्यान देना आवश्यक हा जाता है।<sup>१</sup> वस्तुतः कविता पढते समय हम इस बात का खयाल रखना चाहिए कि हम कोई सरल गद्य रचना का पाठ नही कर रहे हैं और कि कविता जपण्या अधिक सदिष्ट अभिव्यक्ति होती ही है।

परतु आचार्य शुक्ल आधुनिकता के विरोधी न हाकर घमत्कारवाद के ही विरोधी हैं। नई कविता के समयका ने भी यह स्वीकार किया है कि कभी-कभी नव्य प्रयोगा के मूल म पांडित्य प्रदर्शन और जय शून्यता छिपान की ही भावना सक्रिय देखी जाती है जैसे इन पक्तिया म—

ह्वेन बस प्रोल्प्टिक जाव द किस  
 देयर पाटेंड लिप्स स्टुड प्वायज्ड इन एयर  
 नो स्टलर परलेक्स कुड टोयर  
 हाट फ्राम हाट इन हेण्डिण्डिस

जान प्रेस ने स्वीकार किया है कि इन पक्तिया म सच्ची और स्वाभाविक अभिव्यक्ति के स्थान पर निपट वाग्जात है कथानिक आवरण की तह म कल्पना की फडफटाहट है।<sup>२</sup> यहाँ न अनुभूति की तीव्रता है न कल्पना उस अनुभूति

१ Cf 'Anyone who has spent much time finding out what people do when they read a poem what poems actually mean for them will have discovered that a surprising part of the difficulty they have comes from their almost systematic unreceptiveness their queer unwillingness to pay attention even to the reference of pronouns the meaning of the punctuation which subject goes with which verb and so on after all they seem to feel I m not reading prose —Randall Jarrel, *Poetry and the Age* (New York 1962) p 11

२ This is wit writing of the worst kind a calculated euphuism parading in scientific plumage frigid fancy masquerading as elegant precision It illustrates the dangers that beset any poet who, departing from the commonly accepted speech.

की सहयोगिनी। मुक्तजी का उद्देश्य सच्ची अनुभूति की गहना नही, प्रमाणा को घमत्कृत करनेवाले प्रयोगों से हिन्दी-नाव्य को यथागति मुक्त करना है। वस्तुतः उनके लिए कविपत्र की कविता उम प्रवृत्ति वा ज्वलत प्रतीक है जिसमें हिन्दी कवि अभिभूत हो घले थे वार जो रीतिवादी के उक्ति-वधिप्रय म देगी जा सकती है। अपन निमम विवेक एव रहस्योन्मेषिणी बुद्धि के कारण वे कल्पना का भाव को उमग , "अनुभूति की तीव्रता", और "भावुकता" के वाद रखते हैं और रसानुभूति या वाक्यानुभूति का जीवन से परे नहीं मानते। कविता के सिडनी, शैली सरीखे प्रशंसक कहा करते हैं कि वह "स्वयं स गिरती हुई सुधाधारा है, नदनवन के कुसुमा से टपकी मकरन्द की बूद है, वह पार्थिव जीवन से परे है उसका एक दूसरा ही जगत् है, वह पगम्बर है ओलिया है, रहस्यदर्शी है। ' ' निस्सन्देह ऐसी प्रशंसा निराधार होती है और इसमें "अथगून्य पदावली" का ही प्राच्य पाया जाता है। आचार्य मुक्त अंगरेजी समीक्षा की इस स्वच्छदतामूर्क प्रवृत्ति को पसद नहीं करते और इस दृष्टि से वे अद्यतन पाश्चात्य समीक्षा के सन्निकट देखते हैं। रिचर्ड्स मलामे, पॉल बल्सी एलियट प्रभृति पाश्चात्य कवि-आलोचक काव्य रचना में विवेक-बुद्धि के सप्रिय योग का समर्थन करते हैं और जानते हैं कि चूँकि कविता में प्रत्येक शब्द का विशिष्ट महत्त्व होता है, इसमें प्रयुक्त प्रत्येक शब्द सटीक एव व्यक्त हागा ही। कविता शब्दा में आवड रहती है, शब्दा में ही लिखी जाती है इसलिए कवि को सोच विचारकर प्रत्येक शब्द-रंग को काव्य के सुष्ठु कलेवर में इस प्रकार जडना पडता है कि वह असोभन प्रतीत न हो। समग्रत कविता पार्थिव सृष्टि है, भौतिक है। इसकी रचना दवी प्रेरणा से नहीं, मनुष्य की निजी अनुभूतिया से (जिनका उद्दीपा ऐहिक वस्तुएँ करनी हैं) होती है। इसका स्रष्टा कोई अत्यत असाधारण दिव्य पुरष नहीं होता वह तो एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसे अनुभूति की तीव्र संवेदना एव कल्पना-शक्ति प्राप्त होती है और 'जिसे लोक हृदय की पहचान हा'।

मुक्तजी की इस भौतिकता पर पाश्चात्य विज्ञान-मनोविज्ञान का प्रभूत प्रभाव है। वे रिचर्ड्स द्वारा समर्थित उस विचार का पोषण करते हैं जिसके अनुसार कला से उद्भूत आनन्द लोकोत्तर नहीं होता। ब्रडले, क्लाइव बेल और

of his own day adopts an arcane vocabulary drawn from a remote age or from an unfamiliar branch of learning  
—John Presop cit p 12

१ चिंतामणि, भाग २, पृ० १०६।



गोरे के मा उर् स्तीतार्थ त्ही हँ, क्साति इा समीगत। क मांय्यागुमार "क्रिा  
 का क्षा गोवाभे मे विातु अत्य है। क्रिा का रिार क्रा समय जान  
 की बा। का तो ता ही त् पाति। क्ग की र्ति का मून्य रिांति क्क  
 म बाहरी बा। के मून्य का रिार अर्थ है। क्ग का ता अता मून्य अ  
 ही है।<sup>१</sup> इग प्रार क् मावा "क्नूतानी ह्ता धारणा क् क्क-क्क  
 है।<sup>२</sup> काय्ता के र्का के सग म "ताता और केनू का मी भाता'  
 को प्रथम देता समीगत त्ही। काय का प्रभाव उा प्रार का त्ही हाता, जि  
 प्रार केल्कूटा की सजावट और तातागी का है। रिांत्ग त् क्कसांतिा क्  
 गा। एव सिद्धाता का सता। ताता रिा है 'ह्प की बा है ति इग मन का,  
 तथा इसी प्रार के और प्रकलिा प्रया। का निराकरण रिाई म म् क्कने 'काय  
 समीगा के सिद्धान' म बहुत अच्छी तरह क्क रिा है।<sup>३</sup> एक अय क्क पर  
 कुन-जी ने रिाई स की प्रसा इन ग्का म की है 'आजाल के प्रसिद्ध  
 अंगरेजी समालाचक रिाई, जो योरपीय साहित्य म समीगा क् नाम पर क्कए  
 हुए क्कृत स अयगूय कागजाल को ह्कानर शुद्ध विवेचनात्मक समीक्षा का रास्ता  
 निाल रहे हैं, हमारे यहाँ के शक-शक्ति निरूपण के ढर्रे पर अर्थ-मीमाता को  
 लेर बले हैं।<sup>४</sup> 'काय म अभिव्यजनावाद' गोपर निवध म पुन कहा है

जो कुछ उसका अवशेष था ( कला के लिए ही कला' वाले वाद का अवशेष )  
 उसे इंग्लंड के अत्यन्त निमल-श्रुष्टि वतमान समालाचक रिाई ने योरपीय  
 समीक्षा-क्षत्र के बहुत से निरथक गजाल और कूडा क्कट के साथ हटा रिा  
 है और साफ कह दिया है कि सदाचार से कला का धनिष्ठ सग है।<sup>५</sup>

इस प्रसा के मूल म सबसे बड़ी बात यह है कि गुन-जी रिाई स की तरह  
 क्विता को जीवन ही म उत्पन्न मानते हैं और उनका मह निश्चिन् विश्वास है कि  
 क्विता जीवन की सीमाआ क् भीतर ही अपनी विभूति प्रनागित करती है।  
 'उसे जीवन स विच्छिन् वताना कहा की बात कही लगाना है।' 'कलावाद  
 और 'अभिव्यजनावाद' समीक्षा क् नाम पर अर्थगून्य कागाउम्बर हैं जिनके  
 कारण समीक्षा-क्षत्र म तरह-तरह की अथ गून्य पदावली का प्रचलन हो गया है।

१ उपरिखत, भाग २, पृ० १०६-१०७।

२ उपरिखत, भाग २, पृ० ८२।

३ उपरिखत, पृ० १०७।

४ उपरिखत, पृ० १६४।

५ उपरिखत, पृ० १८५, १८९, १९२।

आचार्य गुरु को हा० ब्रट्टे की यह उक्ति कि "कविता एक आत्मा है" हास्यास्पद  
 लगी है। उह टी० के० ह्विप् के विचार ग्राह्य हैं, क्योंकि ह्विप् भी रिचर्ड्स  
 की तरह विगुद्ध कल्याणवाद का विरोध करता है और कहता है कि कविता मनुष्य  
 के जन्म की अनुभूति है, जो मनुष्य के ही हृदय में पहुँचाई जाती है। ह्विप्  
 स्पिनगान के विचारों का निराकरण करता है और "का स्वतन्त्र" को निर्गुण  
 घोषित करता है। इस कारण गुरुजी ह्विप् का समर्थन एवं स्पिनगान का सडन  
 करते हैं। इस प्रकार जान पड़ता है कि विचार-नाम्य के कारण ही उन्हान  
 ह्विप् एवं रिचर्ड्स की प्रशंसा की है। पाश्चात्य समीक्षा में अपने पूर्व निर्धारित  
 सिद्धान्तों का समर्थन मात्र के आश्वस्त हुए हागे अथवा जहाँ दुविधा रही होगी  
 और विचार अपक्व रह हागे, वहाँ सक्त प्रमाण पाकर उनमें आत्मविश्वास  
 का उभोलन हुआ होगा। अतः परोक्ष रूप से रिचर्ड्स ह्विप् प्रभृति जाधुनिक  
 पाश्चात्य समीक्षकों ने उह अवयव प्रभावित किया है। उन्होंने रिचर्ड्स में ऐम  
 अनक सिद्धांत पाये जो उनके मनोनुसूल थे (१) गुरुजी और रिचर्ड्स की  
 समीक्षा मनाविधान से प्रभावित है (२) दोनों 'कला ही के लिए का'  
 बात सिद्धांत का निराकरण करते हैं और कला की जड़ जीवन में व्याप्त पाते हैं  
 (३) दोनों ही मानते हैं कि वैज्ञानिक या विचारार्थक समीक्षा ही कला निरूपणी  
 समीक्षा है कल्याणार्थक या भावात्मक पदावली में लिखी गई समीक्षा निम्नवादि  
 की हवाई समीक्षा होती है और (४) इन दोनों समीक्षकों के मतव्यानुसार  
 का म उद्भूत जानद लाकोत्तर नहा होता। जहाँ तक गुरुजी का सग्रह है,  
 प्रमाणा के मन में ऐसी धारणा दृढतर होती जाती है कि उन पर देश-काल की  
 आवश्यकताओं का गितना प्रभाव है, उतनाकिभी व्यक्ति विषय का नहीं। गुरुजी  
 के समीक्षा सिद्धांत वस्तुतः राष्ट्रीय भावनाओं से आप्लावित हैं, जिस ध्यान में  
 रखकर ही हम उनका सच्चा मूल्यांकन कर सकते हैं। उनकी पारिवर्तता के मू-  
 ल राष्ट्रहित की ज्वलन्त भावना है। बेकन, मिडनी और वेन जॉनसन की तरह  
 उन्हान भी समालोचना के विकास के लिए जन्यदगीय परम्पराओं के अधानुकरण  
 की प्रवृत्ति के त्याग की आवश्यकता समझी थी। इसलिए कई स्थला पर उन्हान  
 उन लोग का विरोध किया है, जो आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्य सम्प्रदायों  
 का हिन्दी-साहित्य पर आरोपित कर रहे थे। ऐम पाश्चात्यीकरण का ह्य  
 घोषित करते हुए उन्हान प्रभाव-ग्रहण का एक नव्यतम आदर्श उपस्थित किया है।  
 वे जानते थे कि प्राच्य साहित्य के विकास में पश्चिम के जपूव अग्रदान की उपेक्षा  
 नहीं हा सकती और न कोई समीक्षक उसके प्रभाव से सवया वंचित ही रह सकता  
 है। इसलिए उन्हान बुद्धि विवक की तुल्य पर पश्चिमी वादा और सिद्धांतों को



उन्होंने उत्तरी "रैबाई वेन एजरा" की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की हैं और यह लिखा है कि प्रयत्न ही जीवन की शोभा है। 'जगत् की विघ्न-बाधा, अत्याचार, हाहाकार के बीच ही जीवन के प्रयत्न-मौदर्य की पूण अभिव्यक्ति तथा भगवान् की मगत्-मय गति का दगन होना है। अन जो अंत मूंदकर वाक्य का पना जगत् जगत् जीवन से बाहर रगाने निकलते हैं वे वाक्य के धोरे म या उसके बहाने से, किसी और ही चीज के फेर म रहते हैं।'<sup>१</sup>

इन मूल एव साकन गला म लेखक की एक निरिचित और विगिष्ट धारणा की अभिव्यक्ति हुई है। गुल्जी के समीक्षात्मक निबन्धा का प्रधान गुण है उनकी आधारभूत विचार-संगति आर समरूपता—उनम सबत्र ध्याप्त सध्वनि (हॉमनी)। सभी सिद्धान्त विचार सावनिक्तया परस्पर निबद्ध हैं। उनम वही कोई कर्षण प्रभाव नहीं दीक्षता। उनकी पार्थिवता प्रयत्न-मौन्दय जादि से ही सपूक्त उनकी यह धारणा है कि हमारी अनन्त-रूपात्मक कल्पना व्यक्त और गोचर है। यहाँ उन्हें आई० ए० रिचर्ड्स के 'साहित्यालोचन के सिद्धांत' में अपन मत के प्रतिपादन म महायता मिलती है। गुल्जी काव्यानुभूति को—जिसे वे इन्वेटिक माड' अथवा "स्टेट" कहते हैं— कोई निराली अनुभूति नहीं मानत। काव्यानुभूति को एक स्वतंत्र आध्यात्मिक अनुभूति घोषित करने के कारण पूरापूरी समीक्षा क्षेत्र में जो "अथगूय वाग्मिन्तार' फला है उस पर उन्होंने खद प्रकट किया है परन्तु साथ ही वे इस बात से प्रसन्न होते हैं कि रिचर्ड्स ने काव्यानुभूति को एक निराली अनुभूति माननेवाले मत का खडन किया है।<sup>२</sup> उनके जनुमार कविता का मवध गाचर जगत् से है ब्रह्म की अव्यक्त मत्ता से नहीं। इस कारण वे शोक के अभिव्यजनावाद को भी स्वीकार नहीं करते। अभिव्यजनावाद कला की आध्यात्मिक मानसिक अभिव्यक्ति पर बत देता है और कहता है कि कला एक सहज स्वतंत्र आध्यात्मिक क्रिया है और कलाकृति उसका मूल प्राकृतिक रूप। गुल्जी बत्रोक्तिवाद को भी, जिसे अभिव्यजनावाद की तुलना की जाती है सद्दह की दृष्टि स देखत हैं और, जसा पूव पृष्ठा म कहा जा चुका है भावप्रेरित वक्रता का ही समयन करत हैं। 'चिनामणि' म एक स्यत् पर वे प्राय प्लेटो के गला में कविता को "टवाइस रिमूव्ड फ्राम रियलिटी" कहने दीख पडत हैं— जगत् अव्यक्त की अभिव्यक्ति है और काव्य इस अभिव्यक्ति की भी अभिव्यक्ति है।<sup>३</sup> प्लेटो का प्रभाव कितनी दूर तक पहुँचा है इसका

१ उपरिबत, भाग २, पृ० ५० ५१।

२ उपरिबत, पृ० ५१, द्रष्टव्य रस-मीमासा, पृ० २१५।

३ उपरिबत, पृ० ५४।

आपना इग पात्र न रिपा जा गाता है। धीरे धीरे इमी अनुभूति-भाग की माध्या स कुछ अन्तर्दृष्टि मन्त्र महाभाषा का रग रिता-द्विरासिष्ट क भीतर परम हृदय की शान्त भिगा रिताग करिगा और ऊँठी भूमि पर जाई।<sup>१</sup> याल्मीकि मूर्ति क मुँह न माध्याग क शूरा की जा गाता कही गई है यल्लगा क माध्य-भवाग-गवपी रिपारा क समनुष्ण है। यामासि की य परिचाय—  
मा रिपार प्रतिष्ठात्कमगम गान्धी समा ।

यत्कोञ्चमिषुतादेरमवपी काम मोहितम् ॥

कवि की अन्तर्भागा स उसा प्रार रिग्ना है त्रिग प्रार, लग के गानुमार, मूतानी कविगा के हृदय स दधी प्रगावग कविगा की गुधा धारा पूर पछी है। सुवन्जी ने एव धार फिर रिषड स की सराहना करत हुए कहा है

सामग्र्य काव्य और जीवन गाना की सराहना का मूल मन्त्र है। काव्य का जा स्वरूप महर्षि याल्मीकि न अपन प्राचीन का म समगा क रिगारे प्रतिष्ठित रिपा पा आज ईगा की बीमगा गाला म इगलड क अत्यन्त विम दृष्टि समाशपन रिषड स भारतीय समीक्षा-शेन का यहा-सा निरपन शल्लजाल और कूडा-तराट पार करत हुए उसी स्वरूप तर पढ़े हैं।<sup>२</sup>

इन पक्तिगा म ऐसा या प्रगासात्मन स्वर बहूत कुछ बगा ही है जसा आधु-निक पत्र-पत्रिका म प्रगासित विगापना का स्वर और यहाँ समीगा विगुड साहित्यक समीगा न रहार पत्रकारिता हा जानी है प्रगासाभिव्यजन मात्र रह जानी है। ऐसे भावोन्गारा और रिषड स की प्रगासा म बार-बार लिरी गइ इन पक्तिगा स ऐसा जान पडता है कि सुवन्जी क लिए रिषड स की समीगा एव अम्भुत खोज (डिसकवरी) थी और इस कारण उनरी प्रतिरिया म ईपत् अतिरजना भी देखी जाती है। उनवे ऊपर रिषड स का कुछ बसा ही प्रभाव पना है जसा थपमन-द्वारा अनूदित होमर के काव्य के अनुगीतन का प्रभाव कीटस पर पडा था।<sup>३</sup> रिषड स के जानोचनात्मन सिद्धाता की खोज 'रेल्म आव गोलड की 'डिसकवरी' न सही 'रेल्म आव त्रिटिसिग्म' की खोज अवश्य थी। परंतु हम यह नहीं भूल सक्ते कि जहाँ रिषड स का अंगरेजी समीक्षा पर प्रभूत

१ उपरिक्त ।  
२ उपरिक्त, पृ० ५६ ।  
३ दे० 'ऑन फस्ट लुकिग इण्टु थपमस होमर' शीषक कविता । ("द गोलडेन ट्रेजरी" मे इसकी प्रमसख्या १६६ है ।)

प्रभाव है और जहा उमन मनोवैज्ञानिक, विश्लेषणात्मक तथा "टेक्चुअल" आलोचना के क्षेत्र में जनन्य योगदान किया है, वहीं, समग्रत, एलियट का प्रभाव अग्रिक व्यापक रहा है और उसकी समीक्षात्मक कृतिया अपेक्षया अधिक प्रातिकारी रही हैं। एलियट की पहली पुस्तक "द सक्सेड बड" का प्रकाशन सन् १९२० ई० में हो चुका था और इसमें ही 'ट्रिडिशन एंड दि इण्डिभिडुअल टैलेण्ट' नामक वह निबन्ध सम्मिलित है जो सन १९१८ में प्रकाशित हुआ था और जिसकी लोकप्रियता आज भी अक्षुण्ण है।<sup>१</sup>

जहा तक काव्य-संघी सिद्धांत का प्रश्न है, शुक्लजी तथा एलियट के सिद्धान्त में भी किंचित साम्य दीव्यता है। एलियट ने सत्रहवीं शती के "मेटाफिजिकल" सम्प्रदाय के कवियों की सराहना की है और उनकी सघटित स्याजित सवदनशीलता ( 'यूनिफायड सेंसिविलिटी' ) में उनकी काव्यगत सफलताओं का रहस्य देखा है। गेक्सपियर की 'सेंसिविलिटी' भी ऐसी ही थी जिसके फलस्वरूप वह "थोड़ी सी मनोवृत्तियां" तक ही अपने काव्यक्षेत्र का सीमित नहीं रखना। मध्य लेखका में "अन बैरियल" 'द गाडन ऑफ सायरस' तथा 'रलिजियो मेडिकी' के विश्व-विश्रुत रचयिता टॉमन ब्राउडा का नाम सर्वोपरि है। स्पेन्सर (पायटस पोयट) तथा मिल्टन ( 'द ग्रण्ड स्टाइल', "सॅसिमिटी" ) के प्रभाव के कारण मनुष्या शती में डायडन और अठारहवीं शती में पाप प्रभति कविया की "सेंसिविलिटी" का वियोजन ( "डिस्मोसिएशन" ) हुआ, जो बीसवीं शती तक व कविया की रचनाओं में देखा जा सकता है। ह्यूम पाउट और एलियट आदि ने अपनी कविताओं में "मेटाफिजिकल" कविया की रचनाओं की-सी अनेकभावात्मकता का पुन संचार किया और कविता के विषयगत भावगत आयाम का विस्तार किया। एलियट को पेट्रारकन सॉनेटियर की भावात्मक एकरूपता अथवा स्वच्छदतावादी कविया की विषयगत एकरसता पसंद नहीं है। वह नहीं चाहता कि कविता अपने का केवल प्रेम और विरह तक ही सीमित रहे। स्वच्छदतावादी कविताओं में विभिन्न भावा का सम्यक् सयोजन अथवा विभिन्न रमा का युगपद् परिपाक नहीं मिलता। "ओड टु ए नाईटिंगेल" का कवि मम-व्यथा से कविता का आरम्भ करता है और ऐसी ही वेदना में कविता का अंत करता है। सपूर्ण रोमांटिक काव्य पर अनात और अगोचर की खोज से उद्भूत नराश्य की छाया वनमान है। इसी से "रोमांटिक ऐगनी" की उत्पत्ति हुई

१ आई० ए० रिचड्स की पुस्तक 'प्रिसिपुल्स ऑफ लिटररी क्रिटिसिज्म' का प्रथम संस्करण सन १९२४ में प्रकाशित हुआ था।

है। सुतजी ने सभी के तायरा की बमठगा और बहं-रूप के प्रवृत्ति प्रम पर ह्य प्रगट किया है, परन्तु श्रुति रामांति प्रवृत्ति ही रहस्यवा का जम दा है (श्रेय और बहं-रूप म रहस्यवा की प्रवृत्ति का 'मूाधित उद्वाधा हुआ है) उहें रामांति काव्य का मह पन अष्ठा तहीं रगना । अत व पूछा है

अब विचारने की बात है कि जिमी अगापर और अगा के प्रम म आमुप्रा की आकाशगगा म तरा ह्य का नया का गिाण बजाने, प्रियाम अमीम म गग तग प्रान मा तांय करा या मूं तयलारा म भीतर जिमी रहस्य का गुणमय चित्र दगन का ही—'नी' ता ता कोई हज र था—कविता कटा कहीं ता टीर है? पाग आर म बदगा हातर छाने-छाड कातीरा ए म्म कविता कव ता टिा सती है ?<sup>१</sup>

इन पक्तिया म जिम बमोती की ओर गता है उम पर मध्यम की रहस्यवा की रचनात्रा का अधित महत्व तहीं गिया जा गता। पहा प्रान म 'को ही' पर पर्याप्त धा गिया गया है—नया रहस्यवा की कविता को ही कविता कहेंगे? 'ध्यन पन म भी वही असीमता और वही जनना है। ध्यन और अध्यन म काई पारमाधित भद गटा। अगत की गिाणा ही का कुछ अम होता है, उसकी लाता या प्रेम का गहा।'<sup>२</sup> सुतजी की मनावृष्टि स्पष्ट है। वे गावर और गत को ही कवि के लिए अधित उपयोगी मानत हैं तथा कविता का अनेकभावात्मक बनाना पस करत हैं। इन सदम म उनकी ये पक्तिया उद्धतव्य हैं

पहले कहा जा चुना है कि जिस प्रकार जगत् अनेकरपात्मक है उसी प्रकार काव्य भी अनेक भावात्मक है। प्रम अभिलाप विरह आमुक्य ह्य आदि षाडी सी मनावृत्तिया का एन छोटा सा घरा सम्पूण काव्यक्षत्र नही हो सकता। इन भावा के साथ और दूसरे भाव —गसे शोध भय, उत्साह घणा इत्यादि—एसी जटिलता से गुम्पित हैं कि सम्मक काव्यदृष्टि उनका अलग महा छोड सकती चाहे उनका सामजस्य गेप अत प्रवृत्तिया के साथ कभी कभी मुस्विल से ही क्या न बँठता हो।<sup>३</sup>

- 
- १ चिन्तामणि, २, पृ० ५६।  
 २ उपरिक्त, २, पृ० ५७।  
 ३ उपरिक्त।

रीतिकालीन कविता, पुनर्जागरण-युग के अँगरेजी "मॉनेट", यहाँ तब कि अठारहवीं शती की व्यंग्यप्रधान रचनाएँ जिनकी भाषा-शाली पर मिल्टन की उदात्तता का व्यापक प्रभाव पडा है, और उन्नीसवीं शती की रोमांटिक विक्टोरियन कविताएँ अनेक भावात्मक नहीं हैं और न इनमें वर्णित भावा के साथ दूसरे भाव ही जटिल रूप में गुम्फित हैं। इस कारण गुक्लजी की समीक्षा रीति-काव्य के दोषा के प्रति उतनी ही सजग है जितनी पेट्रार्कन सानेट-परम्परा तथा स्वच्छन्दतावादी काव्य के दोषा के प्रति एलियट की समीक्षा। एलियट के इन शब्दा का भावाथ प्राय वही है जो गुक्लजी के उपयुक्त उद्धरण का है

“काव्य में विषयगत भिन्नता और विजातीयता कवि के मन में समाहित होने का बाध्य ही जाती है। ऐसी भिन्नता कविता में सबत्र देखी जाती है। विचार और अनुभूति के प्रति सच्चाई के कारण जा विभिन्नता देखी जाती है, उसके फलस्वरूप संगीत में भी विभेत् उत्पन्न होता है। (जान) इन के लिए विचार ही अनुभव था—इसमें उसकी संवेदनशीलता अपरिवर्तित हानी है। जब कवि का मन काय निष्पत्ति के लिए पूणतया मरा-पूरा होता है उस समय वह विभिन्न अनुभवा को निरंतर समामेलित (सरसित) करता रहता है साधारण व्यक्ति की अनुभूति अव्यवस्थित अनियमित तथा अपरिचित हुआ करती है। वह प्रेम करता है स्पाइनजा पडता है परन्तु इन दाना अनुभवों का एक-दूसरे में कोई संबध नहीं रहता और न इनका संबध मुद्-लेखन-यन से निस्सत ध्वनि या रमोई से जाती हुई गद्य से ही होता है कवि के मन में ये अनुभूतिया परस्पर गुम्फित होकर नई सपूण अनुभूतिया का सजन करती हैं।<sup>१</sup>

- १ But a degree of heterogeneity of material compelled into unity by the operation of the poet's mind is omnipresent in poetry as this fidelity induces variety of thought and feeling so it induces variety of music. A thought to Donne was an experience it modified his sensibility. When a poet's mind is perfectly equipped for its work it is constantly amalgamating disparate experience the ordinary man's experience is chaotic irregular fragmentary



टी० एग० एलियट व अने समानात्मा प्रतिमान टी० ई० ह्यूम व विपारा स प्रभावित हैं। टी० ई० ह्यूम न स्वच्छावाय पर रगा व प्रभाव का धारण करत हुए कहा है कि धूमि स्वच्छावाय की कवि मनुष्य का प्रतिभा का जग और अतीम मानता है यह मनुष्य और सत्य अतीम का ही पचा करता है। ह्यूम के इस दृष्टिवाण का प्रतिफल गुल्जी व 'वाच्य म रहस्यवाद' नीचा निबध म हुआ है। गुल्जी भी नहा चाहत कि वाई कवि गता और ह्यूम का तरह बराबर अतीम और अज्ञात की ही पचा करता रह जा सुवणस्वप्न "स्वप्न अनिल" तथा स्वप्न आभा जती कविताएँ रच। परतु अनुमघाता की दृष्टि गुल्जी की समीक्षा व उन स्थला पर बेचित्र हाता है जहाँ वे भी अमाद और अज्ञात की ही पचा करने हैं। उनरी करणा "रामाटिक मल्लेवालिया" का ही प्रतिच्छाया है और बराबर म सामाय हृष्य की अनुमूति एव प्रचार का रहस्यवाद। वड स्वर्ध म हमारे जादिकवि की तरह अपने हृदय का फन्तर जगन् म भावरूप म रम जाने की स्वाभाविक प्रतिभा की उन्नीसवा गती की रामाटिक कविताजा म मनुष्यतर प्राणिया के प्रति अगाध उत्पट प्रेम का मूक्त व्यजना हुई है। कीटस के "ओड टु अ नाइटिंगेल", "ओड आन अ प्रसन्न अन' ओड टु आटम' इस तथ्य के घिर-ज्वलत उदाहरण हैं। ऐसा जान पडता है कि गुल्जी की निम्नलिखित पक्तियाँ

"यहाँ पर इतना ही कहना है कि भाव-साहित्य म मनुष्यतर चर-अचर प्राणिया को छोडा और प्रेम का स्थान मिलना चाहिए। व हमारी उपक्षा के पात्र नहीं हैं। हम ऐसे आरयान या उपवास का प्रतीक्षा मे बहुत दिना स हैं, जिसम मनुष्या के वक्त व साथ मित्रा हुआ किसी कुत्त बिल्ली जादि का भी कुट वृत्त हो घटनाजा व साथ

---

The latter falls in love or reads Spinoza and these two experiences have nothing to do with each other or with the noise of the typewriter or the smell of cooking in the mind of the poet these experiences are always forming new wholes —T S Eliot *Selected Essays* (London 1949) pp 283 287

‡ The romantic because he thinks man infinite must always be talking about the infinite *Speculations* 1960 p 119.

किसी विरपरिचिन पेड चाड़ी आदि का भी कुछ सम्बन्ध दिखाया गया हो।<sup>१</sup>

टामस हार्डी के उपन्यासों और लुक्कियाआ के अनुशीलन के पश्चात् ही लिखी गई होगी। हिंदी में ऐसे उपन्यासों का अन्वयण न हुआ हो, पर उन दिनों हार्डी के उपन्यास और उसकी कविताएँ उचित आशयों पर चुकी थी और भारतीय विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भी निर्धारित होने लगी थी। “द रिटन ऑफ द नेटिव” ‘फार फ्रॉम द मॉनिंग आउट’, ‘बुडलेण्ड्स’ आदि उपन्यासों में मनुष्या के वृत्त के साथ ‘प्रकृति के अद्भुत सवध की बड़ी ही मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति हुई है। “एंगडन हीथ” की मूल व्यञ्जना और मानव क्रियाकलापों पर उसके सूक्ष्म प्रभाव के निदान के लिए “द रिटन ऑफ द नेटिव” स्यात् है।

यद्यपि गुल्ज़ी की इस स्वीकृति से कि ‘अपनी-अपनी रचि है’<sup>२</sup> प्रचुर अमिरविषय सृष्टिपुता का बोध होता है फिर भी शोके तथा रीतिवादीन एक छायावादी कविता के प्रति उनमें उत्पन्नता का उमीलन न होना कुछ विचित्र सा लगता है। टॉल्स्टाय और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रति भी उनकी दृष्टि किंचित अनुदार है। टॉल्स्टाय की दृष्टि को “बहुत सङ्कुचित” कहकर उहाने अमहिष्णु पत्रकारिता का परिचय दिया है, सत्समालाचना का वह ज्वलत उदाहरण उपस्थित नहीं किया जिसके लिए वे ठीक ही स्यात् हैं। इसी प्रकार ‘चित्तमणि’ में यूरोपीय समीक्षा की एकाग्रदर्शिता का उल्लेख है,<sup>३</sup> जिसे हम एक अतिसामान्य उक्ति के रूप में ही स्वीकार करेंगे। इन एकाग्रदर्शी समीक्षकों के नाम नहीं बताये गए। इनकी जगह यही पाद टिप्पणी में आई० ए० रिचर्ड्स की कुछ कविता उद्धृत हैं जिनसे यूरोपीय समीक्षा-क्षेत्र में परिख्याप्त अर्थशून्य वागाडम्बर और गडबडझाल का पता चलता है। प्रस्तुत विवेचन का सवध दो प्रकार के विधानों से है (न कि उपयुक्त वागाडम्बर आदि से) कुछ कवि प्रकृति का यथातथ्य सन्निहित चित्रण करते हैं और कुछ प्रकृति की अभिव्यञ्जना द्वारा गहीत तथ्या का रमणीय वर्णन प्रस्तुत करते हैं। दोनों विधानों का महत्त्व, गुल्ज़ी के मतानुसार, बराबर है परन्तु कुछ यूरोपीय समीक्षकों को उच्च और दूसरे को मध्यम कहकर एक आद बंद कर लेते हैं। ऐसे एकाग्रदर्शी समीक्षकों कौन कौन से हैं इसका उल्लेख नहीं हुआ। अन्त में उहाने लिखा है कि अँगरेजी कविताओं के

१ चिन्तामणि, पृ० ६१।

२ उपरिक्त।

३ उपरिक्त, पृ० ६४।

अनुवाद से हिन्दी कविता करना नहीं आ सकता। अंगरेजी कविता करना क्या कोई हिन्दी कविताया का अनुवाद करने सीख सकता है?"<sup>1</sup> यह एक ऐसा प्रवृत्ति का सशक्त विरोध है जिसकी अतिशयता से हिन्दी भाषा-साहित्य की अपार क्षति होती रही है। फिर भी हम यह कहने का लाभ सवरण नहीं कर पाते कि "रचि अपनी अपनी है" और यह कि सभी अनुवादका के सवध म शुक्लजी के य कथन साथक न हागे। अनुवाद की सफलता भाषातरकार की बहुविधता, प्रतिभा आदि पर निर्भर होती है। यूरोप के पुनर्जागरण युग से लेकर आज तक इंग्लड मे इस मत के अनेक समर्थक हुए है कि कवि को लैटिन और ग्रीक कवियों की रचनाया के भाषातर से अपने कवि जीवन का समाारभ करना चाहिए। राजर ऐस्कम सिडनी पटनम आदि ने "इमोटशन" और अनुकृति पर जो बात दिया था, उसकी प्रतिध्वनि पालिक स्कूला म निर्धारित और प्रचलित पाठ्यक्रमा म चुनी जा सकती है। आज भी विश्वविद्यालयो म भाषातरण पर प्रभूत बल दिया जाता है। ड्रायडन, पोप राबट ग्रेन्ज, एजरा पाउड आदि ने अयदेशीय काव्य के अनुवाद से बहुत कुछ सीखा है। ऐसा जान पडता है कि शुक्लजी का मतभ्य केवल भाषातरित कविताया की गहणा करना नहीं है वे हिन्दी भाषा साहित्य की रचि और प्रकृति के अनुकूल ही अनुवादा के प्रणयन का समर्थन करेंगे। लटिन और यूनानी कविताया के अनुवाद से कोई अंगरेजी कविता करना भले ही सीख ल परंतु अंगरेजी कविताया के अनुवाद से हिन्दी कविता करना नहीं सीख सकता कारण दाना की प्रकृति सवथा भिन्न है। फिर भी यह निर्विवाद है कि जिन कविताया के विषय सुवणस्वप्न, 'स्वप्न अनिल', 'स्वप्निल आना' आदि हो अथवा जिनम ये शब्द प्रयुक्त हा वे सब की सब हेय नहीं हो सकती। शुक्लजी द्वारा निर्धारित निकष पर भी इनम कितनी ही कविताएँ अनूदित हाकर भी सफल उतर सकती हैं। वस्तुतः शुक्लजी और टी० ई० ह्यूम को असीम और अस्पष्ट' से स्वामाविक चिड है, जिसक कारण वे स्वच्छतामूलक डीमीनेस वगनेस का विरोध करत है।

डा० गुलाबराय (१८८७-१९६३)

डा० गुलाबराय का कृत्य उनकी मौलिक आलाचनात्मक उपलक्षियाँ इधर कुद्वानिा स विवादा का विषय बन गई हैं। एन आर डा० नगेंद्र हैं जिनक 'रस सिद्धांत' मे अज्ञास्पत वानू माहन का उल्लेख नय सशित्त काव्यगाम्भ्र

१ उपरिबत, पृ० १५०।

२१४ :: आधुनिक हिन्दी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव

के उन्नायको म हुआ है।<sup>१</sup> वाबू साहव सखिल्लिष्ट काव्यशास्त्र के मेरदण्ड नहीं हैं— यह सौभाग्य तो आचाय शुक्ल को ही मिला है, पर "उल्लेखनीय"<sup>२</sup> अवश्य है और जहा रम का स्वरूप विवचन होता है, वहाँ आचाय केशवप्रसाद मिश्र प० रामदहिन मिश्र, डा० भगवानदास, डॉ० श्यामसुन्दरदास और आचाय हजारौ प्रसाद द्विवेदी के साथ डा० गुलाबराय का नाम भी लिखा मिलता है।<sup>३</sup> हिंदी के जिन वरेण्य आधुनिक आचार्यों ने रसा का मनावैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है उनम आचाय रामचन्द्र शुक्ल और डा० नगेद्र निस्सदेह सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं किंतु इनके बाद डा० श्यामसुन्दरदास, रामदहिन मिश्र और डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधाशु के साथ डा० गुलाबराय का भी नाम आता है।<sup>४</sup> इधर कुछ नये आलोचका ने इस कथन की सत्यता म सदेह प्रकट किया है कि डॉ० गुलाबराय आलाचक हैं 'गुलाबरायजी ने अच्छी अच्छी पाठ्य पुस्तकें ही लिखी हैं। इतने से उह आलाचक नहीं माना जा सकता।'<sup>५</sup> इसमे प्रभाकर माचव के निम्नलिखित कथन की प्रतिध्वनि सुनाई पडती है

इसी एकत्रीकरण की और सबसे अच्छे सग्रह बनाय रखने की इच्छा के कारण गुलाबरायजी की आलोचना कही भी विद्यार्थियों को जानकारी देनेवाले मत-मग्रह स ऊपर उठकर कोई विशेष नवीन उद्भावना अथवा विचारोत्तेजक, सृजनात्मक आलोचना का रूप ग्रहण नहीं करती।<sup>६</sup>

१ रस सिद्धांत (दिल्ली, १९६४), पृ० ९३। डा० रामगोपालसिंह चौहान ने 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आलोचना' शीर्षक निबंध मे कहा है कि 'भारतीय एव पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा आधुनिक हिंदी-समीक्षा सिद्धांत का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए वाबू गुलाबराय की कई रचनाएँ प्रकाश मे आई हैं।' आचाय हजारौप्रसाद द्विवेदी (प्र० सपा०), काव्यशास्त्र (दिल्ली, १९६६), पृ० ४६६।

२ रस सिद्धांत, पृ० ७३।

३ उपरिखत, पृ० ९९।

४ डा० सच्चिदानंद चौधरी, हिंदी काव्यशास्त्र मे रससिद्धांत (कानपुर, १९६५), पृ० ४६५, ४७२ और ४९३।

५ डा० हरिमोहन मिश्र। दे० डा० कुमार विमल (सम्पा०), अत्याधुनिक हिंदी-साहित्य (पटना, १९६५), पृ० ४६।

६ प्रभाकर माचवे, समीक्षा का समीक्षा (दिल्ली, १९५३), पृ० ५२।



पाठ्य ग्रन्था म स्थान पा सती तो इसमें हज ही क्या है ? एलिघट और गुवर्नी की कनिष्य पुस्तक भी पाठ्यक्रमा म निर्धारित हाती रही हैं और दो-ढाई बप हुए, सन् १९६४ म राइट पेन वारेन तथा क्लिन्य ब्रुक्स की "ग्रडस टडिंग पोषट्री" नामक कृति को पटना विश्वविद्यालय की एम० ए० (अंगरेजी) परीदा के पाठ्य ग्रन्था म स्वीकृत किया गया था और तभी से उक्त विश्वविद्यालय के पाठ्य ग्रन्था म इस पुस्तक का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। फिर भी विश्व के बडे से बडे समीक्षक 'काक्टे पार्सी' और "सलेक्टेड प्रोज" को अंगरेजी की ममादरणीय रचनाओं म परिगणित करते हैं, हिंदी के आलाचक "रम मोमासा" के महत्व को स्वीकार करते ह और विश्वविद्यालय के प्राध्यापक 'ग्रडस टडिंग पोषट्री' म निर्दिष्ट व्यावहारिक समीक्षा-पद्धति का अनुमरण करते हैं। इतना ज्वश्य माना जा मकना है कि बाबू साहब की आलाचनाआ म कोई गभीर और भौतिक निरूपण नहा मिलता—उनम गवेषणात्मक विवेचन का सवया अभाव दीख पडता है। इस कारण के उच्चकाटि के समीक्षका म परिगणनीय नही हा सकवे। उनका स्थान हिंदी-आलोचना के आधार-स्तम्भ" के नीचे है।

जासुमी कहानियों के वर्तमान युग मे प्रमाता रोमाचकारी घटनाआ को ही चाव से नही पडते समवत आत्सुक्यबद्धक समीक्षा भी पसद करते हैं। नय आलाचका म कुछ तो ऐस ही है जो सस्ती उत्तेजनात्मक समीक्षा गिनन मे दत्तचित्त दीखते हैं। एफ० आर० लीविस और 'कमिज स्कूल' के समीक्षक रॉय गाडन, एडमण्ड गॉस प्रमति को समीक्षक ही नही मानते—इह सपादना की श्रणी म रखत हैं।<sup>१</sup> परतु यहाँ हम एडवड डाल्कन-जैमे लेखका का भी नहा भूल सकवे जा स्वय एलिघट और पाउड को आलाचक तथा कवि नही मानत।<sup>२</sup>

### पाश्चात्य प्रभाव

'यद्यपि मैं वी० ए० म एक बार सस्टून मे फेले हा गया था तथापि मुझे

१ दे० *Scrutiny* vol XII No 1, 1943 (Q D Leavis 'The Discipline of Letters') *Scrutiny* vol XIX 1 52 53 pp 82 et sqq (R G Cox, The New Scholarship) *Scrutiny* vol I No 3 (F R Leavis 'What's Wrong with Criticism')

२ दे० Edward Dahlberg and Herbert Read *Truth is More Sacred A Critical Exchange on Modern Literature*



उपस्थित हुआ है, बाबूजी का अपना स्वभाव ही बन गया, और जत तक उनका साथ रहा।”<sup>१</sup>

कही-कही बाबूजी के “नवरत्न” में डा० नगद के “रस मिदधान” की पूर्वानुभूति होती है। आचार्य शुक्ल और बाबूजी डा० नगद के पूर्वानुभावका म है। नवरत्न के विवेचन में बाबूजी ने इस बात का यथाशक्य उद्योग किया है कि उनके “वर्णन में जो गूढ़ मनोवैज्ञानिक सिद्धांत अप्रस्तुत रूप से बनमान हैं, उनका पूर्णतया उल्घाटन” कर दिया जाय।<sup>२</sup> शरीर विज्ञान के आलोक में भावा और मनोवैज्ञानिक की व्याख्या प्रस्तुत की गई है जो शुक्लजी से भी प्रभावित है। बाबू साहब ने हिंदी-मालोचना में मनोविज्ञान को समाहित कर साहित्य की इस विद्या को पर्याप्त रूप से समझा दिया है।

“द्वितीय संस्करण” की भूमिका में कहा गया है कि वर्तमान समाज में काव्य का यथाचित आदर नहीं होता, कवियों का यथोचित सम्मान नहीं मिलता और यह कि काव्य तथा नाटका के अनुशीलन से मनुष्या में सहानुभूति का सहज उदय होता है, वे दयालु तथा सहिष्णु बनते हैं। इस मतवाद के मूल में विज्ञान के वर्धमान प्रभाव तथा यज्ञयुगीन भौतिकवादिता के प्रति आतिशयिक चेतना है। स्थूल भौतिकवादी दृष्टि से काव्य निष्प्रयोजन दीखता है किंतु उसमें ही मानवता का कल्याण निहित है। इस भावधारा पर काव्यविषयक उस विक्टोरियन दृष्टिकोण का प्रभाव है जिससे देखने पर काव्य धर्म का स्थानापन्न<sup>३</sup> प्रतिरूप हो जाता है और जिसरी मूल अभिव्यक्ति थानल्ड, जे० एस० मिल आदि की रचनाओं में हुई है।

आवश्यकता पन्न पर बाबू साहब पाश्चात्य और प्राच्य विचारों का ही समीक्षण नहीं करते, अंगरेजी हिंदी के समानार्थी शब्दों पर भी दक्षपात करते हैं। उनके अनुसार “भाव शब्द अंगरेजी के ‘फीलिंग’ और ‘इमाजन’ में अधिक व्यापक अर्थ रखता है।” वे इस बात से परिचित हैं कि विभाव, अनुभाव आदि के विषय में अमरीकी मनोविज्ञानवत्ता विलियम जेम्स द्वारा उद्भावित कल्पना अत्यंत विवादास्पद बन गई है। जेम्स की कल्पना के अनुसार अनुभाव का नाम ही भाव है। भुक्तिबोध और नलिनजी हास तो जेम्स के कल्पनाविषयक सिद्धान्तों में ही उलझे रह जाते। परंतु बाबू साहब ऐसा नहीं करते। वे कल्पना-

१ उपरिचत ।

२ नवरत्न (१९३४), पृ० ९ (द्वितीय संस्करण की भूमिका)

३ स-सट्टिट्यूट ।

४ नवरत्न, पृ० ३२ ।



विषयन भारतीय मता का भी उल्लेख करते हैं।<sup>१</sup> उाके द्वारा प्रस्तुत भावा का समस्त बानानिक विवरण स्वभावतः पाश्चात्य मनोविज्ञान और शरीरविज्ञान स प्रभावित है।<sup>२</sup> उनका उद्देश्य न तो भारतीय मनीषा और साहित्य चिन्ता को हीनतर घापित करना है और न पाश्चात्य दशन चिन्तन को श्रष्टनर । चूरि के समन्वयवादी है इसलिए समन्वय के लिए समतुल्यता की सपुष्ट आधार भूमिका के अवेपण म ही सर्वाधिन रत दीरतत हैं। उनकी प्रतिनिधि समन्वयवाणी आलोचना पद्धति इन पवित्रया म प्रतिफलित है

(१) यदि शृगार मनुष्य जीवन की एकमात्र सचालन शक्ति नहा है तो मुख्य शक्तिया म जबश्य है। आजकल मनोविश्लेषणशास्त्रिया (psychoanalysts) न लगिक उत्तजन (sex urge) को बडी प्रधानता दी है और यह लाग बानानिक होत हुए भी किसी अण म अत्युक्ति की ओर चर गए हैं।<sup>३</sup>

यह यह लोग ' फ्रायडीय मनोविश्लेषणशास्त्रियो के लिए तथा किसी अण म ' अँगरेजी के ' इन सम मेजर (in some measure, to some extent) के लिए प्रमुक्त हुए हैं।

(२) आजकल के मनोविश्लेषणशास्त्रिया न शृगार भाव को बहुत प्रधानता दी है और उनका कथन है कि हमारी अनुबुद्धावस्था (subconscious state) म जो कामभाव रहता है उसके द्वारा हमारी सब क्रियाआ की व्याख्या हो सकती है। मनोविश्लेषणशास्त्रिया का कहना है कि हमारे सब स्वप्न कामवासना मूलक हैं। इसी प्रकार हमारी बहुत-सी क्रियाआ का जिनको हम जाकस्मिक कहते हैं मूल आधार कामवासना म है।<sup>४</sup>

स्पष्ट है कि (१) यहाँ शृगार के महत्त्व के प्रतिपादन के लिए फ्रायडीय मनाविश्लेषण का उपयोग हुआ है। (इसी प्रकार हास्यरस के विवेचन म बाबू साहब हैजलिट बगसा और मैकडूगल से प्रभावित है।) (२) जो आलोचक बाबू साहब को समीक्षक नहीं मानते उह ऐसे विवेचना को ध्यान म रखना चाहिए। बाबूजी हिंदी म फ्रायडीय मनोविश्लेषणशास्त्र के जाय व्याख्याताओ

१ उपरिखत, प० ३३ ।

२ उपरिखत, प० ११८ १२३ ।

३ उपरिखत, प० १४२ ।

४ उपरिखत, प० १५४ ।

म हैं। उन्होंने मनोविश्लेषणशास्त्र के आधारभूत सिद्धांतों की महा व्याख्या नहीं की है प्रत्युत उन्हें भारतीय काव्यशास्त्र से समन्वित भी किया है, जो मवधा श्लाघनीय है। ऐसा ही प्रयत्न उनके परवर्ती रसवादिया न किया है।

'सिद्धांत और अध्ययन', 'काव्य के रूप', 'हिंदी नाट्य विमर्श' जादि ग्रन्था म बाबूजी ने भारतीय विषया के विवेचन म यथावसर पाश्चात्य मत-मतानरा का उल्लेख किया है। जहा उन्हाने मम्मटाचार्य, आचार्य विश्वनाथ पंडितराज जगन्नाथ जादि के काव्यतत्त्व विषयक विचार उद्धृत किये हैं उन्हान गेकमपियर मे लेकर हडसन तक के महत्त्वपूर्ण समीक्षकों के एतद्विषयक विचारों को भी प्रस्तुत किया है।<sup>१</sup> भारतीय आचार्यों एवं पाश्चात्य कवियों और आलोचकों के मता के यथावत उल्लेख के पश्चात् बाबू साहब ने 'सब मतों को एक परिभाषा के सकुचित घेरे म' बांधने का प्रयास किया है और यह 'समन्वित' परिभाषा रखी है 'काव्य मसाल के प्रति कवि की भाव प्रधान (किंतु शुद्ध व्यक्तित्व मवधा से युक्त) मानसिक प्रतिक्रियाओं की कल्पना के ढांचे म ढली हुई श्रेय की प्रेरणा प्रभावात्पादक अभिव्यक्ति है।<sup>२</sup> इसी प्रकार 'काव्य और साहित्य का परिभाषा'<sup>३</sup> 'दृश्य काव्य',<sup>४</sup> "महाकाव्य",<sup>५</sup> "गीतिकाव्य"<sup>६</sup> जम दजना विषया के विवेचन म उन्हान पाश्चात्य साहित्य का उपयोग किया है। पाश्चात्य प्रभाव की दृष्टि से 'सिद्धांत और अध्ययन' "साहित्य की मूल प्रेरणाएँ" रस और मनोविज्ञान' 'अभिव्यजनावाद आर कलावाद' और ममालाचना के माँ शीपक निवध तथा काव्य के रूप' के सभी निवध पठनीय एवं महत्त्वपूर्ण हैं।

परंतु बाबूजी की समन्वयवादी दृष्टि नितात भारतीय है। पश्चिम के जयधिक बुद्धिवाद म हमारी दृष्टि को भेदा की ओर अधिक प्रेरित किया है। भारतीय दृष्टि भेदा के बीच म बसनेवाली एकता की ओर मानव का ध्यान आवेपित करती है।<sup>७</sup> आत्मविश्लेषण करन टुए उन्होने कहा है कि वे पराय भावा का तभी स्वीकार करते हैं जब उ ह पूणतया आत्मसात् कर लेते हैं। इस आत्मीकरण की

१ डा० गुलाबराय, सिद्धांत और अध्ययन (छठा स० १९६५), पृ० ४६ ४७।

२ उपरिक्त, प० ५०।

३ ४ उपरिक्त, पृ० ५१, ५६ ५७।

५ ६ डा० गुलाबराय, काव्य के रूप (१९४७)।

७ डा० गुलाबराय, मेरे निवध (आगरा, १९५५), पृ० १९४ १९५।

प्रक्रिया में स्वकीय-परकीय का सम्बन्ध हो जाता है। दूसरा के सार-तत्त्व का ग्रहण करने के लिए वे सदैव तैयार रहते हैं, परन्तु अपनी धाता को भी हेय नहीं समझते। भारतीय सम्बन्धवाद उनके जीवन का लक्ष्य रहा है। इस सम्बन्धवाद से एवनिष्ठ लोग अप्रसन्न भी रहते हैं किन्तु वावूजी के मतानुसार यह सम्बन्ध वादिता उन्हें सत्य की प्रतिष्ठा की ओर ले जाती है।<sup>१</sup> उनकी "आलोचनाओं में भी यही सारप्राहिता रहती है।"<sup>२</sup> साथ ही वे यह भी जानते हैं कि उनकी समीक्षाओं में तल्लक्षणी गामीय नहीं होता। इसका कारण, उनके ही शब्दों में, यह है कि वे "नियन्तात्मा में सिद्धांततः विश्वास रखते हुए और गभीर अध्ययन में मनोयोग नहीं दे पाते थे। 'ज्ञान मन्दिर की देहली' से ही उन्होंने उसकी — ज्ञान की — सौम्य मूर्ति के दर्शन किये थे। उसके भीतर प्रवेश करने के लिए उन्होंने परिश्रम अवश्य किया था पर 'प्राप्त' करने में 'असमर्थ' रहे थे। "मेरे ज्ञान में भी, वावूजी कहते हैं 'एवनिष्ठता नहीं है। इसलिए मैं साहस्य जीव आलोचना के विषय में अपने जो पिछड़ा हुआ पाता हूँ। इसलिए इन व्यक्तिक निबन्धों में मन रमा लेता हूँ और कभी मनोविज्ञान और दर्शन की चर्चा कर लेता हूँ।"<sup>३</sup>

वावूजी के हास्य-व्यंग्यात्मक और गभीर लेखों का एक सरस संग्रह 'कुछ उथले कुछ गहरे'<sup>४</sup> नाम से अभिहित हुआ है। वावूजी की सम्पूर्ण आलोचनात्मक कृतियों के लिए यह नाम अत्यन्त उपयुक्त है। इनमें कुछ निबन्ध उथले और कुछ गहरे मिलेंगे। एक ही निबन्ध में ही कुछ उथले और कुछ गहरे स्थल मिल सकते हैं। 'आलोचना कुसुमाञ्जलि' (१९४६) के अधिकांश निबन्धों में तथा "आलोचक रामचन्द्र गुल" (संपादक डा० गुलाबराय जीव डा० विजयेन्द्र स्नातक) में संकलित 'जाचाय गुल' और रहस्यवाद और गुलजी के मनोवैज्ञानिक निबन्धों में ईपत्तु गहराई मिल सकती है पर कुछ उथले कुछ गहरे के अधिकांश निबन्धों में गहराई के स्थान पर तलोपरिवृता ही अपेक्षया अधिक दीख पड़ती है।

१ उपरिखत, पृ० १२-१३।

२ उपरिखत, पृ० १३।

३ उपरिखत।

४ डा० गुलाबराय, कुछ उथले कुछ गहरे, (आगरा, १९५५), सुधारानी गुप्ता, बिदुपी, प्रभाकर द्वारा संकलित।

पंडित रामदहिन मिश्र (१८९६-१९५२)

प० रामदहिन मिश्र की रचनाओं पर पाश्चात्य काव्यशास्त्र और दंग का प्रभाव अत्यंत भारतीय साहित्य-मनीषिया एवं विचारका का प्रभाव सर्वाधिक दीर्घ पड़ता है। भारतीय काव्यशास्त्र विषयक उनकी मर्मोद्घाटनश्रमा रचनाएं पश्चिम के प्रति उधारगीता न होकर 'संस्कृत आचार्यों के आकर ग्रन्थों को ही मूलाधार'<sup>१</sup> बनाती हैं। "काव्यालोक" (द्वितीय उद्योत) के आरंभ में सहायक ग्रन्थों की अनुक्रमणी में जहां संस्कृत के बयालीस और हिंदी के पचीस ग्रन्थों के नाम लिखे मिलते हैं वहां अंग्रेजी के दो ग्रन्थों और एक छोटे से निबंध का ही उल्लेख हुआ है। जहाँ पंडितजी काव्य प्रयाजन के भिन्न भिन्न सिद्धांतों का निर्देश करते हैं, वहाँ वे तुत्सीदास के एतद्विषयक विचारों के बाद हारेण का यह कथन भी उद्धृत करते हैं कि कविया का उद्देश्य या तो गीता देना होता है या आनंद देना, अतः यथाय और उपयागों का आनंद से भिन्न दो।<sup>२</sup> तदुपरान्त वे कवीन्द्र रवीन्द्र और रावट पी० डाउंस के विचार उपस्थित करते हैं। डाउंस के अनुसार कला का कार्य किसी भी मानवीय आदर्श को बलात्मक नैपुण्य द्वारा साकार रूप प्रदान करना है।<sup>३</sup> कुछ लोग साहित्य-शास्त्र के रहस्या का ज्ञान अनावश्यक मानते हैं। मिश्रजी उसका सीधा-सा उत्तर एतद्देशीय आचार्य की इन पवित्रता से दते हैं

अज्ञातपाण्डित्यरहस्यमुद्रा

ये काव्यमार्गं दधते निमानम ।

ते गारुडीयाननघीत्य मन्त्रान

हालाह्लास्वादनमारमन्ते ॥ श्रीकण्ठचरित<sup>४</sup>

साहित्य-स्रष्टाओं के लिए ऐसा ज्ञान अपेक्षित तथा अत्यावश्यक है। इस कथन को अधिक-अधिक विश्वसनीय बनाने के हेतु मिश्रजी जमन कवि रेनर मारिया रिल्के की ओर उन पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं, जो साहित्य-स्रष्टाओं द्वारा शान्तीय नियमों के पालन का इनमें जकड़े जाने का पर्याय समझते हैं—नियमों में जकड़ा जाना परमसापेक्षिता एवं पराधीनता का द्योतक है।<sup>५</sup> रिल्के ने कविता

१ प० रामदहिन मिश्र, काव्य-रूपण (पटना, १९४७), पृ० ६ (आत्मनिवेदन)।

२ प० रामदहिन मिश्र, काव्यालोक (पटना, स० २००१), पृ० १६।

३ उपरिखत ।

४ उपरिखत, प० १७ ।

५ उपरिखत ।

के एक-एक पद के लिए घोर अध्ययन और निरीक्षण को आवश्यक बतलाया है।

मिश्रजी काव्यहेतुआ में ईस्वरप्रदत्त प्रतिभा की अनिवायता में विस्वास करते हैं पर साथ ही वे उसमें सदुपयोग के लिए कवि में शास्त्रीय ज्ञान का ज्ञान आवश्यक बतलाते हैं— प्रतिभाप्रसूत पंक्तियाँ जानालार से ही आलोचन हो सकती हैं।<sup>१</sup> साहित्यशास्त्र की विवेचना केवल अँगरेजी के बल पर जस्तस नहीं हो सकती। इसके लिए ससृष्ट का गभीर ज्ञान अपेक्षित और अनिवाय है। (यहाँ पंडितजी का यह कथन ध्यातव्य है कि “जो लोग साहित्य शास्त्र की विवेचना करते हैं, वे प्रायः ससृष्ट के ममता विद्वान् नहीं होते।<sup>२</sup> वे जान-बूझकर साहित्य शास्त्र’ की बात कहते हैं किसी विशिष्ट साहित्य शास्त्र की नहा। अर्थात् उनकी दृष्टि में पाश्चात्य साहित्यशास्त्र की विवेचना भी ससृष्ट के गहन-गभीर ज्ञान से लाभाश्रित हो सकती है।) अँगरेजी के बल पर जसे-तसे ससृष्ट-काव्यशास्त्र की व्याख्या प्रस्तुत करना शास्त्रीय मर्यादा भंग करना है। मिश्रजी भारतीय साहित्य शास्त्र की वरिष्ठता का निदान सिल्वा लेवी जम पाश्चात्य विद्वान् के इस कथन में करते हैं कि ‘बल के क्षत्र में भारतीय प्रतिभा’ ने ससार को एक नतन और श्रेष्ठ दान दिया है जिसे प्रतीक रूप से ‘रस’ शब्द द्वारा प्रकट कर सकते हैं और जिसे एक वाक्य में इस प्रकार कह सकते हैं कि कवि प्रकट नहीं करता व्यजित वा ध्वनित करता है।’<sup>३</sup>

स्पष्ट है कि मिश्रजी की रचनाओं में ससृष्ट साहित्यशास्त्र के ज्ञान पर ही सर्वाधिक बल दिया गया है—वे भारतीय साहित्यशास्त्र की ओर अधिक प्रवृत्त हुए हैं। मिश्रजी और डा० देवराज—दोना दो ध्रुवांतो पर खड़े दीखते हैं। जहाँ एक मुख्यतः भारतीय सिद्धांत का ही प्रस्ताता और प्रयोक्ता है वहाँ दूसरा पश्चिम की ओर अत्यधिक झुका है। फिर भी मिश्रजी उस अतिवादिता से सबका मुक्त हैं जो समीक्षक को अनुदार एक जनमनीय बना देती है। इसलिए वे प्राच्य-प्रतीच्य साहित्यशास्त्रों के समावय और एकीकरण का समयन करते हैं। दोना के सम्मिलित रूप को अपनाकर तथा “हिंदी साहित्य की सूक्ष्म परीक्षा करके ही हिंदी में साहित्य-शास्त्र के निर्माण की आवश्यकता है।”<sup>४</sup> इसके लिए ससृष्ट

१ उपरिक्त, प० १८ ।

२ उपरिक्त ।

३ उपरिक्त, प० १८-१९ ।

४ उपरिक्त, प० १९। “प्राच्य और पाश्चात्य साहित्य शास्त्र की विवेचना को सम्मिलित रूप से अपना कर, दोनों दृष्टिकोणों से देखकर ही कविता का स्वाद लेना होगा।” काव्यालोक, (पटना, १९४७), आत्म निवेदन ।

का निलाजलि दना उनना ही अगोमन है जितना "अंगरेजी का मधुमय" समयवर घाटना । "तुलनात्मक दष्टि से काव्यशास्त्र का नया प्रतिस्कार करना होगा ।"<sup>१</sup>

परन्तु मिश्रजी न माहिषशास्त्र के ऐसे नूतन सम्स्करण की रचना नहीं की । सिद्धान्त, वे समन्वयवादी हैं, व्यवहारन, मस्त्रन साहिषशास्त्र की ओर सर्वाधिक प्रवृत्त । वहीं-वहा भारतीय आचार्यों के मता का विवचिन कर चुवने के पश्चात् वे पाश्चात्य व्याख्याकारा के भी मत उद्धृत कर दत हैं—परन्तु उनके विवेचन म उनका मत नहीं रमता । पाश्चात्य आचार्यों के मत मिश्रजी के प्रया पर ऊपर से धारापिन दीवत हैं उनके अविभाज्य अग के रूप म प्रकट नहीं होत ।<sup>२</sup> यह भी उल्लेखनीय है कि मिश्रजी पाश्चात्य साहिषशास्त्र के मामान्य तथ्यों का ही उल्लेख करत हैं उन शास्त्र की गहराइया म नहीं जाने । उदाहरणाय, पाश्चात्य समागचना व मुन्य भेदा का व बडा ही सगिप्त इतिवृत्त प्रस्तुत करत हैं उनका सादाहरण समीपता एव अव्ययन नहीं ।<sup>३</sup> फिर भी वहीं-वहा उनकी समीपता गोषपरक एव गवषणामूर्त हा गई है । उन्हान "काव्यालोच" की तरख्वा किरण म हिंदा काव्य पर अंगरेजी मुहावरा के प्रभाव का बडा ही सूक्ष्म एव रोचक वषण प्रस्तुत किया है ।<sup>४</sup>

"काव्य-दषण" भी "काव्यालोच" की तरख् सम्स्त्रत आचार्यों के आकर ग्रन्था पर ही आधन है । यद्यपि इतक लखन न पाश्चात्य समीपता स भी लाभ उठाया है, फिर भी उनके आधारभूत प्रतिमान और सिद्धान्त पौरुष्य हैं न कि पाश्चात्य । इसका कारण रोगन की दष्टि म यह है कि 'पाश्चात्य विचार या सिद्धान्त चक्कर काटकर' इन्हा पौरुष्य सिद्धान्त पर लौट आन हैं ।

काव्यदषणकार ने यन-तन पाश्चात्य समीपता के अनेकश मत उद्धृत किए हैं किन्तु वहीं भा ऐसा प्रतीन नहीं होना कि वे उनसे प्रभावित ह । वचनबद्ध हुए विना, निरपेक्ष भास स एव तुलनाय पाश्चात्य मता को उद्धन करना उनसे प्रभावित होना नहीं है । पाश्चात्य काव्यशास्त्रीय सिद्धान्त एव मतवादा के प्रति काव्यदषणकार का यही उद्देश्य है । उनके ग्रन्था म अंगरेजी के प्रभूत उद्धरण

१ उपरिखत । काव्यालोच, आत्म निवेदन ।

२ उदाहरणार्थ, काव्यालोच, द्वितीय उद्योत, पृ० २६ २७ पर रस्किन और गेली के विचार ।

३ उपरिखत, पृ० ४६-४७ ।

४ उपरिखत, पृ० ४४ ४८ (तरख्वा किरण)

लेखक के उनसे प्रभावित होना का द्योतन न कर उनसे परिचित होने का द्योतन करते हैं ।

वाव्यानन्द के विदग्ध और सचेतस उपभाक्ताओं के सबध में "काव्य-दपण" में आनन्दबधनाचार्य और दण्डी के बाद प्लेटो का वह कथन उद्धृत है जिसके अनुसार वाव्यानन्द का अधिकारी वही व्यक्ति होता है जो सस्कृति और शिक्षा में महान है । मिथजी फ्रायड द्वारा प्रतिपादित कतिपय सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं करते । फ्रायड के अनुसार "वात्सल्य में जो रति है, वह कामवासनामूलक ही है । चाहे वह सहेतुक हो वा अहेतुक । इसकी पूर्ति स्पर्श, जालिगा चुबन आदि से की जाती है ।" कुछ लोग यह कह सकते हैं कि लेखक 'जपनी सस्कृति सम्प्रदाय तथा शिक्षा-दीक्षा के कारण' फ्रायड के इस सिद्धान्त को अस्वीकार करता है । किंतु, मिथजी कहते हैं, बात ऐसी नहीं है । मैग्डुगल आदि अनेक मनोवैज्ञानिक फ्रायड के उक्त सिद्धान्त को नहीं मानते । विवेच्य ग्रंथ में अनेक पश्चात्य मतों एवं सिद्धान्तों का सतिवेश पाया जाता है । समानान्तर पश्चिमी विचारों के प्रस्तुतीकरण के निमित्त मिथजी सरलतम पद्धति का अनुसरण करते हैं—

कीटस की भी ग्रही उक्ति है (पृ० १८),

यही बड़ स्वयं का भी कहना है (पृ० १६)

शैली न भी कहा है (पृ० १८),

एमसन का कहना है (पृ० २०),

आरिस्टाटल के टीकाकार बूचर ने भी लिखा है (पृ० २२) ।

मिथजी द्वारा प्रयुक्त पश्चात्य आकर ग्रंथों के शतशो नाम "काव्य-दपण" में बिखरे पड़े हैं । इनमें ऐसा प्रतीत होता है कि मिथजी को पश्चात्य रोमांटिक काव्यशास्त्र का अच्छा अध्ययन था । वे बड़ स्वयं शैली कीटस, कार्लाइल पेटर, हजलिट आदि के विचारों से पूणतया परिचित थे । उन्होंने श्रोत्रियों के 'इस्पिटिव' का तथा रिचर्ड्स के "साहित्यालोचन के सिद्धान्त और व्यावहारिक जालोचना" जय ग्रन्थों का भी अनुशीलन किया था । इसी प्रकार ब्रडले के 'आकस्मात् लक्ष्मण' तथा पोपट्री तथा करिट के 'द थियरी ऑफ व्यूटी' नामक ग्रन्थों का भी उन्होंने उपभोग किया है । 'काव्य-दपण' में इंग्लिश लिटरेचर एमज, सांस्तोम-वृत 'ह्याट इज आट आगडेन-वृत ए बी सी ऑव साइकालॉजी' तथा बरिचित 'रिट्रिक' में भी उद्धरण किए गए हैं । 'काव्य' में अग्रस्तुत योजना (१८५८) में एक आर तो प्राच पाप और फ्रायड के वाव्यागमनीय सिद्धान्त उद्धृत हैं वहीं

दूरी और लम्बे-मद्दूग सामान्य एव अविपक्व समीक्षकों के विचारों से भी लेखक ने यथावसर अपने मत की पुष्टि की है। "भाषा की उत्तमता" के विवेचन में म उल्लिखित "एक अंग्रेज समीक्षक" वस्तुतः ईस्ट ऑक्सफोर्ड स्कूल का प्रज्ञानाध्यापक ई० ए० ग्रीनिंग लैम्बन है।

इन सभी पाश्चात्य ग्रन्थों और ग्रन्थकारों से परिचित रहने पर भी मिश्रजी इन पर ही एकान्त भाव से निर्भर नहीं रहते<sup>२</sup> और न इनसे प्रभावित ही होते हैं। समन्वयप्रिय हाकर भी वे एक निश्चित दूरी और ऊँचाई से पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन करते हैं। इसका कारण उनकी यह जविकल धारणा है कि हमारा काव्यशास्त्र जल्पन समृद्ध है। तुलनात्मक पद्धति के प्रयोजनार्थ का तद्व्य तुलना की प्रक्रिया में ताटस्थ्य का आद्यत निवाह होना चाहिए। मिश्रजी तुलनात्मक अध्ययन के प्रस्तावता हैं, उनके अनुसार प्रगतिवादी आलोचकों के सम्बन्ध-साहित्यशास्त्र का न तो यथेष्ट अध्ययन किया है और न मनन ही किया। "केवल अंग्रेजी समालोचना ग्रन्थों का ही उन्हें भरोसा है। यदि यमिन तुलनात्मक अध्ययन करते तो कभी ऐसी बातें न कहते। आप प्राचीन आचार्यों का लेकर अपना नया दृष्टिकोण उपस्थित कीजिए। उनका सामंजस्य बटाइए।"<sup>३</sup>

### डा० धीरेन्द्र वर्मा (ज० १८९७)

डा० धीरेन्द्र वर्मा की कृतियाँ ऐतिहासिक एव गवेषणामूलक होने के कारण वचनिक एव विदलेपणात्मक हैं। उनमें प्रामाणिक तथा के सचयन और अभिव्यक्ति पर विशेष बल दिया गया है। 'मध्यदेश ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सिंहावलोकन' एक ऐसा ऐतिहासिक ग्रन्थ है जिसकी उपजीव्य सामग्री गभीर अध्ययन-मनन एवं साध से उपलब्ध हुई है। लेखक की अधिकारा रचनाएँ ऐसी ही गोप्यपरक हैं और जिन ग्रन्थों न उसे यशस्वी बनाया है, वे अधिकांशतः भाषा विज्ञान से संबद्ध हैं। इस संबंध में 'मध्यदेश का उप-शीपक 'ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सिंहावलोकन' उल्लेखनीय है। 'ब्रजभाषा'

१ काव्य में अत्रस्तुत योजना (पटना १९४८), पृ० ४३।

२ उन्होंने 'एक प्रगतिवादी साहित्यिक' के विचारों की आलोचना यह कहकर की है कि "यह केवल अंग्रेजी साहित्य पर निर्भर रहने का ही परिणाम है।" (काव्य-दपण, पृ० ४)

३ उपरिक्त, पृ० १७।



भी इसी कोटि के ग्रन्था म परिगणनीय है इसे भी ब्रजभाषा एव ब्रजप्रदेश का मौलिक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सर्वोक्षण कहा जा सकता है। जाषाय वर्मा के फ्रांसीसी भाषा मे प्रकाशित शोध प्रबन्ध 'ला लॉग-ब्रज' का यह हिन्दी रूपान्तर है जिस पर उन्हें पेरिस विश्वविद्यालय ने सन १८३५ म 'डाक्टरेट' की उपाधि दी थी। ग्रियसन और ज्यूल ब्लान द्वारा उदघाटित परपरा को वायम रखते हुए उन्होंने हिंदुस्तानी बोलियों का प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया है और नागरी प्रचारिणी पत्रिका म एतदविषयक कई गभीर तथा तथ्यपरक निबन्ध प्रकाशित किए हैं। "हिंदी भाषा और लिपि नामक पुस्तक डा० वर्मा की शोध-प्रतिभा की अन्य परिचायिका है।

इसमे सदेह नहीं कि सहिताआ को समझने समझाने के लिए रचित प्राति-शास्त्रा से ही भारतवर्ष मे भाषा विज्ञान, विशेषतः ध्वनि विज्ञान के अध्ययन का शुभारंभ हुआ है। जब सहिताआ के मत्र जन्यतन होने लग तब इनके अप्रचलित गूढों की व्याख्या के लिए शब्दकोश तथा व्युत्पत्ति विषयक ग्रन्थ रचे गए जिनमे यास्व का निरखन अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसके साथ ही व्याकरण की रचना भी होने लगी। सबप्रथम पाणिनि के अष्टाध्यायी की रचना की और उनके बाद पतञ्जलि का 'महाभाष्य' प्रणत हुआ जा पाणिनि की अष्टाध्यायी का पूरक कहा जाता है। किंतु भारतवर्ष म आधुनिक भाषावैज्ञानिक अध्ययन सर विलियम जोस, बोर्दो, ग्रिम हानले ग्रियसन कांडन ज्यूल ब्लान, राल्फ टनर प्रमदि पश्चात्य विद्वानों के शोध तथा कृतिया म उत्पन्नित होता है। इनसे प्रेरणा पानर डा० भण्डारकर, डा० तारापुत्रवाला डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या डा० एस० एम० कर्ने आदि ने भाषावैज्ञानिक अध्ययन के दम का जीवित तथा गतिशील रखा है और भारतवर्ष म ऐम अध्ययन का बल प्रदान किया है। डा० धीरेन्द्र वर्मा डा० बाबूराम सनमता डा० उत्पन्नारायण तिवारी आदि के भाषाविज्ञान विषयक अध्ययन से हिन्दी भाषा-साहित्य समृद्ध हुआ है और साथ ही इनके माध्यम से पश्चात्य भाषाविज्ञान म प्रभावित भा। डा० गाडन एच० फेयरब्रक डा० एच० ए० ग्रीगन व विद्यार्थी तथा रानफेन्टर फाउण्डेशन की महायत्ना से गिम्नाप्रान्त अन्तः भारतवर्ष विद्वान् भाषा विज्ञान-विषयक ग्राध म बहूत दत्तचित्त हैं।

डा० धीरेन्द्र वर्मा के निबन्ध<sup>१</sup> तथ्यान्वय तथा प्रचुर उपयोगी सामग्री

१ उदाहरणार्थ, देखिए "विचार पारा" (प्र० स० स० १९९८, नवीन सं० सन १९५६) के हिन्दी-साहित्य तथा आलोचना विषयक निबन्ध।

के प्रस्तुत करण म अग्रतिम हैं। उनके 'जाधुनिक हिंदी काव्य', "सूरमागर सार", "परिपद् निबन्धावली" जादि ग्रन्था की भूमिकाएँ सश्रिप्त होती हुई भी विचारोत्तेजक, पांडित्यपूण तथा गभीर हैं। विश्व के अनेक महान् समीक्षक—ड्राइडन, बेर, आनल्ड, एलियट रामचन्द्र गुप्त आदि—निपुण सम्पादक और भूमिका लेखक रह हैं। हिंदी म डा० वर्मा की भूमिकाआ का स्थान पाउड, विप्लिंग, विल्मन नाइट, जेम्स ज्यायस हेनरी फ्लुक्षियर और बलरो की कतिपय रचनाआ के सपादक और परिचायक एलियट की भूमिकाआ के समकक्ष है। उनके सपादकत्व म प्रकाशित 'हिंदी साहित्य' और 'हिंदी साहित्य कोश' का स्थान वही ह जा अंगरेजी म जॉन बट के सपादकत्व म प्रकाशित पाप की कृतिया का, बोरिस फाड के सपादकत्व म प्रकाशित "द पेलिकन गार्ड टु इंगलिश लिटरेचर" (७ मड) का और एफ० पी० विल्मन तथा बोनामी डाव्री के सपादकत्व म प्रकाशित 'ऑक्सफोर्ड हिन्दी ऑव इंगलिश लिटरेचर' का है। इस कथन म अतिरजना नहा है कि जा काय हिंदी समीक्षा के क्षेत्र मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया हिंदी गोष्ठ के क्षेत्र म वही काय डा० धीरेन्द्र वर्मा का है। वस्तुत अपनी सल्लिष्ट चिन्तन शक्ति के कारण इन्हाने भाषा और साहित्य का सदा सस्कृत के व्यापक परिवेग म ग्रहण किया। यही कारण है कि इन्हाने हिंदी शोध-कार्य को जा जिज्ञा दी है, वह बहुत व्यापक है।<sup>१</sup>

### आचार्य बलदेव उपाध्याय (ज० सन् १८९९)

आचार्य बलदेव उपाध्याय-कृत 'संस्कृतकविचचा' (१९३२) हिंदी और संस्कृत बोना म परम व्युत्पन्न भारतीय आचार्य की हीनभावना का मत प्रतीक है। इसम ऐसा जगता है लेखक पाश्चात्य वादमय के धाकचिक्य से कही तो पूणत जन्मभूत जा रह भारतीय साम्प्रतिक जीवन पर उसके वनमान दुदमनीय प्रभाव के कारण जानकिन और क्षुब्ध है। वह स्वय पाश्चात्य साहित्य की उपेक्षा नहीं कर सकता कभाकि आज के युग म न ता एकदशीय विचारा का महत्व है और न पाश्चात्य लेखका के निपया एव निष्कर्षों से जपनी महनीय रचनाआ का मन्तिन किए दिना कोई भी लेखक लोकप्रिय हो सकता है। इसलिए उपाध्याय भी बार-बार पश्चिमी लेखका के मत उद्धत करत और अपन निष्कर्षों को प्रामाणिकता प्रदान करत हैं। जहाँ पाश्चात्य कविद्या से संस्कृत के कविद्या की तुलना

१ हिंदी-अनुगीतन ( धीरेन्द्र वर्मा त्रिनेदाक ), ३० मई, १९६०, पृ० १६ ।

की जाती है, वही सेरान का मन्तव्य और उगकी भात्महीनता अथन स्पष्ट हा उठनी है। बिना पाश्चात्य प्रमाण-रन पाय यह अनन अधिांग निष्कर्षों का प्रामाणिक गही मानता। उगाहरणार्थ 'सरुतरविषया क निम्ननिगित यावय द्रष्टव्य है

१—गश्पमी विद्वाना ऽ भी इम अयुत्तम नात्न माना है।

(पू० ३६)

२—गालिगम की तरु गस्गणियर न भी क्या ही जग्छा वहा है।

(पू० ६०)

३—परतु डा० पगाट जम प्रामाणिक पुरातत्व-रस्ताआ की सम्मति म यह रान विन्तुल जालमाजी है। (पू० २४१)

४—वाव्याग्रा के इस पद्य म पिटरमन तथा यावामी की सम्मति म उपरुग की छाया दग पडती है। (पू० २५०)

५—परतु भवभूति का यह षणन अग्रज महावविद्या क समान विस्तत तथा यास्तविन है। (पू० ३२४)

उपाध्यायजी ने पीटसन, हानली, ऑफ्रेक्ट पिशल आल्डनवग यावोवी ध्यूलर आदि विरुज्जना की गवेपणाआ का समुचित उपयोग किया है और उनके निष्कर्षों को चाहे सश्रद्ध अपनाया है या यथावसर उनका खडन किया है। "कालिदास" शीपक कविषर्चा म उन्हाने काव्य प्रयोजन विषयक भिन्न भिन सम्मतिया का उल्लेख किया है। इनम स्विनवन, मेधु आनल्ड और रस्किन की भी सम्मतिया उल्लिखित हैं।

"आचाय सायण और माधव" (१६४६) 'श्री गवराचाय' (१८५०) जैसे ग्रन्था मे पाश्चात्य प्रभाव का अनुसधान स्वभावत निरयक है। इनम प्रथम ग्रथ म लेखक ने पाश्चात्य बदिक अनुसधाना की प्रगसा<sup>१</sup> की है और पाश्चात्य विद्वाना के हम भारतीया के बडे उपकार को स्वीकार किया है।

इन लोगा ने भारतीय ग्रन्थों के प्रकाशन करने म अपना अमूल्य समय जीर अय लगाया है तथा इनकी बहिरग परीक्षा करने म विशेष अध्ययसाय और गाढ अनुराग का परिषय दिया है। इनका विद्याप्रम श्लाघनीय है।<sup>२</sup> केवल इत अय म यह पाश्चात्य अनुसधाताआ से प्रभावित है कि उनके समादरणीय निष्कर्षों

१ दे० आचाय सायण और माधव (प्रयाग, १९४६), प० ११७।

२ उपरिवत।

पर अपने विवेचन को आधृत एव यथावकाश उनके विधारा को उद्धृत कर अपन मत की पुष्टि करता है।<sup>१</sup> जहाँ उसने आनन्दवदन, "मंगल", राजेश्वर प्रभति के प्रतिभा एव व्युत्पत्ति विषयक सिद्धाता का उल्लेख किया है, वहाँ वह यह कहना नहीं भूलता कि लटिन मे भी एक कहावत है जिसके अनुसार कवि पदा होते हैं, गढे नहा जाते—*Poetantasci, tur non fit*<sup>२</sup>। "कवि और काव्य" मे भी उसने मूरापीय भाषान्तर्वेत्ताआ के योगदान की सराहना और, विशेषत, डॉक्टर पिश्ल के प्रति भारतीय विद्वाना की कृतनता ज्ञापित की है। "प्राकृत भाषाआ के ज्ञाताआ मे," लेखन कहता है, "जमनी के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर पिश्ल का नाम अग्रगण्य है। इनका प्राकृत भाषा का असीम ज्ञान उनके प्राकृत व्याकरण<sup>३</sup> के प्रत्येक पष्ठ से स्पष्ट ज्ञान होता है।"<sup>४</sup>

"भारतीय साहित्यशास्त्र" के अनुशीलन स उपयुक्त निष्कर्षों को अतिरिक्त प्रामाणिकता मिलती है। इसका लेखक पाश्चात्य गवेषका, पुरातत्त्वान्वेषिया और इतिहासकारा स प्रभावित है और पाश्चात्य आलोचना की गरिमा को स्वीकार करता है। तभी तो वह पाश्चात्य आलोचना के मता का उद्धृत ही नहीं करता, उनके द्वारा प्रतिपादित महत्वपूर्ण विषयो का भी मार्मिक विवेचन प्रस्तुत करता है और अपनी विवेचन पद्धति को तुलनात्मक बनाने का यथेष्ट उद्योग करता है।<sup>५</sup> उसकी दृष्टि मे "भारतीय साहित्यशास्त्र" "भारतीय आलोचना

१ उदाहरणार्थ—'परम हृष का विषय है कि पाश्चात्य अनुसन्धान-कर्ता भी सायण के परम महत्त्व से अपरिचित नहीं है। ऋग्वेद के प्रथम अनुवादक प्रसिद्ध अंगरेजी विद्वान विल्सन की यह उक्ति भुलाई नहीं जा सकती कि निश्चय रूप से सायणाचार्य का वेदज्ञान इतना अधिक था जितना कोई भी यूरोपियन विद्वान रखने का दावा नहीं कर सकता और चाहे स्वयं अपनी जानबारी से या अपने सहायको के द्वारा वेद के परंपरागत अर्था से नितान्त परिचित थे। सायण भाष्य के प्रथम यूरोपियन संपादक डाक्टर (मोक्षमूलर भट्ट) मक्समूलर का यह कथन भी यथाय ही है कि यदि सायण के द्वारा की गई अथ की लड़ी हमें नहीं मिलती, तो हम इस दुर्भेद्य किले के भीतर प्रवेश ही नहीं पा सकते थे।' उपरिखत, पृ० १३१।

२ आचार्य बलदेव उपाध्याय, कवि और काव्य (कलकत्ता, १९४७), पृ० ५।

३ Grammatik der Prakrit Sprachen

४ कवि और काव्य, पृ० २११।

५ भारतीय साहित्यशास्त्र (काशी, १९५०), पृ० ८ (वक्तव्य)।

को व्यवस्था की मुक्त नीय पर रगने का स्थापनीय प्रयाग यथासिद्ध कर रहा है।<sup>१</sup> उपाध्यायजी की तुलनात्मक पद्धति समन्वयवायिका की पद्धति है। इस लिए इस ग्रन्थ में थाल्टर रैले की रीति विषयक मातृभाषा, "स्वाइ" गद्य की व्युत्पत्ति और महत्त्व, पाश्चात्य आलोचना में यथासिद्ध, रिचर्ड म के अनुगार अथ के प्रकार, वाच्यप्ररणा और तथान मताविज्ञान, फ्राय एन्स, युग के काव्य प्रेरणा विषयक मत जाति का गभीर तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस विवेचन का उच्च भारतीय एव पाश्चात्य विद्वानों द्वारा उन्मादित समीक्षात्मक सिद्धांतों का तुलनात्मक अध्ययन है जिससे प्रथम में उचित अर्थ निरी विचार भी व्यक्त करता जाता है। तत्पश्चात् उपाध्यायजी को प्राबल्य सिद्धांत ही अपेक्षाकृत अधिन भाग्य हैं और पश्चिमी सिद्धांतों में य उन्ही का समर्थन करते हैं जो पूर्व प्रतिपादित भारतीय मता में मिलत जुलत हैं। उनका दृष्टिकोण 'संस्कृत आलोचना' (१८५०) के निम्नलिखित वक्तव्य में स्पष्ट व्यक्त हुआ है

आजकल के नवयुवक जितान केवल पाश्चात्य साहित्य पढ़ा है वृद्धा यही समझते हैं कि ग्रीक और लैटिन में और तत्पश्चात् फ्रेंच और अंग्रेजी में जो पुस्तकें हैं, उनमें ही साहित्यिकता का सब ज्ञान संचित है और वृद्धा उन्ही में समाविष्ट सिद्धांतों की कसीदी पर साहित्य की समालोचना हो सकती है। उनका यह विश्वास भ्रमपूर्ण है। आजकल हिंदी साहित्य की नव्य आलोचना भी संस्कृत आलोचना से पराङ्मुख ही दीर्घ पड़ती है। इसका एक कारण तो यह प्रतीत होता है कि भारत में अंग्रेजी भाषा सुलभ हो जाने से नवीन आलोचक पश्चिमी साहित्यशास्त्र से जितना सुपरिचित हो जाता है उतना संस्कृत साहित्यशास्त्र से नहीं।<sup>२</sup>

इस प्रकार उपाध्यायजी के आलोचना-ग्रन्थों का एक उच्च यह दिसाना भी है कि समालोचना की भारतीय परंपरा भी अतिशय बरिष्ठ एव गरिमामयी रही है। जिस क्षत्र में पश्चिम के वरुण मनीषिया न उच्च धर्मदान किया है उसमें वे उनके विचारों का ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत हैं पर यह मानने की तयार नहीं है कि पश्चिम का समीक्षा शास्त्र अपेक्षया अधिन जावत एव गत्यात्मक

१ भारतीय साहित्यशास्त्र (काशी, १९५०), पृष्ठ ८ (वक्तव्य)।

२ संस्कृत आलोचना (सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, १९५७), पृष्ठ ५ (वक्तव्य)

है। उपाध्यायजी काट, कोल्ग्रिज, प्रोचे, रिचड स, फॉयड आदि के सिद्धांतों से परिचित होकर भी इनसे प्रभावित नहीं हुए हैं।

“काव्यानुगीतन”<sup>१</sup> में “कलाकार की प्रेरणा”, “काव्य का प्रयोजन” आदि निम्न “भारतीय साहित्यशास्त्र” से ही अविकृत रूप में उद्धृत हैं।

-----

---

१ काव्यानुगीतन (जयपुर, १९५६)।

## हिन्दी की सैद्धांतिक आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव—२



“यत्मान साहित्य-जगत मे पाश्चात्य आलोचना के मान प्रतिमान इतने अधिक रम गये हैं कि आज का साहित्य-मनीषी उहीं के माध्यम से चिंतन और मूल्यांकन करता है।”

—डा० नगेंद्र, रस सिद्धांत, प० ७३ ।

### प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र (ज० १९०६—)

मिश्रजी की साहित्य-साधना को समग्रता में देखने पर उनके पाठ-संपादन-विषयक काम इतनी अधिक प्रतीत होते हैं। इनका विवेचन हिंदी पाठालोचन पर पाश्चात्य प्रभाव 'शीपक परिच्छेद' में हुआ है। किंतु मिश्रजी हिंदी के उन बरेप्य आलोचका में परिगणित हैं जिन्होंने प्राचीन भारतीय वाङ्मय का गभीर आलोचन किया है और जो प्राचीन हिंदी-साहित्य के गभीर अध्ययता हैं। उनके साहित्यालोचन की आधारभूमि भारतीय साहित्यशास्त्र है फिर भी वे पाश्चात्य प्रभाव से सबया अस्पृष्ट नहीं हैं। यहाँ उसी यत्किंचित प्रभाव का विवेचन उद्दिष्ट है।

मिश्रजी द्वारा संपादित 'पद्माकर-सचामत धनआनंद-कवित्त पद्माकर-ग्रथावली', 'भूषण' आदि ग्रन्थों की भूमिकाएँ और बिहारी की वाग्बिभूति, हिंदी का सामयिक साहित्य' वाङ्मय विमर्श' जैसे समीक्षात्मक ग्रन्थ गामीय से आच्छादित एवं उनके स्पृहणीय वैदुष्य से आपूर्ण हैं। उन्होंने पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र का विशयतया ऐबर्खॉम्बी, हडसन जेम्स स्वाट और रिचर्ड्स की रचनाओं का मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया है और वे इनसे ही अल्पाधिक प्रभावित

भी हुए हैं।<sup>१</sup> फिर भी उनकी आधारभूमि भारतीय है—उनकी रचनाएँ भारतीय परंपराओं में ही बद्धमूल हैं (“नीब में सब भारतीय हैं ऊपर काच शीशा विलायती आवश्यकता पड़ने पर हैट भी पहन ले सकता हूँ, पट भी”)। नये लेखकों के माध्यम से उन्होंने प्राचीन यूरोपीय समीक्षकों का भी अध्ययन किया है और पश्चात्य समीक्षा-मन्त्रों विविध सूचनाएँ सेंटसबरी-कृत आलोचना के इतिहास से संगृहीत की हैं। समस्त उन्होंने पश्चात्य समीक्षा से सबद्ध आचार्य ग्रंथों का भी अनुशीलन किया है, परंतु उनके अध्ययन की भूमिका उक्त ग्रंथकारों की कृतियों से ही निर्मित हुई है। चूंकि मिश्रजी में जड़ता नहीं है (“यहाँ मनातन घम नहीं है”), वे पश्चिम का सहारा लेकर यहाँ की बातों को भी स्पष्ट करने में विश्वास करते हैं। उनके कथनानुसार पश्चिम के आतिशयिक प्रभाव के कारण हमारी स्वतंत्र चेतना का विकास नहीं हो रहा है। जान तो हम किसी का भी ल सकते हैं पर साथ ही इसमें हमारे चिंतन का भी योग वाञ्छनीय है।

उपर्युक्त कथनों की प्रामाणिकता आचार्य मिश्र के “बाह्य विमर्श” में सहज ही सिद्ध हो जाती है। इस ग्रंथ के ‘उपस्करण’ में अपनी सघी निखरी शैली

१ मिश्रजी ने १० अक्टूबर १९६६ को लेखकों के वृत्तिपर प्रश्नों के जो उत्तर दिये वे द्रष्टव्य हैं

लेखक क्या आप स्वीकार करेंगे कि आपकी समीक्षाएँ पश्चिम से प्रभावित हैं ?

मिश्रजी—यह नहीं कह सकता कि मैं पश्चिम से प्रभावित नहीं हुआ हूँ। (मिश्रजी के बाद थे यह नहीं कह सकते कि प्रभाव नहीं पड़ा है।) मुझमें जड़ता नहीं है।

लेखक पश्चिम के किन किन समीक्षकों से आपने प्रभाव ग्रहण किया है ?

मिश्रजी मैंने कुछ पश्चात्य समीक्षकों की, ‘चुनी हुई पुस्तकें’ पढ़ी हैं—जसे, एवरब्रॉन्वो, हडसन, जम्स स्काट और रिचर्ड्स की पुस्तकें।

लेखक प्राचीन पश्चात्य मनीषियों का भी ?

मिश्रजी मैं प्राचीनों से अनभिज्ञ नहीं हूँ। नये लेखकों के माध्यम से मैंने उनके विचार ग्रहण किए हैं। (नये लेखकों में उन्होंने ‘सेंटसबरी’ की ओर संकेत किया।) स्नातकोत्तर विद्यार्थियों को मैं साहित्यालोचन पढ़ाता हूँ। कभी-कभी पश्चिम का सहारा लेकर यहाँ की बातों को भी स्पष्ट करने की आवश्यकता पड़ जाती है।



येनर्गायर-मुग ( १८०० ) 'ने वेगर्गीर गानेरा घोर प्रगीता म प्रभूत गगाण-नरर मिते १ ।

मिधत्रेी । वादमय विमर्ग म गगाणगा भागाण वागाण म दुर्गण पागाण्य प्रभावा वा भी वाग विवा १ । वागवाण्य गगीगाणन म वाग्ग व दा प्रकार मा । गग घोर प्रगीता १—एक वाग्गापिगाण ( घांवेरिण ) घोर दुगरा गगाणुर्गीण्यन ( गत्रिण ) । मिधत्रेा डारा प्रण्य प्रगीता वा रररर विर ररा बदा १। गूण्य एवं प्रगाणिर १ परगु उनेरे इग कपा म तय्य गरी वि 'वाग्गाण्य देगा म दा प्रगीता व विग्ग्य प्रवत घांणगा उड गदा दुगा १ घोर परिणामगण्य प्रगीता वी रवाग वाग क म १। गरी १ । वागवाण्य गगीगाणन म विवा जा गाना उण्युका कगीकरण ताण्यन गरी प्रगीत हाण । कपाणि वाग्गापिगाण रवागण म भी कवि वा व्यगिरर प्रघप्र रर म घा प्रत ररा १ । १ परिणम म रागाण्य प्रगीता व विग्ग्य हू म घोर पाउड । जिग प्रवत घांणगा वा गेुत्य विवा वा, उगरा प्रभाव एनियट व जीवन वाग म ही ररर एनियट वा पररगी रवागण म रीण हो गना वा । २ कवत गुग व हट जाने म ही वाग्ग वी गगाणररगा वा साग गरा हा जाग घोर व परिणम म गगीत वी घावजाग म गगी रररगण कविगाण वा ही प्रभाव १ । दागे घतिरिवा परिणम वे घनेक विचारगीन घाणायका वा मा गरा म

१ वादमय विमर्ग, पृ० ४४ ४५ ।

२ "घोर क्वार्टेट" से उद्धृत कुछ पंक्तियों के सम्बन्ध में मक्सवेल की यह टिप्पणी प्पातव्य है "द इन्फ्लेक्चुअल क्वॉर्टेट ऑव विस पसेज इन सवॉर्डिनटड टु द इक्वेटरी एलिमेण्ट—डिराइड, वन फील्स फ्राम द इम्परेट ऑन एलियट आव द टोनल क्वॉलिटीज आव लिटर्जी—एण्ड द पेटन ऑव साउण्ड इन द प्राइमरी कवटर इन द कम्पुनिक्शन ऑव एक्सपेरियंस आव द मोमण्ट इन एण्ड आउट आव टार्डम द्विष इन मिस्टिकल वीजन ।" दे० डी० ई० एस० मक्सवेल, द पायट्री ऑव टी० एस० एलियट ( लंडन, १९५२ ), पृ० १५९ । काव्य में संगीत के महत्त्व के लिए दे० क्लोथ युक्स और रॉबर्ट पेन घरेन, गण्डरस्टण्डिंग पोयट्री ( 'यूयाक', १९६० ), पृ० ११९ १८०, एम० एल० रोजनयल तथा ए० जे० एम० स्मिथ, एक्सलोरिय पोयट्री ( 'यूयाक', १९५९ ), पृ० ६६ ७५, हैलेट स्मिथ, एलिजाबेथन पोयट्री ( केम्ब्रिज, १९५२ ), पृ० २५७ २८९ ( 'पोयट्री फॉर म्युजिक' ) ।

सर्वाधिक सम्माय है कि बाह्यापनिरूप रचनाओं में भी कवि का व्यक्तित्व प्रच्युत रूप से श्रोतप्रोत रहता है ।

“वाङ्मय विमर्श” का “पश्चिमी समालोचना” शीपक प्रकरण ऐबरड्रॉम्बी, वमफील्ड, स्कॉट जम्स और सेंटसबरी से प्रभावित है । मिश्रजी का सारग्राही ममन समीपक जानता है कि ‘हिंदी में भारतीय साहित्यशास्त्र की परंपरा का कुछ भी ज्ञान न रखते हुए केवल अंगरेजी ज्ञान के भरोसे जा महानुभाव ब्रांचे की अनिर्व्यजना का प्रशस्ति पाठ करते नहीं थकते, उन्हें अब अपना व्यापार बंद कर देना चाहिए । हिंदीवाला में अब समझ आ गई है और वे ब्रांचे की हकीकत जान गए हैं । ब्रांच की मायता भारतीय परंपरा में खप नहीं सकती ।’ (“वाङ्मय-विमर्श”, पृ० २७६)

‘हिंदी साहित्य का अतीत’, ‘हिंदी का सामयिक साहित्य’, ‘बिहारी की वाग्मिती’ आदि ग्रन्थों से स्पष्ट है कि मिश्रजी की समीक्षाधी की आधार-भूमि, निस्मदेह भारतीय है । उन्होंने यत्रतत्र पाश्चात्य साहित्य का उपयोग अवश्य किया है—प्रेमचंद की तुलना हार्डी से की है (‘हिंदी का सामयिक साहित्य’ पृ० १५८) और स्वच्छंदतावाद का मार्मिक रहस्योद्घाटन किया है । किंतु, मूलतः, उनका दृष्टिकोण और उनके प्रतिमान भारतीय हैं । “वीरकाव्य—हल्दीपाटी” और प्रबंध-कविता कुरुक्षेत्र’ का मूल्यांकन भारतीय काव्यशास्त्रियों द्वारा निर्मित निकषों पर हुआ है । पर ऐसी समालोचनाएँ स्वभावतः व्यावहारिक समीक्षा के अंतर्गत आती हैं अतः इनका विवेचन वही हुआ है ।

शांतिप्रिय द्विवेदी (ज० १९०६)

हमारे साहित्य निर्माता”, कवि और काव्य”, सचरिणी”, “सामयिकी” “ज्योति विहंग” आदि ग्रन्थों के रचयिता की समीक्षात्मक कृतियाँ में भाव अपनाव की प्रवृत्ति नहीं दीखती और न ऐसा प्रतीत ही होता है कि इनके लेखक ने पाश्चात्य साहित्य का गभीर अंतर्लक्षणी अध्ययन ही किया है । अपनी अमिररिच एव शिक्षा-दीक्षा के सवध में द्विवेदीजी ने कहा है

मेरी शिक्षा-दीक्षा हिन्दी की साक्षरता तक ही सीमित होने के कारण अन्तःप्रातीय और अंतर्राष्ट्रीय साहित्य का सहयोग मुझे उतना ही प्राप्त है जितना अपनी भाषा के माध्यम से सम्भव है । लेकिन अति घन की तरह अति अध्ययन पर मेरा विश्वास नही है ।

१ दे० कवि और काव्य (प्रयाग, १९३६), पृ० ९-१० ।

हिंदी की सद्धातिक आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव—२ • २३६

ज्ञान के आश्रम का मैं केवल लव-कुश बना रह सकूँ यही मेरी अभि-  
 तापा है ।<sup>१</sup>

“युग और साहित्य” की भूमिका में उन्होंने आलोचक को वातावरण  
 से ही अधिक प्रभावित एवं निर्मित कहा है

अपन जीवन में मैं जिस प्रकार घनाढ्यता से वंचित हूँ उसी  
 प्रकार विद्वत्ता से भी । मेरी शिक्षा-दीक्षा साक्षरता से अधिक नरहा है ।  
 अतएव मैं अपने चारा ओर के वातावरण से ही प्रेरणा ग्रहण  
 करता हूँ जीवित जगत का अध्ययन ही मेरा मनन चिंतन  
 है ।<sup>२</sup>

द्विवेदीजी की तरल-मदुल, भाव प्रवण एवं प्रभावामिव्यजक भाषा शैली में  
 अंगरेजी शब्दा का प्रयोग अत्यल्प परंतु तत्सम शब्दा का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है  
 और उनके द्वारा प्रस्तुत विवेचनों में ऐसे संकेत नहीं मिलते, जिनसे उनके पाश्चात्य  
 साहित्यकारों से प्रभावित होने का पता चले । उनका “काव्य चिंतन” सिडनी,  
 टामस लाज, शैली प्रभृति पाश्चात्य समीक्षकों की याद दिलाता है । इन समीक्षकों  
 द्वारा काव्य के वशिष्ट्य का सविस्तर वर्णन ऐसे ही पुरजोर शब्दा में हुआ है  
 और इन्होंने भी काव्य की श्रेष्ठता और अमरत्व की घोषणा के क्रम में ऐसे ही  
 तक उपस्थित किए हैं । चूंकि द्विवेदीजी की प्रतिभा काव्य से प्रस्फुटित होकर  
 गद्य की ओर उमुख हुई है वे, प्रत्यक्षतः, वचनिक एवं इतिवत्तात्मक शैली में  
 अपनाकर भावप्रवण एवं कवि-मुलभ सरस शैली में अपनी समीक्षाओं की रचना  
 करते हैं । दूसरी बात यह है कि वे कविता को विज्ञान की अपेक्षा अधिक महत्व  
 देते हैं । विज्ञान, उनकी दृष्टि में, ‘पश्चिम के दुद्रूप पुरुष के रूप में मस्तिष्क को  
 उदबुद्ध कर देता है, कविता आय-नारी की भांति हृदय को सहज सजग करती  
 है ।<sup>३</sup> मनुष्य के शरीर पर जितना भार इंद्रिया का नहीं है, उससे कहीं अधिक  
 दुबल भार विज्ञान नित नई-नई आवश्यकताओं के आविष्कार द्वारा मनुष्य के जीवन  
 पर लादता जा रहा है । बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करके भी विज्ञान हृदय  
 को शांति नहीं दे पाता । वितु कवि वशी के रिक्त रक्षा-जसे अभावमय जीवन

१ क्षेमचंद्र ‘सुमन (सपा०), जीवन-स्मृतिया (दिल्ली, १९५३),  
 पृ० १९७ ।

२ मोहनलाल एवं सुरेणचंद्र गुप्त, आलोचना और आलोचक (दिल्ली, १९५७),  
 पृ० ८८ ।

३ कवि और काव्य पृ० १०

का भी हृदय के माधुस्य से परिपूर्ण कर देना है।<sup>१</sup> इस दृष्टिकोण के समर्थका में पश्चिम के अनेक लेखक और बानािक मिलते। आर० एम० लिण्ट ने अपनी पुस्तक 'नेविज फार ह्याट' (१८३६) में कहा है कि ज्ञान विज्ञान के आत्यंतिक प्रचार के बावजूद हम आज उत्तरात्तर अभिभूत ही हो जा रहे हैं। एक आर ता विज्ञान हमारी अनेकता दूर करने में नगा हुआ है वही हमारी आर इसके कारण हमारा नैवत्य मित्र त्वरा में घटता जा रहा है।<sup>२</sup> कना और विज्ञान में अधिकाधिक महत्वाग का ममथन करके भी सी० एच० वॉडगटन यह स्वीकार करने हैं कि मानवाय समावसाया का मापन में लेखक आर कलाकार-भी अभिरुचि अयत्न दुःख है।<sup>३</sup> सन १८३४ में प्रकाशित बेमिन विली की पुस्तक 'द सेवण्ठीय सेन्चुरी क्वेराउण्ड' का प्रनिपाद्य विषय यह है कि विज्ञान के विकास के कारण सत्रहवीं शती के अंगरजी काव्य (आर धर्म) के स्वर में अनाम्था एव नैराशय का स्वामाधिक प्रवेश हा जाता है।<sup>४</sup>

विज्ञान के प्रति द्विवत्ताजी का दृष्टिकोण डॉ० एच० लारेंस ई० एम० फॉस्टर जन अनेक मानवनावात्ता लेखका के दृष्टिकोण के अनुरूप दीखता है। पश्चिम में विज्ञान की बहुरधीन उन्नति आर मन्निष्क का आत्यन्तिक विकास

१ कवि और काव्य, प० १८।

२ Dr Lynd concludes we are cumulating our disabilities and the resulting strains incident to daily living at a rate faster than social legislation education and all the agencies for reform are managing to harness our new knowledge in the reduction of these disabilities We are becoming culturally illiterate faster than all these agencies are managing to make us literate in the use of the potentialities of the culture *Scrutiny* Vol X, no 3, Jan 1942 pp 318 et seq

३ उपरिक्त, प० ३२१।

४ I have left myself but little room to speak of Mr Willey's main thesis that the new philosophy necessarily depressed the tone both of religion and poetry H J C Grierson in *Scrutiny* Vol III no 3 Dec 1934, p 302

सा हा सवा है किन्तु यहाँ हृत्प का उोधा पाँा रहो है । जब ग भोद्योगिन क्रांति का आरम्भ और यत्रयुग का प्राविभाय हुआ तमा स परिषद क 'स्वच्छ' कवि मूरुप की प्रातिगयिन भौतिता की गहणा करत रह है । क स्वय न विमान का यार विराप किया का

एनप घाँय गायग एण घाँय घाट,  
 कनाज घाप दाज धरन सीवज  
 कम पाय एण्ड विग वि मू घ हाट  
 दट वाचज एण्ड रिमायज<sup>१</sup>

घ पायटग एपिटाप (१७८८) शोषक कविता क वड स्वय के इन प्रश्ना पर ध्यान दीजिए

फिजिसियन घाट दाउ ? —वा घात घादज,  
 फिनासापर ! —घ फिगरिग स्नव  
 वन दट बुड पीग एण्ड वाटनाइज  
 घपात हिज मन्ग घेव ?<sup>२</sup>

आचार्य शांतिप्रिय द्विवेणी का नाम उसी परंपरा से अनुस्यूत है जिसमें स्वच्छतावादी कवि आते हैं । स्वच्छतावाद से प्रभावित छायावादी कविया के समयका मे विज्ञान के प्रति वसी ही दृष्टि होगी जसी द्विवेणीजी की है । और इसमें सदेह नहीं कि द्विवेणीजी छायावाद के अनुय समयका में हैं

१— इधर द्विवेदी-युग क सीनियर कविया के वाद जा नवयुवक कवि आ रहे क उहाँन वाह्य चेतना का तो गौणरूप में ग्रहण किया, अतश्चेतना का प्रमुख रूप म । चूकि अतदिशा को ही लेकर व चल थे इसलिए द्विवेदी-युग की अपेक्षा के उस निशा में अधिक उन्नत कलाकार और भावोन्भावक हुए।<sup>३</sup>

२— छायावाद केवल एक का यकला नहीं है । जहाँ तक साहित्यिक टेक्निक से उसका संबंध है वहाँ तक क् कला है और जहा दाशनिक अनुभूतिया से उसका संबंध है वहाँ वह एक प्राण है एक सत्य है । अतएव छायावाद, काव्य की केवल एक

१ द पोयटिकल वक्स जाव वड स्वय (आवसफोड, १९४६), प० ४८२ ।

२ उपरिवत, पृ० ४८५ ।

३ सचारिणी (१९४१), प० १७९ ।

अभिव्यक्ति ही नहीं, बल्कि इसके ऊपर एक श्रेष्ठ अभिव्यक्ति भी है।<sup>१</sup>

३— लाक-भाषण के लिए छायावाद गांधीवाद म लय होकर प्रवृत्तिया को जीवन का बलात्मक क-मेशन दिला सकेगा और तब गांधीवाद प्रगतिवाद में समाविष्ट हाकर प्रवृत्तियों पर आत्मनियंत्रण बनाये रख सकेगा।<sup>२</sup>

स्वच्छन्दतावादी पाश्चात्य विचारक और साहित्यकार प्रमीथियस-जसे टाइटना का अपना आदर्श बनाते हैं और विद्रोह के प्रति उनमें स्वाभाविक भावजना पायी जाती है। इसलिए उनके लिए ब्रेन और सेटन रोमांटिक वीर-पुरुष हैं। फिर भा पूणतया रामांटिक हान के लिए यह भी अत्यावश्यक है कि विद्रोही महदय हा। जहाँ उसमें अत्याचार में मधय करन की अप्रुव मूलगक्ति एव ऊरस्वितता हा वहा उममें अत्याचारी द्वारा सजस्त व्यक्तिया के प्रति अपार सहानुभूति का होना भी अपेक्षित है। ह्य गा की एक कविता में मेकिमको के एक ऐसे अग्निपवत का उल्लेख है जो एक राजकीय सपच्छा<sup>३</sup> के सदस्यों का निष्पूरता से क्षुध हो उन पर मूराल—लावा—उडेल ेता है। यह सहृदय अग्निपवन रामांटिक आदर्शों का प्रतीक है और यही कारण है कि शिलर का 'रावन अंतर्राष्टीय ख्याति पा सका है तथा उम का न मूर के अग्निगत प्रतिरूप देखने का मिल रह है जा लूट-खसाट से उपलब्ध धन-भम्पदा का कनिज के मधावी छात्रा के प्रशिक्षण में लगाना है। द्विवेदीजी के कवि का पौरुष व-ग्रादपि कठार और उसका नारी-मुनम हृदय पुष्पादपि कामल होना है। यदि उहान अद्ध-नारीश्वर शिव का कवि का ही स्वरुप बहाह और उसके हृदय की तुलना नारा-हृदय से की है तो यह भी रोमांटिक भावधारा की ही एक जाना पहचानी विशेषता है। रसो के सबध में इविग का यह कथन ध्यानव्य है

Hence the absence in his [Rousseau's] personality and writing of the note of masculinity. There is indeed much in his make up that reminds one less of a man than of a high strung

१ सचारिणी (१९४१), प० २२१-२२२।

२ सामयिकी (१९४४), प० २०६।

३ इचिबजिगन।

impressionable woman Woman most observers would agree, is more temperamental than man One should indeed always temper these perilous comparisons of the sexes with the remark of La Fontaine that in this matter he knew a great many men who were women<sup>1</sup>

सी० ई० गार्टन न रस्किन की मनापूर्ति म नागी-भुवम कामरना दगा है । कठार यास्तविकता से पलायन और कर्णित लारा म आराम म्त्रिया क गुण है । वजहाट न स्पष्ट और ठाग कनामा का अपेक्षा धुपना कल्पना प्रमून कनामा के सर्वाधिक प्रचार का कारण म्त्रिया का कथमान प्रभाव कहा है ।<sup>2</sup>

ठेठ जीवन और जातीय काव्य-कला म द्विवेदीजा न प० रामचंद्र शुक्ल के शब्दा म कर्मिज के अभिनव प्रयागा का निरसन किया है<sup>3</sup> और कहा ह

मगवान न करें कि हम पश्चिम का काव्यानुकरण करना पड़े । ‘ परतु कन और विकास’ (१८५८) तब आन आत द्विवेदीजा यह महसूस करने लगत ह कि इस अंतर्राष्ट्रीय युग म हम बाहर भीतर की सकीणता अमाष्ट नहीं है ।<sup>4</sup> वे केवल अनुकृति का समथन नहीं करत और स्पष्टतया घोषित करत हैं कि अनुभूति की तरह अभिमक्ति म भी कृतिवार की अपनी मौलिकता होना चाहिए । दुर्भाग्यवश (और व इस बात से पूरणरूपेण अवगत हैं) उनके सामयिन नये कविया न उनके इस सत्परामश पर ध्यान नहीं लिया है, यहाँ तक कि उनकी अनुभूति की पृष्ठभूमि विदेशी रही है और उनका मापा की घडन (SIC), उसका ढाल और साचा (भी) विदेशी है ।<sup>5</sup> ‘ठेठ जीवन और जातीय काव्य-कला शीपक निरघ म ही पश्चिमी सभ्यता की विभीषिना’ की ओर हमारा ध्यान

१ इविंग बविट, दसो एण्ड रोमाटिसिजम (न्यूयाक, १९५५), पृ० १३० ।

२ उपरिचत, प० १३१ ।

३ इस सदभ मे “यत्र युग की कविता” शीपक निरघ भी द्रष्टव्य है । दे० घात और विकास, प० ११९ ।

४ कवि और काव्य, प० २०० ।

५ घात और विकास, प० ११८ ।

६ उपरिचत ।

७ कवि और काव्य, प० २०० ।

आहृष्ट किया गया है और कहा गया है कि विज्ञान हमारे जीवन का वीथिल बनाता जा रहा है जीवन के क्षेत्र में विज्ञान का प्रायाग हो गया है, विज्ञान-यन्त्र जीवन की भांति कला की इस एकच्छन्न विपुलता से हमारे साहित्य की भी मन्त्र नाम अवन्द न हो जाय, यही भारतीय कलाकार के लिए भास्त्रिक तवाजा है।<sup>१</sup> कवि की कल्प-दृष्टि' शीघ्र निवध पर रोमाटिक द्वायावादी काव्यशास्त्रीय सिद्धान्त का प्रभाव परिलभित होता है। द्विवेदीजी के लिए भी कविता *Magie der Einbildungskraft*<sup>२</sup> है। व कहते हैं 'हा कवि का व्यक्तित्व ऐसा ही है—एक ओर हमारे लिए उसके अंधरा पर प्रेम हेमता रहता है दूसरी ओर सतप्त विश्व के लिए उसकी आँखा से कला के हिमजल टुकने रहते हैं।<sup>३</sup> पाश्चात्य रोमाटिक कविता और आलोचना के विचार इससे भिन्न नहीं है। उनके अनुसार मौल्य ठीक उन्हीं गुणा से गुरतर हाता है जिनमें सौंदर्य का लक्ष भी नहीं हाता जिन वस्तुओं से भय तथा विकषण उत्पन्न होता है उहाँ से सौंदर्य भी वन्ता है। उनके लिए जो जितना ही दुःखद एव कल्पनाजनक है वह उतना ही आस्वात्नीय भी। *Welch eine Wonne ! welch ein Leiden !*<sup>४</sup>

द्विवेदीजी के दजना निवध पठ जाइये कही भी उनमें अतलस्पर्शों गभीरता का वाग नहीं हाता। द्विवेदीजी गीतिकाव्य के आलोचक हैं और इसमें सदह नहीं कि उनकी ममीभात्मक दृष्टि मुक्तका और गीता को ही अपेभाकृत अधिक ममता में परव सकी है। उनका हिंदी काव्य विषयक अध्ययन निम्नदेह गभीर है और पश्चिम का कतिपय साहित्यिक प्रवृत्तिया में भी वे हिंदी पुष्पका के माध्यम से, विशयन आचार्य शुक्ल के ग्रंथा क माध्यम से परिचित हैं। कला में जीवन का अभिव्यक्ति में यथाथवाद और कला कला के लिए की तथा यन-युग का कविता म प्रगतिवाद यथाथवाद और प्रयागवाद की चचा हुई है पर विवेचन मंत्र वहिरग अधिक अतरग कम दीखता है। द्विवेदीजी जीवन के कारण ही कला का समय और सहृदय-भवेद्य मानते हैं।<sup>५</sup> 'मचारिणी के अधिकांश निर्या में मरत पिष्टाक्रिया की मरमार है 'ममय के प्रवाह के माय ज्या-ज्या

१ कवि और काव्य, प० २०६।

२ मजिक ऑव दि इमजिनेशन।

३ कवि और काव्य, प० २०७।

४ मेरियो प्राज, द रोमाटिक ऐगनी (१९६०), प० ४३।

५ सचारिणी (१९४१), प० ८५।



मनुष्य की सरतना नष्ट होती जाती है जया जया उमम विश्रमताएँ बन्ती जाती हैं त्वा-त्या उमका मनोविधान भी जटिल हाता जाता है । <sup>१</sup> 'भारत-दु युग की भूमिका पर राडी वाली क प्रयास म शणव था । <sup>२</sup> 'गंगा बाना की कविता की यह प्रारम्भिक प्रगति हाम्यपूण भवश्य है परतु उसरी वनमान उन्नति दगकर उसने प्रति अज्ञा नहा होती । <sup>३</sup> परतु धीर धीरे सामयिका और इगका परवर्ती रचनामा म द्विव्याजी की भाषा और शली के प्रौन्नर रूप दगन का मिलन लगन है । इनम पिष्टाकितया के स्थान पर गहन-नभीर सूत्रवन वाक्य और सस्त भावागारा क स्थान पर मुविचारित तकमम्मत निष्पन्न आ जान है ।<sup>४</sup>

### नन्दुलारे वाजपेयी (१९०६)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के वाक्य वधमान द्विती-समीक्षा का जिन साहित्य-महारथिया न अधिकाधिक समझ किया है उनम वाजपयाजी का नाम महत्त्वपूण माना जाता है । शुक्लजी के पास ज्ञान का जसा बहुमूल्य घराहर था वसा ही वाजपेयीजी के पास भी दीप्तता है दाना की रचनामा स महान् प्रतिभा एव प्रकाड बहुप्य का आभास मिलता है और दोना की साहित्यिक समीक्षामा म व्यक्तिवादी प्रवृत्तियो <sup>५</sup> का पर्याप्त प्रतिबिम्बन हुआ है । परतु जहाँ शुक्लजी नवीनतम पाश्चात्य प्रवृत्तियो से (मनोविज्ञान आई० ए० रिचड स आदि से) प्रभावित दीप्त है वहा वाजपेयीजी इनसे पूणतया परिचित होकर भी स्वच्छदतावादी विचार-सरणियो पर ही अपेक्षाकृत अधिक अग्रसर हुए हैं । दोना न साहित्यनिहाम क सारगम प्रणयन और प्रस्तुतीकरण म रुचि दिखलाई है और हिंदी की ऐतिहासिक आलाचना पद्धति को सपुष्ट भूमिका पर ला बिठाया है । इसके अतिरिक्त दोनो ने भारतीय काव्यशास्त्र के परिपाश्व म पाश्चात्य काव्यमता का सुदर समजित आकलन एव अनुशीलन प्रस्तुत किया है और दोनो इनसे प्रभावित रहे है । परतु जहा पूर्वाग्रहा के कारण मिन रुचि और शलिया पर लिखे गए साहित्य के प्रति

१ सचारिणी (१९४१), प० ८७ ।

२ उपरिक्त, प० १३४ ।

३ उपरिक्त, प० १३५ ।

४ उदाहरणाय-वत और विकास के निम्नलिखित पृष्ठ देखिये ५६, ५७, ५९, ११७, १२०, १२८ ।

५ दे० डा० बलभद्र तिवारी, आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका (वाराणसी, १९६२), पृ० २२५-२२८ ।

शुक्लजी म उत्कट अनुदारता देखी जाती है वहा वाजपेयीजी की समीक्षा अपेक्षया अधिक उत्तम और उनकी लेखनी अधिक सयत तथा अनुशासित है। 'गोस्वामी तुलसी के सामाजिक और साहित्यिक आदर्शों के साथ आज की नवीन सामाजिक परिस्थिति और प्रेरणा और उसमें विकसित होने वाली नई काव्य धारा का मेल मिलान म भी शुक्लजी की अमुविधा रही।' ' किंतु वाजपेयीजी म न तो ऐसा दुर्गम पाया जाता है और न अपने प्रतिमानों के प्रति आवश्यकता से अधिक आकषण। उनका साहित्य-बोध अधिक नमनशील है और उनमें अपेक्षाकृत अधिक शालीनता, निर्व्यक्तिकता और प्रौढ़ता का समाहार दखा जाता है। इसका यह अर्थ नहीं कि वाजपेयीजी म निष्णयात्मक हमोपम प्रतिभा एव सुधी समालोचक की अतः प्रवर्धनी तत्त्वदृष्टि तथा साहम का अभाव है जिसके फलस्वरूप उनके लिए निवृत्त रचनाएँ भी उतनी ही अभिवाद्य होती है जितनी सफल कला-कृतियाँ। वस्तुतः वाजपेयीजी की प्रतिभा उतनी ही रहस्यो-मेपिणी है जितनी शुक्लजी की, साथ ही वह व्यवहारविन् भी है और उसमें प्राच्य प्रतीच्य समीक्षा-संस्कारों की आवश्यकता है जिसके फलस्वरूप वह अत्यधिक व्यक्त है और उससे उद्भूत समीक्षा ऊपर से सरल दीखकर भी तत्त्वतः बहुत ठोस-गभीर एव विचार-सकुल है।

यहाँ इस बात का उल्लेख आवश्यक हो जाता है कि उपर्युक्त निष्कष वाजपेयी जी की समस्त आलोचना-कृतियाँ पर समान रूप से लागू नहीं होते। उनमें अत-निहित मुक्तक समीक्षक उत्तरोत्तर विकसित होता रहा है जिसके परिणामस्वरूप उनकी पूर्ववर्ती कृतियाँ में जहाँ 'तलम्पर्शी एकागिता देखी जा सकती है, वहीं उनका उत्तरवर्ती ममानाएँ उनके ही शब्दा म, अधिक प्रामाणिक, वनानिक और सतुलित बड़ी जायेंगी। उनकी आरम्भिक रचनाओं में सज्जोवन और परिष्कार के लिए यथेष्ट स्थान रह गया है ' उनकी वस्तुमुखी अभिव्यक्ति व्यक्त नहीं हो सकी है और उनका समीक्षक प्रगतम भावों-मेप को ही प्रोत्साहन देता रहा है। उदाहरणार्थ, वाजपेयीजी का प्रौढ समीक्षक जब प्रमाद के 'आमू' काव्य को देखता है तब उममें अग-नाघटन की बड़ी कमी दिखाई देती है परंतु

१ नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य (इलाहाबाद, स० २००७), प० १९। इसी सदन में द्रष्टव्य नन्ददुलारे वाजपेयी, हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी (लखनऊ, १९४५), प० २८।

२ नन्ददुलारे वाजपेयी, नया साहित्य नये प्रश्न (धाराणसी, १९६३), प० ५।

अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी' में उसने इस मुद्दे का कही भी उल्लेख नहीं किया है। वाजपेयीजी ने स्वीकार किया है कि

और भी एकांगिताएँ और अप्रणताएँ मरी इस पहला पुस्तक में हैं, जिनमें कुछ का ता मुझे कर्षों याद मान हुआ और कुछ प्रब भी प्रज्ञात ही रह गई हागी। प्रेमचन्दजी के सबष में लिखत हुए मैंन इस पुस्तक में अपनी अनिरचि को इतनी प्रमुलता द दी है कि सिक्क का एक ही पहलू 'प्रवाश में आ पाया है। उनके सपूण स्वरूप का उपस्थित करत हुए मने उन पर एक दूसरी पुस्तक लिखी, तब जाकर इमकी क्षति पूर्ति हुई। इसी प्रकार विभिन्न शलिषा, विचार धाराआ और नाब भूमिया के कविया और स्रष्टाआ का अपनी ही निगाह से देखने में असगतिया आ ही जाती हैं। परतु एक नया लख जिसके पीछे समीक्षा-सबधी काई लबी परपरा न हो, कहीं तक वस्तुमुखी और तटस्थ रह सकता है ?<sup>१</sup>

“वस्तुमुखी और तटस्थ” रहने के लिए समीक्षा की तथा “परिपुष्ट निर्माण और सतुलन” के लिए कथा साहित्य की दीर्घ-परम्परा का होना आवश्यक है। वाजपेयीजी ने प्रेमचन्द में निर्माण तथा सतुलन के अभाव को अधिक महत्त्व नहीं दिया है और उपन्याससम्राट की प्रशंसा में कहा है कि इस प्रकार का आरोप करनेवाले यह नहीं देखते कि प्रेमचन्द हिंदी के सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्र की अत्यंत आरम्भिक विकासावस्था में काम कर रहे थे।<sup>२</sup> इस प्रकार वाजपेयीजी विभी कलाकृति के मल्याकन के पहले उसकी ऐतिहासिक पूवपीठिका और आवेष्टन पर विचार करत हैं जिससे उनकी उदारता प्रोत्साहित हाती है और विवेच्य लेखक अथवा कृति के प्रति समुचित माय करन का उन्हें अवसर मिलता है। सन् १८३२-३३ के पश्चात् उनका विवेचन-काय प्रगात-काव्य के सीमित क्षेत्र से निकलकर नाटक, उपन्यास प्रबष काव्य आदि अनेक साहित्यिक विधाओ के व्यापक क्षेत्र में प्रविष्ट होता है। इससे उनकी समीक्षा उत्तरोत्तर तटस्थ और वस्तुमुखी होती जाती है और उनमें सहिष्णुता का अपक्षाकृत अधिष उमेप होता है। अब यथायवाद का समथन होने लगता है और समीक्षक को इस

१ नन्ददुलारे वाजपेयी, नया साहित्य नये प्रश्न (वाराणसी, १९६३), प० ८। द्रष्टव्य श्री नमदाप्रसाद खरे, “आचार्य वाजपेयीजी एक इटरव्यू”। दे० डा० रामाधार गर्मा (सपा०), आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी - यक्ति और साहित्य (कानपुर, १९६५), प० ९१।

२ आ० सा०, प० १५।

स्वात का जान होता है कि "प्रसाद" के नाटका की समीक्षा नये प्रतिमानों से, नये तत्त्वा के आधार पर, की जानी चाहिए। उनके आरम्भिक विवचन में प्रेमचंद पर यह आरोप था कि उनके उपवास बहुत अधिक यथात्मक आर योचिले हैं। परंतु अपनी तीसरी पुस्तक 'प्रेमचंद के विवेचन में वाजपेयीजी ने प्रेमचंद के उपयासा के सबल पक्ष का उद्घाटन किया। सामयिक पाठना का ध्यान इस पक्ष का आर आकृष्ट करत हुए उन्होंने कहा कि प्रेमचंद के उपयासा के इस दुबल पक्ष का आर ता मरी दष्टि गई थी पर उनमें एक सबल पक्ष नही है—अत्यधिक सबल पक्ष—यत् मुझे कुछ समय बाद आभासित हुआ। उनका सबल पक्ष है भारतीय परिस्थितिया और विशेषकर भारतीय ग्रामों का विशाल अनुभव और उसने भा बटकर ग्रामीण जनसमाज के प्रति उनकी अपार सहानुभूति।'<sup>१</sup>

स्पष्ट है कि यदि वाजपेयीजी का ममस्त समीक्षात्मक कृतिया का एक बहुत सग्रह प्रकाशित किया जाय तो उनमें अनकानेक अमगत तथा परस्पर विरोधी तत्त्वा का समावेश मिलना। परंतु इससे प्रमाता का नराश्रय के म्यान पर हम वान की प्रतीति होगी कि लखक एक विकासशील प्राणी है<sup>२</sup> और उसके विचारों के विरोधी तत्व उसके मानसिक विकास के ही द्योतक है। पाल बैलरी विरचित *artpoetique* की भूमिका में टी० एस० एलियट ने बैलरी की रचनाओं में पाया जानवाली पुनरुक्ति और असंगतियों का सभी कारण समथन किया है कि इनमें लेखक के विकास का दान होता है, और कहा है 'बैलरी की रचनाओं में अनेकत्र आपका एक ही लेखाश की यथावत पुनरावृत्ति मिलती और उनके लिए लेखक न क्षमा-याचना करेगा, न उसकी व्याख्या। मुझे हम बात पर काइ आगति नही। मैं आलाचनात्मक निवधा का उनके मून रूप में पटना अधिक पसंद करता हूँ न कि जब बाद में कृत्रिम अविनि के लिए उह अभिनव रूपावृत्ति प्रदान की जाती है। यदि मैं अपने विचारों में असंगति या परस्पर विरोध पाता हूँ तो यत् हम बात का प्रमाण है कि मेरे विचार बदल गए हैं, यदि पुनरावृत्ति करना हूँ तो इससे यह साफ जाहिर है कि मेरे विचार आज भी वही हैं जो पत्न थे। अनजान ही जो पुनरावृत्तियाँ हला हैं उनमें नेवक के दड मता और निश्चया का प्रमाण मिलता है।'<sup>३</sup>

१ न० सा० न० प्र०, प० १३।

२ द्रष्टव्य "मानव-जीवन विकासशील वस्तु है, इसीलिए साहित्य भी विकासशील है।" (उपरिबत, पृ० ३)

३ Here and there among Valery's writings you will find

वाजपेयीजी न 'अंग्रेजी के आलाचना साहित्य का विशेष रूप से अनुशीलन किया है और उसका उपयोग य अपन साहित्यिक लेख में करते हैं।"<sup>१</sup> पारिवारिक सूत्रों से संकलित एक निबंध में कहा गया है कि जब वाजपेयीजी एम० ए० के विद्यार्थी थे, अपन विषय (हिंदी) के अनिश्चित के अंग्रेजी साहित्य की अनेकानेक पुस्तकें भी पढ़ा करते थे। उन दिनों उन्हें हिंदी का पढ़ाई हल्की और अपर्याप्त लगती थी।<sup>२</sup> जिन विषयों का उन्होंने गंभीर अध्ययन किया है उनमें पाश्चात्य स्वच्छतावादी समीक्षा बड़े महत्त्व की है, पर वह मध्यु ग्रानल्ड की भाँति काव्य साहित्य के मूलभूत गंभीर, नतिक आदर्शों को भी स्वीकार करते हैं।<sup>३</sup> पश्चिम का अध्यापन उन्हें माय नहीं है इसलिए वे भारतीय नवलेखन का विरोध करते हैं। साथ ही यह भी स्मरणीय है कि वे उन साहित्यिक आदर्शों को सामने रखकर नयी कविता पर विचार नहीं करते जिन आदर्शों का सामने रखकर शुक्लजी ने छायावादी काव्य का विरोध किया था। कविता चाहे

---

the same passage repeated almost verbatim without apology or explanation I do not myself object to this I prefer to read critical essays in their original form not reshaped at a later date into an artificial unity Indeed I regard repetitions and contradictions in a man's writing as valuable clues to the development of his thought For if I find a contradiction it is evidence that I have changed my mind, if there is a repetition it is the best possible evidence that I am of the same mind as ever An unconscious repetition may be evidence of one's firmest convictions or of one's most abiding interests T S Eliot's introduction to Paul Valéry *The Art of Poetry* (London 1958) p ix

ऐसे ही भावों की अभिव्यक्ति डॉ० एस० एलियट के "द म्यूजिक ऑफ पोयट्री" शीर्षक निबंध में हुई है। डॉ० आन पोयटो एण्ड पोयटस (लंदन, १९५७), प० २६।

१ डॉ० रामाधार गर्मा, उल्ल० प्र०, प० ११। वाजपेयीजी के निबंधों से डॉ० श्यामसुंदरदास के इस कथन की प्रामाणिकता में संदेह नहीं रह जाता।

२ उपरिखत, प० २३।

३ उपरिखत, प० ४४।

२५० :: आधुनिक हिंदी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव

नयी हो अथवा पुरानी वह उनके 'विराघ या उपेक्षा का विषय नहीं हो सकती।<sup>१</sup> नयी कविता के दुबले पन्ना की ओर सकेत करन का उनका एकमात्र लक्ष्य नये कवियों का ध्यान राष्ट्र और साहित्य के प्रति उनके दायित्व की ओर आकृष्ट करना है। दुर्भाग्यवश 'हमारा नबलेखन ऐसा ही रहा है जैसे हमन यूरोपीय विभीषिकाया का स्वयं झेला है। यह एक आरापित विभीषिका है। क्या शली मदैव वस्तु सापेक्ष्य हानी है। जब हमारी वस्तु, हमारी समस्याएँ भिन्न हैं तब क्या शली म पश्चिम की अनुकृति हमारे अनुरूप कैसे होगी? नवीनता आकाशित वस्तु है, परंतु हम पूर्वी नवीनता के प्रयासी हैं न कि पश्चिमी अनुकृति के।<sup>२</sup>

शुक्लजी के काव्य सिद्धांत प्रबंध और कथात्मक काव्य के सूत्रम अनुशीलन स उपलब्ध और निर्मित हुए थे, जिसके कारण उनका ध्यान सदैव काव्य के उदात्त स्वरूप और उत्तम निहित लोकादशवाद की ओर था।<sup>३</sup> वाजपेयीजी के काव्य सिद्धान्त के मूलाधार सगवद्ध लवी रचनाएँ नहीं प्रगीतकाव्य हैं। उन्होंने स्पष्ट शब्द म प्रगीत-काव्य की विशेषताया का उल्लेख किया है और कहा है कि जहा प्रबंध-काव्य म जीवन के भावात्मक सघष और चरित्रों की रूपरखा रहा करती है वहाँ प्रगीत म ही कवि के अंतस्सल का उत्पाटन सम्भव होता है। प्रबंध-काव्य म श्यचित्रण और वस्तुचित्रण के साथ बहुत-सा इतिवत्त भी लगा रहता है परंतु प्रगीत रचना म कविता इन समस्त उपचारा से विरत होकर केवल कविता या भावप्रतिमा बनकर आती है। प्रबंध-काव्य यदि कोई रसीला फल है, जिसका आस्वादन द्विलक रेशे और विण आदि निकालने पर ही किया जा सकता है तो प्रगीत रचना उमी फल का द्रव रस है जिसे हम तत्काल घूट घट पी सकते हैं।<sup>४</sup>

प्रगीत और प्रबंध के इस पथक्करण से, प्रथमतः, इस बात का खोजन हाता है कि वाजपेयीजी की समीक्षा शली कभा-कभी अत्यंत "प्रबंधपूर्ण और स्वच्छंद हा उठनी है ("मानो आप अपने निन की बात कह रहे हैं"), और दूसरे त्से साफ जाहिर है कि उनकी समीक्षात्मक मायताएँ रोमांटिक समीक्षा से उदभूत हैं। प्रगीत-काव्य-सबधी उनकी उपपत्तिया और स्थापनाएँ यूरोप के उन प्रगीत-

१ डा० रामाधार शर्मा, उल्ल० प्र०, प० ८९।

२ उपरिबत्त, पृ० १००।

३ हि० सा० बी० १०, पृ० २८।

४ आधुनिक साहित्य, प० २४।

आन्दोलन<sup>१</sup> से अनुस्यूत हैं जिमने महाकाव्या की लोकप्रियता के स्यान पर छोटे छोटे प्रगीता के महत्त्व की संस्थापना की। कालरिज के अनुसार लबी कविताएँ न ता आद्यत कविता हो सकती हैं और न उट कविता होगी चाहिए।<sup>२</sup> उसके प्राय तीस वष बाद पो न कहा था मरा विश्वास है कि लबी कविता नाम की कोई चीज नहीं हाती, मरा यह भी म्याल है कि 'लबी कविता' के दाना शब्द— 'लबी' और 'कविता'—परस्पर विरोधी हैं। इसी प्रकार जे० एम० मिल के अनुसार प्रगीत-काव्य ही काय की अयाय विधाया की अपेक्षा सर्वाधिक काव्यात्मक होता है सहृदय कविता के लिए प्रगीतात्मक अभिव्यक्ति ही प्रवृत्त अभिव्यक्ति है और यही एक ऐसी विधा है जिमकी अनुवृत्ति प्रतिभाशून्य व्यक्ति नहीं कर सकत। 'यूमन तथा जान केन की प्रगीत-सबधी मायताएँ भी यत्किंचित ऐसी ही हैं।

वाजपेयीजी की प्रगीत-सबधी मायताओ से यह भी स्पष्ट हाता है कि कविता का सच्ची आत्माभिव्यजना मानते हैं। उनकी दृष्टि में प्रगीत-काव्य म कवि की अनुभूतियों की पूण अभिव्यक्ति होती है, उसके अतस्तल का पूण उदघाटन हाता है इसलिए वह अभिनदनीय है। इस विचारधारा का मूलस्रोत रोमाटिक समीक्षा के ऐसे कथनो में ही परिलक्षित नहीं हाता कि 'कविता बलवती भावनाया का सहज उच्छ्वलन होती है,<sup>३</sup> 'कविता सर्वाधिक सुखी एव श्रेष्ठतम मनाक श्रेष्ठतम और सबसे अधिक सुखी क्षणा का लेखा-जोखा है'<sup>४</sup> प्रत्युत रोमाटिक युग की अधिकांश सजनात्मक कृतियों में इसे देखा जा सकता है। यूरोपीय साहित्य में आत्माभिव्यजना 'ग्रहम की अभिव्यक्ति दो महनाय कचारिक क्रांतिया से सबद्ध है। सबप्रथम नवजागरणयुगीन कवियों और कलाकारा ने मध्ययुग की

१ "लिरिक मूवमेण्ट"।

२ "इन गाट, ह्लाटएवर स्वेसिफिक इम्पोट वी अटच टु द यड पोयटी, देयर विल वी फाउण्ड इवाल्वड इन इट, ऐज अ नेसेसरी फसिवेंस, दट अ पोयम आव एनी लेंग नाइवर कन बी, नार आट टु बी, आल पोयटी।" वायो प्राफिया लिटरेरिया, अध्याय १४, प० १७३।

(जाज वाटसन द्वारा सपादित)।

३ "पोयट्री इज द स्पोष्टेनियस ओवरफुल आव पावरफुल फीलिंग्स।" यड स्वथ, प्रिफेस टु द लिरिकल बलेडस।

४ "पोयट्री इज द रेकाड आव द बेस्ट एण्ड हैपिएस्ट मामेण्टस आव द हैपिएस्ट एण्ड बेस्ट माइण्ड्स"—गेली, अ डिफेस आव पोयट्री।

सद्यधर्मन्यायिता तथा तन्पुगीन मानमूल्या के स्थान पर मानवतावाद की घोषणा की। लूथर ने कहा ' मैं स्वतंत्र होना चाहता हूँ। किसी के प्रभावधीन रहना या किसी का सत्ताधिकार मुझे स्वीकार्य नहीं है। ' ऐसी ही घोषणाओं से यूरोप में उस धर्म-सुधार के आन्दोलन का मूलपात हाता है जिसका नेतृत्व मेवनारोना, लूथर, कैल्विन आदि ने किया था। पेटरास पिनी डेला मिरण्डोला पाम्पोनजी, बाव आदि ने, नवजागरणवादी में, मनुष्य के प्रकृत गौरव का और अपने मामयिका का ध्यान आकृष्ट किया। बाव का एक रचना<sup>२</sup> में कहा गया है कि जना ने अपने पति और माइ जूपिटर से एक रगमच बनाने का अनुरोध किया। जूपिटर की आज्ञा पाते ही रगमच तैयार हो गया और उसे पर भिन्न भिन्न अभिनता एक-एक कर उपस्थित हो गए। जूनो ने देवताओं से पूछा कि अभिनताओं में कौन उन्हें सर्वश्रेष्ठ दीखता है। सभी ने एक-दूसरे से कहा कि मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ बलावा है और वही एक ऐसा अभिनता है जो स्वयं जूपिटर में भिन्नता-जुलता है।<sup>३</sup>

इसी प्रकार फ्लो की 'साइल वाफ्टकट' नामक पुस्तक तथा उसकी सहायक कृतियों ने स्वच्छन्दतावादी विचारधारा के उदय में महत्वपूर्ण योगदान किया। उनके कारण अठारहवीं शती के दार्शनिक बुद्धिवाद के स्थान पर स्वैच्छाप्रणोत मानवमयता का प्रभुत्व महत्व मिला, कविता एवं गद्य में प्रभावमान, स्थिर पदावली की प्रतिष्ठा हुई।<sup>४</sup>

१ "आई विंग टु बी फ्री। आई टु नाट विंग टु चिकम द स्लेथ आव एनी आथारिटी, वेदर दट ऑव अ काउंसिल आर आव एनी अदर पावर, आर आव द यूनिवर्सिटी आर द पाप।" दे० जे० ब्रोन्रोस्की और ब्रूस मजलिग, द वेस्टन इण्टेलेक्चुअल ट्रेडिशन (यूवाफ, १९६२), पृ० ८६।

२ "अ फेबल अजाउट मैन"। इस सद्यधर्म से पिनी रचित "अरंगन जान द डिग्निटी ऑव मैन" भी उल्लेखनीय है। इनके लिए देखिये अस्त कजिरर, पाल ऑस्कर प्रिस्टेलेर तथा जान हमन रण्डल, जुनियर, द रनसस फिलॉसफी आव मैन (फिनिक्स बुक्स, १९५६)।

३ "द रेवेन्गाइज्ड इन मैन हिमसेल्फ अ फ्रेट रिजोन्सेन्स टु जूपिटर, सो दट इन द डेलेस्ट ऑव गाइज माइट हैव नोन दट मैन वाज बार्न ऑव जूपिटर।" उपरिबत, पृ० ३८८।

४ अठारहवीं शती के नवजागरणवादी लेखकों और उनकी रचनाओं के सद्यधर्म से सेंटसवरी ने अपनी 'द पीस आव द ऑगस्टिन्स' नामक पुस्तक में कहा है "There are of course many things for which you must



स्तांडाल के अनुगार जहाँ स्वच्छतावाद धाज का और घटनन बना है वहाँ धामिजात्यवाद बल थी, धर्मान् घनचनन बना है । याजपेयीजी का स्वच्छतावादी आलोचक धाज का बलावार है किन्तु मविष्य म भा, जय उनका रचनाएँ बल व साहित्य का अविच्छिन्न धग हा गइ रहगा, हमारे समीभा उह स्वच्छतावादी ही बहग। विक्टर ह्यूगा व मतानुमार स्वच्छतावाद बह्य्य और बनगण्य का पर्याय है । ईगाई धम म अतःप्रतिष्ठित पाप भावना स गसार म विपण्णता का प्राटुभाज हुआ । मनुष्य का अपना अपूणता व निरोधानास का गान हुआ

धूला से हम बने मध्य

नम से नीच अपामन । १

गी विपण्णता के साथ (ह्यूगा द्वारा सष्ट बुब्जव की तरह) विरुप और मिलक्षण की भावना का भी उभेप हुआ । याजपेयीजी के स्वच्छतावाद म न युद्ध विरुप है और न मिलक्षण । उनका काव्य विषयव दृष्टिकान मूलत रोमाटिक है छायावादी काव्य के अनुशीलन से उमी प्रचार निर्मित हुआ है जिस प्रकार टेनेसन पालप्रेव और ऐबरजोम्बी की अमिरचि उभीसवी शती के अगरेजा काव्य से निर्मित हुई थी ।

not look in the century many sources of rest and refreshment from which you will be cut off In vain will you look for ( I quote from a book-catalogue which reached me while I was writing this chapter) 'the glittering prose and extraordinary power of perfect expression of which Mr — is complete master Open the volume where you will and the romantic glory of the printed word makes reading as ecstatic as the joy experienced in listening to a highly trained orchestra There was nobody in the eighteenth century who could produce sensations of this sort George Saintsbury *The Peace of the Augustans* (The world's Classics 1951 ), pp 391 et seq

१ "मेग्निफिसेण्ट आउट आव द डस्ट बी केम, / एण्ड ऐन्जेवट फ्रीम द स्फीयस ।"  
दे० La Princesse Lointaine F L Lucas *The Decline and Fall of the Romantic Ideal* ( Cambridge 1954) p 10

यद्यपि 'हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी' में मक़तब निबंधों का सबसे व्यावहारिक समीक्षा में है फिर भी इस ग्रंथ की विनष्टि १ आलाच्य साहित्य-कारों पर लिखे गए निबंधों में भा. वाजपेयीजी के समीक्षात्मक मिश्रित-सूत्र विवरों मिलते हैं। इन निबंधों के रचना-काल में वे साहित्य को "मदव हमार अबाध और अपराजित जीवन का संगीत कहते हैं" उनको दृष्टि में "प्रयोग" शब्द में ही एक प्रकार की कृत्रिमता और अभ्यास की व्यंजना है। परिश्रम के द्वारा कलापूर्ण और सुसूचित साहित्य का निर्माण हो सकता है, प्राणपूर्ण और जीवन-प्रद साहित्य का नहीं।<sup>१</sup> काव्य कवि की उद्भावनात्मक या सजनात्मक शक्ति का परिणाम है।<sup>२</sup>

इस प्रकार वे कथन अनिजान समीक्षकों द्वारा समर्थित नहीं होते। अनिजान काव्य में अभ्यास का निर्माण नहीं होता, अभ्यास और व्युत्पत्ति की स्वीकृति नहीं है। काव्य मानव की उद्भावनात्मक या सजनात्मक शक्ति से अनायास ही उत्पन्न नहीं होता वह तो श्रमपूर्वक किया गया निर्माण है कला है। वाजपेयीजी ने साहित्य का जीवन का संगीत कहकर रोमांटिक प्रगति की ही याद दिलायी है अनिजान प्रवृत्ति या नव्यशास्त्रवादी व्यंग्य रचनाओं की नहीं।

कही-कही व्यक्तिवादी मतावधि पर वाजपेयीजी ने निष्ठुर प्रहार भी किया है। उनके मतानुसार काव्य-क्षेत्र में प्रयोगवादी कवियों की भी निष्ठुर व्यक्ति-वादिता पनप नहीं सकती।<sup>३</sup> हमारा साहित्यिक निर्माण व्यक्ति-केन्द्रित नहीं होना चाहिए और न केवल व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धा का ही साहित्य में मूल्य और महत्त्व मिलना चाहिए।<sup>४</sup> इस प्रकार की स्थापनाएँ आतिशयिक व्यक्तिवादिता का, न कि स्वच्छन्दनामूलक आत्मनि-यक्ति का विराध करती हैं और, समस्त इनके मूल में प्रयोगवादियों के आत्यंतिक व्यक्तिवाद का आन्तक है। प्रयोगवाद के आविर्भाव के परिणामस्वरूप व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का प्रचार हो चला है और 'हमारी साहित्यिक सृष्टि व्यक्तिमुखी हो गई है।<sup>५</sup> यहाँ यहाँ भी उल्लेखनीय है कि परवर्ती रचनाओं में अपेक्षा अधिक सूत्र इन स्थापनाओं के कारण

१ हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी, पृ० २ (विज्ञप्ति)।

२ उपरिबत, पृ० ४।

३ उपरिबत पृ० ८।

४ आधुनिक साहित्य, पृ० २१।

५ राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध (धाराणसी, १९६५)।

६ उपरिबत।

वाजपेयीजी के भाषाश्रुत सन्दर्भात्मात्मा विना म वाई अंतर शीघ्र नहीं पता। अर्थात् भी य भाष्य की प्रक्रिया का मानमूला ही माता हैं और प्रयोगशास्त्र की भाषाशास्त्र शोधिता का निराप करता है। उह सुद्धिरम का बाहुल्य अल्पता और अल्पता तगता है और य कटा है।

नय सत्ताशास्त्र भाष्य की गत्ता और अंतर्य प्ररणाया म गभाति नय है। य अघितान म अथमगाध्य और गत्त हूण कवि हैं, जिह्वात कवि-नय का बाता अहन विना है।<sup>१</sup>

अठारवा शती क कविता क गवध म काठम क विचार एतहा य। आनल्ड न अठारवा शती क उद्योगशास्त्रवाता कविता का अतापता एत ही शता म का था। वाजपेयीजी क अनुगत कातजयी कविताएँ प्रतिमा प्रभू मत्त और अंतर्य प्ररणाया म गभाति हाता हैं। उताम भावता एव आत्मानुभूतिया का मत्त उच्छ्रिता हाता है अथ और भाषाग नहा। उत म दग तय प्रसार की कविता का प्रारम्भ हुआ य गहन है।

तय म दग शती क कवि स्वयं समागत बन गए हैं और अपनी कविता का मम आप ही बतलाया करत हैं। स्थिति यहाँ तय आ पडुची है कि इन कविताया का मम और मूल्य प्रकट करन क लिए इन कविता का अपना ही सहारा रह गया है। कदाचित्त अया का इन सृष्टिया स वाई रुचि या सरासार नहा रहा।<sup>२</sup>

पश्चिम म प्रत्यय नय काव्यता बाद के समयक और उन्मावक ऐग कवि हुए हैं जिहान अपना कविताया का मम और मूल्य प्रकट करने क लिए अपना ही सहारा दिया है। डाण्डन, बड स्वय, आनल्ड, एलियट प्रभृति न अपना अपना कविताया का मम आप ही बतलाया है। आविभूत होत ही नयी वृत्तियाँ आस्थाय एव मूहीत नहा हा जाता। इसके लिए अध्यताया की रुचि का परिभाजन करना पडता है। इस कारण नय कविता ने प्रत्येक युग म अपना पाठना के लिए अपनी कविताया के मम का उन्माटन किया है। छायावादी कविता ने भी अपनी गद्य-रचनाया म छायावादी नयी कविता का पुरजोर समर्थन और पक्षग्रहण किया है।

वाजपेयीजी गभीर सवेदनाया के प्रभू हैं। उहान किसी अध्यात्मवाद को एकांतत नहीं पकडा है।<sup>३</sup> उनके अनुसार नय कवि की मुठाएँ पराजय का

१ राष्ट्रीय साहित्य तथा जय निबंध (वाराणसी, १९६५), पृ० ६९, द्विष्टव्य नया साहित्य नये प्रश्न, प० १८।

२ उपरिबत।

३ उपरिबत, प० १३२।

दानन करता हैं और आधुनिक कविता की व्यञ्जितादी प्रवर्तियाँ लेखन-स्वातन्त्र्य  
 की पर्याय नहीं हैं। 'जब तक कुछ और अनास्था का कविया पर अधिकार है तब  
 तक स्वातन्त्र्य का प्रश्न ही नहीं है।' १ वाजपेयीजी का स्वच्छदतावादी कवि-  
 समीपक<sup>२</sup> जिम महानुभूतिपूण दृष्टि से छायावादी कविया का मूल्यांकन करता  
 है, उस दृष्टि से नय प्रगतिशील और प्रयागवादी साहित्यकारा का नहीं करता।  
 प्रमाद उनके अनुसार बड़ स्वध की तरह मानवावादी हैं, निराला और शोनी—  
 दाना ही क्रातिप्रिय है पत और कीट्स मीन्यवादी हैं तथा महादेवी विलियम  
 ब्लेक का मानि रहस्यवादी हैं।<sup>३</sup> पाश्चात्य साहित्य द्वारा हुए ग्रहित व प्रति भी  
 वाजपेयीजी सतन जागृक् हैं उदाहरणार्थ हिंदी साहित्य की विकासोमुख  
 परंपरा म पश्चिम की ऐकात्मिक एव व्यक्तिवादी विचारधाराका का धायात  
 उन्हें बहुत कुछ अटपटा लगता है। परंतु व यह भी जानते हैं कि यत्न करके  
 भी हम अपन का पाश्चात्य विचारधाराका के प्रभाव से विमुक्त नहीं रख  
 सकत। नवीन साधना के विकास के कारण विश्व के विविध राष्ट्रा की  
 समस्याएँ और स्थितियाँ ब्रमश भर्मावित होती जा रही हैं।<sup>४</sup> इस बड़नी हुई  
 समीपता के कारण ही आधुनिक हिंदी-समीक्षा म प्रचलित विचार-मद्धनिया  
 और लेखन शलिया पर पाश्चात्य समीपता और संसन शली की गहरा छाया  
 दिखाई दती है।<sup>५</sup> हिंदी-साहित्य मे प्रचलित विविध वाक्—प्रतीकवाद  
 प्रतिविषवात्, अतश्चेतनावाद, अस्तित्ववाद आदि—ऐसे विदशी प्रभावा की  
 सूचना दत हैं जा ह्लासामुक् जीवन के अग हैं। 'कमलिए इन वादा का  
 पत्ला पकडकर वाव्यरचना करन म न ता वास्तविक मीलिकना ही आ सकती  
 है और न हिंदी-काव्य राष्ट्रीय वातावरण की सच्ची प्रतिबिधाका को ग्रहण  
 कर सकना है। अतिशय व्यक्तिवादी और अतमुग प्रवर्तियाँ हिंदी-काव्य  
 के लिए ही क्या किसी भी काव्य के लिए स्वस्य और उपादय नहीं कही जा  
 सकती हैं।<sup>६</sup> वस्तुन हमारा समाज और साहित्य विकासोमुख स्थिति म है।

१ उपरिखत, प० १३३।

२ वाजपेयीजी "सुकवि और सुलझे हुए कहानीकार भी रह चुके हैं।" दे०  
 डा० रामाधार गर्मा (सपा०) उल्ल० प्र०, प० ६।

३ राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबध, प० १०८।

४ प्रकीर्णिका (बानपुर, १९६५), प० ५६।

५ उपरिखत, प० ५७।

६ उपरिखत, प० २१।

हिंदी की सद्धात्मिक आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव—२ :: २५७

हिंदी-समीक्षा भी तदनुकूल होनी चाहिए। जिस प्रकार पश्चिम का नया साहित्य वहाँ के समाज का प्रतिबिंब है उसी प्रकार हमारे नये साहित्य को यहाँ के समाज का प्रतिबिंब होना चाहिए। परंतु नये वादा के अध्यानुयायी इस बात को भली भाँति समझ नहीं पाते। उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि आज यूरोपीय जीवन में जो विचारधाराएँ प्रचलित हैं वे सबकी सत्र हमारे लिए उपादेय नहीं है। हम अपना रास्ता अपने-आप तय करना होगा? <sup>१</sup> व्यक्तिवाद की विचारधारा यूरोप के लिए मूल ही उपयुक्त हो हमारे लिए वह कथमपि उपयुक्त नहीं है। इसका कारण वाजपेयीजी के शब्दों में यह है कि हमारे देश में समाज और व्यक्ति का वह विच्छेद घटित नहीं हुआ, जो योरप और अमेरिका की राष्ट्रीय चिंतना में घटित हो चुका है। <sup>२</sup> उनका सौष्ठववादी स्वच्छ आलोचक यूरोपीय बुद्धिवाद का (और इसी बुद्धिवाद पर आधृत नयी कविता का) प्रबल विरोधी है। इसलिए उसकी एक उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण उपपत्ति यह है कि नवीन बुद्धिवाद, जो हमारे देश और साहित्य में प्रवेश पा रहा है, "यहाँ की प्राकृतिक प्रेरणाओं से उद्भूत नहीं है। <sup>३</sup> वाजपेयीजी यह भी स्वीकार करते हैं कि हिंदी समीक्षा में ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं की समीक्षा में भी व्यवहृत शब्दावली अधिकांशतः पश्चिमी है। <sup>४</sup>

वाजपेयीजी हिंदी साहित्य और समीक्षा पर पश्चिम के व्यापक प्रभाव का खडनात्मक आलोचना ही नहीं करते अपितु ठोस सत्परामर्श भी देते हैं। उनसे मत-यानुसार जहाँ सद्धातिक चिंतन के क्षेत्र में हम अपनी इबाइ बनाए रखनी हांगी, वहाँ यह भी अपेक्षित है कि हम प्राचीन भारतीय सिद्धांतों के वशवर्ती न हों और न यही समय बँट कि प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र में जो कुछ है वह अप्रतिम है। इस प्रकार वाजपेयीजी समीक्षा क्षेत्र में रुढ़िवादिता या गतानुगतिकता का समर्थन नहीं करते। <sup>५</sup> समग्रतः, ये सभी क्षेत्रों में अतिवादिता

१ नया साहित्य नये प्रश्न (१९६३), प० १३६।

२ प्रकीर्णिका, प० ४५।

३ दे० नया साहित्य नये प्रश्न, प० २३७-२५४।

४ उपरिबत, प० ९९। द्रष्टव्य "विचारों के क्षेत्र में साहित्य निर्माण सबधी जो चर्चा पश्चिम में हो रही है, वह सबकी सब हमारे लिए हितकर नहीं है। हमें वहाँ भी धुनाव करना होगा।" नया साहित्य नये प्रश्न, प० १३ (दे० पश्चिमी अनुकरण), आधुनिक साहित्य, प० ५०।

५ नया साहित्य नये प्रश्न, प० १३५।

का ही विरोध करत हैं। अनिश्चय प्रभाव-ग्रहण, पश्चिमी सिद्धांतों का अतिशय प्रयोग, अतिशय वृद्धिवाद, मतवाद की अधिकता—इनका समयन कोई अतिवादी ही कर सकता है। वाजपेयीजी का दृष्टिकोण इस वाक्य में स्पष्टतया प्रतिफलित है 'किन्हीं भी मतवाद को किसी समय साहित्य जगत् में अतिशयिक प्रमुखता नहीं दी जानी चाहिए।' "राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध की भूमिका (साहित्य की राष्ट्रीय चेतना)" में उन्होंने पुन कहा है कि 'रचना और समीक्षा के बीच उचित मनुलन आवश्यक है। मतवाद की अधिकता से न केवल साहित्य में दल और सम्प्रदाय बढ़ते हैं बल्कि साहित्य-जगत में सशय और फूट उपन होती रहना और फलती है।' "भारतीय रस सिद्धांत की ओर, रोमांटिक रसवाद की ओर के किंचित अधिक उमुख और उसके प्रति अधिक उदार २। उनके समीक्षा प्रतिमान रस सिद्धांत से ही उभूत एवं उसी पर आधृत हैं। काव्य के मम और उमकी विविध प्रक्रियाओं और स्वरूपा को समयने के लिए रस सिद्धांत वाजपेयीजी के अनुसार, अत्यंत समीचीन है। कठिनाई केवल यही है कि इनकी व्याख्याएँ प्राचीन काव्य से सख्द एवं आदर्शोमुख हैं। इसलिए वाजपेयीजी चाहते हैं कि उन्हें अभिनव मनावज्ञानिक आधार दिया जाय और नये साहित्य की समीक्षा के अनुकूल बनाया जाय। तभी वे आज के स्वच्छतावादी और यथाय-वाणी काव्य के मूल्यांकन के लिए प्रयोजनीय हो सकते हैं।<sup>२</sup>

वाजपेयीजी के आलोचनात्मक निबंधों में लेखक द्वारा पाश्चात्य साहित्य के गंभीर आलोचन का आभास मिलता है। उन्होंने पाश्चात्य समीक्षा के सद्धातिक विकास पर एक विशाल, गंभीर एवं सध्यपरक निबंध लिखा है जो समीक्षा के इतिहास पर आघत न होकर समीक्षा की मून या सपादित अनूदित वृत्तिया के यथाशक्य अनुशासन पर आधृत है।<sup>३</sup> इसी प्रकार उन्होंने पश्चिम की अधुनातन

१ राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध, प० अ-आ (भूमिका)।

२ उपरिक्त, प० १७१। "जिस प्रकार पश्चिमी समीक्षा के प्राचीन सिद्धांत वहा के पुराने साहित्य की व्याख्या और विवेचन के लिए निर्मित हुए थे, फिर भी उनके स्थायी तत्वों का आधुनिक समीक्षा में उपयोग किया गया है और उन सिद्धांतों के साथ उनका नये सिद्धांतों में समाहार किया गया है, यही ही परिपाटी हम अपने देश के पुरातन समीक्षा सिद्धांत के सबध में भी अपना सकते हैं।" (उपरिक्त)

३ दे० पाश्चात्य समीक्षा सद्धातिक विकास, "नया साहित्य नये प्रश्न," प० ५८-९६, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, "काव्यशास्त्र" (प० जगन्नाथ तिवारी अभिनवन ग्रंथ, १९६६), प० ४८४-५२१।

साहित्यिक प्रकृतियाँ का, अभिव्यक्तता का, मातृभाषा और भारतीय अभिव्यक्तता का यथाथता तथा परिहारता का भाग्यतः अध्ययन किया है और वे प्राचीन पाश्चात्य अनुकूलिता<sup>१</sup> से भी परित्याग हैं परन्तु मातृभाषा प्रभावित नहीं। उदा।। वाच-वाच परिभाषा की तर्कपूर्ण साहित्यिक प्रकृतियों का कुतर्कण कहा है

- (१) आधुनिक युग में धर्म धर्म जा तन्मातृभाषा प्रकृतियों उत्पत्ति है उदा।। हम धर्मिता नहीं मान।। वाच्य में एत निगन्त का साकार हो गया है। यह नया साहित्यिक युगाद्यो म धर्म है। (राष्ट्रभाषा की कुछ समस्याएँ, १९६० पृ० ८२)
- (२) साहित्यिक म धर्म मध्यवर्ग का युगा की प्रकृतियों दृष्टिगत होन लगी है। युरोप का साहित्यिक क लक्षण म विचित्र विमर्श का भाव हमारे साहित्यिक म धर्म का क्यारि हमारा आधुनिक साहित्य पश्चिमी साहित्यिक म प्रभावित है। (उपरिच्यु पृ० ८८)

पश्चिम के साहित्यिकार यथाथवानी विचार-मार्गियों का नय मिर स निरीक्षण कर रह है परन्तु हम हैं जा धर्म भी उह अन्तिम वाच्य माना की मा स्थिति म हैं।<sup>२</sup> पाश्चात्य प्रभाव का प्रति एमा धारणाया का वाच्य वाचपेयीजी के साहित्य चिंतन और ममीभाषा की भाषा शक्ती पर प्रभूत पाश्चात्य प्रभाव पडा है। उदा।। यत्रात्र अंगरेजी भाषा का उन्मुक्त प्रयोग किया है और यथावसर पाश्चात्य साहित्यिक उदाहरण लवर धर्म विचारा की पुष्टि का है। उदा।। श्रीचित्त मत और पश्चिम के कतिपय वाच्यदर्शों म समानता पाइ है 'व्यक्तिक विचारान मन्व इम वात का धर्मह विद्या है कि वाच्य का नायक असाधारण गुणावाता व्यक्त होगा। इस विचार का अतिवादी स्वरूप भी सातहवी सत्रहवा शताब्दी के निघानलातिक विचारका म देगा जाता है। उदाहरण के लिए शेक्सपियर के एक रक्त पात्र दृष्टेया का विषय म यह धर्मोप किया गया है कि वह सनिक है, अतएव किसी प्रकार का दुष्कर्म कर ही नहीं सकता। ' यहाँ वाचपेयीजी रादमर सरीले अभिजात समीक्षक की ओर सचेत

१ आधुनिक साहित्य, पृ० ३७८-३८५, नन्दकुमारे वाचपेयी तथा रामलाल सिंह, निबन्ध चयन (प्रयाग, प्र० ति० २०), पृ० १४५-१५४।  
 २ दे० आधुनिक साहित्य, पृ० ३७२-३७७।  
 ३ राष्ट्रीय साहित्य तथा अर्थ निबन्ध, पृ० ३७।  
 ४ प्रकीर्णिका, पृ० ३७।

कर रहे हैं। यद्यपि उन्होंने उसका नाम नहीं लिया है। हिंदी के ज्ञायावादी कवियों में उन्होंने पाश्चात्य टेक्नीक या निमाणकौशल की झलक पायी है और इसमें तथा यूरोप के 'रनेसा' में समानता देखी है। इस प्रकार के महत्साधक उदाहरण दिये जा सकते हैं। इनसे और उपरिलिखित विवेचन से यह स्पष्ट है कि आचार्य वाजपेयीजी भारतीय समीक्षा और यूरोपीय समीक्षा के द्विविध सिद्धांतों के बीच समन्वय और संतुलन का सधान करते रहे हैं और उन्हें एक साथ में अभिहित सफलता भी मिली है।

### आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी (१९०७)

हिंदी आलोचना के आधुनिक आधार-स्तम्भों में द्विवेदीजी का स्थान मूढ है। हस्ताक्षर भारतीय व्यापक एवं अतलस्पर्शी अध्ययन तथा सूक्ष्म-स्वस्थ विश्लेषणात्मक मनादृष्टि से मंडित इस तत्त्वामिनिवेशी समीक्षक की तुलना यदि पश्चिम के किसी मर्मज्ञ मध्यावी कृतधी से करनी हो तो सबसे पहले डब्ल्यू० पी० केर का स्मरण हो आता है। केर के समान द्विवेदीजी ने भी विपुल मध्य-युगीन साहित्य एवं तन्मयुगीन विचार धाराओं का सर्वांगीण और गभीर अनुशीलन किया है। केर के समान ही उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह अधिकारपूर्वक तथा भरपूर आत्मविश्वास के साथ, आजपूण भाषा शली में, लिखा है। केर की प्राज्ञ विषय विषयानुकूल शली जो कभी भी अतिशय बोधिल नहीं हानी, उसके अनेकानेक समीक्षात्मक निवेद्य में प्रतिबिम्बित है द्विवेदीजी का स्वस्थ सर्जीव एवं सुमस्कृत भाषा शली उनके 'हिंदी साहित्य की मूमिका, हमारी साहित्यिक समन्याएँ, विचार और वितक, सूर-साहित्य, बालिदास की लालित्य याजना' कभीर आदि ग्रन्थों में स्थापित है।

समग्रतः, द्विवेदीजी की समीक्षा अभिजात्यवादी है डा० नगेंद्र की समीक्षा की तरह यह न तो गमाटिक ('रसनीय तथा पुरअसर') है न वाजपेयीजी का समीक्षा की तरह समन्वयवादी। अभिजात समीक्षक की विचार सरणिद्या पर चलनवाले इस आलाचक के अनुसार साहित्य की मायनाएँ जीवन की मायनाओं से विच्छिन्न नहीं हानी।<sup>१</sup> अभिजात समीक्षा-मूल्या के पोषक-समर्थक

१ हजारीप्रसाद द्विवेदी, "साहित्य की नई मान्यताएँ", दृष्टिकोण, जून, १९५२, प० १७।

दृष्टव्य 'हजारीप्रसादजी एकदम बलासीकल विद्वान हैं।' डा० नगेंद्र, 'विचार और अनुभूति।



एलिफट<sup>१</sup> न बता है कि प्रत्यक्ष तब युग व अद्यतन व गाय तपी मायनाएँ भी धारिनी होती हैं और पूर्ति धायुनिक गमना धयन जतिन और वरिष्णुता है गयी धमिगति का पत्र नी टुन और वरिष्णुता हा हाता। द्विजत्री नी तद् परिगिनिया व गमीर तथा ध्यापन प्रमाय व मयदा धयन हैं और जान है कि जय मयुष्य तय धनुमय प्राण करता है ता जागतिर ध्यापन और मायपीय धाताग तथा विरतागा व मूल्य उमर मा म पट या व जान है। गाय ही व पातातय गमना व विरग्यागी समपित प्रमाय व प्रति मा जागता है और दम मयसत व प्रति एक ऐग टिजिनत का धयनत का मलयमश न है जा मयुनित तथा समयानकून हा। द्विजत्री का धमिजान गमीर धात्मनित न हातर परपरा और धनुजान का मा साता पग पाता है इमतिर वट वटता है गमा मन्तारा का मना दना वाधर्तित ही नहा हाता और माता नय सिरे म गृहीत मायनाएँ धाधी मना हा नहा हाता।<sup>२</sup>

गमीगगत मापा शती का दलि म मा द्विजत्री धमिजान मय्या व हा समथव टहरत है। नपे-नुने सटीय शय मे जसा भावामिष्यजन उनरी रचनाध्रा म दलिगत हाता है वसा धयन दुनम प्रतीत हाता है। वस्तुन उनरी मापा धयन परिमाजित और धगरजा शष्पा भावा स ययाशक्य विमुक्त है। द्विजत्री पाप के समान हाट भापट वाज धाट का प्रेषण कथमपि नहा करत प्रत्युन नवर सा बेल—एवगप्रसड को ही धादश बनावर चलत है। उनके मतानुमार साहित्य जीवन का यथावत ध्यापचित्र नही है कारण कलाटृति म बुद्ध मुचिनिन प्रयत्न हात है। कलावार जीवन के सकडा व्यापारा मे से बुद्ध का चुनता है और एक निश्चित उद्देश्य से उनकी योजना करता है।<sup>३</sup> पश्चिम व अनक कलाविग और सौन्दर्याशास्त्रिमा न यथाय जीवन का कलावार व लिए प्रयाण विदु मात्र माना है सपूण कला नही। रिपलिक म प्लटा ने कहा है कि कवि और चित्रकार सभी सष्टिक वस्तुध्रा की रचना कर सकत हैं उह कवन आईने का लेकर सभी दिशाध्रा म घुमान की आवश्यकता है।<sup>४</sup> शकमपियर के हेमलट

१ डी० ई० एस० मक्सवेल के अनुसार एलिफट आधुनिक जाभिजात्यवादी समीक्षक का एक ज्वलत उदाहरण उपस्थित करता है। दे० द पोयटी आव टो० एस० एलिफट (लदन), प० २४।

२ दलिक्वोन, जून, १९५२, प० १८।

३ उपरिवत, पृ० १८।

४ रिपलिक, ५९६, अनुवादक कानफोड (ययाक, १९५५), प० ३२५-३२६।

से प्लेटो के इस कथन की प्रतिध्वनि सुनी जा सकती है। इस नाटक में अभिनयनामा से हमलेट ने कहा है (अंक ३, दृश्य ०) कि अभिनय का उद्देश्य प्रकृति (जीवन) का यथावत प्रतिबिम्बन या आर है। द 'एण्ड आव ऐक्टिंग वाज एण्ड इज, टु हान्ड, ऐज इट वयर द मिरर अप टु नचर'। किन्तु सादयशास्त्री ऐसे विचार का समर्थन नहीं करते। किमी नींग्य वानाराप के यथातथ्य इतिवत्त अथवा नवनिबुए माचित्रक द्वारा लिय गए आलापचित्र ललित कला के नाम से अभिहित नहीं हो सकते। आदाग (माडन) का किमी न किमी प्रकार सुव्यवस्थित करना ही पना है उम अथवता प्रदान करनी पडती है और उमकी गेचकता की अल्पाधिक वडि करनी पडती है। यथाय जीवन, जसा मिलन<sup>१</sup> न निम्नलिखित पत्रिया में दिखाया है, सामान्यत नीरम एव विरूप हाता है

Imagine yourself putting your head in at the window of a strange house and listening to the conversation for three-quarters of an hour. There would be long silences people would go in and out without explanation there would be references to unknown Johns and Marys private, unintelligible jokes and even if the scene suddenly became intensely dramatic the cook would spoil it by putting her head into it and asking whether there were any orders for the butcher.<sup>२</sup>

इसमें सन्देह नहीं कि हमिख की लघुकथा 'द विलस और वान गॉग का चित्रान कालजयी चित्र 'द स्टारी नाइट' ललित कला-कृतिया हैं। इसमें न जीवन का अभिनय रूपावत हुआ है आर न प्रकृति का हू-ब-हू प्रतिबिम्बन। कलाकार जिस प्रकार व्यापार का चयन करता है 'मका एव' शब्दमूत प्रमाण चित्रकार सीजान पर लिखी गई एक ऐसी पुस्तक<sup>३</sup> में मिलता है जिसमें कलाकार के चित्रा-

१ ए० ए० मिलने, ईयर इन, ईयर आउट (न्यूयाक, १९५२)

२ उपरिबत, प० ७१।

३ Erle Loran Cezannes Composition (University of California Press 1947)

के साथ ही उस दुनिया का तिर भी समाजित है जिसे फत्तार ने, यामन म देता था ।

द्वितीयजी का धीर जीना के धार को स्पष्ट कर । हुए पढ़त है नि ' धान' से ताज उठ । म एत प्रार का धीरि ता पटुर होत है, त्रिनु नाचन का का मुद्ग विनिष्ठा गतिग का वेगा मुनिपातिन स्प हाति है जा उनम नियत्रण धीर सातान के—गात धीर तय क—प्राधान पर विनिष्ठा करति है धीर उमक द्वाग दगत क तित म उतान का मार करती है । गान्ता पद न मालीय गान्ताम्रिया न इग वात का अनुभव कर लिया था । <sup>१</sup> यी द्वितीयजी न भरामुनि द्वारा ताटय मगा क दा भागा म विभरत त्रिण जान का उन्नय लिया है धार बनाया है नि भरामुनि न उा स्त्रिया की विमूत विरचना की है जा ताटा म प्राण-मचार करती है । एम म्यता पर नचिनजा-जग धातावर पाश्चात्य साहित्य के उपाहरण दन । द्विवाजा धीर नचिनजी-जस समागता म यही साहित्य अतर है । त्रिनु इगता मय यह नहा नि द्वितीयजी न पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन नहा लिया है । पाश्चात्य साहित्य धीर मनाविधान की मधुताता प्रवृत्तिया स के मुपरिचित रह हैं धीर उटान अपनी समीभाभा म यथावसर उाती धार एगा निश भी लिया है जिमम उनका बहुलता धीर असाधारण परिपक्व गान चितन का बाध हाता है ।

### पाश्चात्य प्रभाव के सवध मे द्विधेदोजी के विचार

पाश्चात्य प्रभाव के सवध म प्राचाय हजारीप्रसाद द्वितीयजी न कहा है —

इसम बाई स्पेह नही नि देश विषय की सहजात सस्कृति म विश्वास रखकर हर धस्तु का पाश्चात्य प्रभाव स प्रभावित, अतएव गहित समझना उलझे दिमाग की ही बात है ।<sup>२</sup>

इस पाश्चात्य प्रभाव का ठान-ठीक जानकारी आवश्यक है । तभी हम अपने देश के आधुनिक मानस गठन को ना समन सकेगे धीर उस विकृत मानसिक प्रतिक्रिया का भी रहस्य समथ सकेगे जो हर नवीन साहित्यिक प्रयत्न का पाश्चात्य प्रभाव' कहकर गहित करार देती है धीर बराबर ही हमारे यहाँ का ब्रह्मास्र तानकर अपरिपक्व मस्तिष्क के बाल साहित्यका का

१ दृष्टिकोण, जून १९५२, प० १८ ।

२ उपरिबत, प० २१ ।

डराया करती है ।<sup>१</sup>

ऊपर इस बात की चर्चा की गयी है कि द्विवेदाजी पाश्चात्य सम्यता के प्रति सतुलित दृष्टिकोण को अपनाते की सलाह देते हैं। पश्चिम से प्रभावित सभी मायताएँ उनके लिए गहिँत नहीं हैं और न "हमारे यहाँ" के सभी साहित्यिक प्रयत्न इन विज्ञातीय मायताओं से प्रभावित ही। इसी प्रकार वे इस बात से भी सहमत नहीं हैं कि "हमारे यहाँ" की सभी वस्तुएँ उच्च काटि की तथा ग्राह्य हैं और पश्चिम की सभी वस्तुएँ ट्रेय तथा त्याज्य। उठाने पश्चिम के प्रति अपनी मनोदृष्टि का सुस्पष्ट शब्दा म व्यक्त किया है "भारतीय शास्त्रा के अध्ययन के लिए भी आवश्यक है कि हम आधुनिक वैज्ञानिक चिन् लेकर उसका अध्ययन करें। आधुनिकता का समयन करते हुए द्विवेदीजी न, ठीक ही, घोषित किया है कि नय युग की मनादृष्टि नयी ढाना चाहिए, मध्ययुगीन नहा 'मध्यकाल म जिम प्रकार आप्तवाक्यों के रूप म पुरान साहित्य का अध्ययन हुआ था, उमी रूप मे यदि हम आज भी करेंगे ता यह पुराना महान ज्ञान हमारी उतनी सहायता नहा कर सकेगा जितनी सहायता की उसस आशा की जा सक्ती है। वल्कि कमावना बाधक हा जायगा।"

१ उपरिखत।

२ उपरिखत, प० २२। इससे न तो यही ध्वनित होता है कि हमे पुराने ज्ञान की उपेक्षा करनी चाहिए और न हमारे इस निष्कष का ही खडन होता है कि द्विवेदीजी ड्राइडन और डा० जानसनके समान तत्वेत अभिजात समीक्षक हैं। यहा द्विवेदीजी का यह कथन द्रष्टव्य है "(पुरानी कायालोचना) परपरा का एकदम भुलाना अत्यत भयकर भूल है। मुझे यह ममज्ञ मे नहीं आता कि आधुनिक समालोचना पद्धति क्यो नहा पुराने अनुभवों से अपने को समझ कर सक्ती। नवीन परिस्थितियों के अनुसार पुराने अनुभवो का प्रयोग सक्न हितकर होगा—जीवन मे नी और साहित्य मे भी।" (विचार और चिन्तक, प० २५७) इन पदितियों से प्राचीन और आधुनिक साहित्य-मनीषियों के प्रति ड्राइडन के दृष्टिकोण का खयाल हो आता है। ड्राइडन घज्ञानिको की उस सम्या का सदस्य था जो "रायल सोसायटी" के नाम से ख्यात है और जा आधुनिकता का समयन करती थी। या तो प्राचीन आधुनिक के बिवाद मे ड्राइडन ने आधुनिको का ही साथ दिया, फिर भी यह भूलत आभिजात्यवादी था और काय कला विषयक उसकी बहुग मायताएँ प्राचीन साहित्य के अबलोकन-अध्ययन से उपलब्ध हुई थीं।

पश्चिम की वचारिक क्रातिया और साहित्यतिहास की अद्यतन प्रवृत्तिया से द्विवेदीजी कितना परिचित है इसका अनुमान उनके अनेकानेक तद्विषयक विवेचनो से किया जा सकता है। जिस निवघ का यहाँ विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है उसमें ही उहान कहा है

जिन वाता को आजकल इस देश में "पाश्चात्य प्रभाव" कहा जाता है व पश्चिमी देशों में भी बहुत पुरानी नहीं है। वहाँ के समाज में व बहुत सघन और कशमकश के वाद धीरे धीरे गहीत हुई है।

ऐसे निष्कप पाश्चात्य देशों के इतिहास के सामान्य अध्ययन अनुशीलन से प्राप्त नहीं हो सकता। इनके लिए श्रमपूर्वक किये गए अध्ययन व साय दीधवातीन चिंतन मनन का संयोग अत्यावश्यक है।

द्विवेदीजी का अरोचकी मत्सरहीन समीक्षक प्राप्त तथ्या की निरपेक्ष भाव से विश्लेषित तथा उनका सूक्ष्म परीक्षण करता है। इसी कारण उसके निवघा व घोर दुःखमनीय चिंतन मनन से उदभूत होने का बोध होता है। द्विवेदीजी कितना भी साहित्यिक मूल्य मायता या तथ्य का अपरिचित नहीं रहने देते और न अतक्य भाव से उन्हें ग्रहण ही करते हैं। उनके निवघा में इसी सहज चिंतन के फलस्वरूप उदभूत कसावट मिलती है और युगांतरकारी वचारिक क्रातियों के इतिहास का भी वे अत्यंत सक्षिप्त किंतु वाघगम्य ढंग से उपस्थित करने में समर्थ होते हैं। प्रस्तुत सदभ में उनकी निम्नलिखित पक्तियाँ ध्यातय हैं

सोलहवीं शताब्दी से ही इसकी भूमिका तयार हो रही थी। उस समय यूरोप में घम और कला का ही प्रभुत्व था, विज्ञान यद्यपि इन दोनों के प्रतिद्वंद्वी के रूप में ही उत्पन्न हुआ था, पर अठठारहवां शताब्दी के पहले वह सच्चा प्रतिद्वंद्वी नहीं बन सका। इस शताब्दी में प्रत्येक सुसंस्कृत व्यक्ति के चित्त पर इसका प्रभाव पड़ा और उन्नीसवां शताब्दी में विविध ऐतिहासिक कारणों व दबाव में वह सुविधाप्राप्त ढंग के हाथ से सरक कर साधारण जनता के हाथ में आ गया। उन्नीसवां शताब्दी के दूसरे चरण में अनेक मानविक और मानविक विज्ञान की शाखाओं का सुगम और समानांतर विकास बड़े ही महत्वपूर्ण ऐतिहासिक परिवर्तन और विचारगत उथल-पुथल का कारण बना।<sup>१</sup>

उपयुक्त पक्तियाँ में पाश्चात्य बनानिका और साहित्यकारों के नाम नहीं

१ उपरिचत, प० २३।

जिनाय गए, अंगरेजी शब्दा का आतिशय्य भी दमन को नहीं मिलता, फिर भी उन्हा प्रमविष्णुता तथा लेखक के प्रवाड बहुष्य का प्रनिफलित करने की क्षमता स्तुत्र है। तीन युगा के इतिहास का समय एव सशिप्त रूप में प्रस्तुत करने भी लेखक को भी दुर्लभ नहा हुआ और न उमन अपन पाठित्य का अनावश्यक प्रदर्शन हा किया। समवत लगनेड की भाति द्विवेदीजी भी कहते

भेजर दज मेडिसिन दा दाउ यन फॉर मय।

आल इज नाट गुड फॉर द न्पिरिट देट दगटम आम्बेय

(पीयस द प्लाउमन, पासस १)

मनुलिन, सरल एव परिमार्जित भाषा शली म ही गूढातिगूढ भावा का विनयपण धार अभिव्यजन उनका लक्ष्य रहा है। "समाप्ता म सतुलन के प्रशा" पर उहान स्वय विचार वितर किया है और कहा है कि सतुलित दष्टिवाण एजागी दष्टिवा की अतिवाप्तिता से विनिमुक्त और इन सबम पाया जानवाली सचाई पर आधारित समग्र दष्टि है। द्विवेदीजी की यहा समग्र दष्टि किसी भी पक्ष का आव-शयकता से अधिक महत्व नहीं देती और न किसी पक्ष की सचाई की उपेक्षा करती है। लेखक के 'मानवतावादी समाजशास्त्रीय दष्टिकोण'<sup>२</sup> से सयुक्त होन के कारण यह सस्कृति का शाशवत या एकशाय वस्तु नहीं मानती। द्विवेदीजी के अनुनार सस्कृति प्रगतिशील परिवतनशील और परपरा नरन्तय मे मुक्त है। सम्य गिहित जगत् मे प्रचलित काई भी विचार-पद्धति आद्यत सदाप नहा है। इस प्रकार समग्र मानवतावादी दष्टि से कम से कम दो सुपरिणाम अत्यत स्पष्ट दोबने हैं एक ता द्विवेदीजी मानवमात्र की एकता म विश्वास करन के कारण पाश्चात्य सस्कृति तथा पीरार्त्य या भारतय सस्कृति के भेद का कृत्रिम मानत है<sup>३</sup> आर दूसर अपनी समग्र दष्टि के कारण एफ० आर० सीविम, एल० सी० वाइटम, टी० एम० एनियट की तरह उहान आलाचना के क्षेत्र म इतिहास, धमविज्ञान, पुगणविज्ञान, प्राच्यविद्या, जीवनविज्ञान मनाविज्ञान, प्रजननशास्त्र, नृतत्व-शास्त्र, पुरानतत्वशास्त्र नीतिशास्त्र आदि से भरपूर लाभ उठाया है।<sup>४</sup> 'भारत

१ दे० हजारीप्रसाद द्विवेदी, विचार और वितक (इलाहाबाद, १९६१), पृ० २५३।

२ रामेश्वरलाल खडेलवाल और सुरेशचन्द्र गुप्त (सपा०), 'हिंदी-आलोचना के आधार स्तम्भ' (दिल्ली, १९६६), पृ० १६१।

३ उपरिवत, पृ० १६३।

४ उपरिवत, पृ० १६४।

We expect a literary education to expand their range of human awareness and sympathy, to enlarge their imagination beyond the limits of their own class and country to show them that our problems and obsessions are part of a larger pattern of human experience and assume a new meaning within the larger pattern.<sup>1</sup>

इयन लिस्टर न द्विवेनीजी के भावा को इन शब्दों में व्यक्त किया है

In schools as in the world ours is an era with a concern for majorities and it is the task of the humanities to educate those majorities in humanitarianism tolerance and international understanding.<sup>2</sup>

स्पष्ट है कि द्विवेनीजी एक ऐसे मानवतावादी समीक्षक हैं जिसके लिए सभी प्रकार की, सभी क्षेत्रों की सर्वांगताएँ व्याप्य हैं। ऐसे उदार मानवतावादी समीक्षक से भरपूर आलोचना की आशा बचमपि नहीं करनी चाहिए।

एसा प्रतीत होता है कि द्विवेनीजी पाश्चात्य साहित्य से उतना प्रभावित नहीं हैं जितना पाश्चात्य विचारधाराओं और दशन चिंतन से। वे टाविन की युगांतरकारी उपपत्तियाँ और स्थापनाओं तथा शिलर स्पेंसर माशत तम फील्ड<sup>3</sup> प्रमति विचारकों के कला सिस्त्ता-संबंधी विचारों से पूर्णतया अवगत हैं। पश्चिम (और अब पूरव) में जैसे प्रमाणात्मक नराशयपूर्ण बजर ऊमर काव्य का प्रणयन हुआ है, उससे भी ब अच्यौ तरह परिचित है। रिबुस (टवायनरा तथा स्वेग्लर-जस) निराशावादियों की काटि में अपने को ठीक ही, नही रखन। इसलिए वे जानते हैं कि मानवता की आत्मा उत्पुद्ध की जा सकती है। उन्हें विश्वास है कि यदि साहित्य चाहे तो मनुष्य की पशु साम्राज्य आत्मि मना बतिया को परिष्कृत कर सकता है। आभिजात्यवादी दष्टिकाण मनुष्य की साम्राज्य का समयन करता है इसलिए द्विवेनीजी कहते हैं कि मनुष्य में पशु-साम्राज्य

१ Graham Hough *Crisis in Literary Education* J H Plumb (ed.) *Crisis in the Humanities* (Penguin Books 1964) P 107

२ Ian Lister *The Teaching of the Humanities in the Schools* Ibid P 168

३ दे० आलोचना, अक्टू १९६४ (सिस्त्ता का स्वल्प—छंद), पृ० ११।

आदिम मनोवृत्तियाँ जीवित हैं। उनके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।<sup>१</sup> व पाश्चात्य साहित्य की प्रमुख भावधारणा और प्रवृत्तियों के विवेचन में अपूर्व आत्म विव्धान और दृष्टि की सुस्पष्टता का परिचय देते हैं।

साहित्य के नये मूल्य<sup>२</sup> में उहाने अंगरेजी साहित्य की रोमांटिक भावधारणा का विशेषताओं का विशदीकरण किया है किन्तु विवेचन अत्यंत मामांय स्तर पर हुआ है, न दृष्टांत प्रस्तुत किये गए हैं और न विवेचन का प्रामाणिक समीक्षा की भूमिका पर अवस्थापित करने का प्रयास ही किया गया है। रोमांटिक और क्लासिकल का पाथक्य कुछ वैसा ही है, जैसे टी० इ० ह्यूम का एनड्रिपयक वह निबंध या 'स्पेक्युलेशन' में संकलित है। दाना में अंतर इतना ही है कि जहाँ द्विदीजी का विवेचन ऐतिहासिक घटनाओं—'नये विमान द्वारा उपस्थापित परिस्थितियाँ—के आलाक में हुआ है, वहाँ ह्यूम के विवेचन में बाह्य परिस्थितियों का विश्लेषण नहीं हुआ है। चूंकि साहित्य जन-जीवन से अनुप्राणित होता है और पोष्य सामग्री ग्रहण करता है साहित्यिक प्रवृत्तियों का ऐतिहासिक घटनाओं और वचारिक क्रान्तियों से विच्छिन्न नहीं किया जा सकता। इसलिए द्विदीजी साहित्यिक प्रवृत्तियों के प्रसव का कारण साहित्य में नहीं बरन् 'इंग्लैंड की बाह्य परिस्थितियों' में ढूँढते हैं।

यों तो द्विदीजी अपने मनोगत भावों को वाणी देते समय औचित्य का मद्देन खयाल रखते हैं और कल्पना तथा आवेगों के अतिरिक्त उद्दाम प्रवाह में बह नहीं जाते फिर भी जहाँ वे आतंक देखते हैं वहाँ उनकी माया शक्ती अत्यंत मुखर और विरोध से आपूरित हो उठती है। लगता है, क्षणभर के लिए उस सतुलन का विलोप हो गया है जिसकी प्रशंसा ऊपर की जा चुकी है। हिंदी उपन्यासों में यथायवाद के आतंक<sup>३</sup> से ध्रुव लेखक उबल पड़ता है "मुश्किल से दो या तीन पान ऐसे मिले हैं जिनके मानसिक सघष हृदय पर कुछ छाप छोड़ गए हैं, परंतु उन पानों में भारतीय सहानुभूति जगा देने की शक्ति तो मिली है पर एंमा वीय या उल्लाह नहीं दिखता है जो सघषों में विजयी होने की प्रेरणा दे सके और जो जसा-कुछ मिल गया है, उस वैसा-कुछ मिलना चाहिए था में बदला देने की उमंग में मर मिटने का उल्लास पैदा कर सके।<sup>४</sup> लेखक के सचित क्षोभ

१ विचार और वितर्क, पृ० ६०।

२ उपरिबत, पृ० ७९-८०।

३ उपरिबत, पृ० १०२-१०८।

४ उपरिबत, पृ० १०२।



की अभिव्यक्ति एम हा लच्छनार् मिश्रित वाक्य से समझ था। इसलिए यहाँ एक नमनीय लत्रे वाक्य की रचना हुई है। पश्चिम की महत्त्वपूर्ण साहित्यिक प्रवृत्तियाँ और प्रेरणाभा म शापक हा कोई एगा हा जिसस द्विवेदीजा परिचित नहीं हैं। "हिंदी उपभासा म यथायथाद का आतप शापक निरघ म उहान पश्चिमा प्रवृत्तिवाद और यथायथा" का तथा 'तत विम्' शापक निरघ म मानवतावाद (सू मनिज्म) का प्रामाणिक तथ्य-परक विवरण उपस्थित किया है।

ऊपर जिन निरघा का विश्लेषण हुआ है, व द्विवेदीजी की शीघ्रतर रचनाएँ है। उनकी आरम्भिक रचनाआ म स्वभावतः, वसा परिपक्व विचार प्रितक और सतुला नहीं मिलता जसा उनकी परवर्ती शीघ्र रचनाआ म देखा जाता है। 'हमारी साहित्यिक समस्याएँ नामक ग्रथ के पहले निबध' म उहान पश्चिम के, विशेषतः अँगरेजी भाषा साहित्य के, आत्यंतिक प्रभाव परक्षाम प्रकट किया है। अँगरेजी भाषा के कारण ही ससृृत का सर्वाधिकार छिन गया है। हमारी सबसे बडी पराजय इसी बात से चोतित होनी है कि भारतीय विद्याआ का जमी विवेचना अँगरेजी भाषा म है उसकी आधी चर्चा का भी दावा काई भारतीय भाषा नहीं कर सकती। स्वाधीनता के पूव लिखे गए इस निबध म द्विवेदीजा न यह भी कहा है कि राजनीतिक सत्ता का छिन जाना उतना अपमानजनक नहीं है जितना तब दशन अध्ययन और भाषा का छिन जाना।

जिस प्रकार उनकी परवर्ती रचनाआ म परिवर्तन का आतक देखा जाता है उसी प्रकार उनकी आरम्भिक रचनाआ म भी परिवर्तन के प्रति प्रभूत सजगता मिनती है। वस्तुतः परिवर्तन के प्रति ऐसी जागरूक मनोदष्टि उनके निबध का विचारगत विराट एकता प्रदान करती है और उह परस्पर सूचित प्रथित करती है। उदाहरणार्थ

विचार और वितक

'वस्तुतः आज भारतवप का चित्र भी ससार के अन्य देशो की तरह एक महा परिवर्तन की ऊर्मि प्रत्यूमि से आदोलित हो उठा है।'

(पृ० १८)

यह ठीक है कि जमाना बदल गया है। (पृ० ५५)

'बदलती हुई परिस्थितियाँ मे मानव चित्र को कुछ नया रूप दिया है।' (पृ० ५८)

१ "ससृृत और हिंदी"।

‘विज्ञान के प्रभावशाली रूप धारण करने के बाद ब्रह्मण मनुष्य की साधन विचारन की प्रणाली में परिवर्तन होत गए हैं।’ (प० १०५)

हमारी साहित्यिक समस्याएँ

“अब दुनिया बदल गई है।” (प० १०)

‘अब मशीना के उत्पात न दुनिया बदल दी है।’ (प० २२)

‘दुनिया बड़ा तेजी से बदल रही है और अगर हम अभी से सावधान नहीं हो जाते तो परिवर्तन का रथ घघर बुरी तरह से हमारे सुख-स्वप्ना और बुरा दुःस्वप्ना को एक ही साथ पीस डालेगा।’ (प० ५०)

साहित्य में बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहा है। (प० १७४)

हिंदी साहित्य की भूमिका

साहित्य के उपरिलिखित वाह्यरूप में जो परिवर्तन हुआ है वह उसके आन्तरिक रूप का देखते हुए बहुत मामूली है। साहित्य का स्फिस्ट ही बदल गया है। (प० १३३)

‘हिंदी के साहित्यिक भी गतिशील हैं। (प० १३५)

सिक्तका का स्वरूप (आलोचना, २८ २ १६६३)

ज्ञान के आरंभ में अत तक उच्चारण करने में समय लगता है। उसीलिए वह काल के आग्राम में व्यक्त होता है। वह गतिशील है। कविता का यही आग्राम है—काल। (प० ६)

साहित्य का मूल शीपक निबंध में द्विविधीय न गति पर निम्नलिखित भावोंगार व्यक्त किया है “गति तो जट पिण्ड में भी होती है। यह घरित्री खड न जान कब से गतिशील है लेकिन जडता उसरी गति में बाधा पहुँचाती है। जट पिंड धूम फिक्कर एक ही स्थान पर आ जाता है चेतन आगे निकल जाता है। गति के साथ आगे बढ़ना भी आवश्यक है। इसी को ‘प्रगति’ कहते हैं।<sup>१</sup> काल गति और परिवर्तन के प्रति ऐसी उत्कट चेतना आधुनिक विज्ञान की दन है। पश्चिम में काल चेतना का आधिक्य (और आतक) एलियट

१ हजारोप्रसाद द्विवेदी और श्रीकृष्ण लाल (सकलनकर्ता) निबंध-संग्रह (इलाहाबाद, १९५६), प० १८४।



(दिमम्बर) आन्तर्नून' ने तथा उसके तीमर गड का आरम्भ 'दि ऑक्टोपर नाइट वम्म डाउन' से होना है। "प्रील्यूडस के पहले गड का आरम्भ जाडे की मध्या से होना है और दूसरे का आरम्भ इन पवित्रों से "द मोनिंग वम्म टु वा-ग-मनेम ऑक्टो स्टेट म्मन्म भाव बीपर। 'रपसडी ऑन ए बिण्डी नाट' का आरम्भ 'बारह बजे' (टवेल्स ओ क्लाक) ने हाता है और इसके भिन्न भिन्न छंद इस प्रकार आरम्भ होते हैं

हाफ -पाम्ट वन"

'हाफ पास टू'

"हाफ पाम्ट थ्री'

'द लम्प मेड

फार धा वनाफ'

इन प्रकार यह सिद्ध होना है कि मत्रहवी शती के मेटाफिजिकल कविता ने प्रभावित एलियट न अपने इही प्राग्भूत कविता की तरह काल के प्रति कमी हा जागृकता प्रदर्शन की है जसी हिंदी म द्विवेदीजी ने। वैज्ञानिक अनुसंधाना से जीवन म जा कमव्यस्तता, चंचलता और त्वरा आ गई है उसके प्रभाव से ही ये आधुनिक और सवदनशील साहित्यकार सुधी-मचन, समय निरीक्षक (टाईम कीपर) हो गए हैं। साथ ही यह भी स्मरणाय है कि इनके जीवनकाल में ही विश्व ने दा-दा महायुद्ध देखे, विनाश और विघटन का शक्तियों का विश्वव्यापी प्रभुत्व देखा। जिस युग म जीवन मरण का बोर्ड विशेष महत्त्व न रह गया हा उस युग का मशयशील कवि यदि उत्कट काल चेतना से अभिमूत रह ता म्ममें आश्चय नहीं।

द्विवेदीजी के निबधा म पायी जानेवाली दूसरी विचार धारा, जो उनके निबधा की परम्पर संप्रथित करती है, उनके मानवतावाद से सबद्ध है। उनके अधिकांश निबधा की टैफ है "इस युग का मुख्य उद्देश्य मनुष्य है।" इसमें अतर्भूत भाव की अभि-यक्ति भिन्न भिन्न रूपा म अनेकत्र हुई है, यथा —

'साहित्य की सबसे बड़ी समस्या मानव जीवन है। (विचार और कितर, प० ६५)

'साहित्य की सबसे बड़ी समस्या मानव जीवन है। २ (हमारी साहित्यिक समस्याएँ, प० ८१)

१ हमारी साहित्यिक समस्याएँ, प० १७।

२ "साहित्य निर्माण का लक्ष्य" शीषक निबध से उद्धृत। इस निबध की

'मनुष्य ही यही बीज है। माया उगी की गया बंदिग है। (हमारी साहित्यिक समस्याएँ, पृ० ८८)

'यह मनुष्य जीवन का, एकरूप जीवन का, यही वाज्य नाग नाग म मया को प्रतागित करता है। (साहित्य का माग विषय-नाष्ट, पृ० १७८)

मैं साहित्य का मनुष्य का शक्ति म शक्त का फलता हूँ।"  
(अगोक क फूल प० १७८)१

इन भावधारों क साथ जित कुछ हूँ ता यद्रेण रगत और खीद्रनाप ठानुर जम मनीषिया १ रूपायित किया है द्विवर्तीजी क उा मनिजात दृष्टिकोण का, निमवा उल्लेग ऊपर किया जा चुका है काई सामजस्य नहीं दागगा। द्विवर्तीजी, रमा और शोली की तरह मनुष्य का अनुननीय शक्ति पर विश्वास रगत हैं<sup>२</sup> और उमी विश्वास के बल पर यह धाशा करत हैं कि हम अपनी माया और साहित्य के द्वारा इन विषय परिस्थिति का अवश्य बदल दग। मानिजात्यवाणी साहित्य-

---

यह पवित्र "नयी समस्याएँ" शीपक एक अय विषय मे भी हू-यह मिलती है।

१ अगोक के फूल (दिल्ली, १९४८) का यह विषय भी दृष्टव्य है जिससे यह पवित्र उद्धत है। विषय का शीपक है "मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है।"

२ साहित्य निर्माण का लक्ष्य। दे० हमारी साहित्यिक समस्याएँ, प० ९९। तुलना कीजिये —

There was and here I get my definition of romanticism  
They had been taught by Rousseau that man was by nature good that it was only bad laws and customs that had suppressed him Remove all these and the infinite possibilities of man would have a chance Here is the root of all romanticism that man the individual is an infinite reservoir of possibilities One can define the classical quite clearly as the exact opposite to this Man is an extraordinarily fixed and limited animal whose nature is absolutely constant T E Hulme *Speculations* ( London, 1960), p 116

कार मनुष्य की सीमाओं से अग्रगत और उनके प्रति भयग रहता है। वस्तुतः द्विवेदीजी शब्द के उमी अर्थ में अभिजात्यवादी हैं जिन्हें अर्थ में ह्यूम ने ग्रेक्स-पियर को अभिजात्यवादी कहा है। दाना गतिशील, ऊजस्वी अभिजात्यवादी हैं। नीम्मे के अनुसार अभिजातवाद के दो प्रकार हैं—स्थैतिक (स्टैटिक) तथा गत्यात्मक (डाइनेमिक)। द्विवेदीजी गतिशील अभिजात्यवादी लेखक हैं।

द्विवेदीजी की रचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने बट्रेण्ट रसेल के अतिरिक्त वल्डवर्थ, जेला स्पिनोज़ा, माक्स आदि का तथा पश्चिम की वचनिक क्रांतियों के इतिहास तब तक उनकी प्रेरक शक्तियों का गभीर अध्ययन किया है उनमें यथावश्यक भाव विचार ग्रहण किये हैं। उन्होंने प्लेटो के 'आयलाग्न' की तरह सवाद लिखे हैं और डाइउन के 'एसे ऑन इन्मैटिक पायजा' के आदर्श पर 'रीतिकव्य' और 'इतिहास का सत्य' शीर्षक आलोचनात्मक सवादों की रचना की है।

तीसरा भावधारा जो द्विवेदीजी के निरर्थों का एक महत्त्वपूर्ण स्थापत्य प्रदान करती है पाश्चात्य प्रभाव और लेखक की सतुलित मनोदृष्टि से संबद्ध है। द्विवेदीजी न बार बार स्वीकार किया है कि (१) प्रभाव ग्रहण अपन में कोई बुरी चीज़ ( लज्जा की बात ) नहीं है। भारतवर्ष ने यदि यूरोपीय जीवन में प्राप्त ऐश्वर्य के आलाप का उमकी आभा को ग्रहण किया है तो इससे उसका — हमारा—महत्त्व कम नहीं हो जाता यूरोपीय विचारधारा में प्रभावित होने मान स कोई चीज़ अस्पृश्य नहीं हो जाती। 'आज हम साहित्य की जिस टग में चला करत हैं वह पुराने भारतीय ढंग के अनुरूप न होकर यूरोप के आधुनिक ढंग के अनुरूप है। हमारे समाचार पत्र और साहित्यिक पत्रिकाएँ, यूरोपियन प्रभाव हैं हमारी विश्वन्यात्मक आलोचना शैली यूरोपीय प्रभाव है, हमारा कामा फुलस्वाप तक में यूरोपियन प्रभाव है। प्रभाव ता मनुष्य पर तब तक पड़ेगा जब तक उसमें जीवन है'। (२) किन्तु अघानुकरणहीनता का परिणाम है बुरी चीज़ है। विवेक का ताक पर गमक प्रभाव ग्रहण करना मानसिक दय और सामूहिक दारिद्र्य का परिचय देना है।<sup>१</sup> (३) भारतीय जनता के चित्त में हीनता-प्रति उत्पन्न हो गई है। दान बटारने की हमारी 'हास्यास्पद प्रवृत्ति' उग्र रूप धारण कर चुका है और हमारी मानसिक दासता की परिचायिका है। इसी प्रकार बुद्धि भी भारतीय हैं जो अंगरेजी शासन के निकल जाने के कारण

१ "साहित्य का मर्म", दे० निबंध-संग्रह, पृ० १८९।

२ उपरिबत, पृ० १९०।

अपने को अनाथ और अरक्षित भाते हैं। इसलिए द्विवेदीजी न अघानुकरण के पक्ष में हैं और न अँगरेजी प्रभावों के अबाधुध निष्कासन के पक्ष में। इन का चरम अता से वचन का प्रयत्न हाना चाहिए।<sup>१</sup> द्विवेदीजी का समाक्षा इन का अतो के मध्य से निकलती हुई 'अबाध भाव' से गतिमान रहती है।

साहित्य सहचर' (१८६५) में सगहीत निम्न उपरिलिखित निष्कर्षों का समर्थित करते हैं उह प्रामाणिकता प्रदान करते हैं। द्विवेदीजी अपने इस विचार की पुष्टि कि साहित्य और मानव-जीवन में अयो-याश्रय सवध है और दाना एक दूसरे से सजीवन शक्ति ग्रहण करते हैं, 'एक पश्चिमी समालोचक के इस कथन से करते हैं कि भाषा के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति का नाम ही साहित्य है।' यह पश्चिमी समालोचक कौन है? द्विवेदीजी इस प्रश्न का उत्तर नहीं देते। यह डि वानाल्ड भी हो सकता है और टेन भी। टामस वाटन न भी जा अँगरेजी कविता का पहला सच्चा इतिहास लेखक है कहा था कि युग की विशेषताओं का यथाथ रूपान्तर और आचार विचार रहते रहते का शब्दमूल अभिलेखन साहित्य का विशिष्ट गुण रहा है। आधुनिक पाठकों की विदेशी समाज-संघी धारणाएँ सिक्लेयर लूइस गाल्सवर्दी वाल्जाक और तुगनव-जस औप-यासिका के अध्ययन से निर्मित होती हैं। यदि सामाजिक अभिलेख के रूप में साहित्य का उपयोग किया जाय तो उससे सामाजिक इतिहास का कुछ न कुछ पान अवश्य हो सकता है। चासर और लगलड की रचनाओं से चौदहवीं शताब्दी के आगत समाज का परिचय होता है। चासर विरचित 'कटरबरी टेल्स' के प्रालाग के सत्रह में शुरू से ही यह धारणा रही है कि इसमें चित्रित यानी समाज के निम्न निम्न वर्गों का सम्यक प्रतिनिधित्व करते हैं। मेरी वाटन और 'विण्डसर' से वेन जानसन के अनेकानेक नाटकों से तथा टामस टिलानी का कृतियाँ स एलिजाबेथयुगीन मध्यवर्गीय अँगरेजी के आचार विचार का परिचय मिलता है। इसी प्रकार ऐडिसन फील्डिंग और स्मॉलेट अठारहवीं शताब्दी के नय दुजुआ का जन आस्टिन के उपन्यास उन्नीसवीं शताब्दी के देहानी बुलाना और पामना के जीवन का ट्रोडोप, धकर और डिक्सन त्रिकटारियन युग का तथा एनियट आन्द मेक्नीम आदि पवि वीमवा शती के जीवन और समाज का प्रतिबिम्ब करते हैं। इसी प्रकार मिमेज स्टा और हरिल्ल स रकर फगल तथा स्टाटनेक तर के औप-यासिका का रचनाओं से अमराका जीवन का परिचय

१ साहित्य का मम दे० निम्न-सग्रह प० १९१।

२ 'साहित्य-साहचर' (१९६५) प० ३।





मे जानवारी प्राप्त कर लेने से हम अनव सुविधाएँ मिल जाती हैं।”

डा० लक्ष्मीनारायण सुधांगु (१९०६-)

डा० सुधाशु हिंदी के उन सद्भावित आलापका मे है जिनमे अपूव अध्यायन शीलता गभीर मान अनुशीलन से उपलब्ध गान का धात्ममान करने की प्रतिभा और भावा की सुगमातिसूग्म धीचिया का ज्ञानमद परन की क्षमता दीत पडती है। एतदथ, उहाग पाश्चात्य साहित्य से मनानुबल विचार सिद्धात लवर भी उह अवितर्कित एव अविवल रूप से व्यक्त नहा गया और न उन पर अपन व्यक्तित्व का चिह्न छोडे जिना ही प्रवाश म आने गिया। जहाँ व मनोविज्ञान एव कला विषयक पाश्चात्य सिद्धाता या विवेचन करत ह वहाँ भी उका ध्यान अपनी भाषा और विचार की सांस्कृतिक विशेषता की ओर रहता है। दूसरी स्मरणीय बात यह है कि सुधाशुजी का साहित्यिक व्यक्तित्व मदय विकासशाल एव गत्यात्मक रहा है, इसलिए उनमे जहाँ अपनी मौलिक शक्ति के लिए स्थान है वहाँ दूसरा का शक्ति को लवर आगे वगन की क्षमता भी है।<sup>१</sup> इसी प्रकार यह भी ध्यातव्य है कि कतिपय अतिश्रद्धाव्यग्र समीक्षका के विपरीत व हिन्दी साहित्य को पाश्चात्य प्रभाव से अस्पष्ट नहीं मानत और न प्रभावित साहित्य का हम समजते है। उनके विचारानुसार 'आधुनिक हिन्दी-काय पर उन सभी भाषाभा का प्रभाव पडा है, जिनसे हिन्दी का किसी न किसी तरह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सवध रहा है। यह प्रभाव साहित्य के लिए स्वास्थ्य वडव है।<sup>२</sup> ऐसे विचारा के समथक सुधी आलोचक प्रभाव के प्रति अत्यत उदार हाने है और उनका जन प्रभविष्णु साहित्य भिन्न भिन्न विचार सरणियो एव भिन्न भिन्न अयदशीय पयस्वितिया का सयोग स्थल होता है।

'काय म अभिव्यजनावाद की प्रथम आवृत्ति की भूमिका म डाक्टर साहव ने स्वीकार किया है कि यद्यपि ग्रथ प्रवाशन की प्रेरणा उह आचार्य रामचद्र शुक्ल से मिली थी फिर भी ग्रथ की रचना म उहान अनेकानेक ग्रथा से सहायता ली है। इन ग्रथा म हिन्दी और मन्वृत के ही ग्रथ नहीं ह अगरजी के भा है। उक्त ग्रथ के प्रथम अध्याय म उहान यह भी कहा है कि अभिव्यजनावाद पाश्चात्य साहित्य जगत की उपज है किना भारतीय साहित्य शास्त्र के सिद्धात से प्सका

१ लक्ष्मीनारायण सुधाशु, काय मे अभिव्यजनावाद (पटना, स० २०१६), प्रथम आवृत्ति की भूमिका।

२ उपरिखत।

पूर-पूर मेल नहीं है। ध्वनि और वक्राक्ति से इसकी घोड़ी-नी समता है, किंतु यह समता स्वतंत्र रूप में आई है।<sup>१</sup> यहाँ अन्तिम वाक्यांश ध्यातव्य है। हो सकता है, कुछ लोग ध्वनि और वक्रोक्ति से अभिव्यजनावाद को ईपत साम्य को देखकर यह कहें कि या तो ध्वनि और वक्राक्ति-सम्प्रदायों पर इस पाश्चात्य मतवाद का प्रभाव पड़ा है या अभिव्यजनावाद ध्वनि और वक्रोक्तिवाद से प्रभावित है। ऐसे दिग्भ्रमित प्रमानाम्रा को यह जानना चाहिए कि ध्वनि और वक्रोक्ति में सबद्ध भारतीय सिद्धांत अत्यंत प्राचीन हैं और 'अभिव्यजनावाद अभी कल की बात है।' यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि हिंदी काव्य जगत पर ब्रौचे के अभिव्यजनावाद की छाया सबथा विशुद्ध नहीं है। इस पर भारतीय वादमय का संस्कार और इसी का प्रभाव है। भारतीय साहित्यिक परंपराओं की स्पष्टताय गार्व-गरिमा के प्रति सतत जागरूक समीक्षक यह जानने का प्रस्तुत नहीं है कि पाश्चात्य परंपराएँ भी उनकी ही बरिष्ठ और संपन्न हैं जितनी भारतीय। कम-से-कम रम और अलंकार के क्षेत्र में भारतीय साहित्य शास्त्र की समता विश्व का कोई भी साहित्य नहीं कर सकता। मुधागुजी का स्वत्वप्रतिपादन बड़ा ही सावधिक एवं परिमित है 'रस और अलंकार का जितना सूक्ष्म निरीक्षण हमारे साहित्य में है उतना यूरोपीय साहित्य में कहा मिलता है।'<sup>२</sup>

अभिव्यजनावाद की व्याख्या प्रस्तुत करने के पूर्व मुधागुजी भारतीय काव्य-शास्त्र का विशद सारगम परिचय देते हैं। अभिव्यजनावाद की व्याख्या के लिए उचित परिश्रेय का निर्माण करते हैं और साथ ही प्रमाणा के मन में अपने इस कथन की प्रामाणिकता में सदेह रहने नहीं देते कि भारत की काव्यशास्त्रीय परंपरा अत्यंत पुरातन एवं गरिमामयी रही है। मुधागुजी के विवेचन में अपूर्व आज्ञा और वक्रत्व मिलता है पर साथ ही इससे इस बात की प्रतीति भी हा जाती है कि भारत में प्राचीन साहित्य मनीषियों ने काव्य के समस्त अगा-उपागा की मुष्टता के लिए भिन्न-भिन्न सिद्धांतों का प्रतिपादन और एतद्विषयक सूक्ष्मांतिसूक्ष्म विषया पर भी दृक्पात किया था। उनके काव्य-सौन्दर्य-परिदान के समक्ष पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सूक्ष्मताय विषय भी अत्यंत स्थूल और बालमुत्रम दागत है।

उनके ममिका के पश्चात् पष्ठ एवनीत (चतुर्थ संस्करण) से काव्य में

१ लक्ष्मीनारायण मुधागु काव्य में अभिव्यजनावाद (पटना, स० २०१६), प्रथम आवृत्ति का भूमिका, प० १।

२ उपरिच्यत।

अभिव्यजनावाद के तारतमिक पुनराख्यान का धारम होता है। सवप्रथम ब्राचे के प्रथम अध्याय की अतवस्तु का सक्षिप्त विवचन है। मुद्यागुजी ब्राचे के विचार का वडे ही सरल ढग से प्रस्तुत करत हैं यया—

मुद्यागुजी  
(काव्य मे अभिव्यजनावाद)

Croce  
(Aesthetic)

१—(पृष्ठ ३२) अभिव्यजनावाद क प्रवक्त ब्रोचे के अनुसार समस्त मानव पान दो खडा म विभवन किए जा सवते है—एक कल्पना जनित और दूसरा तव-जनित। पहल सड क पान का आघार कल्पना है आर दूसरे का विचार। कल्पना से हम जगत क नाना रूपा और क्रियाआ क उन अभावा का जिह वे हमारी पानद्रिया की सहायता से निरतर हमारे मस्तिष्क पर डालत रहत है एक विशिष्ट भावा के अनुकूल विव अपने अतकरण म उपस्थित करत है।

२—(प० ३८) प्राय सव काव्या मे सहजानुभूति आर विचार मिले हुए रहत है। भेद व्तना ही है कि जो विचार इस प्रकार सहजानुभूति म आकर मिलते हैं उनका अपनी स्वतत्र सत्ता का पूणत परित्याग कर उसका ही अग बनकर रहना पडता है तिर तडुल की तरह नहा दूध पानी की भांनि मिलकर। जा विचार कभी पयक सत्तावाले य उनका सहजानुभूति का एक तत्व मात्र बन जाना पडता है। दष्टात क लिए क्विसा नाटक के एक पात्र के मुह से निकला

१ (Page 1) Knowledge has two forms it is either *intuitive knowledge* or *logical knowledge* obtained through the *imagination* or knowledge obtained through the *intellect* knowledge of the individual or knowledge of the universal of *individual things* or of the *relations* between them it is in fact productive either of images or of *concepts*

(p 2) Those concepts which are found mingled and fused with the intuitions are no longer concepts in so far as they are really mingled and fused for they have lost all independence and autonomy They have been concepts but have now become simple elements of intuition The philosophical maxims placed in the mouth of a personage of tragedy or comedy perform there

द्वारा सिद्धात या वचन वास्तव म किमी  
निष्ठात का निरूपण नहीं करता,  
प्रयुत उस वचा से उस पात्र के  
व्यक्तिगत चरित्र-द्योतन का ही काय  
हाना है ।

३—(प० ४०) महजानुभूति या सह-  
जापल य जान व्यक्ति की अतव तिया  
पर निर्भर करता है । उसके लिए किमी  
दूसरे व्यक्ति की सहायता अशेषित नहीं।  
दूसरे की आँखें उसे देख नहीं सकती  
अपन अत चक्षु से ही उसके स्वरूप  
का वाच किया जा सकता है । महजा  
नुभूति बौद्धिक ज्ञान से स्वतंत्र है । यह  
संभव है कि कुछ सहजानुभूतिया म  
तत्र सिद्ध ज्ञान अतभूत रहे, किंतु ऐमा  
बहुत-सी सहजानुभूतिया ह जिनम  
बौद्धिक अतभावना व समिपण की  
अनिवार्यता लक्षित नहीं होती। ज  
काइ कलाकार ज्योत्स्ना घबलित रात्रि  
की सुपमा से विमुग्ध होता है, हरी  
भरी पवतश्रेणिया पर चलते फिरत  
मध-खडो का देखकर ज उसका  
मन मयूर मत्त होकर नाच उठता है  
विहग की तान सुनकर जब उसके  
हृदय की रागिणी विकल हो उठती  
है, तब ऐसी सहजानुभूतिया मे बौद्धिक  
या तत्र सिद्ध ज्ञान की छाया भी त्हा  
नलकती ।

४—(प० ५०) कुछ लोग कहा करत  
ह कि हमार पास सहजानुभूतिया ता  
बहुत हैं, पर हम उह अक्लि नहीं

the function not of concepts,  
but of characteristics of such  
personage

{ p 2) Now, the first point  
to be firmly fixed in the mind  
is that intuitive knowledge has  
no need of a master nor to  
lean upon any one she does  
not need to borrow the eyes  
of others for she has excellent  
eyes of her own Doubtless  
it is possible to find concepts  
mingled with intuitions But  
in many other intuition, there  
is no trace of such a mixture  
which proves that it is not  
necessary The impression of  
a moonlight scene by a painter  
the outline of a country drawn  
by a cartographer, a musical  
motive tender or energetic the  
words of a sighing lyric or  
those with which we ask, com  
mand and lament in ordinary  
life may well all be intuitive  
facts without a shadow of  
intellectual relation

{ p 9) One often hears people  
say that they have many great  
thoughts in their minds but

कर सकते। ऐसे कथन में सत्य का लेश भी नहीं रहता। यदि व्यक्त करन का कुछ है तो चाहे जस हा वह निश्चय ही यकन हागा। वसे कहनवाते का समझ है निराशरण विशद हो व उमे ही अनुभव भी करत हो किनु उनव प्रति मत्यत सहजानुभूति रखत हुए भी कहना पडता है कि उह सहजानु भूति नहीं होनी।

इन उद्धरणों से यह भी स्पष्ट है कि सुधाशुजी ने कहा-कहा ब्रांचे के शब्दों का अविकल हिंदी स्पातर प्रस्तुत किया है पर 'काय में अभिव्यजनावाद ब्रांचे की पुस्तक ( इस्थेटिक ) का अविकल अनुवाद नहीं है। इसी कारण 'काय में अभिव्यजनावाद' और 'इस्थेटिक' के भिन्न भिन्न पृष्ठा से उपयुक्त उद्धरणों का चयन हुआ है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सुधाशुजी की पुस्तक में पर्याप्त नई सामग्री का समावेश हुआ है उसमें अनेक नये उदाहरण जोड़े गए हैं जो भारतीय वाङ्मय से लिए गए अथवा लेखक की व्यक्तिगत अनुभूति पर आधारित हैं। पुस्तक में इतस्तत विखरे हुए आलोचनात्मक सुधाशुजी के स्वीय दृष्टिकोण का प्रतिफलन करत है। डाइ पृष्ठा में (प० ३२ ३४) उद्दान ताक वकले वकन डेकाट प्रमति पाश्चात्य दार्शनिका के ज्ञान के भेद और प्रकार विषयक सिद्धांतों का सम्बन्धित सारगम विवेचन उपस्थित किया है जो ब्रांचे पर आधारित नहीं दीखता। ( इस्थेटिक के चौथे अध्याय में ब्रांचे ने कार्टेसियन तथा लाइनिशियन सम्प्रदायों के कायशास्त्रीय मतों और सिद्धांतों का वर्णन किया है।) इससे स्पष्ट है कि सुधाशुजी ने पाश्चात्य दर्शन का भी अनुशीलन किया है और वे चाहते हैं कि उस दर्शन के परिप्रेक्ष्य में ब्रांचे का अभिव्यजनावाद परखा जाय। सहजानुभूति के विवेचन क्रम में उद्दान मनाविज्ञान का भी आश्रय लिया है।<sup>१</sup> ब्रांचे के अनभार भाटक के पात्रों के महत्त्व निकले हुए वचन या सिद्धांत वस्तुतः किसी सिद्धांत का निरूपण नहीं करत। इस कथन की सामाजिकता सिद्ध करने के हेतु सुधाशुजी अभिज्ञानशाकुंतलम् के चतुर्थ अंक से एक उदाहरण देते हैं।<sup>२</sup> यही प्रकार ब्रांचे के इस कथन के लिए कि सहजानुभूति कला का बोध पक्ष है

१ काय में अभिव्यजनावाद, प० ४६।

२ उपरिखत, प० ३९-४०।

और विचार तक का वाच-पक्ष सुधाशुजी अपनी ओर से एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।<sup>१</sup> एक छोटी वालिका अपने भाई के पास गाय के नवजात बछड़े का एक सुंदर स्वाभाविक और स्नेहपूर्ण वणन लिख भेजती है। इस वणन में बछड़े का जो चित्र मन में अंकित होता है उसको यदि हम रूप में रख दें कि 'बछड़े सुंदर होते हैं', तो सहजानुभूति और विचार का प्रवृत्ति भेद स्पष्ट हो जाता है।<sup>२</sup> इस प्रकार के उदाहरण क्रोचे में नहीं हैं।

सुधाशुजी ने सहजानुभूति में 'वस्तु का महत्त्व' और आवृत्ति की विशेषता' पर भी विशेष प्रकाश डाला है। तत्पश्चात् भारतीय काव्यशास्त्र में भाव-पक्ष पर जो विशेष ध्यान दिया गया है उसकी ओर व हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। इस भाव-पक्ष की भित्ति पर ही रसवाद का ऐसा अद्रमुत निर्माण-वाय हुआ है जो विश्व-वादमय में अप्रतिम है। पाश्चात्य साहित्याचार्यों ने काव्य में कल्पना को विचारक अवयव मानकर इसकी महत्ता पर अत्यधिक बल दिया है जिसके परिणामस्वरूप वही भाव बिल्कुल गौण हो गया है। इसके विपरीत भारतीय आचार्यों ने कल्पना-पक्ष को न छोड़कर उस विभाव एवं अनुभाव में सम्मिलित कर लिया है। जहाँ तक क्रांचे का संबंध है, उसने कल्पना के वाच-पक्ष पर ही सर्वाधिक ध्यान दिया है, 'भाव की सत्ता का उद्धाने विशेष महत्त्व नहीं दिया है।'<sup>३</sup>

काव्य में अभिव्यजनावाद के दूसरे अध्याय में सुधाशुजी ने उम मतवाद पर विचार किया है जिनके अनुसार कला कला के लिए होती है। इस विवेचन में कवीन्द्र खीत्रनाथ के भी विचार समाहित हैं और इसी सदन में ब्रदले और रिचर्ड्स के विचार भी प्रस्तुत किये गए हैं। जहाँ ब्रैडल्ट १ आक्रमणों के अपने कविता विषयक व्याख्यान में तर्कों के विरुद्ध आमोदन के साथ 'कला कला के लिए' बाल मिथ्याता का समर्थन किया है, वहाँ 'रिचर्ड्स में महोदय ने अखण्ड तर्कों और मार्मिक युक्तियों से कलावाद की इस बटनी हुई प्रवृत्ति पर अच्युत कुठाराघात किया है। 'सुधाशुजी ने कला और सहजानुभूति की जो समीक्षा प्रस्तुत की है उसका आधार क्रोचे है। यहाँ भी क्रांचे की कुछ महत्त्वपूर्ण पंक्तियाँ का भावानुवाद हुआ है। सुधाशुजी के विचारानुसार अभिव्यजनावाद का घाटा-

१ काव्य में अभिव्यजनावाद, पृ० ३७।

२ उपरिचत, पृ० ३७।

३ उपरिचत, पृ० ४४।

४ उपरिचत, पृ० ६२।

५ उपरिचत, पृ० ६४, इत्यधिक, पृ० १२-१३।



तोस्तोय के अनुसार कना मनुष्या को एक ही भाव-सून में पिरोन का एक साधन है, पर मुदाशुजी इम परिभाषा को अतिव्याप्तिपूर्ण मानत हैं।<sup>१</sup> वस्तुतः मुदाशुजी का सच्चा कलाकार एक ऐसा व्यक्ति होता है जिससे हम शक्ति-ग्रहण करते हैं — 'मान प्राप्त नहा करते।' 'काव्य की शक्ति हम ऊँचा उठाती है और मान हम आगे बटाता है। जीवन की सारी संवेदनाओं को हिलाकर शक्तिमा का विकास करनेवाली काव्य-कला का स्थान उम मान-ग्रह से कौ ऊँचा है जा हमारे मस्तिष्क में केवल सहा-वृद्धि करता है।' <sup>२</sup> निम्सदेह मुदाशुजी की ऐसी भाषिता का उल्लेख अभिव्यक्तिवात् है जिसके अनुसार कला-सृष्टि न तत्पूण शैक्षिक मान से होती है न इन्द्रियज मान से और न साधारण लौकिक भावात्मक ज्ञान से। इसका संबंध हृदय के उस सहज स्वतःस्पून अनुभावात्मक ज्ञान से है जो अपनी तीव्रता के कारण अभिव्यक्ति के लिए वाध्य होता है। वेन जानसन और एजरा पाउड के सदृश मुदाशुजी भी कलाकार का उस ममीयक से उच्चतर स्थान देने के पक्ष में हैं जो स्वयं कलाकार नहीं है। जीवन के किम अंग को, किस रूप में काव्य में लिया जाना चाहिए—'इस बात का सबसे सच्चा निर्णय कलाकार ही होता है। समीक्षक तो उसके बाद अपना निर्णय देता है।' <sup>३</sup> एलियट की 'परंपरा और व्यक्तिगत प्रथा' की प्रतिध्वनि इन पंक्तियों में सुनाई पडती है

काव्य के विधान में इस बात पर सदा ध्यान रखना पडता कि वह अतीत से असंबद्ध न रहे। जिस काव्य में किसी-न किसी रूप से अतीत प्रतिध्वनित नहीं होता वह भविष्य के निर्माण में समर्थ नहा हो सकता। वर्तमान का अतीत ही मजीवित रखता है।

यदि हम अपने वर्तमान जीवन की परंपरा के मूल सूत्र का अनुसंधान करें, तो हम, न मालूम कितने हजार वर्ष पीछे जाना पडेगा। काव्य भी अपनी वर्तमान जीवनी शक्ति को सुदूर अतीत से ढोता आ रहा है।<sup>४</sup>

एलियट के परंपरा विषयक सिद्धांत पर बगसा का प्रभाव है।<sup>५</sup> इसी प्रकार

१ लक्ष्मीनारायण मुदाशु, जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धांत (पटना, १९६३), पृ० ३०-३१।

२ उपरिबत, पृ० ३५।

३ उपरिबत, पृ० २४।

४ उपरिबत, पृ० २६-२७।

५ T S Eliot's well known view 'seems to derive from the Bergsonian conception of duree Vide A A Mendilow *Time and the Novel* (1952) pp 94 et seq



"जीवन के तत्त्व और वाच्य के सिद्धांत का योग्य अन्वय ( या का छात्र और वाच्य का ग्य ) निम्न अंगर और मानव में प्रभावित है। संविदा और और उमका उपायग मानव तरकी विरती १ पर ही धारण है। मानवम एग सिद्धांत का सिद्धांत सामक रति १ प्रभावित विना या और एगम १ एगता धनुमान विना या। धमनीय का मम और वाचनीय की प्रवृत्तियों के बर्द एग (पृ० १२९ १६५ अर्थात्) रतिर रत्रक मानव धनुमान संरत्र समीपय में प्रभावित है। सुधारकी उमकी का रतिरना का धुनीय उद्यत हा नहीं बना उमक कया का धनुमान भी करत है।

समाना जीवत के तत्त्व और वाच्य के सिद्धांत ५ सुयोग्यता का समीपय धामरतिर धार एगम-एग पर प्रभावितमि-रत्रक तथा रानातिक है। द्य सिधाय की गुक्ति उतरा प्रीना विरत्र धारणाया में हाता है। प्रीना के धरिखत समीपय के पाग एग का साधत रती विरत्र द्वारा का जीवत का रिपाया का जतिता तथा धमना का जात म मगय हा मर। बुद्धि की माना का पर पर प्रीना का उद्य हाता है। २ इमी प्रत्रक का का उरती परिमाता तत्वत रामाटिक है जती रतिरगन् के माय एमार हृय के मवय म माय विवय रता है यती का की मृष्टि हाती है। जती हमारा रतिरत्व धमन धमर का धनुभव करता है, यती श्रीडा के रूप म का धरत हो जाती है। ३ निर ए धनुगार श्रीडा भावता उग रविा धार का रतात मात्र है जा याया का धपेधा रता है। ४ सुधारकी के लिए वाच्य का विषय भाव है बुद्धि नहा और वाच्य विधा की सत्राति कवन भावता में उत्पन्न रती हा साती। ५ वाच्य म धनवृ तिया के मूम विरत्रयण की मिभारिग करत है और कत है कि जय तक ऐसा रता हाता तय तक वाच्य की उपयुगिता नहीं मानी जा मका। माय

१ A theory proposed by the poet Schiller and supported by Spencer which explains play activities as due to surplus energy, particularly as the expression of surplus energy in the young and growing organism

२ जीवन के तत्व और वाच्य के सिद्धांत, पृ० २४।

३ उपरिखत, पृ० २९।

४ दे० "द ब्ले इम्पल्स", थर्नाड बोर्ती-रवे, अ हिस्ट्री ऑव इन्धटिव (सदन, १९३४), पृ० २९४-२९५।

५ जीवन के तत्व और वाच्य के सिद्धांत, पृ० ४४।

ही यह भी उत्तरेगनीय है कि व उन स्वच्छदतावादी आलोचना म नहीं हैं जो काव्य म आत्मनाम की प्रतिष्ठा के लिए परपरा का उपेक्षित किया जाना पसद करते हैं। सुधाशुजी कवि और परपरा मे मवध विच्छेद नहीं चाहते<sup>१</sup> और न नये-नये छद निमाण के प्रति किसी प्रकार की आसक्ति ही दिखाते हैं। कहा जाता है कि नये-नय भावा का अमिश्यक्ति देन के लिए नई-नई विधिया, नये-नये छद निमित होन चाहिए। सुधाशुजा नयी विधाया की उद्भावना के लिए उत्सुक नहीं दीखते, कारण मानव हृदय, उनके अनुसार, पुरातन है, उसम केवल अनुभव ही नया भग गया है। अनुभव के क्षेत्र नय-नये हं किंतु हृदय पुराना है हमारा मय, हमारा ह्पादि पुराना है।<sup>२</sup> यहा भी व नव्यशास्त्रवाद की ओर ही अधिक उन्मुख जान पडत हं और ऐसा लगता है कि यहा उहोने अठारहवीं शती के अगरेज अमिजान लेखका की तरह यह मान लिया है कि काव्यगत विधायो की सत्या परिमित है और इनमे प्रत्येक का नियमन विशिष्ट सिद्धाता के अनुमार हाता है। नव्यशास्त्रवादी कवि इन विधाया म ही किमी एक का आवश्यकनानुसार चयन करता है और उसमे ही अपनी कविता की मष्टि भी।

ऊपर हमन सुधाशुजी की आनाचना को प्रभावामिब्यजक कहा है। 'साहित्यिक निवध' नामक पुस्तक के निवधा से इम मन की पुष्टि मे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किय जा सकत है। साहित्य म व्यक्तित्व' शीपक निवध के अनुशीलन म ऐसा लगता है कि लेखन अपन भावा को त्वरित क्रम स उडेलता जा रहा है उह ममुचित स्यापत्य दन का प्रयास नहा करता। इसका यह अर्थ ह्या कि सुधाशुजा अपनी मूत्रवन स्यापनाया का समुचित पल्लवन और उनका अपक्षित विवेचन विश्लेषण नहीं करत। उनकी मेधा से अनगिनन विचार-स्फर्लिंग स्पहणीय त्वरा से निकलते जात हैं, परंतु व परस्पर अच्छी तरह सबद्ध नहीं हान—मूल विचारमूत्र म पिराये नहा जात। इसलिए उनकी रचनाया के मिन मिन अनुच्छेद वटे ही श्लय होन हैं। (पेटर और स्विनदन की प्रभावामिब्यजन समीना की यह विगेषता उनके अध्येताया से छिपी नहीं है।) उनके भाषणा और परवर्ती रचनाया म, वाक्या और अनुच्छेदा मे, अपेक्षया अधिक मूत्रात्मक सवध पाया जाता है।

सुधाशुजा के सभी निवधा म भारत की सनातन चिंतनधारा के साथ ही

१ जीवन के तत्त्व और काय के सिद्धात, प० ३५।

२ उपरिधत, प० ३६-३७, साहित्यिक निवध (१९३४), प० २४।

आधुनिक विचार-धारा का भी भाग है।<sup>१</sup> साथ ही यह कहना समस्त देशों का कि धीरे धीरे उनके समीप में आया कि स्यात पर दुःख का भाग है और साथ का प्रभाव जाता रहा है। गतिविधि का प्रभाव का प्राच्य ही। स गतिविधि का नमनीयता का कुछ ही तब विचार ही गया जात पटना है। परन्तु सभनामा में विचार का संगठित सामूहिक विचार और ही गतिविधि का बहुत इतिहास में परिस्थितिया का इतिहास<sup>२</sup> समस्त, इंगी धान का टाका है। परिस्थितिया का संगत इंगी धारण, वाच्य में समिप्यत्राया का संगत न मित्र है। परिस्थितिया का संगत विचारों में उन्ना प्रभावित नहीं है जिनका वाच्य में समिप्यत्राया का संगत। ही गतिविधि का प्रभाव भाग का सपादक धारणतानमार हृदय रीट<sup>३</sup> और टी० एम० एनियट<sup>४</sup> का विचारों से धन मत की पुष्टि करता समस्त है किन्तु साथ ही यह यह भी कहना है कि जो धरती का हिमायती है यह हमारा नता नहीं रह सकता। ही भापी राज्या की जनता में धरती तथा धरती-परम्परा का विरुद्ध एक विरुद्ध का आकाश की आवश्यकता है। महात्मा गांधी न धरती राज्य का विरुद्ध जिस पुण्य प्रकाश का प्रयोग किया था उसी पुण्य प्रकाश का प्रयोग ही भापी राज्या में धरती के विरुद्ध होना चाहिए।<sup>५</sup> धरती का इस समय में सपक भापी ही तब आत आत स्पष्टतया 'एक वनानिक धरती बद्धिवादी मन्त्राणता की धरती दीख पड़ती है।

## डा० दारय भोझा (१९०९)

१ हिंदी की नाट्य समीक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव

चकि हिंदी-साहित्यालोचन प्रधानतया काव्यालोचन रहा है, इसमें उपयासालोचन, नाट्यालोचन आदि का स्वतंत्र सर्वांगीण विकास प्रायः न के बराबर हुआ। नाट्य-समीक्षा की ओर जिन आलोचकों का ध्यान गया है वे परिमाणत, कम है फिर भी उनका विवेचन-मूल्यांकन आवश्यक है।

१ साहित्यिक निबंध (पटना, १९६४), दो गद्य।

२ लक्ष्मीनारायण मुधागु (सपा०), हिंदी साहित्य का बहुत इतिहास (ना० प्र०, स० १९६५), भा० १३, प० ३-४४।

३ उपरिचत, प० २३।

४ उपरिचत, प० २५।

५ सपक भापी हिंदी (दिल्ली, १९६५), प० ८०।

२८० आधुनिक हिंदी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव

नाट्यालोचन पर लिखते समय भारतेंदु का नाम प्रथम आता है। जिस प्रकार हिंदी-वाक्यालोचन पर पाश्चात्य मतवादा एव मिद्धातो का प्रभाव पड़ा है उसी प्रकार आयुनिक हिंदी नाट्य-समीक्षा पाश्चात्य नाट्यालोचन से प्रभावित हुई है। प्रस्तुत प्रबंध के प्रथम अध्याय में कहा जा चुका है कि भारतेंदु न अपन 'नाटक' शीपक निबंधके "लिखित विषय" केवल दशरूपक भारतीय नाट्यशास्त्र माहित्यदपण, काव्यप्रकाश आदि में ही नहीं लिये, उन्होंने 'विल्मम हिंदू थिएटर लाइफ आंव दि एमिनेंट परमन्स, ड्रामेटिम्स ऐंड नावेलिम्स हिस्टरी डि इटालिक थिएटर', कीय कृत 'द इंडियन ड्रामा' आदि का भी अध्ययन किया था। यद्यपि 'नाटक' की आधारभूत सामग्री भारतीय नाट्यशास्त्र से ही उद्भूत है फिर भी इसमें सदेह नहीं कि लेखक ने नाटकों के शिल्प, कथानक, कथापकथन, चरित्र चित्रण, अभिनय आदि पर लिखने समय पाश्चात्य नाटकों को भी ध्यान में रखा है। उसने कई स्थला पर शेक्सपियर के नाटकों की ओर—विजयपत मकबेथ और हैमलेट की ओर—मकेत किया है और निबंधान में थरप म नाटकों के प्रचार पर एक अत्यंत नारगम और प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया है।

श्रीनिवासदास रचित "समाहिता-स्वयम्बर की "मच्छी समालोचना" की भाषा शली पर ता पाश्चात्य प्रभाव पड़ा ही है, साथ ही वह पाश्चात्य नाट्य समीक्षा को पढ़निया का भी अनुसरण करती है। इनके लेखन के मनव्यानुसार 'किमी पुराने समय के ऐतिहासिक पुरावत की छाया लेकर नाटक लिख डालन ही से वह ऐतिहासिक' नहा हो जाता। किमी समय के लागा के हृदय की क्या दशा थी, उनके आन्तरिक भाव किस पहलू पर डुलके हुए थे, अयात् उस समय मात्र के भाव—स्फिरिट ऑव द टाइम्ज—क्या थे—इन सब बातों को ऐतिहासिक रीति पर पहले समय लीजिए तब उसके दरमाने का भी यल नाटकों के द्वारा कीजिए। 'नाटक' के पात्रों का परस्पर निम्न होना चाहिए स्वाभाविक और विगिष्ट हाना चाहिए हमन जहा तक नाटक दखे उनम पात्रों की व्यक्ति के निम्न निम्न हान ही म नाटक की शाना देखी।"४

१ अजरतनदाम (सपा०), भारतेंदु-प्रयावली (बनारस, स० २००७), खंड १, परिशिष्ट (उपक्रम)।

२ द० हिंदी प्रदीप, १ अप्रैल १८८६, पृ० १६-१८।

३ उपरिक्त पृ० १६।

४ उपरिक्त, पृ० १७।

हिन्दी में नाट्यमयीता की आरंभ प्राचाय महाश्रीरघुनाथ द्विवेदी का भी ध्यान गया था। नाट्यकारों तथा दर्शकों का नाट्यकारों का परिचय करा। वे निमित्त उन्होंने 'नाट्यशास्त्र' (१८०१) की रचना की। उनका अनुसार 'नाट्य-कला का फल उपदेश देना है। उसका द्वारा मनोरंजन भी होता है और उपदेश भी मिलता है।'<sup>१</sup> गमयन, यह पुस्तक उच्चर्यादि का एक ऐसा विषय है जिसमें सम्प्रदाय-चार्यों के भाव विचारों का ही प्रामुख्य मिलता है जिसमें मनुष्य नाट्य-कला का अनुपाधिक ज्ञान होता है। बलरघु प्रसाद मिश्र-वृत्त 'नाट्य-कला-ज्ञान' (१८२५) और रमा-शंकर शुक्ल-वृत्त 'नाट्यनिर्णय' (१८३०) आदि इस प्रकार की रचनाएँ हैं। हिन्दी नाट्य-कला का विकास उनसे किमी प्रकार की सम्पन्नता नहीं मिली।<sup>२</sup>

प्रथमसुन्दरदास और पीताम्बरदास बन्ध्याल नरपति 'रूपक-रहस्य' (१८३१) का भारतीय नाट्यशास्त्र के विभिन्न तत्त्वों तथा तथ्यों का वर्णन और विवचन कहा है। इसमें रूपक के विकास और परिचय वस्तु-विषय प्राप्त प्रयोग वृत्ति विचार रूपक का रूप रचना रूपक और उपरूपक रमा-शंकर रहस्य भारतीय रंगशाला या प्रेक्षागृह आदि का शास्त्रमन्मथ एव सर्वार्थना पाठित्यपूर्ण विवचन प्रस्तुत है। स्पष्ट है कि प्रथमसुन्दरदास ने भारतीय दृष्टिकोण से विवच्य विषय का प्रतिपादन किया है। साहित्यालोचन 'म. डानटर श्यामसुन्दरदास ने पश्चात्य दृष्टिकोण से नाट्य के भिन्न भिन्न तत्त्वों का मनोरम विवचन प्रस्तुत किया है।<sup>३</sup>

सेठ गाबिन्ददास रचित 'नाट्य-कला-मीमांसा'<sup>४</sup> (१८३५) पश्चात्य नाट्य समीक्षकों से अत्यन्त प्रभावित है। लेखक पश्चिमी नाट्यशास्त्र एव नाट्य-तिहास से परिचित है और जानता है कि 'इंग्लैंड और फ्रांस के जगत्प्रसिद्ध नाट्य-कार शेक्सपियर और मालियर के समय से वहाँ की रचनाओं का यथायथा होना आरम्भ हुआ और इंग्लैंड के प्रसिद्ध उपन्यासकार डिकिन्स और थेकरे के समय वह यथायथा पराकाष्ठा को पहुँच गया।'<sup>५</sup> उसने प्लेटो और ऐरिस्टोटल

१ निमल तालवार (सपा०), आचाय द्विवेदी (जगरा, १९६४), पृ० १५०।

२ डा० सोमनाथ गुप्त, हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास (जालंधर और इलाहाबाद, १९५८), पृ० ७।

३ साहित्यालोचन (१९४९), पृ० ११७-१७४।

४ जबलपुर, १९३५ (सं० १९९२)।

५ नाट्य-कला-मीमांसा, पृ० ६।

के कला-मन्त्री विवेचना का अध्ययन किया है और वाट, हीगेल, शॉपिंग, शोपेन-हावर, वॉल्टेयर, टेन, ह्यूट स्मैरर जॉन रस्किन और क्लाडव बेल आदि के मनों से वह परिचित है। पुस्तक में पाश्चात्य मनीषियों के अनकश मत उद्धृत हैं।<sup>१</sup>

ब्रजरत्नदाम रचिन हिंदी-नाट्य-साहित्य (१८३८) को पाश्चात्य प्रभावा से यथासंभव मुक्त रखा गया है। नाटककारों के काल निर्धारण में यन्न-नर, यूरोपीय विद्वानों की गवेषणाओं से लाभ उठाया गया है।<sup>२</sup> लेखक का यह कथन ध्यातव्य है कि यन्निका' शब्द को लेकर भारतीय नाटका पर यूनानी प्रभाव का समयन किया जाता है पर यह अनगल कथन है।<sup>३</sup> श्री जी० पी० श्रीवास्तव-जन ग्रहणनकारों पर उमन पाश्चात्य प्रभाव का अच्युता निदर्शन किया है और इस बात पर क्षाम प्रकट किया है कि श्रीवास्तवजी न अपनी भाषा का हिंदुस्तानी कहा है हिंदी नहीं। परलामता प्रिय हिंदुआ ही म कुछ ऐसे लाग हैं विनोप जानि क या प्रात निवासो जा हिंदू हाने हुए भी अपनी मातभाषा का हिंदी बनलान में क्या हिचकते हैं, नहीं कहा जा सकता। मम्य अंग्रेजी को मात-नापा कह नहा मकत क्योंकि प्रत्यक्ष बूठ हागा पर ममय आ रहा है जब कि ऐमा भी कुछ कह बठगे।<sup>४</sup> ब्रजरत्नदामजी उच्चकोटि के सपादक तो थे ही इन पक्षियों से उनके भविष्यवक्ता हाने का भी परिचय मिलता है। सभजन क समय आ गया है जिनकी आर ब्रजरत्नदामजी ने इगित किया है।

अपन 'हिंदी नाटय विमश' (१८४०) म नाटका की उत्पात्ति के सबब म डा० गुनादरय पाश्चात्य विद्वानों के गवेषणामूलक निष्कर्षों पर ही मवाधिक निर्भर रहे हैं। उहान मकममूलर लेवी, हर्टेन रिजव हिनेत्रा और काना की एतद्विषयक उपपत्तियों का प्राधाय किया है। इसी प्रकार कठपुतलिया क नाच की कल्पना क सबब म पिदल और कीष के मत उद्धृत हैं। पश्चिमी देगा के नाटक' के अतान रमन के प्रभाव, मरननप्रय और पाश्चात्य नाटका के विकास का सक्षिप्त सामांय वणन उपस्थित किया गया है। हिंदी नाटय विमश काद मौलिक विद्वत्तापूर्ण रचना नहा है।

डा० नगेद्र की 'आधुनिक हिंदी-नाटक' (१८४०) नामक पुस्तक में प्रमुक्त

१ उदाहरणाय, दे० प० ३-४, ५ और ६।

२ उदाहरणाय, दे० प० ७।

३ हिंदी-नाटय-साहित्य, प० ६।

४ उपरिबन, प० १८४।

आलोचना के आधारभूत मान पाश्चात्य नाट्यसमीक्षा से, विशेषतः धर्गरजी से, आये हैं, पर साथ ही इसमें नवोद्भावना भी पर्याप्त मात्रा में है। निम्नलिखित वाक्य पाश्चात्य प्रभाव के ज्वलत उदाहरण हैं

प्रसाद की ट्रेजडी नारी ट्रेजडी है । (पृ० ५)

उनमें कोई दूर तक जानेवाला वशिष्ठ्य नहीं था । (पृ० ५)

(प्रसाद के नाटका में) अनावश्यक दृश्या की संख्या भी बहुत है।

दूसरा बड़ा दोष है एकता (यूनिटी) का अभाव । (पृ० १७)

इतिहास पाठक की ऐतिहासिक भावना (हिस्टोरियल गैस) का आघात नहीं पहुँचाता । (पृ० २८)

(गीति नाच में) नाटकीय आकस्मिकता (ड्रमटिक ऐवरप्टनस) नहीं होती । (पृ० १२३)

पश्चिम के कतिपय आलोचकों ने रोमांटिक कला का नारा कला रोमांटिक समीक्षा को नारी समीक्षा कहा है। का ग्रीक आदि के संघर्ष में कहा जाता है कि "द वे ग्राव द वल्ड —जैसे नाटका में अनावश्यक दृश्या की संख्या बहुत है। शेक्सपियर के नाटका के संघर्ष में कई रोमांटिक समीक्षा ने (डा० जानसन ने भी) वही कहा है जो डा० नगेद्र ने प्रसाद के नाटका के संघर्ष में। पश्चिम से आमूल अभावित हिंदी एकांकिया और नाटका की समीक्षा स्वभावतः पश्चिमा मानकों का प्रयोग करेगी। किंतु डा० नगेद्र की समीक्षात्मक कृतियाँ की एक प्रधान विशेषता यह भी रही है कि उनमें प्रभावा का पूर्ण विलयन हो जाता है अपनी नवनिर्माणक्षम प्रतिभा का महायत्ना से वे प्रसाद की तरह 'भारतीय आत्मा को सुरक्षित' रखते हैं। इसलिए उनकी कृतियाँ से वही भी प्रभावा के बलात् आरोपण का बोध नहीं होता।

जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों की विद्वत्तापूर्ण भूमिकाओं में, जिन पर पाश्चात्य नाट्य समीक्षा का प्रभाव नहीं पड़ा है पाठ विश्लेषणवाली परिचयात्मक पद्धति का परिचय दिया है। इसी प्रकार सन १८४३ में प्रकाशित डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा कृत प्रसाद के नाटका का शास्त्रीय अध्ययन पर भी पाश्चात्य नाट्यालोचन का प्रभाव नाममात्र का है। इस ग्रंथ में भा सूक्ष्म एवं पांडित्यपूर्ण विश्लेषणमूलक एवं परिचयात्मक पद्धति का ही अनुसरण हुआ है।

१ डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन (बनारस, १९४३), पृ० २ (आमूल)।

डा० रामकुमार वमा के एकाकियों पर और इनकी भूमिकाओं में एकाकियों के विवेचन पर प्रमाता का पाश्चात्य प्रभाव के अनवानर चिह्न वतमान मिलेंगे। 'पृथ्वीराज की आँखें शीघ्रक एकाकी के 'पूर्वग' में उन्होंने कहा है कि उनके नाटको में कहीं-कहीं काव्य की छाया रहती है। यह उनकी दृष्टि में, 'स्वामाविक' है। इस क्षेत्र में जेम्स शरन के ट्रेटम और लज्ज कुएल्टी आदि नाटको में मुझे बल प्रदान किया है। पी० बी० शेली की ससी (चेंची) रचना भी मुझे विशेष रुचिकर है। शांति का यथायवाद में तो कवि भी नाटककार प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।' (प० १२) उनकी हास्य-संगीत मायताएँ मेरिडिय से प्रभावित हैं। एकाकी नाटका के क्षेत्र में उनके प्रयोग "पश्चिम की प्रवृत्तियाँ से प्रभावित होकर भी भारतीय नाट्य शास्त्र के ब्रौड में पोषित हुए हैं।' (रिमिनिम, १८५५, "ये मेरे छोटे नाटक" प० १०)। पाश्चात्य हास्य मंदों के अनुसार ही उन्होंने अपने नाटका का वर्गीकरण किया है। (उपरि०, प० १२-१३) 'शिवाजी', 'ऋतुराज' आदि की भूमिकाएँ और एकाकी-कला भी पाश्चात्य प्रभाव की दृष्टि में महत्वपूर्ण हैं।

जगदीशचंद्र मायुर का 'एमेचर' रंगमंच के सभी विषयों का अनुभव रहा है। कई नाटकों के आयोजन में वे केवल 'प्राम्पटर' रहे हैं, कुछ में निर्देशक और कुछ में अभिनेता।<sup>१</sup> उनके ममीक्षात्मक निबंध और संस्मरण ("मैं भी खेल चुका हूँ") बड़े ही मनोरंजक और भावात्तेजक हैं।<sup>२</sup> "कोणाक" के परिशिष्ट-१ में उन्होंने उपक्रम और उपसंहार के नये प्रयोग की ओर संकेत करते हुए कहा है कि इनमें पाठक (और दर्शक) संस्कृत नाटका की प्रस्तावना और पाश्चात्य नाटका के 'प्रोनाग और 'एपिलाग' एवं "कोरस" की शानक पायेंगे।<sup>३</sup> मायुरजी की समीक्षा शैली अंगरेजी से प्रभावित है

प्रथम अंक के प्रारम्भिक अंश में पुरानी कथा का उल्लेख और वात-चीत अधिक है—एक्शन कम।<sup>४</sup>

अंतिम अंश में संवाद और नाटकीय गति ('एक्शन') का तारतम्य

१ जगदीशचंद्र मायुर, ओ मेरे सपने (प्रवाण, १९५३), प० १७६ (परिशिष्ट-में भी खेल चुका हूँ)।

२ उदाहरणार्थ, देखें उपरिचिंत, प० १७६-१७७, कोणाक (स० २००८), परिशिष्ट, २, प० ८५।

३ कोणाक (स० २००८), परिशिष्ट १, प० ७९।

४ उपरिचिंत, प० ८१।



मलीमाति तमी निवाहा जा सकता है जब अभिनेताओं को प्राम्पटर के सहारे की विलकुल जरूरत न पड़े। यदि पाठ' मलीमाति याद न हो तो तीसरा अंक तो सफल हो ही नहीं सकता।<sup>१</sup>

गत दो दशकों से विद्वानों का एक महत्वपूर्ण बग नाट्यशास्त्र पर गवेषणात्मक ग्रंथों की रचना में दत्तचित्त है। इसके अधिकांश लेखक अरस्तू और शेक्सपियर, इब्सन और शा गाल्सवर्नी और मेरिडिथ के नाट्य सिद्धांतों से प्रभावित हैं। डा० सोमनाथ गुप्त-द्वारा 'हिंदी नाटक साहित्य का इतिहास' (१९४८) पश्चिमात्मक इतिवृत्त है। इसी प्रकार शिवनाथ रचित 'हिंदी नाटका का विकास (१८४१) हिंदी नाट्य-साहित्य के क्रमिक विकास का मक्षिण ध्यान है। इसमें प्रथमतः हिंदी नाटक पर पश्चात्य प्रभाव का भी उल्लेख हुआ है। एकांकी नाटका की विशेषताओं का चर्चा पश्चात्य नाट्य सिद्धांतों के आलापन किया गया है। 'समस्या नाटक' शीपक अय्याय में शिवनाथ न वर्नाड शा के नाटका की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख किया है। जान पड़ता है, यह विवेचन शेक्सपियर और शा के नाटका के गहन अध्ययन पर आधारित है।<sup>२</sup> डा० बच्चन सिंह के 'हिंदी नाटक' (१९५८) में समस्या नाटका तथा गीतिनाटका का विवेचन आगा, निकल माम, एलियट, यट्स आदि से प्रभावित है। उनकी भाषा शली और आलोचना के मानक पर भी पश्चिम का प्रभाव है और कहा वही ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक को मूल विचार अंगरेजी में ही प्राप्त हुए थे। गीति-नाट्य का अपूर्ण विवेचन पश्चात्य नाट्यशास्त्र के अधिकांश अनुवृत्त लिखाई पड़ता है। रघुवश का 'नाट्यकला' (१८६१) नामक ग्रंथ अनजित वावर, इ० के० चेंबर्स, निकल टी० एच० डिकिंसन मिडना टन्वू० करल आदि का नाट्य-समीक्षा से प्रभावित जान पड़ता है। रंग विद्या तथा आह्वान शीपक व आरम्भ में यूरोपीय इतिहास की रूप रसा प्रस्तुत की गई है (द० प० १८५)। आधुनिक रंग विद्या में प्रतिपादित सिद्धांतों का मूल स्रोत एडवर्ड गाडन ग्रंथ शल्मन

१ कोणाक (स० २००८), परिशिष्ट १, प० ८३।

२ नाटक-संबंधी अय्याय आलोचनात्मक ग्रंथों में डा० रामचरण महद्व रचित "हिंदी एकांकी और एकांकीकार" तथा "एकांकी उदभव और विकास" में पश्चिम का प्रभूत प्रभाव दर्शा जा सकता है। वे० "हिंदी एकांकी उदभव और विकास" की सद्यः प्रथम सूची और (इस ग्रंथ का समाप्ति के लिए) डा० सिद्धनाथ कुमार, "हिंदी एकांकी की गिल्पविधि का विकास" (बानपुर, १९६६), प० ग-च (प्राक्प्रयत्न)।

चेनी, हर्शोल एल० श्रीकर आदि की रचनाओं और मपादित ग्रन्थों में दखे जा सकते हैं। रघुवश की यह पुस्तक, तत्त्वतः, 'मम-वयवादी' है और इसमें पाश्चात्य नाटका एव नाट्यसिद्धाता का भी वैसा ही विशद विवेचन हुआ है जसा भारतीय नाटका एव नाट्यसिद्धाता का। डा० सिद्धनाथ कुमार ने अपने शोध प्रबंध 'हिंदी एकाकी की शिल्पविधि का विकास' में जहाँ एकाकिया के स्वरूप, तत्त्व और रचना विधान का वर्णन किया है वहाँ व डा० रामरामराम वर्मा डा० दशरथ आया आदि से तो प्रभावित हुए ही हैं, साथ ही उन पर भाजरी चोलन, डब्ल्यू० ई० विलियम्स, विलियम आर्चर आदि का भी प्रभाव पड़ा है। हिंदी एकाकिया की शिल्पविधि पर यह एक महत्वपूर्ण, प्राभाणिक ग्रन्थ है।

## (२) डा० हजारप्रसाद द्विवेदी

नाट्यशास्त्र की भारतीय परंपरा और दशरूपक' (१८६३) की भूमिका में भारतीय वाङ्मय के नद्राण आचार्य डा० हजारप्रसाद द्विवेदी ने पौरस्त्य नाट्यशास्त्र की दृष्टि से रूपका के भेदक तत्त्वा, विभिन्न रूपका की कथावस्तु आधिकारिक और प्रासंगिक कथाया अथ प्रकृतिया आदि का गभीर एव पाटित्यपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है। इस भूमिका के किमी भी म्यल से ऐसा धातित नहीं होता कि लखन नाटय सिद्धातो से प्रभावित है। इसके विपरीत 'नाटक ही श्रेष्ठ रूपक है, नाट्य शास्त्र और यावनी परंपरा' आदि व अनुशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने पाश्चात्य नाटयशास्त्र का भी गहन-गभीर एव तटस्थ अध्ययन किया है। वह पिछले विदेशी सिद्धातों की वीध प्रभृति के भारतीय नाटका की परंपरा-संबंधी मता एव सिद्धांतों में सबसे-सबसे परिचित है, परंतु प्रभावित नहीं। उसी अपनी धारणा है कि 'भारतीय नाटका' के विकास में बाहरी प्रभाव की बात विशुद्ध अटकल पर आधारित हैं और नाटय शास्त्र के विकास में तो किसी विदेशी परंपरा का नाममात्र का भी संबंध नहीं दिखाया जा सकता। नाटय शास्त्र की परंपरा बहुत पुरानी—हजरत इमा के जन्म से सैकड़ों वर्ष पुरानी है।<sup>१</sup>

## (३) डा० दशरथ जोषा

डा० दशरथ जोषा-रुत 'हिंदी नाटक उद्भव और विकास' नामक प्रबंध

१ हजारप्रसाद द्विवेदी और पद्मीनाथ द्विवेदी, नाट्यशास्त्र की भारतीय परंपरा और दशरूपक (राजकमल, १९६३), पृ० ७४-७५।

मेमेक के पाणिप्य का परिष्कारता सिद्धा है गाय ही उगतो वैनामित विरनेण एवं विवचा-गदति का भी घाता जाता है । उ०१०० नम घम क तिनि सानरण की भूमिका म कता है वि 'हमारी धात्र की नाट्य-मवंपी पाग्गाई मेकगतिपर इष्ठा मग्गित्त गों धाति पग्गिमीय नाट्यकारा की गनाप्रा क धाधार पर घी है । <sup>१</sup> घम क पट्टन धप्पार म धात्र म ही घाताजा । पाग्गात्त कता-मवंपी दृष्टिगत का गतिप्य परिष्पय िया है जा घप्य मार गम एय प्रामाणिक है । गतिप्य घोर कता क विवचा म उ०१०० प्ता ग परिष्प की इम धारणा का गूत्रपात माना है वि काव्य मा कता है । प्राचीन पीरस्य घाचायों क मतानुसार जहाँ कता का उदेश्य कचन मनारजन है कनी काव्य का ध्यय इमम कही उदात्त है । <sup>२</sup> काव्य-कता विषय पीरस्य एय पाश्चात्य मता क पृषकारण क घनतर डा० घासा न भग्गमुनि क नाट्यशास्त्र क घनुसार नाट्य की परिभाषा उपस्थित का है । तत्परचात् धरम्नु द्वारा की गई नाट्य की परिभाषा उद्धत है । भग्गमुनि क नाट्यशास्त्र म एनडिधयत्त परिभाषा म यह भिनती-भूलती है । भग्गमुनि घोर धरम्नु दाना के साम्पानुसार नाट्यकता का धात्र मत्यत विस्तून प्रतीत हाता है । इसम उत्तम, मध्यम घोर घधम तमी श्रेणी के व्यक्तिया क कम का सथय मिलता है । यही ब्रह्मा न स्पष्ट शात्ता म कह िया है घोर धरम्नु न भी इमी पर बल दिया है । <sup>३</sup>

घाचायं हजारीभ्रसाद द्विवेयी घोर डा० नगे०० की तरह घापाजी भी सम-वय-वादी हैं । सोवनाटका क विवेचन म उनके तत्त्वदर्शी समीक्षक की दृष्टि पीरस्य नाटका घोर नाटयतिहाम तव ही सीमित नहीं रहती । भारताय विषया का विवेचन करत समय पाश्चात्य वाङ्मय को न भुलाना—यही उनक सम-वयवाद की मूल भिति जान पडती है । चाह वैन्विद्युमान नाटका की चर्चा हो रही हा या उनके घान्तिस्त्राता का मत्रपण हो रहा हा, पाश्चात्य मनीषिया क नाम घायेंगे ही । भारतीय नाटय के घान्तिस्त्राता क परीक्षण म मकसमूलर, सिलवा घाल्चेन वग, कीथ घादि के विचार प्रयुक्त हुए हैं । जननाटका क सबध म प्रियसन साह्य की खोज का उल्लस हुआ है । <sup>४</sup> घापाजी न पाश्चात्य नाटयशास्त्र एव नाटय-साहित्य-

१ डा० दगर्थ ओझा, हिंदी नाटक उदभव और विकास (दिल्ली, स० २०१८), प० १३, प्रस्तावना (द्वितीय सस्करण) ।

२ उपरिखत, प० ३१ ।

३ उपरिखत, प० ३४ ।

४ उपरिखत, प० ५१ ।

विषयक मूचनाएँ “द कम्प्रेज हिस्ट्री ऑफ इंगलिश लिटरेचर” (सड ५) तथा निक्ल के अंगरेजी नाटयतिहासा मे ली है। उटाने स्थान-म्यल पर अपन मना एव निष्कर्षों की पुष्टि पाश्चात्य विद्वाना के मित्र मित्र प्रसगानुकूल कयना स की ह। उनका अनुमान है कि मार्ग के मूल निवासी अपन आराध्यदेव की प्रतिमा का जुलूस निवालत समय जिस नृत्यगीत तथा नाटय का अभिनय किया करत थ वही कालांतर म यात्रा नाम से पुकारा जान लगा होगा।<sup>१</sup> इम मन की पुष्टि उहाने ई० पी० हार्विज के एक कयन मे की है।<sup>२</sup> प्राचीन भारतीय नाटका मे सवद्ध विभिन्न मन-मतातर जहा श्री डी० एन० विद्याभूषण डा० जयकान्त मिश्र आदि मे उद्धत एव स्पष्ट है, वही डा० श्रीज्ञा कीय के “मा ऋणी हैं। उहाने काय और नाटक के अतर को अंतरडाक्स निकल की “नाटयसिद्धात” की भूमिका<sup>३</sup> मे त्रिए गए एक उद्धरण से स्पष्ट किया है।<sup>४</sup> यहा यह कह दना अप्रासांगिक न होगा कि हिंदी क अधिकांश नाटयसमाक्षका न निकल की पुस्तका का उपयोग किया है। इमका कारण निकल के विवेचन की विशदता पूणता और उमक ग्रंथा की लोकप्रियता है। यद्यपि ये ग्रंथ अनद्यतन ही चने है फिर भी अंगरेज समीक्षका द्वारा वे आज भी समादत हैं।

हिंदी नाटका के उदभव और विकास म परिचम का योगदान विस्मृत नही किया जा सकता। डा० श्रीज्ञा के साक्ष्यानुसार यरोप म सस्कृत नाटका की प्रशसा दपकर ही भारतीय लेखका और अध्यापका का ध्यान पुन उनकी ओर आकृष्ट हुआ था। ‘अभिमानशाकुंतल’ के अंगरेजी अनुवाद का सफल अभिनय होन और उसकी चर्चा फरने से सस्कृत नाटका क प्रति श्रद्धा बढी थी।<sup>५</sup>

‘हिंदी नाटक उदभव और विकास म समाविष्ट व्यावहारिक समीक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव का विश्लेषण अथवा, व्यावहारिक समीक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव’ शापक अध्याय म हुआ है।

आत्माजी के समीक्षा शास्त्र म भारतीय एव पाश्चात्य समीक्षा सिद्धाता का विवेचन हुआ है। ग्रंथ के प्रथम अध्याय म ही उहान पाश्चात्य समीक्षका

१ उपरिक्त, पृ० ५३।

२ उपरिक्त।

३ इण्ट्राडक्शन टु ड्रामटिक थियरी।

४ हिंदी नाटक उदभव और विकास, पृ० १३८। द्रष्टव्य प० १८७ की पाद टिप्पणी, सत्या ४।

५ उपरिक्त, पृ० १४०-१४१।

द्वारा निरूपित साहित्य और समाज के संबंध का विश्लेषण किया है। कुछ समीक्षकों<sup>१</sup> को यह प्रभाव प्रदान करता है कि मातृवादी साहित्य, मूलतः 'प्रारम्भिक साहित्य' है 'जिस साहित्य में दशकीय स्थिति का प्रभाव उद्देश्य होगा और साहित्य की सावनीय भावना गीत द्वारा धारण करेगा, यह साहित्य सहायक समाज का मूल है। शक्ति उत्तमता प्रदान करेगा किन्तु स्थायी साहित्य नहीं बना सकता। समाज का स्थिति में परिवर्तन नहीं है वह पुनः पट जाता है। और मूल साहित्य यह है जो समाज पुराना न पड़े। ' तत्परता उदा। साहित्य और विज्ञान-शास्त्र के अन्तर्गत का स्पष्ट करत हुए कहा है कि साहित्य का स्थान दशक और विज्ञान से ऊंचा है। इसका कारण यह है कि जहाँ दान और विज्ञान समय की गति के अनुसार परिवर्तित हो रहे हैं, वहीं साहित्य प्रत्येक युग के लिए समान रूप से ध्यान-आयन होता है और हृदय का स्थान मूल एक-सा रहता है।'<sup>३</sup>

"समीक्षा शास्त्र में नाटक और सामाजिक जीवन के संबंध का निष्पन्न प्रदानतया, पाश्चात्य नाटक-साहित्य का आधार पर हुआ है। लखन शक्ति पिनगो आम्बर वाइल्ड, गामबर्दी आदि नाटकों की और इंगित करत हुए यह बताया है कि इन नाटककारों के प्रभाव से साहित्य में सामाजिक जीवन का यथायचित् अन्तर्गत करन का प्रभाव हुआ है। दूसरे अध्याय ( काव्य में कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति ) में कवि की महत्ता का कीर्तमान, मुख्यतः पाश्चात्य साहित्यकारों के कथन पर ही आधारित है। इसमें, गेटे, दाँने, हडसन, ऐबरहाम्बी आदि के विचार उद्धृत किए गए हैं और यह लिखा गया है कि कवि के व्यक्तित्व और समाज के प्रति उसके दायित्व में क्या संबंध है। हबर्ट रीड, टी० एम० एन्ड्रियट और फ्रायट के व्यक्तित्व एवं आत्मनिव्ययन विषयक विचारों से डा० आना अचूरी तरह परिचित है। पुस्तक के चतुर्थ अध्याय में पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रदान काय की विविध परिभाषाएँ उपस्थित की गई हैं। गानसन का मत है कि काव्य वह कला है जो श्रेय और प्रेय का गठबंधन कराती है। इस गठबंधन का साधन है कल्पना और विवेक।<sup>४</sup> कालरिज का मत है कि कवि बनने में दशकशास्त्र अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनका कथन है कि कोई व्यक्ति तब तक शक्ति-संपन्न

१ डा० दशरथ जोशी, समीक्षा शास्त्र (दिल्ली, १९५५), प० ८।

२ उपरिखत।

३ उपरिखत, प० ९।

४ उपरिखत, प० ६२।

कवि नहीं बन सकता, जब तक वह गहन दार्शनिक नहा होता ।<sup>१</sup> इत्यादि, इत्यादि । जिस स्थल पर उहोन काव्य म प्रकृति-वर्णन के महत्व का निरूपण किया है, वहा उहोन छायावादी कवियों के प्रकृति प्रेम का ही वर्णन नहीं किया वे इस बात से अवगत हैं कि बटस्वय ने भी मानव और प्रकृति म आत्मिक साम्य स्वीकार किया था ।<sup>२</sup> काव्य म सामाजिक जीवन की व्याख्या<sup>३</sup> के कितन ही उद्धरण टेनिसन, ब्राउनिंग, आनल्ड आदि की रचनाओं से लिये गए हैं । इस प्रकार ओझाजी ने काव्य और आलोचना का वर्गीकरण पौरस्त्य एव पाश्चात्य, दोनों दृष्टिकोण से किया है ।<sup>४</sup> सत्समालाचक के लिए अपेक्षित गुणों के वर्णन पर भी पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट है ।

ओझाजी का 'समीक्षा शास्त्र' विविध विवधा का ऐसा संग्रह है जिसमें समीक्षा का स्तर अतिनामाय और विवेचन, समासत मतही है । नाटका अथवा नाट्यालोचन का प्रसंग आते ही उनका समीक्षक रूप अपेक्षया अधिक निखर उठता है । नाटय समीक्षा में ही उनकी प्रतिभा अधिक प्रभावशाली एव आकर्षक दीव्य पडती है । इसलिए उनकी तीसरी महत्वपूर्ण कृति "नाटय-समीक्षा" है । इसमें सगहीत 'समस्यानाटक' का उत्स और रूप<sup>५</sup>, स्वभावत, पश्चिम से प्रभावित है । चकि समस्यानाटक की विधा पाश्चात्य साहित्य की देन है, इसके विवचन म सवन पाश्चात्य तत्त्वों का विनियोग हुआ है । "नाटय-समीक्षा" के विवधा का स्तर अपेक्षया अधिक ऊँचा है । इस ऊँचवना के मूल म लेखक का प्रकृत अथ म्यागत विकास-मात्र नहीं है इसका मूल कारण यह है कि नाटय-समीक्षा ही 'नग्न' का नियत निश्चित क्षेत्र है — इसमें ही वह अपेक्षित सफलता की आशा कर सकता है ।

डा० नगेद्र (१९१५-)

हिंदी आलोचना-साहित्य म डा० नगेद्र का वही स्थान है जा पाश्चात्य आलोचना-साहित्य में एफ० ब्रा० लीनिंग का । दोना गभीरचेता आचार्यों की समीक्षात्मक प्रतिभा अपरिमेय है और दोना की पूवाग्रहों से विमुक्त तथा तत्त्वत उदार दृष्टि म (आचार्य रामचंद्र शुक्ल के लिए प्रयुक्त डा० नगेद्र के ही

१ डा० दंगरय ओझा समीक्षा शास्त्र (दिल्ली, १९५५), पृ० ६२ ।

२ उपरिषत, प० ७१ ।

३ उपरिषत, प० ७२ ।

४ उपरिषत, पृ० ७७ और २०९ ।

५ डा० दंगरय ओझा, नाटय-समीक्षा (दिल्ली, १९५९), पृ० १०९-१२२ ।



विलयन हो जाता है और वे एक नयी अनुभूति का स्वरूप लेकर आविर्भूत होती हैं ।

“विचार और अनुभूति’ के उक्त निवध म ही श्वनजटाशमश्रु आचाय रसविमुग्ध जिनासु सुदरी की आत्मा म प्रश्नवाचक भवेत् देखकर “अपना मतव्य’ व्यक्त करते हुए कहते हैं ‘ मैं जीवन का ग्रह का जगत् मे या आत्म का अनात्म से सघष मानता हूँ । साहित्य इसी सघष के मानस-रूप की अभिव्यक्ति है । १ आचाय क इस मतव्य पर फ्रायड, ऐडलर एव रिचड स का प्रभाव दीखता है। आई० ए० रिचड स के अनुसार कला मुख्यतः गगात्मक अभिव्यक्ति (इमोटिव) है २ फ्राँयड के मतानुसार कला में कलाकार की दमित आसनाया और अचेतन मन की अभिव्यक्ति होती है। डा० नगेन्द्र यह भी स्वीकार करते हैं कि “आत्म के निर्माण मे काम-श्रुति का और उसकी अतप्तियो का योग है इसलिए इस प्रेरणा मे उनका विशेष महत्त्व मानना भी अनिवाय समझता हूँ । स्पष्ट है कि यह मत फ्रायड के उम सिद्धांत पर आधारित है जिसके

१ उपरिक्त, प० ९। तुलना कीजिए (१) The work of art is therefore the product of psychic forces which are in opposition to each other such as desire and inner prohibition It represents a reconciliation between these conflicting forces and has therefore the character of compromise The fundamental dynamic force at the root of a work of art is an unfulfilled wish of the artist Richard Sterba The Problem of Art in Freud's Writing *Problems in Aesthetic* (New York 1959) P 629 (२) 'During the 1920's he, (Freud) developed what he called the structural approach—an analysis of the process whereby the ego (mainly rational) and the superego (mainly moral) are crystallized out of it (primitive instinctual) Ruth L Munroe 'School of Psychoanalytic Thought (1955), p 32

२ “आँ व वन हैण्ड, वी हव राइटस सच ऐव आई० ए० रिचड स, हू इन्सिस्ट दट आर्ट इज प्राइमरली इमोटिव ” मेल्विन रेडर, अ भाडन बुक आव इस्पेक्टिवस (न्यूयाक, १९६२), प० २६ (भूमिका) ।



धनुषार का मूलमूल्य ही है। अतः कवि ने इसी मूल्य का ही मूल्य माना है।<sup>१</sup> इस मूल्य का धनुषार का ही मूल्य माना है।<sup>२</sup> जो कि मूल्य ही है। अतः कवि ने इसी मूल्य का ही मूल्य माना है।<sup>३</sup>

एकी प्रकृतिक मूल्य ही है। अतः कवि ने इसी मूल्य का ही मूल्य माना है।<sup>४</sup> अतः कवि ने इसी मूल्य का ही मूल्य माना है।<sup>५</sup> अतः कवि ने इसी मूल्य का ही मूल्य माना है।<sup>६</sup> अतः कवि ने इसी मूल्य का ही मूल्य माना है।<sup>७</sup> अतः कवि ने इसी मूल्य का ही मूल्य माना है।<sup>८</sup> अतः कवि ने इसी मूल्य का ही मूल्य माना है।<sup>९</sup> अतः कवि ने इसी मूल्य का ही मूल्य माना है।<sup>१०</sup>

दे स्वेष्ट ध्याउठ धर्षान ध गीरिग हाग

एण्ट धौट्ट दृष्ट विगोसम ।

स्लीप एण्ट धौट्टी

रामाटिक कवियान रत्ना भ स्यन स्फूर्ति एव धौट्टीस्वित्ता ध पुर्ताव्येग ध विर सफल प्रयाग कविया । इय वारण उनरा कृतिवौ नयगास्त्रवाशिया की रचनामा की अपेक्षा अधिक भावादीय एवं शोचपूर्ण हैं। रोमाटिक काव्यशास्त्र म कथाकृति को कलावार के व्यक्तित्व/का अभिव्यक्ति कहा गया है—जीवन व्यक्तित्ववाद रामाटिक कथा का मूलभूत सिद्धान्त है। ग्रेने ने कहा है कि कथा और कविता म

१- “ब सेक्सुअल इन्सटिक्टस, दस धौट्टी डिफाइण्ड, आर मेा रिप्रस ऑव ऐक्शन” दथ एल मनरो, उल्ल० प्र०, प० ७६।

२ विचार और अनुभूति, प० ८

व्यक्तित्व ही सब कुछ है ("इन घाट एण्ड पोयट्री, पसनलिटी इज एवरीथिंग") ।  
 (द० जाज सेण्ट्सवरी, अ हिस्ट्री ऑव क्रिटिसिज्म, १८२३, तृतीय भाग, पृ०  
 ३००) कलाकार अपने आवेग और भाव को निर्वाह रूप से अभिव्यक्त कर  
 सकता है, चाहे व आवेग और भाव कितना ही अपारंपरीण और ब्रातिवारी  
 क्या न हो। इससे ही कलाकारा के जीवन में हमारी रुचि का उभेप होता है और  
 इसी कारण हम वायरन के प्रेम और वेटहान्न के शोध की कहानियाँ पढ़त-सुतत  
 हैं। सन् १८७८ ई० में यूजीन बेरा ने लिखा कि समस्त सौंदर्यशास्त्र का एक  
 अद्भुत और सबन-मपुष्ट पष्ठाधार कृति के ऊपर उसके रचयिता के व्यक्तित्व  
 का प्रभाव है ।<sup>१</sup> बेरा के साध्यानुसार किसी घटना या वस्तु द्वारा प्रोदीप्त कला-  
 कार की प्रतिक्रियाओं का अभिलेख ही कलाकृति है ।<sup>२</sup> इसी प्रकार टाल्स्टॉय  
 और डुकासे भी कला का हृद्गत उदगारा की अभिव्यक्ति मानते हैं । अंतर इतना  
 ही है कि टाल्स्टॉय कला का आवेग की अभिव्यक्ति-मात्र न मानकर उसे आवेग  
 का संप्रेषण भी मानत है । कला श्रोताओं और दर्शकों तक जब तक अपने अतर्भूत  
 आवेग का संप्रेषण नही कर लेती तब तक उसके लक्ष्य की सिद्धि नही होती ।  
 डॉ० नगेन्द्र का स्वच्छन्दतावाद 'व्यक्तित्व' के यश स्थापन (ग्लोरिफि-  
 केशन) में भी निरिष्ट दीखता है

१— कोई रचना रचनी तभी हो सकती है जब रचयिता उसमें  
 अपने व्यक्तित्व को पूर्णतः अनुदित कर दे । अपने व्यक्तित्व  
 का अनुवाद ही रचयिता के लिए सबसे बड़ा आनंद है ।  
 'साहित्य और समीक्षा' "विचार और अनुभूति", पृ० १४ ।

२—दिनकर का व्यक्तित्व इन दोनों की अपेक्षा अधिक शक्तिमान  
 है । दिनकर के व्यक्तित्व की सफलतम उदभूतियाँ हैं  
 "टुकार" और "रसवती की विनिष्ट कविताएँ" ।

'यौवन के द्वार पर', उपरिखत, पृ० ७८ ।

३—अपन को पूर्णता के भाव अभिव्यक्त करना—चाहे वह  
 कम द्वारा ही अथवा वाणी द्वारा या किसी भी अन्य उपकरण

१ (The) influence of man's personality upon his work  
 is the unique and solid basis of all aesthetics Eugene  
 Veron *Aesthetics* trans Armstrong (London 1879), p  
 104 n I, cf also p 139

२ उपरिखत, पृ० ७३, १०६ ।

हिन्दी की सद्भाषिक आलोचना पर पाश्चात्य पभाव—२ २०५

क द्वारा हो, व्यक्तित्व की मजबूत यही मानता है ।

'साहित्य में आत्मामिव्यक्ति', विचार और विवेक पृ० ५४ ।

४—महात्मा व्यक्तित्व का अभाव है, बाद कृति मानने साहित्य नहीं है। मन्त्री, पर विद्यमान अतिव्यक्ति का अभाव है तो यह साहित्य ही नहीं रहती, अथवा व्यक्तित्व का महत्ता उस साहित्य का गौरव नहीं है सबती ।

उपरिवत् पृ० ५८ ।

५—साधारण दस्तकारी में भी जहाँ रचना प्रक्रिया मजबूत यात्रिक है, रचयिता का व्यक्तित्व का स्पष्ट अभाव नहीं जा सकता— फिर कला जहाँ संपूर्ण प्रक्रिया ही मानसिक है, व्यक्ति-तत्त्व से अस्पष्ट बस रह सकती है ?

"टी० एस० इलियट का वाच्यगन अव्यक्तिवाद ,  
उपरि०, पृ० ६७ ।

६— मैं यह मानता हूँ कि प्रत्येक साहित्यिक कृति का सबब कृतिकार के व्यक्तित्व से है ।

मेरी साहित्यिक मायताएँ—१ , आलोचक की  
आस्था, पृ० २ ।

७—आलोचना भी मूलतः आत्मामिव्यक्ति है—यहाँ भी आलोचक कला-कृति का विवेक विश्लेषण का माध्यम से आत्मताम करता है ।

मेरी साहित्यिक मायताएँ—३ उपरिवत् पृ० १८

८—आत्मामिव्यक्ति का अर्थ है सजनाशील कलाकार के व्यक्तित्व की पूर्ण अभिव्यक्ति—और सजना के क्षणों में कलाकार का व्यक्तित्व समजित हो जाता है यह कला एवं सजना दोनों का अनिवार्य नियम है ।

साहित्य का स्तर उपरि० पृ० २६ २७ ।

विवेक आचार्य के कथनानुसार साहित्य साधारण व्यक्तित्व की साधारण अभिव्यक्ति न होकर विशेष व्यक्तित्व का विशिष्ट अभिव्यक्ति है ।<sup>१</sup> वरा के सिद्धांतों का विश्लेषण करते हुए जेरोम स्टालनिज ने कहा है कि वेरो का अनुसार कला-कृति की विशेषता और महत्ता उस विशिष्ट व्यक्तित्व में निहित होती है जो

१ विचार और अनुभूति, पृ० १० ।

कलाकृति म अभिव्यजित होता है।<sup>१</sup> स्पष्टतः डॉ० नगेद्र और उक्त, सौंदर्यशास्त्र-विद् पाश्चात्य आचार्य के मता मे साम्य है। इसका कारण यह है कि दोनों साहित्य को रागात्मक आत्मामिव्यक्ति मानते हैं और दोनों की साहित्य विषयक मायताएँ मूलतः रोमांटिक हैं। 'मेरी साहित्यिक मायताएँ-१' मे आचार्य नगेद्र उन अनेक 'कला ममना' को संकेतित करते हैं जो काव्यगत अव्यक्तिवाद का समर्थन-भोषण करते हैं। इन अनेक कलाममना मे एलियट का स्थान मध्य है और यहा सवेन भी उसी की ओर है। उसके "परंपरा और वैयक्तिक प्रतिभा" (ट्रेडिशन एण्ड दि इण्डिविडुअल टलेण्ट) शीर्षक निबंध के दूसरे खंड के अंतिम दो वाक्य इस सदम म विचारणीय हैं 'कविता आवेगा का सहज उच्छलन नहीं है उनसे पलायन है कविता व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं, प्रत्युत व्यक्तित्व से मुक्ति है। फिर भी यह सत्य है कि जिनके पास व्यक्तित्व और आवेग हैं वे ही यह समझ सकते हैं कि इनसे पलायन चाहना क्या होता है।'<sup>२</sup> डॉ० नगेद्र द्वारा प्रयुक्त "वमन", मोचन, उदगार" आदि शब्द एलियट के 'टर्निंग लूस' के लिए व्यवहृत

२ He (Veron) does hold however that what is most important and valuable about the work is the distinctive personality which it reveals 'It is the manifestation of the faculties and qualities (the artist) possesses which attracts and fascinates us' These 'faculties and qualities are of two kinds first the distinctive emotional and intellectual make up of the artist noted above and second, the skill with which he has expressed himself in the work, or as Veron puts it 'the power with which he depicts his impression

जेरम स्टॉलनिज, इत्येडिक्स एण्ड फिलॉसफी ऑव आर्ट क्रिटिसिज्म (बोस्टन, १९६०), प० १६२।

२ 'Poetry is not a turning loose of emotion but an escape from emotion it is not the expression of personality, but an escape from personality But, of course only those who have personality and emotions know what it means to want to escape from these things' T S Eliot, *The Sacred Wood* (London, 1957), p 58

हुए हैं। उन्होंने एनियट के "रस्य फॉर्म दमान" व लिए 'भाव सं पनायन' तथा 'स्वैय फॉर्म पर्मंततिटी व त्रिए' म्नाम् का विगाता का प्रयोग किया है।<sup>१</sup> इस स्थल पर बड़े ही मार्मिक ढंग में आत्मनिष्ठा रहस्यपूर्ण आचार्य ने एनियट के विचारों के साथ अपना इस व्यक्तिगत आधारमूल सिद्धांत का सामंजस्य स्थापित किया है।

अभिव्यक्ति सिद्धांत का इस स्थापना से कोई विरोध नहीं है, उसके अनुसार भी व्यक्तित्वगत राग द्वेष का उत्पन्न कविता नहीं है। अभिव्यक्ति अर्थात् कला-सृजन की प्रक्रिया में पड़कर व्यक्तिगत भाव भी स्व पर की सीमाओं से मुक्त होकर व्यापक चेतना—शास्त्राय शान्तवली में, निर्यधन प्रतीति—का विषय बन जाता है। अन कविता भाव का वमन नहीं है यह ता में भी मानता हूँ किंतु यह मायता आत्मनिष्ठा व्यक्तित्व के सिद्धांत के विरुद्ध नहीं है, क्योंकि अभिव्यक्ति वमन नहीं है।<sup>२</sup>

डॉ० नगेद्र का समन्वयवाद तत्त्वापरिक एवं बहिरंग न होकर तत्त्वस्पर्शी आंतरंग है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य नन्ददुतारे वाजपेयी की समन्वय वादिता प्राच्य प्रतीच्य को एक साथ विवक्षित करन में है उनके पूर्ण एकीकरण एवं सामंजस्य प्रदर्शन में नहीं। डॉ० नगेद्र की प्रतिभा कोलरिज की प्रतिभा के समान है। कोलरिज के संबंध में कहा जाता है कि दो सीमाओं पर अवस्थित मित्र मित्र वस्तुओं के अंतर्भेदन में ही वह अस्तित्व की साधकता और इसका अंतरतम प्रक्रिया का साक्षात्कार करता था। उसके अनुसार, सूक्ष्म रूप से दो चरम सीमाओं पर अवस्थित ऐसे विरोधी तत्त्वों के परस्पर सघर्ष का नाम ही जीवन है जिनमें एक अनेक में तथा अनेक एक में परिवर्तित होता रहता है।<sup>३</sup> डॉ० नगेद्र भी किसी समस्या की परीक्षा उगी तब अपने को निबद्ध रखकर नहीं करते व उसे प्रशस्त भूमिका पर व्यवस्थापित कर उसका सर्वांगीण विवेचन

१ आलोचक की आस्था (दिल्ली, १९६६), प० ३।

२ उपरिक्त।

३ द्रष्टव्य and all opposition is a tendency to reunion

The identity of thesis and antithesis is the substance of all being It is the object of mechanical, atomistic philosophy to confound synthesis with synartesis Basil Willey  
*Nineteenth Century Studies* (London 1961) p 20





और मयाप का ऐसा ही अप्रुव समूह Heinrich von Kleist की कृतियाँ में विशेषतः *Der zerbrochene Krug* तथा *Penthesilea* में पाया जाता है। सामंजस्य में विश्वास रखनेवाले साहित्यकार का दृष्टिकोण अत्यन्त नमनशील एवं उदार होता है। डॉ० नगेन्द्र ने रमवाद की व्याख्या ऐसे ही महत् उदार दृष्टिकोण से की है। उन्होंने रस सिद्धांत को विभी सकुचित सीमित अर्थ में प्रयुक्त न कर उसे व्यापकता और नमनशीलता प्रदान की है, इसके लिए मित्र मित्र शब्दा (यथा, रंगनत्त्व, रस, भावना आदि विषयक धारणा, रमानुभूति, रागात्मकता, मानवीय अनुभूति, रागवध इत्यादि-इत्यादि) का प्रयोग किया है, जो लेखक की उक्त नम्यता का द्योतक है। प्रधानतः स्वच्छदतावादी होने के कारण डॉ० नगेन्द्र मानव-स्वभाव और मानव विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया और व्यक्ति के विकास के मूल में सांघटिक एकता देवत हैं।<sup>१</sup> साहित्य के क्षेत्र में इस एकता की अभिव्यक्ति विश्वजनीन रमवादी

१ द्रष्टव्य One of the qualities that marks the romantic from the classical attitude derives from this difference in the feeling for time. Classicism had developed the spatial sense and conceived even literature in terms of the plastic arts. It saw the past as an accreting cumulation of independent events and states which were complete in themselves and could be laid as it were side by side, fixed in a uniform medium for the curious to survey of value chiefly as providing precedents for present or future claims of interest only as a lesson to guide future action to point a moral or adorn a tale. The Romantics, on the other hand, saw significance rather in the creative temper that went to the forming of one state out of another. They tended to look on human nature and human development in terms of the organic unity underlying the process of history the growth of the individual, and the constantly self adjusting equilibrium that determines the pattern of behaviour of men in groups. A. A. Mendilow *Time and the Novel* (London, 1952), p. 4





इगवर ही कर सकता है।<sup>१</sup> बुद्धितत्त्व के विरुद्ध इन धादोल्ला वा मूलोद्देश्य गगनचर्य की पुनर्स्थापना है। अतः रस सिद्धांत का इन नये वादा से कोई विरोध नहीं हो सकता।

डॉ० जेथ्रो इस बात से पूर्णतया अवगत हैं कि पाश्चात्य काव्यशास्त्रीय परंपरा अत्यंत कठिन और गौरवमयी रही है तथा उसे दशन, मनोविज्ञान आदि का सबल प्राप्त रहा है। इसलिए ऐसे काव्यशास्त्र की उपेक्षा हमारे साहित्य-मनीषी नहीं कर सकते। परिस्थितिजन्य वर्तमान साहित्य-जगत् में पाश्चात्य आनाचना के मान प्रतिमान इस प्रकार रम गए हैं कि हमारे मनीषक उन्हीं के माध्यम से चिन्ता और मूल्यांकन करने लगे हैं।<sup>२</sup> उनके इस प्रयास से एक नये मरिचक काव्यशास्त्र का प्राप्तिर्भाव हुआ चुका है। हिंदी में डॉ० नगेन्द्र के मतानुसार रस प्रवृत्ति के सबंध में उन्नायक आचार्य शुक्ल थे जिन्होंने अत्यंत आत्म विश्वास के साथ एक और वर्धमान ज्ञान का उपयोग करते हुए प्राचीन सिद्धांतों का व्यापक आधार प्रदान किया है और दूसरी ओर पाश्चात्य वादा एक मता की बुद्धिपूर्वकता में निश्चित होकर, केवल एसे ही प्रकाश कला का ग्रहण किया जिनके पाठे विद्वानों का दृष्ट आचार्य का और जा भारत की मूलवर्ती चिन्ताधारा के अनुकूल थे।<sup>३</sup> डॉ० नगेन्द्र गजलजी द्वारा उद्घाटित परंपरा में परिगणित हामें। गजलजी के वात रस प्रवृत्ति के सबसे समय उन्नायक वे ही हैं।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के प्रति डॉ० नगेन्द्र के आक्षेप का एक और कारण रहा है। चकि रसवाद के अनातन ममथवा में अग्रणी हैं उह उन सभी सिद्धांतों में स्वाभाविक रचि है जो उनके रसवाद के अनुकूल हैं। पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र में भी, सयोग्यता, कल्पना और अनुभूति के तत्त्वों का ही प्राधान्य रहा है। वहाँ के साहित्य सजक और साहित्य चिंतक अनुभूति के कल्पनात्मक आस्वाद का ही साहित्य का प्राणतत्त्व मानने को बाध्य रहे हैं।<sup>४</sup>

तीसरी बात यह है कि डॉ० नगेन्द्र रस का—वाक्यास्वाद को—आनंदस्वरूप मानते हैं। पश्चिम में प्राचीन आचार्यों का बहुमत इसी पक्ष में रहा है कि रस आनंदस्वरूप है। इस सत्त्व में यह ध्यातव्य है कि डॉ० नगेन्द्र भारतीय काव्य

१ Jethro Bithell *Modern German Literature (1880-1950)*, London, 1959, pp 448 et seq

२ रस सिद्धांत, पृ० ७३।

३ उपरिचर, पृ० ७३।

४ उपरिचर, पृ० ७४।

चितका के मतो को उद्धृत करने के अनंतर पाश्चात्य साहित्य-मनीषियों की रस-विषयक मायताओं का सविस्तर विवरण प्रस्तुत करते हैं।<sup>१</sup> इसी प्रकार जहाँ वे आनन्द के स्वरूप का विवेचन प्रस्तुत करते हैं, वहाँ भी उनकी पद्धति स्पष्ट रही है 'भारत के सभी प्राचीन तथा अनेक आधुनिक आचार्य और उधर पश्चिम के भी अनेक मनीषी रस को एक प्रकार का अलौकिक आनन्द या अनुभव मानते हैं। प्राचीन आचार्यों ने रस की अलौकिकता की सिद्धि अत्यन्त आग्रहपूर्वक और पबल तर्कों के आधार पर की है।'<sup>२</sup> वर्तमान मनोविज्ञान की सहायता से ही वे अपने कतिपय सिद्धांतों की पुष्टि करने में सफल हुए हैं। रस के स्वरूप का विवेचन करते हुए उन्होंने पाँच विकल्पों की परीक्षा की है। दूसरा विकल्प यह है कि रस सुखात्मक भी है और दुःखात्मक भी। इसके सूक्ष्म विश्लेषण-परीक्षण के पश्चात् वे मनोविज्ञान का सहारा लेते हैं और तीसरे तथा पाँचवें विकल्प की समीक्षा में मनोविज्ञानिक स्थापनाओं की ओर संकेत करते हैं। रिचर्ड्स के काव्यास्वाद-विषयक निणयों का उल्लेख कर डॉ० नगेन्द्र अपने मत की पुष्टि करते हैं।

किंतु जसा कि पहले निवेदन किया गया है डा० नगेन्द्र का काव्य-दर्शन स्वच्छन्दतावादी मनोदृष्टि से ही उद्भूत हुआ है। अतः उसमें विधान की स्वीकृति अत्यल्प है। यदि डॉ० नगेन्द्र पर रिचर्ड्स का प्रभाव है तो इसका यह अर्थ नहीं कि वे अवसर पाकर भी रिचर्ड्स का विरोध नहीं करते, नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए "रस सिद्धांत" में रस के स्वरूप का विवेचन द्रष्टव्य है। इसमें कई स्थलों पर रिचर्ड्स के निष्कर्षों का उल्लेख है, परंतु साथ ही एक स्थल पर यह भी लिखा मिलता है कि "अपनी मायताओं के पूर्वग्रह के कारण दोनों (रिचर्ड्स और शुक्लजी) न केवल आनन्द शब्द को बचा ही गये हैं वरन् उसका निषेध भी करते रहे हैं।"<sup>३</sup> स्वच्छन्दतावाद सत्ताधिकार (आथोरिटी) का समर्थन नहीं करता। आलोचना के क्षेत्र में वह प्राचीन अमिजात लेखकों का अपना आदेश नहीं मानता और न अरस्तू द्वारा उद्भावित मायताओं को समर्थित करता है। डा० नगेन्द्र के लिए शुक्लजी आधुनिक हिंदी-समीक्षा के मेरुदण्ड मन्ते ही हैं, पर उनका निणय निष्कर्ष प्रत्येक स्थल पर भाग्य नहीं हो सकता। डा० नगेन्द्र के ग्रंथों में शुक्लजी के प्रति अपार श्रद्धा का प्रकाशन तो हुआ ही है साथ ही शुक्लजी के कतिपय सिद्धांतों का जसा संशय एव विश्वासप्रद खंडन डा०

१ उपरिक्त, पृ० १०३-१०५।

२ उपरिक्त, पृ० १११।

३ उपरिक्त, पृ० १०९।

नगेद्र ने किया है, वैसा कीर्तिलब्ध आधुनिक समीक्षका में अथ किसी ने नहीं किया ।<sup>१</sup>

जहाँ विश्व क वरेण्य समीक्षका से डॉ० नगेद्र को सहायता नहीं मिलती, जहाँ उनके विचार डॉ० नगेद्र को ग्राह्य नहीं दीखते अथवा जहाँ डॉ० नगेद्र के आधारभूत सिद्धांतों से उनका विचार का सामंजस्य नहीं होता वहाँ वे प्रत्यक्ष अनुभव<sup>२</sup> 'सामाज्य अनुभव'<sup>३</sup> और 'लोकानुभव' से प्रमाण एकत्र करत हैं प्रचलित मता के विरुद्ध 'व्यावहारिक शक्य' उठाते हैं और अतः, यह प्रमाणित करत हैं कि रस का अनुभूति प्रीतिकर ही है—वह आनन्दमयी चेतना ही है विवाद शाब्दिक है तार्किक नहीं। उनका विवेचन वहाँ भी पल्लवप्राणी नहीं है। इस दृष्टि से वह रिचर्ड्स की समीक्षा की तरह अतलस्पर्शी एवं अत्यंत विद्वत्तापूर्ण है। सबत्र सटाफ उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं, विश्व वाङ्मय का आलाङ्कित कर उससे पर्याप्त तथ्या का चयन किया गया है। विवेचनक्रम म नये-नये साहित्यिक रहस्या का उद्घाटन होता है, नयी-नयी समस्याओं की ओर संकेत और नव्यालोक म उनका समाधान हाता है। इसी क्रम म शुक्लजी के इस कथन पर कि "रम-दशा हृदय की मुक्तावल्या का नाम है" डॉ० नगेद्र ने हमें बताया है कि शुक्लजी की यह स्थापना अरस्तू के विवेचन सिद्धांत से प्रभावित है।

डॉ० नगेद्र के अनुसार 'काव्य का सीधा सबंध "जीवन की आन्तरिक प्रवृत्तियाँ" से है। मार्क्सवाद (प्रगतिवाद) जीवन की भौतिक अवस्थाओं और परिस्थितियों पर, आर्थिक समस्याओं और तदुद्भूत सामाजिक प्रतिक्रियाओं पर अधिक क्या अपना संपूर्ण बल देता है। डॉ० नगेद्र का विवेचन मनोवैज्ञानिकता है ही इसमें बौद्धिक आध्यात्मिक एवं रागात्मक प्रतिफलन पर अधिक बल दिया गया है। परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि वे हमेशा अपनी दृष्टि केवल इन्हीं अंत प्रवृत्तियों तक सीमित रखते हैं। 'रीतिकव्य की भूमिका' के दूसरे अध्याय म रीतिकव्य के शास्त्रीय आधार का साधारणतः ऐतिहासिक और विशेषतः सद्भातिक विवेचन उपस्थित किया गया है। परंतु काव्य म अभिव्यक्त अंत-प्रवृत्तियों के प्रति डॉ० नगेद्र म जा विशेष आग्रह और काव्य के सबंध म उनका जा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण है उसके फलस्वरूप वे 'भारतीय काव्यशास्त्र के मूल

१ उदा०, दे० रस सिद्धांत, पृ० १०८-१०९।

२ उपरिवत, प० १०९।

३ उपरिवत, प० ११८।

४ उपरिवत, प० १०६।

५ रीतिकव्य की भूमिका (दिल्ली, १९६४), प० क (भूमिका)।

सिद्धाता और उन पर आधारित संप्रदाय का नवीन साहित्यशास्त्र तथा आधुनिक मनाविज्ञान य मनोविश्लेषणशास्त्र के प्रकाश में ही विश्लेषण एवं स्पर्शकरण करते हैं।<sup>१</sup> हिंदी में ऐसा प्रयास विगम प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र का अध्ययन पश्चात्त्य मनाविज्ञान एवं अद्यतन काव्य सिद्धाता के प्रकाश में ही मनुष्य के महत्त्व का है। टी० एल० एलियट ने स्वच्छन्दावाद की छान्नी मुग प्रवृत्तियों से प्रभावित वर्तमान शताब्दी के तीसरे दशक में काव्यशास्त्रवादी काव्यधारा के महत्त्व की प्रतिष्ठा की, 'कलासिसिस्म' का समयन किया। डा० नगेन्द्र ने रीतिकाल के प्रति ऐसा ही स्वस्थ निर्भीक दृष्टिकोण अपनाया और जिन शब्दों में एलियट ने डाइडन और पोप के काव्य का अभिनंदन किया था कुछ बसे ही शब्दों में कहा कि 'रीतिकाव्य न है और न उद्देश्यीय इस रसात्मक काव्य का अपना विशेष महत्त्व है।' 'रीतिकाव्य की भूमिका' यदि अंगरेजी के किसी समीक्षा ग्रंथ की याद दिलाती है तो सदरलड रचित 'अ प्रेफिस टु एटिथ सेचुरी पाषटी' की। दोनों रीतिकाव्य की प्रामाणिक भूमिकाएँ हैं दोनों में समीक्षा का आरम्भ पठभूमि के विवेचन से हुआ है। दोनों में रीति साहित्य को सामाजिक धार्मिक तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों से अनुस्यूत किया गया है।

रस सिद्धांत और साधारणीकरण के विवेचन में डा० नगेन्द्र ने पश्चात्त्य मतों के साथ भारतीय विचारों के सामंजस्य पर भी प्रकाश डाला है। उन्होंने भारतीय तत्त्वदर्शियों और पश्चात्त्य मनोवैज्ञानिकों के दृष्टिसाम्य का उल्लेख किया है स्वप्नेश के अध्यात्मदर्शियों और विदेश के मनोवैज्ञानिकों के सुख-सद्वि विचार उद्धृत किए हैं। दोनों ने ही, डा० नगेन्द्र के साध्यानुसार, आनंद की स्थिति को हमारे अपने अंतर की चीज माना है। भारतीय दर्शन में सुख (सु=सुलभ स्व=आकाश व्यापित) को आत्मा का विस्तार कहा गया है आनंद अपनी ही अस्मिता वृत्ति का आस्वादन है मैं हूँ यही रस का सारतत्त्व है। विदेश के मनाविज्ञान में भी सुख और आनंद को सिस्टमेटाइजेशन या इम्पलसेज कहा गया है।<sup>३</sup> डा० नगेन्द्र आनंद की इस परिभाषा तक ही अपने को सीमित नहीं रखते। वे पश्चात्त्य मनोवैज्ञानिकों के समक्ष उपस्थित तीन प्रश्नों का उल्लेख करते हैं<sup>४</sup> और हेडोनिस्ट तथा होरमिक संप्रदायों के आनंद

१ रस सिद्धांत, प० क (भूमिका)।

२ उपरिचत, प० ख (भूमिका)।

३ उदाहरणार्थ दे० मेलविन रेडर (सपा०), 'ज माइन बुक आव इस्थेटिक्स (ऐन ऐन्थॉलोजी)', न्यूपाक, १९६२, प० ४४४।

४ रीतिकाव्य की भूमिका, प० ६२।

मगधी मता को उद्धत कर विवेचन को सर्वांगपूर्ण बनाने का प्रयत्न करते हैं। पश्चिम में आनन्द-सवधी दो मत हैं और उनके अनुयायियों के स्वभावतः दा मप्रदाय। 'हिडोनिस्ट' <sup>१</sup> सम्प्रदाय जीवन की समस्त क्रियाओं का लक्ष्य आनन्द प्राप्ति कहता है और इस कारण आनन्दवादी है। दूसरा, जो हारमिक है कहता है कि जीवन की क्रियाएँ अपने से भिन्न कोई इतर लक्ष्य नहीं रखती—य अपना लक्ष्य आप ही है। इनमें पहला मत, जो जीवन को साधन तथा आनन्द को साध्य मानता है, भारतीय आदर्शशास्त्री विचारधारा के अनुकूल है और दूसरा, जो जीवन का ही जीवन का अंतिम लक्ष्य मानता है, वैज्ञानिक वस्तुवाद के अनुकूल। यह दूसरा मत ही अधिकांश मनोवैज्ञानिकों के लिए समर्थनीय है। वे आनन्द को लक्ष्य न मानकर उसे अनुभूति अथवा भाव की विधि मात्र मानते हैं और काव्य में आनन्द ही साध्य है, इस मत का खटन कर रहे हैं। वे आनन्द की सत्ता को स्वीकार ता करते हैं पर उसे अनिश्चित नहीं मानते। यही डॉ० नगेन्द्र एक पादटिप्पणी में डॉ० रिचर्ड्स की कुछ महत्वपूर्ण पंक्तियों को उद्धृत कर अपने विवेचन का परिपुष्ट करते और साधनतावादी विचारधारा का दृष्टांत उपस्थित करने हैं, पर मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत वैज्ञानिक वस्तुवाद और 'जीवन को ही जीवन का अंतिम साध्य माननेवाले सिद्धांत में उन्हें शाब्दिक सूक्ष्मता के अतिरिक्त कोई विशेष ठोस तथ्य दिखलाई नहीं पड़ता।<sup>२</sup>

यद्यपि डॉ० नगेन्द्र 'अधिकतर मनोवैज्ञानिकों' का विरोध और उनके 'वैज्ञानिक वस्तुवाद का खटन कर रहे हैं' फिर भी उनकी विवेचना-पद्धति मना वनात्मिक सरणियों पर ही गतिशील है। वे आनन्द की प्रकृति का बड़ा ही विशद विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।<sup>३</sup> इस विश्लेषण की आधारभूमि मनोविज्ञान है जिसमें लेराक की गति असाधारण दीखती है।

आचार्य नगेन्द्र ने काव्यानन्द के स्वरूप के विवेचन में भी पश्चात्य आचार्यों के मत उद्धृत किए हैं। जहाँ पौरस्त्य आचार्यों ने काव्यानन्द को अलौकिक और

१ दे० Fliseo Vivas and Murray Krieger (eds ) *The Problems of Aesthetics* (New York etc , 1963), pp 307 et seq 370-372, Melvin Rader, *A Modern Book of Aesthetics* (New York 1962), pp 62 et seq , 89 et seq , 127 129 etc

२ रीतिराय की भूमिका, पृ० ६३।

३ उपरिचत, पृ० ६४।

आनवचनीय बह्वर मुक्ति पा ली है पाश्चात्य समीक्षा और चिंतका ने उम पर मनन किया है जिसके फलस्वरूप पश्चिम में 'उसके स्वरूप का इतिहास रोचक रहा है।'<sup>१</sup> आद्याचार्य प्लेटो ने काव्यानुभूति को सौंदर्यानुभूति से भिन्न कहा है। उनके मतानुसार जहाँ सच्ची सौंदर्यानुभूति आत्मा की अनुभूति है, वही काव्यानुभूति नितांत ऐंद्रिय अनुभूति है और इस कारण निम्नकोटि की तथा अस्वस्थ है। प्लेटो के उद्भट शिष्य अरस्तू ने भी काव्यानंद को ऐंद्रिय आनंद की काटि मही रखा है, परंतु उसने उसे मिथ्या नहीं माना। शताब्दियों तक पाश्चात्य समीक्षकों के मानस पटल ऐसे मतवादा से आच्छादित रहे। धीरे धीरे प्लाटिनस के अवतरण के साथ इन विचारों में परिवर्तन हुआ और काव्यानुभूति आध्यात्मिक अनुभूति की कोटि में परिगणित हुई। डॉ० नगेन्द्र ने क्रोचे द्वारा विवेचित प्लाटिनस के सिद्धांतों को उद्धृत कर उसके महत्त्व का निदर्शन किया है। प्लाटिनस ने ही सब प्रथम 'कला का सौंदर्य के साथ तादात्म्य करते हुए उसे आध्यात्मिक अनुभूति का गौरव प्रदान किया।<sup>२</sup> भिन्न भिन्न युगों में काव्यानुभूति के प्रति पश्चिम के क्या दृष्टिकोण रहे हैं, इसका बड़ा ही सारगम्य एवं स्पष्ट विवेचन डॉ० नगेन्द्र ने रीतिकार्य की भूमिका में किया है।<sup>३</sup>

काव्यानुभूति-संबंधी भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों का आकलन समीक्षण प्रस्तुत करने के पश्चात् डॉ० नगेन्द्र ने आई० ए० रिचर्ड्स के तद्विषयक सीधे और प्रबल सिद्धांतों से अपनी सहमति प्रकट की है। (क) काव्य की अनुभूति प्रत्यक्ष ऐंद्रिय अनुभूति नहीं हो सकती। यदि काव्यानंद को प्रत्यक्ष ऐंद्रिय आनंद मान ल—जसा प्लेटो और ड्यूवाय ने माना है—तो शायद जुगुप्सा आदि की अभिव्यंजना से प्राप्त अनुभूति शोक और जुगुप्सामय ही होगी। परंतु ऐसा नहीं होता। काव्यानुशीलन से प्राप्त आनंद वैसा नहीं होता, जसा सरकस देखने से मिलता है। (ख) आदर्शवादी आचार्यों के मतानुसार जिसमें हीरोस और रवीन्द्रनाथ के मत भी सम्मिलित हैं, काव्यानंद विशुद्ध आत्मिक आनंद है। मानवात्मा सहज सौंदर्यरूप और आनंदरूप है तथा काव्य उसी आत्मा का व्यक्तिकरण है। इसलिए काव्यानुभूति स्वभावतः आत्मिक अथवा आध्यात्मिक अनुभूति है। परंतु यह मत भी स्वीकार्य नहीं है, कारण—प्रथमतः आत्मा की सत्ता ब्रह्मा को माय नहीं है और फिर काव्यानंद में स्पष्टतया वर्तमान अस्थिरता

१ रीतिकार्य की भूमिका, पृ० ६५।

२ उपरिच्युत, पृ० ६६।

३ उपरिच्युत, पृ० ६६-६७।

और चपलता आदि की स्थिति को आत्मा के विगुद्ध अचंचल आनंद का रूप-प्रकार नहीं माना जा सकता। (ग) ऐटिसन के अनुसार काव्यानंद कल्पना प्रसूत आनंद है यह मूल वस्तु और उनके काव्यांकित स्वप्न की तुलना से उत्पन्न होता है। इस मूल को अस्वीकार करने का कारण यह है कि 'कल्पना मन (सूक्ष्मेन्द्रिय) और बुद्धि की क्रिया मान है, स्वतंत्र सत्ता नहीं।<sup>१</sup> इस प्रकार कल्पना से उद्भूत आनंद ऐत्रिय तथा बौद्धिक आनंद ही ठहरता है। (घ) ब्रौचे के अनुसार काव्यानंद सहजानुभूति का आनंद है, परंतु मनाविज्ञान सहजानुभूति को स्वतंत्र शक्ति के रूप में स्वीकार नहीं करता। (ङ) अन्ततोगत्वा, बुद्ध आचार्यों ने काव्यानंद का अर्थ आर स्वतः सापेक्ष कहकर समस्या का सुनधाने की कोशिश की है, परंतु ऐसे मतावलम्बी आचार्य वस्तुतः समस्या से पलायन करत हैं, टक्कर नहीं तत।

संस्कृत साहित्यशास्त्र में न मिलनवाली परिभाषाओं और विवेचना की ओर भी डॉ० नगेन्द्र संकेत करत चलते हैं और आवश्यकतानुसार इस अभाव की पूर्ति पाश्चात्य साहित्यशास्त्र से करना चाहते हैं। जेम्स, स्टाउट, मकडूगल आदि पाश्चात्य लेखकों की रचनाओं ने उन्हें प्रभावित किया है। भावा और मनावेगा के विवेचन में उन्होंने—पाश्चात्य मनोविज्ञान से—प्रभूत सामग्री ली है, उनकी परिभाषाओं को रूपांतरित कर हिंदी में सब-सुनम बनाया है और माय ही संस्कृत काव्यशास्त्र को पाश्चात्य मनोविज्ञान से अनुस्यूत कर साहित्यालोचन की एक नव्य प्रणाली का प्रवर्तन किया है। डॉ० नगेन्द्र ने प्रायः सब भारतीय एवं पाश्चात्य मतों का युगपत् विवेचन किया है 'रीतिकव्य की भूमिका', 'भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका'<sup>३</sup> और 'विचार और विवेचन', 'विचार

१ उपरिचत, प० ६८।

२ डॉ० ए० सी० ब्रडले आदि।

३ भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका (दिल्ली, डि० स० १९६३) में भी समीक्षा पूर्व-पश्चिम के अंतराल से प्रवाहित होती और अनेकानेक अन्य दृष्टीय प्रभावों को समेटती हुई चलती है। भारतीय काव्यशास्त्र को आधुनिक मनोविज्ञान की उपपत्तियों के आलोक में परखा गया है और साथ ही इस उद्देश्य से कि प्रमाता को विवेच्य विषय का यथेष्ट सर्वांगीण परिचय मिले, रीति के प्रकार तथा 'पाश्चात्य काव्यशास्त्र' में रीति का वर्णन है। इसी प्रकार वक्रोक्ति सिद्धांत का विवेचन आचार्य कुतक तक ही सीमित नहीं रखा गया—इसमें 'पाश्चात्य काव्यशास्त्र में वक्रोक्ति' भी समाहित



धीरे विरलपण तथा 'सुगुणाधीर धाराणा' व मज्जीति समीपा म गयत्त तियया म पूर धीर परिणम गा, प्राणी धीर धारा णि वा मनुना गन्तीर-मपाय उपस्थित तिया है ।

प्रगतिवादी समीपा

हिन्दी की प्रगतिवादी समीपा व धारापरून जिज्ञा पाश्चात्य भावर्गीय विचारधारा म यस्त है । प्रयागचन्द्र गुप्त, डॉ० रामनिनाथ मर्मा, भ्रमून्नाय, निवन्नासिंह धीरान प्रभृति प्रगतिवादी समीपाय सजगात्मन टुनिया व धाह्यर्गी तत्त्वा पर ध्याय केन्द्रित करा है इनन रूपात्मन निर्माण-योगल धीर इनम प्रयुक्त रिम्बो तथा प्रतीना की भयवत्ता पर ध्याय नहीं दत । भावर्गीय साहित्य-चितन व अनुसार सजगात्मन साहित्य एसा हो णिम साहित्यकार वा सजग सामाजिक चेतना वा पूरी गजीरगी म परिवर्य मिल जिमम ब्यक्त सामाजिक यथायद्दृष्टि<sup>१</sup> जन-साधारण म 'जडना निष्क्रियता तथा परमुग्धता' व स्याय पर भ्रमय उत्साह दड गारुक्ता तथा आत्मप्रत्यय वा सञ्चार करे धीर जा समाजवादी जीवन-धाय तथा सहयोग पर आधत हा । रूसी कलाटुनिया की शक्ति वा रहस्य इम बात म है कि वे जन-समूह तथा साम्यवा<sup>२</sup> व लिए विण गए सधपों से अभिन्नतया सयद्ध रही हैं । रूसी कलावा धीर कलाकारा न नम समाज की निर्माण व्यवस्था एव श्रमजीविया के प्रणिणन म अप्रुव सहायता की

है । डॉ० नगेन्द्र पश्चिम के आयाचाय प्लेटो से लेनर स्वच्छदतावादी रीति-कारों के विचारों की सूक्ष्म गहन व्याख्या प्रस्तुत करते ह और यत्रोक्ति-प्रकरण मे श्रोचे तय आ पहुँचते ह ।

- १ डॉ० शिवकुमार मिश्र, प्रगतिवाद (दिल्ली, १९६६), प० ४५ । पाश्चात्य भावर्गीय विचारधारा जीर समीपा पर स्वभावत अनेकानेक प्रय उपलभ्य ह । 'भावसवादी धारा की निष्पक्ष विवेचना' के लिए देखिए धमवीर भारती, प्रगतिवाद एव समीपा (इलाहाबाद, १९४९), 'साहित्य और समाज के विभिन्न पक्षा तथा रचनाओं के प्रगतिपरक विश्लेषण' के लिए ममथनाथ गुप्त, प्रगतिवाद की रूपरेखा (दिल्ली, १९५२), 'ताधुनिक प्रगतिशील साहित्य की समस्त प्रवृत्तिया की व्याख्या' के लिए डॉ० रामेय राधय, प्रगतिशील साहित्य के मानवण्ड (आगरा, १९५४) इत्यादि । प्रगतिवादी समीपा पर छिट पुट निवधो जीर हल्के सरते प्रथा की सत्या अपरिभय है ।

है। साहित्य और कला का सवागीण विकास उन जीवित समस्याओं से पृथक नहीं किया जा सकता जिन्हा सत्रघ देश की सस्कृति एव आर्थिक स्थिति से हाता है। दुभाग्यवश समान म ऐसे भी दुराग्रही एव पारपरीण मान्यताओं के समर्थक व दिन मिलते ह जा नव्यता के शत्रु ह। य लाग वास्तविकता तथा जनममूह के हिता मे तटस्थ रहकर प्राचीन गतानुगतिक पद्धतिया, अघविश्वासा एव व्यवस्थाओं पर ही अटल रहत हैं।

प्रगतिवादी समीक्षक यथाथ के प्रति लेखक के दृष्टिवाण का प्रतिप्रिबन और विश्लेषण करता है। उसके मतानुसार साहित्य उस समाज का यथातथ्य स्फारन है जिसम उसकी सृष्टि हाती है। विरोध-वपम्य मे आक्रान्त, आर्थिक अराजकता स ग्रस्त एव विश्वयुद्ध म अपनी समस्याओं का समाधान ढढनेवाले समाज मे रचा गया साहित्य न तो स्वस्थ हो सकता है और न मानवता का सच्चा उत्रायक ही। इसी कारण, मार्क्सवादिया के अनुमार अमरीकी साहित्य और वहा की समीक्षात्मक कृतियां अस्वस्थ तथा कुठाग्रस्त हैं। यहा के लेखक यथाथ से दूर किसा स्वप्निल नदावन म रहन हैं प्रगतिवादी लेखक पुराणपथी प्रवृत्तिया की जगह गत्यात्मक यथाथ की अभिव्यक्ति देता है और जानता है कि आज का यथाथ अप्रतिम है और इसका अपना अस्तित्व तथा वैशिष्ट्य है। उसके अनुमार जन-जमे यथाथ म परिवर्तन होता है हमारे मान मल्य भी परिवर्तित हात है—वाँई मापदंड स्थिर-स्थायी नहीं होता यदि कुछ शाश्वत है तो केवल अस्थाय अथवा परिवर्तनशीलता ही। हमार प्रतिमान जो सस्कृति शीलाचार तथा नतिकता के मापदंड मात्र है उतना ही परिवर्तनशील होते हैं जितनी सत्ता की प्रकृति है। (उदाहरणार्थ यदि सोलमन का अद्वागिनी वाथर्शावा जो रूप लावण्य म अप्रतिम थी, आज प्रकट हा जाय तो दशक उसे धर्मी रूपवती मानने को तैयार न होंगे, जमी वह मालमन तथा अपने सामयिका की सृष्टि म थी। इसी प्रकार कुछ वप पहले समीक्षक मे रचित एलेजी रिटन न्त अ कण्टी चचयाड शीपक कविता का अंगरेजी की उत्तमोत्तम कविताओं म परिगणित करने थे पर सप्रति वह एक अच्छी कवितामान रह गई है।)

### प्रकाशचंद्र गुप्त (१९०८)

प्रकाशचंद्र गुप्त ने मार्क्सवादी आलोचना की बड़ी ही सुंदर विशद व्याख्या प्रस्तुत की है

मार्क्सवादी आलोचक कला को संपूर्ण सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था और उसके विकास का एक अंग मानत ह। वे कला का उसके

तथा समाज का दर्पण कहा है। शर्माजी एमे साहित्य का गुण्टि क निए शृनगमन्द है जिमम बेचल थीमाना श्रीर रगिकजना की अमिररिचि का म्पाजन न हो। उनकी इन म्पापनामा ग स्पष्ट है कि (क) कता व्यभिन्न विगेष का नहा वरन् समष्टि का दर्पण है (ग) कता कता के निए नहा होना (ग) लगा क उत्कप अणवप का मानद समाज का ययातम्य निरण हाता है। मागमादा समीणा की व्यापनता श्रीर इससे मायाम का अनुमात इन सरन निष्पत्तौ स नही किया जा सकता, परंतु ये सिद्धांत प्रगतिवाद के मूलाधार हैं।<sup>१</sup>

कला के प्रति सामाजिक दृष्टिवाण अणनाने के लिए सर्वाधिक प्रयाम माकम के समसामयिक प्रामीती आलोचक टेन न किया था। समाज विद्वान क क्षेत्र म यद्यपि वह कोई महान् व्यक्ति नहा हुआ, फिर भी उसन कला का एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप म दखकर उसका जसा सर्वांगीश्र श्रीर विविधत अनुशीतन किया वसा माक्स ने भी नही किया था। उन्नीसवी शती के अन्त चितका का भाति टेन भी विज्ञान की बहुमुखी सफनतामा से प्रभावित हुआ था। माकमवाण लख-विचारक विज्ञान द्वारा समाज श्रीर देश की आधिक उन्नति वरन म विश्वास करत है। टेन साहित्य का अध्ययन नियतत्ववादी सिद्धाता के अनुसार करना चाहता था—वह कहता था कि हम उन कारणा का अध्ययन करना चाहिए ज साहित्य का निर्माण करते हैं श्रीर उस स्वरूप को निर्धारित करत है जिसन साहित्य ढलता है। माक्स की तरह वह भी कला को उसके सामाजिक परिवेश म रखता था। उसके अनुसार कला कोई रहस्यमयी प्रतिभाप्रसूत एव अज्ञात वस्तु नहा है, यह न तो व्यक्तिक कल्पना की उमुक्त उदान है श्रीर न आवेगमयी आत्मानुभूतिया का सहज उच्छलन। इसका उमीलन कुछ ऐसे सामाय गुणा से, बुद्धि श्रीर हृदय की कुछ ऐसी विशेषतामा से होता है, जो कलाकार के समाज म दृष्टिगत हाते है। टेन के अनुसार जाति परिवेष्टन श्रीर युग का त्रयम ही समस्त साहित्यिक श्रीर, वस्तुतः, समस्त सामाजिक उपलधिदा का एकमात्र कारण है।

१ शर्माजी के विचार क्रिस्टोफर कॉडवेल की इन पक्षितया से प्रतिध्वनित हो रहे ह

Art is the product of society as the pearl is the product of the oyster and to stand outside art is to stand inside society. The criticism of art differs from pure enjoyment or creation in that it contains a socio-logical component. *Illusion and Reality* pp 10 et seq

कला के प्रति ऐसे दृष्टिकोण को अनव सीमाएँ हैं। डॉ० शर्मा ने साहित्य को 'समाज का दर्पण और टेन ने उपन्यास को 'युग का दर्पण' कहा है। उस विचारधारा का तत्कालीन गठन इन शब्दों में हुआ है

यह कथन कि युग अपनी अभिव्यक्तियाँ न भिन्न होना है अथवा विश्वास है। कलाकृतियाँ युग विशेष की अभिव्यक्ति नहीं होनी, युग-निर्माणी होनी हैं। डिबेन्त के सारे उपन्यास टेनिसन की सारी कविताएँ प्री रफेनाइट और ऐकडेमिक चित्रण, बल्लर और थॉर्नहाफ्ट की शिल्पकला—इन सबको निकाल दीजिए और इन सिद्धांत प्रक्रिया को तब तक जारी रखिए जब तक युग की समस्त महान कृतियाँ निकल न जायें, तब देखिए विकटारियन युग में बच ही क्या रहा है? (उत्तर मिलेगा) इसका दर्शन, विज्ञान राजनीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र। किन्तु, यदि हम यह भी अनुमान कर लें कि प्रथम युग की कला ने प्रभावित नहीं हुए थे—जो तथ्य व सवधा विपरीत है—तो भी अपनी कलाकृतियों के बिना उन युग का पहचान नहीं जा सकता।<sup>१</sup>

कला का युग का दर्पण मानना एक आरंभ कठिनाई है। दर्पणवाला सिद्धांत ललित कलाओं की अनुपममयता और विशिष्टता की सवधा उल्लेख करना है। इसके विपरीत दर्पण में उन वस्तुओं का केवल द्विगुणीकरण (डुप्लिकेशन) ही होता है जो उसमें प्रतिबिम्बित होती हैं। व दर्पण के चित्र में वेनी ही दिवनाई पड़ती हैं, जमी व दर्पण के बाहर होती हैं। किन्तु यह बात उन सामाजिकमायताओं एवं मूल्यों पर घटित नहीं होती जिनका समावेश कला कृतियों में होता है। यहाँ ये मूल्य कला व सवदनात्मक भाष्यम<sup>२</sup> में रूपायित तथा साहित्यिक रचना में व्यक्त हो जाते हैं। कला का उद्देश्य जीवन का प्रतिबिम्बन नहीं जीवन का पुनर्निर्माण है 'मृगम का मूत्र बनाकर वाग्मविकला के परिधान में प्रस्तुत करना है। इन पुनर्निर्माण को ही हम कला की सच्ची आत्मा कह सकते हैं कला व प्रभाव और उसकी शक्ति का यही स्रोत है। यदि कला का लक्ष्य जीवन का प्रतिबिम्बन है तो 'अभिमान शाकुन्तल' कला नष्ट है 'मेकवेय' और पराडाज लॉस्ट' कलाकृतियाँ नहीं हैं। तत्त्वतः कविता

१ जेरेम स्टालिनज, इन्ट्रिडक्शन एण्ड फिलॉसफी ऑफ आर्ट क्रिटिसिज्म (केम्ब्रिज, १९६०), पृ० ४६०।

२ सेसरी मोडियम।

मनुष्य को इसी कारण सर्वाधिक प्रिय रही है कि 'वह उमरे ममत्व की भूमि मिटाने में सबसे अधिक समय सिद्ध हुई है—उसके राग-द्वेषों का सजस मुँदर प्रतिनिधि है।' कवि के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह अपनी कविता को यथाय जीवन का आलावृत्ति बनाय। फिर क महान् कविता न अपनी कृतियाँ म असाधारण ध्यवित्या के चरित्र अग्नि किए हैं और उनमें असाधारण घटनाओं को समाहित किया है। उहान राग द्वेषों के मूल मनाहारी वणन पर अपेक्षया अधिक ध्यान दिया है न कि यथाय के रूपावन पर।

लेखक और जनता शीघ्र निवध में तन्मूण विवचन और गामीय के स्थान पर भावुकता तथा वाकपटुता मिलती है गहनता और कसावट की जगह विस्तारमयी ध्यासप्रधान शली के दशन होत है। विवेचन असमारी ही गया है। पश्चिम के मार्क्सवादी आलाचका से भी यही शिकायत रहती है। प्राय प्रचाररत होकर वे समीक्षा के स्थान पर भावावशजय अभिभाषण लिखत हैं उनके शब्दा और पदा के वणसाम्य तथा अनुप्रास वगध्य एव भावुकता के अकाट्य प्रमाण उपस्थित करते हैं। प्रगति और परपरा में डा० रामविलास शर्मा की भाषा शली मार्क्सिय समीक्षा की प्रतिनिधि भाषा शली है। इसकी अनवानेक पक्तियाँ भावोष्ण हृदय से उदगत और कल्पना की आकाश-गंगा से धरती के हृदय को सरस बनाती हुई जान पडती है।<sup>३</sup>

प्रगतिवादी लेखका की, चाहे वे पाश्चात्य हो या पौरस्त्य अपनी विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली और गद्य शली होती है ऐसे तो इनके लिए कोई भी शब्द, सिद्धांततया अप्रयोग्य एव अप्रिय नहा है, फिर भी इन लेखका में कई शब्दा के प्रति विशेष आसक्ति देसी जाती है। लेखक और जनता के प्रथम पृष्ठ पर 'राजनीति' शब्द का प्रयोग उनीम पक्तियाँ म आठ बार हुआ है। अयाय शब्द जिनसे यह लेख आपूरित है और जिनका बार बार प्रयोग हुआ

१ डा० नगे २, साकेत एक अध्ययन (आगरा, स० २०२१), प० १४।

२ उदाहरणाय, हावड फास्ट की 'लिटरेचर एण्ड रीयलिटी' नामक पुस्तक का पृष्ठ ६ देखिए। ("हाडली एनीथिंग इन माडन लाइफ इज पोर्टेसली अ थाउजण्ड टाइम्स मोर लेयल।")

३ उदाहरणाय, दे० प्रगति और परपरा (इलाहाबाद, १९४८), प० ४४ ("जिसका मनोबल क्षीण हो गया है, जो जीवन-सपना में पीठ दिखाता है, जिसके कण्ठ से गद्य के लिए ललकार फूटने के बन्ने आत्तनाद सुनाई देता है, वह अमर पद का दावेदार कैसे हो सकता है ?")

है ये है समाज, उत्तरदायित्व, स्वाधीनता-पराधीनता, सामंती, साम्राज्यवाद, दरदारी (या दरज़ार), प्रतित्रियावादी, प्जीवादी इत्यादि। 'संस्कृति और साहित्य' (१९४८), 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ' (१९४४), "लाक जीवन और साहित्य", "आस्था और सौंदर्य" (१९६२) आदि रचनाओं में सगहोत निवघा की भाषा शली भी इमी प्रकार की है और इनमें मार्क्सवादी विचारधारा की ही मता अभिव्यक्ति हुई है।

"भाषा और समाज" (१९६१) शर्माजी की सर्वाधिक विद्वत्तापूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण कृति है। जिस भाषावैज्ञानिक की रचनाओं और शोधों से शर्माजी ने तथ्य संग्रह किए हैं, उनमें अधिकांश भाषाविद् पश्चिम के ही हैं। चाइल्ड, मार्क्स, मूरनड ग्रियसन यस्पसन, टी० राइस होल्म्स आदि सक्डा मनीषियों की रचनाओं से लखक को प्रभूत उपयोगी सामग्री उपलब्ध हुई है पर उसका दृष्टिकोण, मूलतः, समाजवादी और मार्क्सवादी है। उदाहरणार्थ, ससार की अर्थ प्रतित्रियाओं की तरह शर्माजी भाषा को भी संश्लिष्ट प्रवाह के रूप में देखना चाहते हैं और उसकी मापेक्ष स्थिरता और प्रवहमानता के कारणों का पता लगाने की सलाह देते हैं।<sup>१</sup> उनके अनुसार ससार की वस्तुएँ एक-दूसरे से नितात अलगाव की दशा में नहीं हैं। इनमें परस्पर सहयोग है और सघप भी।<sup>२</sup> भाषा का कोई भी तन्त्र अपरिवर्तनशील नहीं है।<sup>३</sup> मार्क्सवाद जीवन को ही एक सचल सत्ता मानता है और गतिहीनता का मृत्यु का नामांतर कहता है। मार्क्स के अनुसार प्रत्येक वस्तु-मत्ता में एक द्वन्द्व निहित होता है, इसलिए प्रत्येक वस्तु को एक ही साथ यथाथ और अर्थयथा मानना पडता है। वस्तु में अतः प्रतिष्ठित यह द्वन्द्व ही गति की मूल प्रेरणा रही है।<sup>४</sup>

टा० शर्मा की अंगरेजी पुस्तक 'स्टडीज इन नाइनटीथ सेचुरी इंग्लिश पोयट्री' (१९६१) इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि उन्होंने अंगरेजी साहित्य का समुचित अध्ययन अध्यापन किया है। भारतीय विद्यार्थियों के लिए श्रमपूर्वक लिखे गए इस ग्रन्थ की उपयोगिता निर्विवाद है, परंतु अंगरेजी भाषा-साहित्य में

१ भाषा और समाज (दिल्ली, १९६१), पृ० ४८९।

२ उपरिखत, पृ० ४९३।

३ उपरिखत, पृ० ४९४।

४ सेलेक्टेड वक्स ऑव काल मार्क्स, १, पृ० ४२१। गति की द्वान्द्विक प्रकृति के संबंध में एंजेल्स के विचारों के लिए द्रष्टव्य Anti Dühring PP 179 et seq

ऐसी पुस्तकें बाईं दिशिष्ट स्थान नहा रखनी। इनका एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि इनमें अधिकांश पुस्तकें परीक्षापयोगी हानी हैं और उनमें निबन्धन का स्तर अति सामान्य एवं निम्न होता है। डॉ० शर्मा ने अपने प्रकृत मार्क्सवादी दृष्टिकोण में उन्नीसवीं शती की अंगरजा कविता का मूल्यांकन नहीं किया है। समस्त इंग्लिश इसमें उनकी प्रतिभा की स्वाभाविक अभिव्यक्ति नहा हो पायी है।

### शिवदानसिंह चौहान (१९१८-)

शिवदानसिंह चौहान के अनुसार प्रगतिवाद न पढ़नी बार माहित्यालाचन को एक धार्मिक जीवन-रथन का आधार दिया है परतु इसका यह अर्थ नहा कि प्रगतिवादी समीक्षा साहित्यकार को कला-वस्तु या कला रूप-सवधी निर्देश द।<sup>१</sup> स्पष्टतः, श्री चौहान टेन मार्क्स और काउक्ल से प्रभावित हैं। पश्चिम के प्रति उनका दृष्टिकोण बुरी है जा अधिकांश मार्क्सवादिया का है। पश्चिम का ह्यासामुख्य पूजीवाद का विकृतियों से पूणतया आक्रांत समझत हैं और कहत ह कि वहाँ के रक्षा म मत्या का तर्जी से विघटन हो रहा है और वहाँ के साहित्यकारा और कलाकारा म व्यक्तिव स्वतंत्रता और रचनाकार की ईमानदारी के नाम पर नतिक दृष्टि से मानवद्रोही राजनीतिक दृष्टि से प्रतिक्रियावादी तथा 'यस्त स्वार्थों की पोषक प्रवृत्तिया जो पकट रही हैं।' चौहानजी का यह दृष्टिकोण एक व्यक्ति विशेष का दृष्टिकोण नही है काउक्ल हावड पास्ट जाज टामसन प्रमनि लेखका म इसकी अच्छी अभिव्यजना हुई ह। परतु यहां यह भी ध्यात य है कि चौहानजी समाजवादी प्रगतिशीलता के पाषक-समयक ह इसलिए उनकी दृष्टि म व्यक्तिवाद पूजीवादी समाज व्यवस्था की अराजकता को प्रतिबिंबित करनेवाली प्रवृत्ति है।<sup>३</sup> चौहानजी की रचनाओं म प्रगतिवाद की पूण विवक्ति और इसकी विशेषताओं का पूण व्यक्तीकरण हुआ है। इन विवक्ति और व्यक्तीकरण का आधार मार्क्स और उसके समयका की रचनाएँ हैं।

अमतराय (१८२१-) की साहित्य म समुक्त मोचा और नयी समीक्षा प्रगतिवादी रचनाएँ हैं। इनमें पहली कृति प्रगतिवादी आन्दोलन के उत्थमक एवं विकास का शृललावद्ध इतिवत्त है और दूसरी आलोचना के

१ साहित्यानुशीलन (दिल्ली, १९५५), प० १७।

२ साहित्य की समस्याएँ, (दिल्ली, १९५९), प० ५।

३ उपरिबत, पृ० ७।

भावमवादी आधार, समानवादी यथाथवा, मक्लिम गोर्की, धमरीकी साम्राज्यवाद आदि का विवचन प्रस्तुत करती है।

डा० नामवर सिंह (१९२०- )

डा० नामवर सिंह की प्रायः सभी आलोचनात्मक एवं भाषाशास्त्री रचनाएँ म पाश्चात्य तत्त्वा का विनियोग मितता है। हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग का मूल विषय, जैसा कि पुस्तक के शीर्षक में ही स्पष्ट है एक प्राचीन भारतीय भाषा का विवेचन है और इसकी रचना का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि हिंदी अपभ्रंश की जीवन परंपराओं को लेकर आगे बनी है।<sup>१</sup> फिर भी लेखक न मूल अपभ्रंश सबंधी पाश्चात्य ग्रंथपुष्पाएँ से लाभ उठाया है। अपभ्रंश के उद्भव और विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए उमर आल्फ्रेड मास्टर के साथ के अनुसार यह कहा है कि उद्योतन की 'कुबलय भागा वहाँ' (आठवाँ शताब्दी ईस्वी) तथा पुष्पदन्त के महापुराण (दसवाँ शताब्दी ईस्वी) में अपभ्रंश के लिए अवसर और अवहल शब्द मिलते हैं। आल्फ्रेड मास्टर का यह निबन्ध 'ग्रीनिंग फॉर्म कुबलय माला वहाँ' डाक्टर सिंह के मतानुसार महत्वपूर्ण रचना है<sup>२</sup> परन्तु व प्रतिकृत भाव से आल्फ्रेड मास्टर के निष्कर्षों का मानने में संतर्क कर देते हैं। आल्फ्रेड मास्टर की यह सम्मति उद्दे युक्तिमगत नहीं लगती कि डा० तगारे द्वारा प्रस्तुत अपभ्रंश का क्षेत्रीय विभाजन उचित है। मास्टर को आपत्ति है अपभ्रंश के पूर्वी भेद पर जब कि आपत्ति नहीं चाहिए उसके दक्षिणी भेद पर।<sup>३</sup>

पतञ्जलि वृत्त 'महामाष्यम' के कीलहान संस्करण के आधार पर डा० नामवर सिंह कहते हैं कि अपभ्रंश शब्द अत्यंत प्राचीन है और गग्रहकार व्याडि का 'स शब्द' की जानकारी थी। व्याडि का उल्लेख पतञ्जलि ने अपने महामाष्य में किया है जिसमें स्पष्ट है कि व्याडि पतञ्जलि के समय (धमरी शती ईस्वी पूर्व) में पहेल हुए थे। डाक्टर माहव के विवचन से स्पष्ट है कि व अपभ्रंश का दशमया मानते हैं। इस सदन में उद्दान भाषावैज्ञानिका के दा वर्गों की आर

१ डा० नामवर सिंह, हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग (प्रयाग, १९६५), पृ० २५४।

२ मास्टर का उक्त निबन्ध बुडेदिन ऑव ओरियण्टल एण्ड अफ्रिकन स्टडीज, जिंद १३, खंड २ और ४, में प्रकाशित हुआ था। दे० उपरिबत, पृ० ४३।

३ हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ० ६०।



सकेत किया है एक ओर पिशेल, प्रियसन, मण्णारकर चटर्जी, बुलनर जस विद्वान है जो अपभ्रंश का देशमापा मानत है । दूसरी ओर याकाबी, काय, ज्यूल व्नारा अल्सडोक प्रभृति विद्वान् हैं जो अपभ्रंश को दशमापा मानन स इनकार करते हैं।<sup>१</sup> स्पष्ट है कि अपभ्रंश के क्षेत्र म भी हानल, प्रियसन-जस पाश्चात्य विद्वानो न महत्त्वपूर्ण काय किए हैं। नामवर सिंह ने आर० ई० एचोवन और एलियट के प्रमाण पर यह कहा है कि अपभ्रंश मूलत आमीरी बोला थी और तीसरी शताब्दी म जो पश्चिमोत्तर भारत की बोली थी, वही कालक्रम से प्रसरित होती हुई समूचे उत्तर भारत की बोला बन गई। एचोवेन और एलियट द्वारा प्रस्तुत ऐतिहासिक प्रमाणो से पता चलता है कि आमीरा न बडी तजी से समस्त उत्तर भारत म छा जाने का उदाग किया था और उनके इसी प्रवाह के साथ अपभ्रंश का भी प्रचार हुआ था।<sup>२</sup>

अपभ्रंश क क्षेत्रीय भेद विवेचन म काई भी भाषाशास्त्रन डॉ० याकोबी, डॉ० तगारे और प्रा० ज्यूल व्नाय को विस्मृत नहीं कर सकता। डा० नामवर सिंह न भी उनके मित्र मित्र मत उद्धृत किए है।

डा० नामवर सिंह की दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति 'पध्वीराज रामा की भाषा है। इसकी भूमिका म उहान बनल टाड, डा० वूलर डा० मारिसन प्रभृति पाश्चात्य इतिहासकारा की शाघपरक ऐतिहासिक सामग्रा क महत्त्व को स्वीकार किया है। वाम्म हानन प्रियसन डा० तसितारी-जस भाषावनािनरा और भाषाशास्त्रिया न पध्वीराज रामा की भाषा का विशदपण किया है, जा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इतना ही नहीं, वाम्म आर हानन न रामा की प्राचीनतम पाण्डुलिपिया के पुनरुद्धार की ओर भा ध्यान दिया है।<sup>३</sup> जहाँ डा० नामवर सिंह न पध्वीराज रामा की भाषा-सम्बंधी समस्या का उत्तर दिया है वहाँ क डा० प्रियसन क विचारो स ही सर्वाधिक प्रभावित हुए है और डॉ० प्रियसन क एतत्पिपय विचारा का हा उद्धृतव्य समझत है। १८५६ वाले मस्करण का भूमिका क तीसरे पष्ठ पर हा डा० प्रियसन की आर तीन मनक्य-मुच्चक गवेन मिनत हैं। डॉ० सिंह क कतिपय निष्पप ध्यानव्य हैं

(क) डा० प्रियसन क अनुमार पध्वीराज रामा क वर्तमान रूप का भाषावनािनक अध्ययन उपयोगा हा सकता है।<sup>४</sup>

१ हिंदी क विज्ञान में अपभ्रंश का धाग, प० २७।

२ उपरिचन प० ४६।

३ पध्वीराज रामा की भाषा (बनारस १९५६) प० २ (भूमिका)।

४ उपरिचन प० ४।

(डॉ० नामवर सिंह न इस बचन का पूरा-पूरा समर्थन किया है।)

(ब) यही बजह है कि बंगाल की रायल एजियाटिक सोसायटी की द्वार में रामा का स्थापन करत समय बीम्स और हॉन्ले ने उनकी भाषा पर भी विचार किया है।<sup>१</sup>

(ग) इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यह निमिदग्ध कहा जा सकता है कि बीम्स द्वारा प्रस्तुत रामा क व्याकरण की उपरेखा का ऐतिहासिक महत्त्व है।<sup>२</sup>

(घ) बीम्स के व्याकरण की सीमाएँ उनके युग की सीमाएँ हैं लेकिन उनकी अनक स्थापनाएँ युग की सीमाओं के पार भी महत्त्वपूर्ण हैं।<sup>३</sup>

इन्से प्रथम, हम बात के प्रमाण मितन हैं कि पृथ्वीराज रामा - विषयक अनुसंधान-कार्य में पश्चिम के हानल और बीम्स-भरोखे विद्वान अग्रगण्य रह हैं और, माय ही इन विद्वानों के प्रति डॉ० सिंह के सम्मानपूर्ण दृष्टिकोण का पता लगता है। यदि हम अथ साहित्यकारों की स्थापनाओं को स्वीकार करत ह और तत्परात उनका प्रयाग भी तो कहना होगा कि हम उन साहित्यकारों से प्रभावित हुए हैं।

इतिहास और आलोचना तथा आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियों के विवेचन<sup>४</sup> से नेत्रों के पारस्त्य-पाश्चात्य वादमय के विविध वादा और आदानना से पूणतया परिचित हान का पता चलता है पाश्चात्य वादमय से प्रभावित हाने का नहीं।

आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ नामक श्रेय की भूमिका से पता चलता है कि इसकी रचना का एक उद्देश्य यह भी था कि हिंदी में अनक प्रचलित-अप्रचलित देशी विदग्ध वादा का अधाधुन चचा का निवारण हो जाय। डॉ० नामवर सिंह न साहित्यिक वादा का अपन साहित्य एवं समाज के विशेष परवेश में अमिन्न रूप से जुड़ा हुआ" कहा है। उनके अनुसार प्रत्येक साहित्यिक आंदोलन के पीछे एक इतिहास होता है। उदाहरणार्थ, फासीसी प्रतीकवाद और अंगरेजी

१ पृथ्वीराज रामा की भाषा, प० ४।

२ उपरिक्त, प० ५।

३ उपरिक्त।

४ दे० डा० नामवर सिंह, इतिहास और आलोचना (प्रयाग, १९६२), आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ (प्रयाग, सगो० सं० १९६२)।

त्रिधा प्रपन्न धनन दत्ताय न धर्मिच्छिन्न रूप म मय्य है ' अनिगिन्नी  
 म दा याता की धर्मा करण मय्य इग तय्य का धनन म रणा धन्या धारयन  
 है कि प्रपा यही य या' तिगा माहित्यक धानेन व रूप म धनन गानन और  
 पुन मिमानर द्वा।। हमारी माहित्यक परपरा म क्या यागना तिया ? कहां  
 त होगा कि हिन्दी म प्राय इग त्रिधा को पीठ ही दा गया है।<sup>१</sup>

इग कथन का पलनविा करन रूप डॉ० नामवर सिंह न उस प्रवृत्ति का गहणा  
 की है जिगा कारण हम परिगम व मभा याता की अधाधुध चर्चा करन लगन है।  
 प्रनाध्य साहित्य म गान के अधिव्यजनाया या उतना चर्चा गहा दूद जितनी  
 भारत म । सधमुा एसा प्रतीत हाने लग है कि ब्राव इटना म नहा अपितु  
 भारत म उत्पन्न हुआ था। एक भार सिप्ल का साहित्य-नाग है, जिगन ब्राव व  
 अधिव्यजनावाद पर एक टिप्पणा है कि साहित्य रचना पर इमका प्रभाव यूननम  
 है—तिफ दो-तीन अधिव्यजनावाती नाटका को छांकर और बुद्ध नही तिगा  
 गया, दूसरी ओर 'हिदी साहित्य वाश है, जिसम एस प्रकार व किनी तय्य  
 का उल्लेख नही है। हिन्दी पर पाश्चात्य प्रभाव का यह भी एक उदाहरण है।<sup>२</sup>  
 हमार अनकानक आलाचक अपनी साहित्यक परपराधा स अधिक यूरानाय  
 वाटमय की सूचना रखत हैं। स्पष्ट है कि हमारे साहित्य म वादा की चचा व भून  
 मे वसुधव कुटुम्बकम अनिधि देवा भव आदि के हमारे आदश काम कर  
 रह ह। साथ ही, हमारे यहा सब बुद्ध है वाली प्रवृत्ति भी त्रियाशील रही  
 है। वास्तविकता यह है कि हिदी म साहित्य रचना के क्षत्र म जितने वाद'  
 नही है, उनसे कही अधिक आलोचना म पडाए जा रह है। जितनी जल्दा  
 यह कवास बढ हो उतना ही अच्छा हो। साहित्य का बल्याण इसी म है।  
 कहना न हागा कि वादा की चचा म प्रसगानुकूलता के बोध की आज जितनी  
 आवश्यकता है।<sup>३</sup>

एस पुस्तक के विषय विवेचन म अनकत्र पाश्चात्य लेखका और कविता व  
 नाम मिलत ह जो इस बात व धोनक है कि डॉ० नामवर सिंह हिदी म पाश्चात्य  
 वादा की अधाधुध चचावाली प्रवृत्ति का आलाचना इसलिए नहा करत कि व  
 उन वादा स पूणतया परिचित नही हैं वल्कि इसलिए करत है कि व उनस अच्छी  
 तरह परिचित और ऐसी चचा की अप्रासगिकता से भी अदगत हैं। डॉ० नामवर

१ अधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, प० २ ।

२ उपरिचत, प० ३ ।

३ उपरिचत, प० ४ ।

मिह के विचारा का, चिन्तन का, पारचात्य साहित्य ने प्रभावित किया है, जो उनकी 'इतिहास और भाषाचर्या' 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ' 'कहानी' 'नयी कहानी' 'आदि' श्रुतियाँ में प्रतिबिम्बित हैं। उदाहरणार्थ, छायावादी कवियों के मन्वय में डॉ० मिह की धारणा है कि उन्होंने जीवन की सच्चर्या तथा सामाजिकता का तीव्रता के साथ अनुभव किया था। वह स्वयं के गल्प में उहला कि 'द बल्ड इज टू मच विद ग्रम'—य अत्यन्त सामाजिक, समार में अज्ञान विन्त हा चुन था।<sup>१</sup> प्रगतिशील साहित्य का डा० मिह अँगरेजी के 'प्राप्रेमिव' विन्तरेचर का, टीचर ही, हिंदी अनुवाद कहते हैं।<sup>२</sup> प्रयागवादी विवचन करत हुए वे कहते हैं कि इस वाद का उन्त्य ही माह भग ('डिाइल्यूजनमेंट') स ह्युआ इमलिए इमम छायावादी बल्पनाशासना के विपरीत यथाथवाद का आग्रह अधिर था।<sup>३</sup> प्रकृति और नाती के प्रति प्रयोगवाद का आग्रहिक दृष्टिकान यथाथ के नाम पर नान यथाथवाद अथवा 'नचुगतिम' है।<sup>४</sup> पारचात्य वादा न प्रभावित हान के कारण भारतीय वादा के विवचन में प्रकृत्या अँगरेजी मन्दा की सचर्या दिवार्द पन्थी ही। इस कारण प्रयोगवाद के विवचन में डॉ० मिह न अन्त अँगरेजी मन्दा का प्रयाग किया है।

### हिंदी-कथा-साहित्य की आलोचना पर पारचात्य प्रभाव

हिंदी की नयी कहानी पर मन् १८६६ में ही दा सवधिक मन्वपूर्ण अथ प्रकाशित हुए हैं एक था सुरद्र द्वारा सजादित नई कहानी 'दशाशिया मन्नावना'<sup>५</sup> और दूसरा डॉ० नामवर मिह द्वारा प्रणीत कहानी नयी कथान।<sup>६</sup> नई कथानी आदिना और मनावना के विवद्या के अधिकाग लेखक—प्रभाकर भाचर नामवर मिह इत्रनाथ मदान, देवीमकर अन्मयी रामदरना मिश्र गिराना मिह चौहान विजयेद्र म्नातक आदि हिंदी के

१ डा० नामवर मिह, कहानी नयी कहानी (प्रयाग, १९६६) ।

२ आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० १६ ।

३ उपरिवत, प० ८० ।

४ उपरिवत प० १४८ ।

५ उपरिवत, प० १४९ ।

६ उपरिवत, प० १५८ १५९ ।

७ अपोलो पब्लिकेशन, जयपुर, १९६६ ।

८ लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६६ ।

रगतिलय अथवा अज्ञान (शिव-निर्वासि के शब्दों में आलोचना के "अज्ञान के मजे गिलाही") हैं। य निरय निरगुण मत्त्वपूण हैं और पारचाय प्रभाव की दृष्टि में भी उनमें भरपूर उपयोगी सामग्री पाया है—उन निरघा के अधिकांश कथा की विवेचना शली पश्चिम से प्रभावित है। इनके लगाने का परिचय के कथा-साहित्य एवं तत्त्वबधी समीक्षा का गान उतना ही व्यापक दागना है जितना भारतीय कथा साहित्य का। यहाँ उन कथा विवेचन में ता ममाचान है और न मभव ही। (पारचाय प्रभाव की दृष्टि से इनमें सर्वाधिक महत्वपूण एवं प्रतिनिधि कथा के कर्तृत्व का मूल्यांकन अयत्र हुआ है।)

डा० देवराज उपाध्याय (१९०२- )

उपाध्यायजी न पारचाय मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों का जाग्रतस्पर्शी अध्ययन किया है, वह इनकी शोष कृति में नानाविध प्रतिफलित है। उन्होंने कहा है 'हिन्दी के आलोचना तथा विद्वानों ने हिन्दी उपन्यास में अभिव्यक्त याज्ञ जीवन की भीमासा की थी, वितु अतमन वा स्वरूप-रक्षण अभी तक अछूता है। पडा था। आधुनिक युग की प्रवृत्ति स्थूल से सूक्ष्म का और जान में है। युग के इस प्रवृत्ति के अनुसार विद्वानों का हिन्दी उपन्यास में उपलब्ध अतजगत के राज की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक था।' डा० उपाध्याय ने इसी जगत का सम्यक निरूपण और प्रकाशन किया है। प्रवचन में गृहीत औपन्यासिक कथा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बड़ा ही साधक और सटाक है। संपूर्ण आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य का मनोविज्ञान की स्थापनाओं के आलोक में प्रस्तुत यह विवेचन हिन्दी समीक्षा में एक नये आयाम का विस्तार है।

विषय प्रवेश में आधारभूत उपपत्तियों का उल्लेख और द्वितीय अध्याय में मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों का वर्णन मनोवैज्ञानिक कथा विश्लेषण के स्पष्टीकरण में बहुत सहायक होता है। स्पष्ट है कि समय आलाचक की कुशल लेखनी के स्पष्ट मात्र से ऐसे दुर्लभ विषय भी बड़े ही नमन-कुचनशील हो उठते हैं और हिन्दी भाषा वैज्ञानिक विषयों पर उतरकर भी उतनी ही प्राणवान एवं अभिप्रेरक रह सकती है जितनी साहित्यिक विषयों के विवेचन में। निस्संदेह उपाध्यायजी की भाषा शली और राजेंद्र यादव नामवर सिंह प्रभृति कथा-समीक्षकों की शली में जमीन आममान का अंतर है। उपाध्यायजी में विषयाचित्त गभारता

१ डा० देवराज उपाध्याय, आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान (इलाहाबाद, १९५६) पृ० ९ (प्राक्कथन ले० लक्ष्मीसागर धारण्य)।

है और इन पुस्तक में पाठित्य प्रदर्शन तथा हिंदी का अंगरेजी के शब्दों से निरर्थक नाररम्भ करने की प्रवृत्ति नहीं दाम्बनी । अंगरेजी शब्दों का भरपूर प्रयोग करके भी वे प्रमाणा की र्चि पर आघात नहीं करत और न ऐसा महसूस हाने दते हैं कि उनके अंगरेजी शब्द आम प्रमाण के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं । उपयान के पाठों का मनाविरूपण करत-करत उहान अपन सस्योन्नत पाठका की अनिरर्चि का भी मूस्य मनावनानिक विरूपण कर लिया है ।

प्रेमचन्द अनाम, जैनद्र इनाचन्द्र जाजी के उपयानों और कहानियों पर मनाविनान के प्रभावों का पयक-पृथक् निदर्शन एव विरूपण करने के उपरांत द्वादेश एव त्रयोदास अध्यायों में लेखक ने हिंदी के कथा-साहित्य में वस्तु-मवलन तथा उपयान-कथा के अन्तप्रयोग का बणन किया है जो अत्यंत मनीषी है । नवत्र हिंदा-उपयानों के (और आवश्यकानुसार अंगरेजी उपयानों में भी) उदाहरण दिए गए हैं । उपयान-श्रेण में पाश्चाय औपन्यासिकता में सप्रति जो जो मनोवैज्ञानिक प्रयोग किए हैं, उनसे उपाध्यायजी मनीषी भांति परिचित हैं— उहान पाश्चाय उपयान-साहित्य का भी समुचित अध्ययन किया है।<sup>१</sup> परंतु वे ज्ञाना साहित्यों का मनीषीकरण कर उनके उत्पन्न अर्थ पर अथवा उनके गुण-गणों पर टीका टिप्पणी नहीं करने एक का श्रेष्ठ बतकर हूनर को हीन नहा बनाने में उह मनायना मिली है । उदाहरणार्थ, मुद्ररानात माताओं के विवेचनबाले प्रमग में मत्रप्रथम उन मनावनानिक कारणों का उल्लेख है, जो अतिक्रानता में भी नर-नारियों में प्रणय-भवध की विवशता उत्पन्न करत हैं । जब मुद्ररान की तैरागिया होती रहती है जिस समय मलिका को युद्ध पर जाना हाना है, उस समय उनमें स्त्री के प्रति उहाम तत्परत्व उत्पन्न होना है, जो मधुनिक संपन्न के लिए माग प्रशन्न करता है । “मवनाश की नयकर लपटा स चारों तरफ घिर रहकर मनुष्य के अन्तरमधुनिक व्यापार के द्वारा नारी में अपन आध्यात्मिक व गार्गिक निरूपण (प्रोत्तेजन) की अनुभूति अत्र धवमरा से अधिक तीव्र हाती है और वे अज्ञान रूप से सतानात्यति की भावना में आन्दानित हो उठत हैं।”<sup>२</sup>

१ कथा के तत्व (पटना, १९५७) में उपाध्यायजी के ‘आधुनिक यूरोपीय उपन्यासों में कुछ नूतन प्रयोग,’ ‘दास्ताएवस्की,’ ‘कथा-साहित्य में आत्म-चरितात्मकता’ आदि निबंधों का इस दृष्टि से विशेष महत्त्व है । उपाध्यायजी की प्रायः प्रत्येक कथा-मीमांसा से उनके पाश्चात्य उपन्यास-साहित्य के अभिनान का परिचय मिलता है ।

२ आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान, पृ० २८८ ।

शब्द पर, और वह भी इसलिए कि डॉ० उपाध्याय ने रोमांस के जिन उपरकणों का उल्लेख किया है उनमें बहुत कम उपकरण इन ग्रीक-यासिकों की रचनाओं में पाये जाते हैं। इस निबन्ध के कुछ स्थल ऐसे हैं जिनके अनुशीलन से इयूजान विनेवर का स्मरण हो आता है जिन्होंने मैलरी के *Morte d' Arthur* नामक रोमांस के सघटन की तुलना चित्रयवनिका (tapestry) के सघटन से की है। स्पसर के रोमांटिक महाकाव्य "द फेयरी विवन" के सघटन के सबंध में भी यही बात कही जा सकती है।

शोध प्रबंध की रचना के अखंड, घोर अनुशासन से निबलते ही डॉ० उपाध्याय की रचना में शैथिल्य आ जाता है और उसमें अंगरेजी के जो बहुसंख्यक शब्द आने लगते हैं वे पुस्तक के स्वभाविक अंग बनकर नहीं आते।

पुस्तक के पृष्ठ दस पर क्लेयर रा रीव की पुस्तक 'प्रोग्रेस ऑफ रोमांस' की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की गई हैं और इस प्रकार उप-यास तथा रोमांस के भेद का स्पष्टीकरण हुआ है। प्रबंध-नाव्य, रोमांस और उप-यास' के अंतर में आत्म निरीक्षात्मक उप-यासों के प्रचलन की चर्चा है और इस सन्दर्भ में डॉ० एच० लारेंस, जेम्स ज्वायस, मार्सेल प्रूस्त और आद्रे जाद के उप-यासों का उल्लेख हुआ है। (इसी प्रकार का उल्लेख "कथा साहित्य में आत्मचरितात्मकता" शीर्षक निबन्ध में भी हुआ है, जहाँ इन पारचात्य ग्रीक-यासिकों के साथ ही जोशीजा, जनार्दन और अनेक की शैली का आत्मपरीक्षात्मक कहा गया है।) 'कथा के तत्व' का दूसरा निबन्ध 'कथा में सत्य या कल्पना' है जिसमें भी लेखक का ध्यान पारचात्य कथा-साहित्य पर ही अधिक है। वह कथा में सत्य या कल्पना का विवेचन डीका रिचर्डसन, चैक्रे के उन्पयासों का और डेविड डेवेंश की पुस्तक 'मिस्ट्री ऑफ लिटरेचर' को ध्यान में रखकर करता है। इसी प्रकार ज० डब्ल्यू० वीथ की पुस्तक 'द टवेण्टिएथ सेचुरी नॉवल' में उप-यासों में अनीष्ट नाटकीयता को लाने के जिन पाँच साधनों का उल्लेख है, डॉ० उपाध्याय ने आधुनिक यूरोपीय उप-यासों में कुछ नूतन प्रयोगों में उनका पुनराख्यान करने के उपरांत दास्ताएवस्की के उप-यास 'ब्राइम ऐण्ड पनिसमट' के सहारे स्पष्टीकरण किया है। इन में हेनरी जम्म बानरेड स्टीफेन हडसन जेम्स ज्वायस, फिलिप टवाननवा के उप-यासों की विशेषताओं का वर्णन है।

नामवर तिह (१९२७-)

हिंदा आलोचना जो अभी तक मुख्यतः वाक्य-मनीषा रही है, कविता से इनर कथा-नाटक आदि साहित्य रूपों का विधिकतः विवरणपण करना अपने को

सुसंगत एवं समृद्ध बना सकती है। कहानी-समीक्षा मन्थनी ये निबन्ध इसी दिशा में विनम्र प्रयाग हैं।<sup>१</sup>

“कहानी नयी कहानी” के प्रणयन के उद्देश्य का यही सन्निपत्त उल्लेख है। परन्तु हिन्दी-समीक्षा भांडार को सुसंगत एवं समृद्ध बनाने के पूर्व लेखक के हृदय में भाँति भाँति की दुविधाएँ थीं। कथा-साहित्य के समीक्षण की दिशा में कदम उठाना साधारण काय न था। कहानी चर्चा काव्य समीक्षकों को, स्वभावतः, पसन्द नहीं आती और न उनके लिए कहानियों को महत्त्व दिया जाना वाछनीय ही होता है। इसी समय दैवात् अंगरेजी में विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित एक समीक्षा प्रकाशित हुई। यह थी जनवरी १८६२ के “एसेज इन क्रिटिसिज्म” के कथरीन मैसफ़िल्ड की कहानी “मन्थनी” की समीक्षा। “उस निबन्ध से, मेरे निबन्ध, उन लोगों के लिए भी उत्तर प्रस्तुत था जिनका यह आराप था कि मैं कहानी-समीक्षा में काव्य-समीक्षा की पद्धति का बलानुपयोग करके भूल कर रहा हूँ।”<sup>२</sup>

‘आज की हिन्दी कहानी’ ही विवेच्य पुस्तक का “प्रस्थान”—विदु है जिसमें लेखक ने आधुनिक हिन्दी कहानी पर पाश्चात्य प्रभाव का कही परोक्ष, कही प्रत्यक्ष वर्णन किया है। आज के प्रयोगशील कथाकारों ने, डॉ० नामवर सिंह के मतानुसार, नय शिल्प का आश्रय लिया है। तन्मूला “खलनवी की कहानी किस्सा मियासत की भटियारिन” और “एडीटर बुलेशाह” एक नया प्रयोग है। आज की कहानियों में जसा विषय-विविध देखा जाता है वैसा पुरानी कहानियों में देखा नहीं जाता—इनका रूप आध्यात्म इतना निम्नतम हो गया है कि निबन्ध-स्वैच रिपार्ताजि आदि भी इसकी सीमाओं में प्रविष्ट हो गए हैं। कभी-कभी इनके लेखक इनका मीमा निवारण नहीं कर पाते जिसके कारण एक ही रचना कभी स्वैच बन जाता है और कभी निबन्ध। नया कहानी कथानक की एक नयी धारणा पर आवृत्त है पहले जहाँ मनोरंजन, नाटकीय और कुतूहलपूर्ण घटना सघटन का ही कथानक सम्पन्न जाता था, अब वही घटनाओं के स्थान पर पात्रों का मनोविश्लेषण मिलता है कथानक का ह्रास हो गया है। इस धारणा पर—जिम्मे आगे कोष्ठक में ‘कम्प्ट लिखा है—पाश्चात्य कथा-कहानियों का ही प्रभाव है। डेरक हडसन ने माडन शॉट स्टारोज’ (सेकण्ड सिरीज) की भूमिका में अंगरेजी कहानियों में कथानक के अल्पाधिक ह्रास की चर्चा करते हुए कहा

१ कहानी नयी कहानी, प० १२ (‘यह पुस्तक’)।

२ उपरिद्धत, प० १२।



है कि त्रिगत पच्चीस वर्षों में हमारे सम्माय वैगन "कथानक त्रिगत" युग का प्रतिष्ठा करण के लिए वृत्तसकल्प में थे । उनके ऐम प्रयाग से जान पडता था कि उनरी दुर्ग बुद्धिप्रधान कहानियाँ उन साधारण पाठकों का भी अत्रिय लगेंगी, ता प्रयाग का अमिनत्न करत थे । सोभाग्यवश नरनगरा और तरण कथानीकारों में इस प्रवृत्ति के विरुद्ध जो प्रतिस्त्रिया हुई है उससे गतरा कम हा गया है । मन् लखिन न अर्पनी पुस्तक 'अ सिगल लेडी' में कथा का नि स्वय जावन में कथानक नाम की शायद ही बार्द चीज होनी है जीवन ता अर्पन मध्य में हा टूट फूट जान, विजडित हो जान का आनी है । निस्मन्त कहानी के प्रमाता उन कला में कोई विस्तृत औपचारिक कलाविन्यास दग्ना नहीं चाहत जा तत्वन अत्यत तरल तथा नमनशील है । किंतु जीवन समग्रत उपन्यास नहा है, कथा में सर्वाधिक महत्त्व इस बात का है कि वह आद्यत अनिश्चयता तथा द्वधीभाव के इद्रजाल को विच्छाये रखे ।

नयी कहानी के स्वरूप-वशिष्टय और कथानक विहीनता के इस विवचन से दो बात स्पष्ट होती हैं एक तो यह कि नयी कहानी पाश्चात्य कहानी और मनोविज्ञान से अत्यधिक प्रभावित है और दूसरी यह कि इस नया कहानी की समीक्षा पाश्चात्य प्रतिमानों से और कभी-कभी, कथा समाक्षा के पाश्चात्य ढग से हागी । जब विवेच्य विधा ही पश्चिमी रग में रेंगी भीगी है तत्र उसकी समीक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव पडने ही चाहिए । नामवर सिंह की समीक्षा शैली, भाषा और तथ्याख्यान के ढग अंगरेजी से प्रभावित है । कही कहा तो ऐसा जान पडता है कि हिंदी की नयी कहानी की विशेषताओं का वणन न कर वे अंगरेजा की नयी कहानी का वशिष्टय-उदघाटन कर रहे हैं । हिंदी के कथाकार अंगरेजी कथाकारों की तरह इतना 'अतगूढ़' हा जाते हैं कि 'आदि से अत तक केवल एक बात से बातें निकलती चली जाती हैं और बाता में से बात का यह निवालत जाना ही इतना मनारजक होता है कि एक कहानी बन जाती है ।<sup>१</sup> स्वय लेखक न इस स्थल पर अंगरेजी कहानियों की इस विशेषता का उल्लेख किया है इधर की अंगरेजी पत्र-पत्रिकाएँ ऐमा ही कहानियों से भरी मिलती हैं पटन चले जाइए, बातो में रग मिलता जायगा जैसे आप किसा टेबिल टाक में शराब हो या उसने थोता हा और कहानी खत्म करने पर साच ता हाथ बुद्ध नहा लगा, लगा तो केवल यह कि कुछ अच्छ, अच्छा सा पढा है और बस ।"<sup>२</sup>

१ उपरिवत, प० २१ ।

२ उपरिवत ।

डॉ० नामवर सिंह के विवेचन पर पाश्चात्य कहानी-समीक्षा का इतना गभीर प्रभाव है कि वे हिंदी पाठकों का अभिरुचि और कहानी के पाश्चात्य अध्ययताओं का अभिरुचि में वपरीत्य देगन को तैयार नहीं हैं। “आज का जागरूक पाठक”, व कहते हैं “केवल कथानक की चरम सीमा से चौककर आह्लादित होनेवाला भावुक मनुष्य ही रह गया है। इसलिए उसे ऐसे स्थूल उपकरणों से बहला लेना संभव नहीं।” यह जागरूक पाठक कौन है? हिंदी कहानियों का दशौं पाठक या पाश्चात्य कथा-साहित्य का दशौं विदेशी पाठक? जान पड़ता है कि लेखक यहाँ उन धारों का पुनराख्यान कर रहा है, जो अंगरेज समीक्षक अपने देश के पाठकों के सन्ध में बहन हैं। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि हिंदी के पाठकों की रुचि उतनी उत्तम और समग्र नहीं है जितनी अंगरेजी कथाओं के पाठकों की। वस्तुतः हिंदी के नये कहानीकारों ने यह सोचकर नयी कहानी का प्रवर्तन नहीं किया कि आज के जागरूक पाठक भावुक नहीं हों, उन्होंने पाश्चात्य साहित्य की प्रवृत्तियों और वादों से प्रेरणा लेकर इस नयी कहानी का मूलपात किया है। इसका सबसे बड़ा और विश्वमनीय प्रमाण इस प्रश्न का उत्तर होगा कि क्या ऐसे पाठक हिंदी में अभी उत्पन्न होते हैं जब अंगरेजी साहित्य में कोई नया वाद चल पड़ता है? पाश्चात्य परंपराओं से प्रभावित कुछ हिंदी लेखक अपने पाठकों का परिवर्तित अभिरुचि का उल्लेख करते हैं और अपनी रचना का उस नयी अभिरुचि से समंजित करने का प्रयास करते हैं। पर जब तक अंगरेजी में किसी नयी साहित्य-मंडलि का आरंभ नहीं हुआ जाता, तब तक इस परिवर्तन की आरंभ किसी भी लेखक का ध्यान नहीं जाता।

डॉ० नामवर सिंह ने आज की हिंदी कहानी में जिस नयी कहानी का बणन तथा विवेचन किया है वह केवल हिंदी की ही नयी कहानी नहीं है। समस्त इसलिए उठे नये हिंदी कहानीकार की विशेषताओं का विवरण प्रस्तुत न कर सामान्यतः नये कहानीकारों की विशेषताओं का बणन किया है। इन वाक्यों में विवेचन हिंदी के नयी कहानियों पर भी सटीक उतरता है

क—नये कहानीकार का ध्यान अब कथानक-शिल्प की ओर नहीं है।

ख—आज बहुत-सी श्रेष्ठ कहानियाँ ऐसी मिलेंगी जिनका कथानक एकदम सपाट है।

ग—कथानक की धारणा (कसेप्ट) बदल गयी है।

३ उपरिखत ।

ऐसे तो "कहानी" यही कहानी" का समय हिंदी की नया कहानी से है पर इसके समय में जो कुछ कहा गया है, उसमें अधिकांश अंगरेजी कहानी पर भाष्यपूर्ण भाषा में लागू होता है। तब क्या नयी हिंदी कहानी में कुछ भी ऐसा नया जो मौलिक कहलाय ? इस प्रश्न का उत्तर नामवर सिंह की यह रचना नहीं देता। नया कहानीकारों का समय में उठान कहा है कि भय उनका—नया कहानीकारों का—ध्यान कथानक-गिनती की धार नहीं है और आज भय बहुत-सी थप्ट कहानियाँ ऐसी मिलती हैं जिनका कथानक चढ़ाव उतारहीन एकदम सपाट है जिसमें पहाड़ी सड़क की तरह न तो कदम-कदम पर आकस्मिक माड़ मिलेगी और न ऊँचाई निचाई ही।<sup>१</sup> लयाक का ध्यान पाश्चात्य कहानियों पर की रत है, इसलिए वह उपयुक्त कथन के स्पष्टीकरण के लिए कहता है 'एसा कहानियों का मूलपात रुसी कहानीकार चेतोत्र ने किया और यह प्रवृत्ति क्रमशः मार ससार में फलती चला गई।'<sup>२</sup>

### डॉ० देवराज

'प्रतिश्रियाएँ' नामक पुस्तक<sup>३</sup> के समर्पण में डॉ० देवराज ने कहा है कि स्व० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और टी० एस० एलियट से मतभेद रस्तत हुए भी उन्होंने उनसे बहुत अधिक सीखा है इसलिए यह पुस्तक उही आलाचक्र-द्वय को समर्पित है। यह सन १८६६ की बात है। इसमें प्रायः सालह वष पूर्व सन् १९५० में "साहित्य चिन्ता" के निवेदन में लेखक ने कहा था कि वह 'पण्डित रामचन्द्र शुक्ल और टी० एस० एलियट की रस-सवेदना से विशेष प्रभावित हुआ है। अमरीकी विचारक रविग वविट के निबंध पढ़ने के कई वष बाद उसने सहसा एक दिन अपने का उसकी सांस्कृतिक दृष्टि से सहानुभूति करत पाया। इन वरुण्य विचारकों का मैं श्रेणी हूँ।'<sup>४</sup> इस प्रकार इसमें सदेह नहीं रह जाता कि डॉ० देवराज के अतः प्रवर्णनीय समीक्षक पर सर्वाधिक प्रभाव टी० एस० एलियट और आचार्य शुक्ल का ही पडा है। कही-कही तो पाश्चात्य प्रभाव का ऐसा आनिशय देतने को मिलता है कि देवराज की समीक्षा एलियट की अनुकूलि मात्र बन जाते।

१ उपरिबत, प० २१-२२ ।

२ उपरिबत, प० २२ ।

३ पुस्तक के आवरण पर 'प्रतिश्रियाएँ' और भीतर 'प्रतिश्रिया' छपा है । प्रकाशक राजकमल प्रकाशन, प्रथमावृत्ति, १९६६ ।

४ साहित्य चिन्ता (दिल्ली, स० २००७), निवेदन ।

है। इसलिए समन्वित समीक्षा-पद्धति, अनुमधित्सा तथा निष्पत्ती के निर्माण के स्थान पर हम उनमें पारश्चात्य विचारों का ही पल्लवन एवं रूपान्तर देखते हैं।

यूरोपीय दशन के दूसरे खंड की भूमिका में पारश्चात्य प्रभाव के संबंध में डॉ० देवराज कहते हैं "आज हम हजार ढंग से पश्चिम के विचारों और विश्वासों को अपना रहे हैं। उन विचारों की पृष्ठभूमि में हम सोच भा रहे हैं, निश्चय भी रहे हैं पर अंगरेजों में। किंतु यदि हम हिंदी का सच्चे रूप में राष्ट्रभाषा बनाना है तो हमें उन भाषा का इस प्रकार गठित करना होगा कि वह कठिन से कठिन पूर्वी और पश्चिमा ढंग के चिंतन का माध्यम बन सके।" १ डॉ० देवराज ने अपने निबंधों के माध्यम में हिंदी भाषा-साहित्य का अधिकाधिक समुन्नत एवं सशक्त बनाने में यथासंभव योग दिया है। दशनशास्त्र के गर्भीर अध्ययन अध्यापन के फलस्वरूप उन्हें साहित्य के आधारभूत दार्शनिक विचारों और लेखक के जीवनदायक का ज्ञान जिसे सरलता से हो जाता है, वह अथ आलाचकों के लिए दुर्लभ नहीं तो श्रमसाध्य अवश्य है। उनका यूरोपीय दशन विषयक ग्रंथ एतद्विषयक पारश्चात्य इतिहासकारों से प्रभावित है और उन्होंने वेबर, राइस यिरी, अमान, प्रमृति का अध्ययन तथा उनका ग्रंथों से यथावश्यक तथ्य चयन किया है। उन्होंने भारतीय महाकाव्यों का भी एकांत गहन अध्ययनालोचन किया है जो उनके 'भारतीय सस्कृति'<sup>२</sup> में प्रतिफलित है। उनके अधिकांश आलोचनात्मक निबंधों का तथ्य 'साहित्यिक मूल्यांकन के मानों को स्थिर करना है।'<sup>३</sup> इन मानों में अधिकांश पारश्चात्य काव्यशास्त्रीय चिंतन में 'यस्तु है और कुछ पौरुष्य परंपराओं में बद्धमूल। साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि जब-जब उन्होंने किसी महत्त्वपूर्ण तथ्य का साक्षात्कार किया है तब-तब वे उस मूल अभिव्यक्ति देने के लिए—"मसकत रूप में प्रकट करने" के लिए—बैठ गए हैं। इस प्रकार हम से कम "साहित्य चिंतन" के निबंध किसी निश्चित व्यवस्था अथवा योजना का अनुसरण नहीं करते। फिर भी, जैसा लेखक ने स्वयं कहा है यदि हम प्राप्ति की अपेक्षा प्रयत्न में और निष्पत्ती की अपेक्षा चिंतन-

- १ डॉ० देवराज, 'यूरोपीय दशन' (मुजफ्फरपुर स० २००३), भाग २, प्रस्तावना।
- २ डॉ० देवराज, 'भारतीय सस्कृति' (महाकाव्यों के आलोचन में), सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, १९६०।
- ३ साहित्य चिंतन, (दिल्ली, १९५०) निवेदन।

प्रक्रिया में अधिकांश रचित हैं ता इन निम्नधा में पर्याप्त रगानुभूति संभव हो सकती है।

ऊपर कहा जा चुका है कि इन निम्नधा में लगभग 7 प्रभावानुसंधान की समस्या को यह कहकर हल कर लिया है कि 'प्रम्पुन लाक' आचार्य रामचन्द्र गुक, टी० एस० एलियट जस वरप्य विचारका का श्रृणा है। मुग पृष्ठ की पीठ पर उहान इविग अविट के रग कथन का आदश वाक्य के रूप में उद्धृत किया है "आज एक ऐम आलाचक की आवश्यकता है जो प्रतिमान की सजना के विशेष कठिन महत्वाय का वनमान परिस्थितियां में सपन्न करने का प्रयास करे।" १ ("आन विदग त्रियटिब")

टी० एस० एलियट की रचनाओं के अध्येता इस बात में पूर्णतया परिचित हैं कि वह सपूर्ण यूरोपीय सस्कृति के एकत्व पर बल देता है। डा० देवराज एलियट से भी आगे बढ़कर समस्त विद्व-वाङ्मय के एकत्व की घोषणा करते दीन पडते हैं। उनकी आलाचना केवल भारतीय वाङ्मय का ही नहीं, यूरोपीय साहित्य का भी मूल्यांकन करती है। इसलिए वे भारतीय और यूरोपीय साहित्यकारों को एक साथ रखकर एक ही व्यापक उक्ति में समेट कर उनका विवेचन प्रस्तुत करते हैं। एलियट जानता था कि समस्त यूरोप को ईसाई धर्म और अभिजात भाषाओं का समान रिक्त प्राप्त है इस कारण उसके लिए इस परंपरा के भिन्न भिन्न अंग उपाग अविच्छिन्न रूप में परस्पर समर्थित थे। अतः समस्त यूरोपीय साहित्य को एक ही प्रतिमान से आंकना उसकी रचनाओं में असोमन प्रतीत नहीं होता। परंतु डा० देवराज की इन पक्तियों को देखिए

(१) 'शेली और टी० एस० एलियट के वाक्य में जसा बहुत अंतर है वसा ही उस समय में और आज के उपन्यासात्मक नाटकों में भी है।

(साहित्य चिन्ता, प० १०२)

(२) योरप ने कोई कालिदास उत्पन्न नहीं किया और भारतवर्ष ने कोई गेक्सपियर इसी प्रकार गूर की कविता विद्व-साहित्य में अद्वितीय है।'

(उपरि०, प० २८)

---

१ "दियर इज नीड आव अ टाईप आव क्रिटिक हू विल असे द टास्क, स्पेशली डिफिकल्ट अण्डर एविर्नास्टिंग सक्मस्टासेज, आव क्रियेटिंग स्टण्डड स।"

(३) "हमारा अभिप्राय यह है कि महत् साहित्य का (अथवा उसकी महत्ता के उपादाना का) विश्लेषण एक ऐसा व्यापार है, जो प्रत्येक युग में, नई-पुरानी महनीय धृनिया के आलोक में नये सिर से अनुष्ठित होना चाहिए। आज अलकार ध्वनि आदि के पमान आउट-ऑफ डेट हो गए—उनके प्रयोग द्वारा अन्ना करानिना अथवा गौदान का मूल्यांकन सम्भव नहीं है।"

(उपरि०, पृ० ३१)

ये सारे कथन अत्यन्त सतहा एवं सामान्य हैं। (१) सोफोक्लीज और शेक्सपियर के नाटका मजसा बृहत् अन्तर है वना ही सोफोक्लीज के समय के और शेक्सपियर के युग के वाक्य तथा नाटका में भी है। चौसर और जान डन के वाक्य मजसा बृहत् अन्तर है वना ही उस समय के और आज के उपयामा तथा नाटका में भी है। इन तर्कों को पारस्व बदत्कर भी कहा जा सकता है।

(२) हम कह सकते हैं कि यूरोप ने कोई टी० दवगज उत्पन्न नहीं किया और भारतवर्ष ने काइ टी० एस० एलियट, इमी प्रकार दाने की कविता विश्व-साहित्य में अद्वितीय है (३) अलकार, ध्वनि आदि के पमान अनन्वयतन नहीं हूँ। यूरोपीय विद्वान् भी अपनी व्यावहारिक समीक्षा में अलकार, ध्वनि और वक्राकित के प्रतिमानों से वाक्य-समीक्षा कर रहे हैं। 'मिमिष्टिक अन्वयसि' में इन प्रतिमानों को पर्याप्त महत्त्व मिला है।

"साहित्य चिन्ता" और "प्रतिक्रियायें" के अधिकांश निबन्धा पर पाश्चात्य लेखकों की छाया बनमान है। सबत्र ऐम वाक्य मित्ते हैं—

टान्टान न लिखा है (साहित्य चिन्ता, पृ० ६)

वार्ड० ए० रिचड्स न लिखा है (उपरि० पृ० २३)

प्राफेसर जाड न एक जगह लिखा है (उपरि०, पृ० २६)

कवि वीट्स न कहा लिखा है (उपरि०, पृ० ४०)

१ "आधुनिक समीक्षा" और "प्रतिक्रियायें" में भी ऐसे वाक्य मिलेंगे उदाहरणार्थ, (१) "शेक्सपियर, प्रुस्त तथा मेघदूत की नवीनता कुछ इसी कोटि की है।" (प्रतिक्रियायें, पृ० १३), (२) "इलियट-जसे कवियों के मूल्यांकन में गुबलजी की उक्त व्युत्प्रेक्षा सहायक हो सकती है।" (उपरि०, पृ० २६) (३) "रवींद्र, गेटे आदि में रिलीजियो फिलासफिक सिक्न की शलकें भी हैं।" (आधुनिक समीक्षा, पृ० १४ १५) ।

बार्ड शा ने कहा कहा है (उपरि०, प० ४४)

प्रसिद्ध यूरोपीय समीक्षक ल्यूकस न कहा है (प्रतिश्रियायें, प० ३०)

मध्यु थानल्ड न कही कहा है (उपरि०, प० १३८)

डॉ० देवराज की आधारभूत साहित्यिक मायताओं के मू-म एलिफ्ट द्वारा प्रतिपादित कितने ही मिद्वता की ध्वनि मुनी जा सकती है। डॉ० देवराज के अनुसार साहित्य राग-बोधोत्तमक अनुभूति की अभिव्यक्ति है। कोरा कल्पना के अतिरिक्त समद्व कला-सष्टि के लिए साहित्यकार की चेतना का यथाय के प्रभूत चित्रा स परिपूण हाना अत्यावश्यक है। एलिफ्ट न सश्लिष्ट चेतना (एकता) पर बल दिया है उसके महान् कवि की सवेदनशीलता विनियोजित नहीं हानी सश्लिष्ट होनी है। वह अपन विचारा को अनुभूत करता है। उसके लिए टैनिसन और ब्राउनिंग ऐसे कवि हैं जो सोचते अवश्य है परंतु व अपने विचारा का हादिकना के साथ सवेदित नहीं करत। इसी सरलातिसरल कयन को डॉ० देवराज इस प्रकार व्यजित करते हैं 'बोधोत्तम की सम्बद्धता मे ही रागोत्तम की अभिव्यक्ति या व्यजना सभव है।'<sup>१</sup>

पाश्चात्य वाङ्मय के प्रभावातिशय्य का एक प्रमाण यह भी है कि डॉ० देवराज जहा उसमे पुष्कल शक्ति सामर्थ्य एव समद्वि देखते हैं वही हिंदी मे उह सवत्र अभाव ही जभाव—“घटिया स्थिति —के दशन होते है। उनके अनुसार शुक्लजी का 'काव्य मे रहस्यवाद इविग कविट की रूसा एण्ड रोमण्टिमिज्म नाम की पुस्तक की तुलना कठिनता से ही कर सकता है।<sup>२</sup> महादेवी के और उनके जसे अय साहित्यकारा क निबध टी० एस० एलिफ्ट लोविस जादि की विचारात्मक तथा समीक्षात्मक रचनाओं की तुलना नहीं कर सकते।<sup>३</sup> इसी प्रकार प्रगतिवादी जादोलन न हम कोई उतनी महत्त्वपूण समीक्षा कृति नहीं दी जैसी ल्यूकेक्स की 'स्टडीज इन यूरोपियन रियलिज्म' या 'द हिस्टारिकल नावल' है।<sup>४</sup> आज हिंदी की समीक्षा का अनुभूति और कत त्व के धरातर को परखन की योग्यता प्राप्त करनी है।<sup>५</sup> हिंदी समीक्षा अभी तक प्रौढि अथवा परिपक्वता से परिचित तक

१ साहित्य चिन्ता, प० ३। द्रष्टव्य "साहित्य मे बुद्धितत्व", दे० प्रतिश्रियायें, प० १८६ १९८।

२ उपरिगत, प० १०।

३ उपरिगत, प० १८ १५।

४ उपरिगत, प० १५।

५ आधुनिक समीक्षा (लखनऊ, १९५४), प० १००।

नहीं है, यहाँ तक कि "कामायनी" जस वाक्य में तजस्वी चिंतन का गभार आलोडन कही प्रतिफलित ही नहीं हो सका है।<sup>१</sup> डॉ० देवराज न यथावत्तर पारचात्य साहित्यकारों के गुणा का उत्साहपूर्ण वर्णन ही नहीं किया, उनकी तुलना में हिंदी-लेखकों का प्रति अत्यंत अनुपुण एव सौजन्यहीन दृष्टि अपनायी है

समार के कुछ बहुत बड़े लेखक बहुत बड़े समीक्षक विचारक भा हुए हैं जस महाकवि गेटे, विख्यात उपन्यासकार टाल्स्टाय तथा प्रसिद्ध कवि टी० एम० एलियट। अंग्रेजों साहित्य के तो अधिनार परिचित लेखक तथा कवि अच्छे समीक्षक विचारक थे, और हैं। इस संबंध में ड्राइडन, पाप, सोली, बड स्वथ, मैथ्यू आनल्ड, वर्जोनिया वुल्फ, इजरा पाउण्ड, हवट रीड आदि के नाम लिय जा सकते हैं। फ्रांस का आन्द्रे जीन तथा जर्मनी का टामस मान भी इसी कोटि में जाने हैं। पिछले दोना लेखक बड़े उपन्यासकार हैं। हिंदी लेखकों में महादेवी वमा सुमित्रानंदन पंत, जनेद्र स० ही० बाल्म्यायन तथा दिनकर न साहित्य के संबंध में जहाँ तहाँ चिंतन किया है।<sup>२</sup>

हिंदी लेखकों के लिए एक भी प्रामाणिक विरोध प्रयुक्त नहीं हुआ। इनके विपरीत जहाँ भी टी० एम० एलियट का नाम आता है, लेखक श्रद्धावन्त हो जाता है

'बौद्धिक परिपक्वता में टी० एस० इलियट अपने क्षेत्र में उतनी ही ऊँची काटि का विचारक है जितनी वर्ट्रिण्ड रसेल तथा आइ स्ट्राइन अपने क्षेत्र में।

(आधुनिक समीक्षा, पृ० १०३)

गेटे की तुलना में सोली तथा बड स्वथ साहित्य के एकांगी तथा घटिया विचारक हैं। यह कमी टी० एस० इलियट में नहीं है।<sup>३</sup>

(उपरि०, पृ० १०८)

डॉ० देवराज के चिंतन एव साहित्य-ज्ञान में पारचात्य प्रभाव इस प्रकार

१ आधुनिक समीक्षा, पृ० १०२-१०३।

२ उपरिष्ठ पृ० १०८।

३ डॉ० देवराज ने कहीं-कहीं टी० एस० एलियट के विचारों का समर्थन नहीं भी किया है। (जवाहरणाथ, दे० 'प्रतिप्रियायें', पृ० १८०, 'साहित्य चिन्ता', पृ० ९२) परंतु ऐसे स्थलों पर भी इनके स्वर में श्रद्धा होती है, कटुता नहीं।



वद्धमूल हो गया है कि वे कही नहीं अपनी स्थापनाओं को पाश्चात्य साहित्य से ही उदाहरण लेकर प्रमाणित करते हैं। "आलाचना का अधिहार" शीपक निबन्ध में उन्होंने तोल्सतोय के इस कथन को उद्धृत किया है कि साधारण लोग की अपेक्षा आलाचक कला की रस ग्राहिता में सदाब पाछ रहें। तदनंतर उन्होंने इस कथन का प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है और भिन्न भिन्न उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जिनसे पता चलता है कि समीक्षा की कृति रसग्राहिता गति के फलस्वरूप कवियों को तरह-तरह के कष्ट झेलने पड़ते हैं। भवभूति को छाउबर ग्रन्थ सभी उदाहरण पश्चिमी कलाकारों के हैं। कीटस, माद्रके—एजला, कास्टेबिल प्रमत्ति मनस्वी कवियों और कलाकारों के अनुभव बड़े ही कटु थे। अपने जीवन काल में उन्हें यथेष्ट प्रसिद्धि नहीं मिली थी।

साहित्य में प्रगति शीपक विवरण-मन्त्र<sup>१</sup> भी एलियट और ह्यूम के विचारों से प्रभावित है। "साहित्य में रागतत्त्व" का आरम्भ एलियट के इस कथन से होता है कि भावों के बिना भी, केवल संवेदनाओं से साहित्य का निर्माण हो सकता है।<sup>२</sup> इसी निबन्ध में "इमोजन" और फिलिंग के पाठक्य पर प्रकाश डाला गया है जो एलियट के टूडिशन एण्ड दि इण्डिविडुअल टलेण्ट में एतद्विषयक विश्लेषण की याद दिलाता है।

### अध्याय आलोचक

ऊपर जिन समीक्षकों पर पाश्चात्य प्रभाव का विवरण हुआ है उनके अतिरिक्त डा० इन्द्रनाथ मदान, डा० विजयद्वारा स्नातक, डॉ० भगीरथ मिश्र, डा० लक्ष्मीसागर वाण्येय और डा० देवीशंकर अवस्थी की आरंभिक हमारा ध्यानाकर्षण अपेक्षित है। इन समीक्षकों की कृतियाँ हिंदी समीक्षा में किसी नव्यायाम की संयोजना नहीं करती और न ये किसी 'वाद' का प्रवर्तन करती हैं। इनमें कहीं कहीं नये भावों का उन्मेष अवश्य दीख पड़ता है परन्तु इनकी रचनाओं में, समासत तः ही विशेषताओं का उन्मूलन हुआ है, जो उपरिविबधित समीक्षकों की रचनाओं में पायी जाती हैं। डा० अवस्थी के असमय निघन्तु में उनके समीक्षकों की समावनाएँ पुष्पित नहीं पायीं इस कारण उनका विवरण भी संक्षेप में ही होगा। डा० मदान पर पाश्चात्य प्रभाव का जाबलन व्यावहारिक समीक्षकों के अंतर्गत हुआ है।

१ यह टी० ई० ह्यूम के 'स्पेक्युलेशंस' के उस परिच्छेद की याद दिलाता है जिसका शीपक है "सिण्डस ज यू वेल्ते-गंगो"।

२ साहित्य चिन्ता, पृ० १३१।

“आधुनिक हिंदी साहित्य”, ‘फोर्टे विलियम कॉलेज’, “आधुनिक कहानी का परिपक्व”, ‘पश्चिमी आलोचना शास्त्र’ आदि ग्रन्थों के यशस्वी लेखक ने पाश्चात्य आलोचना साहित्य का भी गभीर और व्यापक अध्ययन किया है। इन प्रमाणित करने के लिए कहा दूर जान की आवश्यकता नहीं है—डा० लक्ष्मी सागर वाण्ये (१९१४-) लिखित ‘पश्चिमी आलोचना शास्त्र’ (१९६५) ही इसका ज्वलन प्रमाण है। पाश्चात्य आलोचना पर लिखते समय व मौलिकता का दावा नहीं करत, पर यह स्वीकार करत है कि ‘हिंदी आलोचना भारतीय और पाश्चात्य आलोचना पद्धतियाँ का जद्मुक्त समन्वय है।’<sup>१</sup> पाश्चात्य साहित्य एवं समीक्षा के अध्ययन से डा० वाण्ये की तथ्यात्मक के स्वनत्र तथा तटस्थ विवेचन की क्षमता बढ़ी है—वे पाश्चात्य साहित्य की बरिष्ठता से अभिभूत नहीं हुए हैं। कुछ लोगोकी यह धारणा रही है कि यदि अंगरेज भारतवर्ष न जाते तो हिंदी साहित्य का ऐमा स्वतन्त्रीय विकास न होता। वाण्येजी न इसे निराधार कहा है। अंगरेज न भी जात ता हिंदी साहित्य स्वतन्त्र रूप से प्रगति की ओर अग्रसर होता। किंतु इसे न तो हम और न डॉ० वाण्ये अस्वीकार कर सकत हैं कि ‘ऐतिहासिक घटना चक्र के अनुसार हिंदी साहित्य का अंगरेजों के माध्यम द्वारा यूरोपीय संस्कृति से संपर्क स्थापित हुआ और आधुनिकता का बीजारोपण हुआ।’<sup>२</sup> ‘आधुनिक हिंदी साहित्य’ के “पूर्वपरिचय” और ‘पीठिका’ नामक अध्यायों में उन्होंने भारतीय समाज और संस्कृति पर अंगरेजी ‘नवशिक्षा’ के प्रभावों का विस्तृत आकलन प्रस्तुत किया है। इन अध्यायों से लेखक के पश्चिम में प्रभावित हान का द्योतन नहीं होता प्रत्युत इस बात का पता चलता है कि वाण्येजी की दृष्टि ऐतिहासिक तथ्याचार घटना क्रम के इतिवृत्तात्मक प्रस्तुतीकरण पर केन्द्रित है, विगुद्ध साहित्यिक समीक्षा पर नहीं। “गद्य” और “निबन्ध” गोपत्र प्रवर्णना में उन्होंने नमश हिंदी-गद्य पर अंगरेजी प्रभाव का तथा हिंदी निबन्धकारों की भाषा-शैली की विशेषताओं का विद्वत्तापूर्ण आलोचनात्मक परिचय दिया है। “आधुनिक हिंदी साहित्य” (१९४१) और “आधुनिक हिंदी साहित्य की नूतनता” (१९५२)—दोनों सही लेखक की अपूर्व श्रमशीलता और बोधभूमि कायतत्परता का परिचय मिलता है।

“फोर्ट विलियम कॉलेज” (१९४७) भी मूलतः तथ्यपरक गद्य सामग्री

- १ डॉ० लक्ष्मीसागर वाण्ये, ‘पश्चिमी आलोचना शास्त्र’ (लखनऊ, १९६५), वस्तुतः ।
- २ आधुनिक हिंदी साहित्य (इलाहाबाद, १९५६)

का महत्त्वपूर्ण सफल है। जपन "बसन्तव्य" में लगभग १ मर विनियम जास द्वारा स्थापित एशियाटिक सामायटी (१७८४) और मार्क्सिस बल्जली द्वारा स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज (१८००) को भारतीय इतिहास में आधुनिकता के निश्चित प्रतीक के रूप में स्वीकार किया है। कॉलेज के जातीय अनुसंधान के विशेषी एवं भारतीय विद्वानों ने पौरस्त्य भाषाओं में विविध विषय-संबंधी मूल ग्रंथ रचे और साथ ही संस्कृत, फार्मी तथा जर्मी से अनुवाद ग्रंथ भी प्रस्तुत किए। वाष्णोयजी ने प्रभूत एतिहासिक तथ्यों के आधार पर कहा है कि आधुनिक हिंदी भाषा की उत्पत्ति के विषय में फिर से विचार करने की आवश्यकता है। उन्हें यह कथन स्वीकार्य नहीं है कि फोर्ट विलियम कॉलेज में ही आधुनिक हिंदी भाषा और गद्य का जन्म हुआ।<sup>१</sup> उनका निश्चित मत है कि उन्नीसवीं शताब्दी अथवा फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से पूर्व हिंदी में गद्य ग्रंथ विद्यमान थे।<sup>२</sup>

"आधुनिक कहानी का परिपाठ" (१८६६) के अनुशीलन से हमारी यह धारणा दृढतर हो जाती है कि वाष्णोयजी ने अंगरेजी साहित्य और इसकी विविध विधाओं का सम्यक अध्ययन किया है। किंतु इस पुस्तक में उनके विवेचन का लक्ष्य आधुनिक कहानी पर पाश्चात्य प्रभाव का निदान नहीं है। उन्होंने केवल दो महत्त्वपूर्ण तथ्यों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है एक तो यह कि आधुनिक कहानी को "नई" कहना उचित नहीं है क्योंकि हिंदी कहानी में कथ्य तथा कथन दोनों ही दृष्टियाँ से होनवाले अनेकानेक परिवर्तन प्रत्येक काल में होते रहे हैं,<sup>३</sup> और दूसरा यह कि "तमाम लम्बी चौड़ी बातों के बावजूद हम प्रेमचंद जसा व्यक्तित्व उत्पन्न करने में असफल रहे हैं।"<sup>४</sup>

डा० भगीरथ मिश्र (१८१४-) के छिटपुट आलोचनात्मक निबंध और काव्यशास्त्र विषयक ग्रंथ भारतीय परंपराओं से ही सर्वाधिक संबद्ध हैं और उनकी दृष्टियाँ में पौरस्त्य काव्यशास्त्र का सशक्त प्रभाव दृष्टिगत होता है। डा० मिश्र लिखित 'अभिव्यजनावाद और आचार्य गुप्त', 'साहित्यालोचन के मानदंड

१ फोर्ट विलियम कॉलेज (इलाहाबाद, स० २००४), पृ० १६३।

२ उपरिक्त।

३ द्रष्टव्य "इन सब विषयगत और शैलीगत नदीनताओं के बावजूद आज की कहानी को पुरानी परंपरा से एकदम विच्छिन्न धारा मान लेना असंगत होगा। "आधुनिक कहानी का परिपाठ" (इलाहाबाद, १९६६), पृ० ९५।

४ उपरिक्त, पृ० ६ (भूमिका)।

५ डा० भगीरथ मिश्र, 'कला, साहित्य और समीक्षा' (दिल्ली, १९६३), पृ० २४३-२४७।

(२) पाश्चात्य<sup>१</sup>, “प्रतीकवाद”, ‘व्यावहारिक समीक्षा-सबधो सिद्धात’ आदि निबन्धा से पात होता है कि उन्होंने पाश्चात्य काव्यशास्त्र का अध्ययन किया है और उनके पाठ विश्लेषण तथा विस्तृत उद्धरणों के समीक्षण से जान पड़ता है कि ५ आधुनिक ‘सिमेण्टिक’ समीक्षका म प्रभावित भी हैं। परंतु उन भारतीय भाष्यकारों और स्नातक भगवानदीन, रत्नाकर-जैसे आचार्यों द्वारा उद्घाटित हिंदी टीका-परंपरा का ही सबसे अधिक प्रभाव है। अभिव्यजनावानादि के सबध में उनका विवेचन पाश्चात्य समीक्षका के मूल अथवा अंगरेजी में अनूदित ग्रन्थों पर ही आघत है।

उन अधुनातन रोमांटिक समीक्षका में, जो पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र से प्रभावित हुए हैं डॉ० विजयेन्द्र स्नातक (१९१४-) की आलोचना-वृत्तियाँ स्थायी महत्त्व की हैं। इनके अनुसार साहित्य के सर्जनात्मक अंगों की भाँति समीक्षा भी अभिनव सजन है और “उसके पीछे प्रेरणा की दृष्टि से वही मूल भावना उपलब्ध होगी जो स्व की अभिव्यक्ति चाहती है।”<sup>२</sup> समीक्षात्मक विवेचन और मूल्यांकन में भी हृदयगत आवेग-मवेग निहित होते हैं और समीक्षा के मूल में वही प्रेरणा रहती है, जो कविता या कहानी के मूल में रहती है। जिन आलोचकों ने इस मौलिक सिद्धांत की उपेक्षा की है उहोंने आलोचना-क्षेत्र में कोणहल ही मचाया है, काम की बात कम की है। जिन समीक्षकों ने ‘बौद्धिक प्रयोग के रूप में’ समीक्षा को स्वीकार किया है उन्हें यह सोचना चाहिए कि उनके भीतर ‘अज्ञात एवमप्रेक्षण किस रूप में उत्पन्न होती है। दुर्भाग्यवश (डॉ० विजयेन्द्र स्नातक के मतानुसार) हिंदी में “गभीर अध्ययन की भित्ति पर प्रतिष्ठित” समीक्षा के अभाव का एकमात्र कारण यही है कि हिंदी लेखकों का अल्पांश ही अपना समय विदेशी साहित्य सम्बन्धित तथा हिंदीतर भाषाओं के अध्ययन में लगाता है। सत्समीक्षा के वर्तमान दाय का यही कारण है कि हमारे आलोचक विदेशी साहित्य का अध्ययन नहीं करते। स्नातकजी के कथनानुसार प्रभाकर माधव के आलोचनात्मक निबन्ध इसलिए प्रशंस्य हैं कि उनमें सतुलन के साथ याग्यता, महद्दयता और अभिव्यजना-क्षमता का नमुचित समाहार पाया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रभाकर माधव ने पाश्चात्य साहित्य का श्रमसाध्य अध्ययन किया है, जो उनकी समीक्षा में बहुविध प्रतिफलित है।

१ डॉ० भगीरथ मिश्र, ‘काव्यशास्त्र’ (वाराणसी गोरखपुर, १९६३), पृ० २७८-३३१।

२ प्रभाकर माधव लिखित ‘सतुलन’ (दिल्ली, १९५४) की भूमिका, पृ० क।



है जिसकी आलोचना लिखनी होती है।" इसमें समीक्षक स्वयं कवि बन जाता है और उसकी रचनाएँ रसदीप्त हो उठती हैं।

लेखक के साथ प्रकाशित "चिंतन के क्षण" के निबंध उपरिलिखित स्थापनाओं का नमयित और प्रमाणित करते हैं। डॉ० नगेन्द्र का नमयित यह ग्रंथ "लेखक की आस्था" का व्यक्तीकरण है। इसमें कितनी ही ऐसी स्थापनाएँ मिलती हैं जो युग-युग से रोमांटिक कलाकारों के सर्वाधिक भाव सिद्धांत रहा हैं। कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक डॉ० नगेन्द्र जी के तात्सताय कविवर जयशंकर प्रसाद और अन्य रोमांटिक-छायावादी कविता के काव्यसिद्धांत से जितना प्रभावित हुआ है उतना अन्य लेखकों में नहीं। उसके अनुसार कला आत्माभि-व्यंजन है (डा० नगेन्द्र की महत्त्वपूर्ण भाष्यताओं में एक यह भी है)। "कला-सृष्टि में अनुभूति का योग रहता है।" (यह एक सामान्य व्यापक कथन है।)

जिसे हम वास्तविक कलाकृति समझते हैं वह स्रष्टा में ही निर्मित होती है। विश्व का सभी रोमांटिक सर्जनका न काव्यहेतुओं में प्रतिभा का स्थान सर्वोच्च रहा है। लागिनस से लेकर ब्रूक और रूसो तक (और अब 'चिंतन के क्षण' तक) प्रतिभा के समर्थकों की रोमांटिक परंपरा अभूण रही है। इसलिए रोमांटिकों की तरह ही 'चिंतन के क्षण' में लेखक कला को मानविन्द का—रमानुमूनि का साधन मानता है। रोमांटिक संप्रेषणीयता और साधारणीकरण के सिद्धांत की प्रतिध्वनि इन शब्दों में सुनी जा सकती है

१—मेरा अपना सम्मति में सच्चा साहित्यकार वह है, जो अपनी अभिव्यक्ति और अपनी गरज का समाज की श्रोता या पाठक की गरज बनाने में सफल होता है।<sup>१</sup>

२—मेरा आग्रह है कि जयबाध की शत साहित्यकार के सामने रहे तो कोई भी स्पातरण अग्रह नहीं बन सकता। मैंन ऐस अनेक रूपान्तरित वाक्य-खंड नई समीक्षा में पड़े हैं, जिनमें भाव का विपर्यय होकर रह गया है, भावबोध नहीं हुआ।<sup>२</sup>

तोल्सतौय के प्रभाव के साथ कितनी ही अन्यत्र प्रभाव मिलकर इस कथन

१ 'चिंतन के क्षण' (दिल्ली, जुलाई १९६६), पृ० ३।

२ उपरिखत, पृ० ४।

३ दे० "रोमांटिक जीनियस", इविंग ब्रिट्ट, 'रूसो एण्ड रोमांटिसिज्म' (यूपाँक, १९५५), पृ० ३९-६६।

४ 'चिंतन के क्षण', पृ० १५।

५ उपरिखत, पृ० ९१-९२।

मे व्यक्त होते हैं "समान म श्रेष्ठ ग्राह्य के रूप में स्वीकृत साहित्य तभी चनता है जब कोई रचना यकिन विशेष का सीमा वा लोपरर म हृदय समाज तक पहुँच जाती है।<sup>१</sup> स्वच्छतावाद स्वी के प्रति मूधम का विद्राह" है। इसलिए डा० स्नातक कहते हैं साहित्य का दन का मून्यासन स्कुल घरातल पर नही हो सवता।<sup>२</sup>

डा० स्नातक की समीक्षा पद्धति जय समकयवादी समीपरा की समीभा-पद्धति से मित्ती-जुलती है। अपन मना की दृष्टि के लिए व जहाँ भी भारतीय साहित्य से उदाहरण देते हैं वहाँ प्राय पाश्चात्य समीभा साहित्य का विस्मत नही करत। वहाँ-वहाँ एक ही वाक्य में पूर्व पश्चिम का अपूव सयाग उपस्थित करते हैं कालिदास जार गक्सपियर जम विगुद्ध रमवादी साहित्यकारा पर भी अपन युग के सामाजिक जीवन की छाया पूरी तरह लक्षित हाती है।<sup>३</sup> रामायण और महाभारत का आर पाठक का ध्यान आकृष्ट किया जाता है और इसके पश्चात इस स्थल पर यूरीपीडिज बक, वेल्स वनाड सा प्रभति की ओर। ध्य तथ्य है कि पाश्चात्य लेखका के नाम अनुपातत अधिक हैं। इस नामोल्लेख के अनतर एक अनुच्छेद के लिए विवचन पुन भारतीय भूमिका की ओर लाट आता है। प्रेमचन मविलीकरण गुप्त माखनताल चतुर्वेदी और दिनकर की चचा हाती है, पर इम अनुच्छेद के समाप्त हात ही लेखक अंगरेजी की एक उक्ति की बात करन लगता है। वही-वही चितन के क्षण में लेखक के कयन चवितचवण से दीखत हैं

किसी परपरानुमादित माग का अनुकरण साहित्यकार को नही करना चाहिए। (प० २३)

समान अवसर आर समान अधिकार ही समाजवाद के आधार स्तम्भ हैं। (प० १०७)

सभी कविया को मिलकर सम्मेलन की संगठित सफलता का प्रयास करना चाहिए। (प० १४०)

परतु ऐसे कयना से शायद ही कोई लेखक बचा हो। समग्रत डा० स्नातक की दृष्टि उदार और उनका समीक्षक अत्यंत सजग एव जागरूक है।

१ उपरिबत, प० १७।

२ उपरिबत, प० १६।

३ उपरिबत, प० १८।

४ उपरिबत, दे० प० १८ १९।

डॉ० देवीशंकर अवस्थी (१८३०-१८६६) के अधिकांश निबंध आधुनिक साहित्य और इनकी भिन्न भिन्न समस्याओं से सम्बद्ध हैं। इन सभी निबंधों की भाषा शैली, इनमें व्यक्त चिंतन, जीवन-बोध, जागतिक दृष्टिकोण और भाषा पर प्रभूत पाश्चात्य प्रभाव पड़ा है। "जालोचना और जालाचना" के निबंधों पर गिब्स, लीविंस, अँडेन, एलियट, विन्सेट आदि का प्रभाव परिलक्षित होता है। डॉ० अवस्थी ने आधुनिक अँगरेजी उपन्यासों पर एक अत्यंत विचारोत्तेजक एवं सारगर्भ विवेचन प्रस्तुत किया है, जो उनके गहन अध्ययन का द्योतक करता है। वस्तुतः डॉ० अवस्थी का कोई भी निबंध विचारपूर्ण नहीं दीखता और न कहीं ऐसा आभास ही होता है कि उनकी रचनाएँ गंभीर अध्ययन से प्रसूत नहीं हैं। 'स्कूटिनी' के माध्यम से लाविस और उसके सहयोगियों ने इस बात पर बल दिया है कि जालोचक भी पाठक हूना है और समीक्षा प्रक्रिया कला-मनन की प्रक्रिया से निजात भिन्न है। समीक्षक का लक्ष्य साहित्यानुशीलन से परे तथ्याको वादिक शक्तियों में रखकर एक सुसंगत व्यवस्था में परिणत होता है। स्पष्ट है कि डॉ० अवस्थी और डॉ० विजयेंद्र स्नातक दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। जहाँ एक पर आधुनिक पाश्चात्य विचारधारा का प्रभूत प्रभाव है, वहाँ दूसरे पर रामाटिका का। वहीं-वहीं तो (जैसे "साहित्यिक अध्ययन की प्रवृत्ति" में) डॉ० अवस्थी के विचार प्रभाववादी समीक्षकों के संघर्ष में व्यक्त एलियट के विचारों के अनुवाद-से लगते हैं और वहीं-वहीं ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ० अवस्थी अपने अँगरेजी विचारों का हिंदी रूपान्तर कर रहे हैं। "विवेक के रंग" (१८६७) और 'नयी कहानी' 'सदन और प्रकृति' (१८६६) की भूमिकाओं और इनमें प्रकृत डॉ० अवस्थी के निबंधों में स्पष्ट है कि उनका विकास समकाल की दिशा में रहा था। कौटुम्बिक रचनाओं की तरह उनकी आरम्भिक अपरिपक्व रचनाओं में ही भावी विकास के वांछित प्राणवान बीज सन्निहित मिलते हैं। अतः अनुमान किया जा सकता है कि इन सब उमकी सवदना पाश्चात्य प्रभावा को आत्मसात् करने और प्रौढ़ रचनाओं की अधिकाधिक मौलिक बनाने में समर्थ होती।



# हिन्दी की व्यावहारिक आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव



“ अधिकतर आलोचकों का मोत काटेक यही रहा है कि हिंदी में तो कुछ नवीन विकास हो रहा है यह तय बात यस्तु है।”

—जयगुरु प्रसाद, का० क० अ० नि०, प० ७

विश्व में ऐसे गुपीत ममता भावों विरत हुए हैं जिनकी आलापना सिद्धांत प्रतिपादन का प्रथम मूल उदाहरण उपस्थित नहीं करतीं और अविशिष्ट रचनाओं की समीक्षा का अपना उद्देश्य बताती हैं। यस्तु उन सिद्धांतों का विवचन किए बिना हम अविशिष्ट साहित्यिक कृतियों को ठीक-ठाक परत भी नही सतन जिन पर हमारा निर्णय आधुत होते हैं। इसलिए सद्धांतों एवं व्यावहारिक आलोचना में जो पाथक्य दिवाया जाता है, वह अधिकांश तृप्तिम जान पडता है फिर भी जहाँ सद्धांतों की समीक्षा का सबध इसप्रकार है कि साहित्य क्या है वहाँ व्यावहारिक आलोचना सिद्धांतों के प्रयोगात्मक पक्ष पर ध्यान देती हुई साहित्यिक कृतियों के गुणावगुणा की परीक्षा करता है। यह मान लेने पर भी कि सद्धांतिक और व्यावहारिक आलोचना में परस्पर घनिष्ठ सबध हाता है हम यह स्मरण रखना होगा कि इनके पथकृत विवचन स है। इह जच्छी तरह आकलित करन आर समचन में सहायता मिलती है। इसलिए निम्नलिखित विवचन में कई स्थला पर व्यवहार स सिद्धांत के क्षेत्र में अवलचन हा गया है फिर भी प्रयत्न किया गया है कि इस अध्याय में हिंदी के मूधय समीक्षकों के सिद्धांतों का निरीक्षण परीक्षण न कर उनको उन कृतियों को पाश्चात्य प्रभाव के आलोक में जावा जाय, जिनमें उन्हाने हिंदी के सास सास साहित्यकारों की उनको कतृत्व का मूल्य निर्धारण किया है। चूकि न सावहारिक आलोचक है उन्हाने दुलना और कपरीत्य प्रदर्शन का कर्षित महत्त्व किया है और वचन को मूल्यांकन का एक अनिवाय साधन माना है। उनकी

आलोचना पद्धति के अनुशीलन से सत्-असत् एव उत्कृष्ट निकृष्ट दो परखने की क्षमता का विकास होता है, जो उनकी सैद्धांतिक आलोचना के अध्ययन से नहीं होना। हम किसी मार्कि साहित्य शास्त्र के परिज्ञान के बिना भी अच्छे पाठक बन सकते हैं, किंतु पढ़ने के श्रम में निणय करन की क्षमता के बिना हम अच्छे पाठक कदापि नहीं हो सकते।

जिस प्रकार श्यामसुंदरदास की सैद्धांतिक समीक्षा पर पश्चिम का व्यापक और गभीर प्रभाव पड़ा है, उसी प्रकार उनकी व्यावहारिक समीक्षा भी पश्चिम से प्रभावित है। हिंदी के विविध साहित्यकारों के मूल्यांकन के लिए उन्होंने पाश्चात्य सिद्धांतों का उपयोग किया है और कहीं-कहीं उसी निकष पर हिंदी के कवियों और लेखकों का परखना चाहा है जिसका उपयोग अंगरेज समीक्षकों ने किया है। 'हिंदी साहित्य' में हिंदी कवियों का विवेचन प्रियसन<sup>१</sup> से प्रभावित है और कहीं-कहीं उनकी पकितया अधुनातन अंगरेज समीक्षकों की पकितयों की प्रतिध्वनि करती जान पड़ती हैं। 'रामचरितमानस' के समीक्षण के लिए प्रवच-कल्पना, सबघ निर्वाह वस्तु एव भावव्यजना को माप-दंड बनाकर उन्होंने तुलसी का महान घापित किया है। प्रवच-काव्य के विवेचन में रामचंद्र गुकल ने भी इन्हीं दृष्टिकाणा को स्वीकृति दी है और "पद्मावत"<sup>२</sup> की प्रवच-कल्पना (पृ० ८८), सबघ निर्वाह (पृ० ८४), कवि द्वारा वस्तु-वर्णन (पृ० १०३), और पात्र द्वारा भाव-व्यजना (पृ० १२३) का विविध विवरण प्रस्तुत किया है। संभवतः प्रवच-काव्यों के विशिष्ट्य निरूपण के लिए श्यामसुंदरदास ने गुकलजी द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों से प्रेरणा ली है या वे एतद्विषयक पाश्चात्य सिद्धांतों से प्रभावित हुए हैं। तुलसीदास-संबंधी विवेचन के अंत में उन्होंने साहित्य की विकास-परंपरा की क्रमबद्धता का उल्लेख किया है—

यह एक नावारण नियम है कि साहित्य के विकास की परंपरा क्रमबद्ध

१ रायबहादुर डाक्टर हीरालाल ने श्यामसुंदरदास विरचित 'गण-कुसुमावली' के प्राक्खन (१९२५) में प्रियसन को 'भारतीय भाषाओं का सर्वोच्च जीवित आचार्य' ("द हाइएस्ट लिविंग आथोरिटी ऑन इंडियन लिंग्वेज") कहा है।

२ दे० जायसी प्रयावली (प्रयाग, १९३५)। श्यामसुंदरदास की ये पकितयां द्रष्टव्य हैं 'क्या प्रवच-कल्पना, क्या सबघ निर्वाह, क्या वस्तु एव भाव-व्यजना, सभी उच्च कोटि की हुई हैं।'—हिंदी भाषा और साहित्य (प्रयाग, स० १९८७), पृ० ३९७-३९८।

ही है। इसमें गाय तारण का मरघ प्राय ईडा नार पाया जाता है। एन का रियोप क रियोप को रियो एन क रियोप मान ल तो उनके उत्तरवर्ती प्रयागरा का पूरवर्त्य माना हागा। फिर य पूरवर्त्य प्रयागरा समय पारर अपन पूरवर्ती प्रयागरा क पूरवर्त्य जोर उत्तरवर्ती प्रयागरा के पूरवर्त्य हागा। इस प्रकार य एन सवया का चलया और नमस्त साहित्य एन लडी के गमान हागा जिमरा भिन्न भिन्न बढिया उग साहित्य क वाक्यकार हागा।<sup>१</sup>

दाबू साह्य न अपना परपरा विषय मायताआ का बसा समुचित पलवा नही किया है जसा एलियट क कतिपय निवधा म मित्ता है परनु एलियट की तरह उन्हाने भा परपरा का प्रबहमान एव गतिगीत माना है।

हिंदी के निर्माता का प्रस्तावना म श्यामसुंदरदास न हिंदी गद्य क विकास मे अंगरेजा क योगदान जोर प्ररणा का उल्लेख किया है। लल्लूलाल नार सदा मिश्र ने कलकत्ते क फोट विलियम बालेज के टा० जान गिलक्रिस्ट की तत्वावधानता म ईस्ट इडिया कंपनी के युरोपाय कमचारिया को हिंदी भाषा का पान करान क लिए गद्य-ग्रन्था की रचना का थी। लल्लूलाल न 'प्रमसागर' की भूमिका म लिखा था 'श्रीयुत गुनगाहक गुनिमा मुगदायक जान गिलक्रिस्ट महाग्य का जाना से सवत १८६० म श्री लल्लूजी लाल रवि ब्राह्मन गुजराती सहस्र-अवलाच आगरेवाले ने जिसका (चतुभुजदासकृत भागवत दशम स्कंध के अनुवाद का) सार ले, यामनी भाषा छाड दिल्ली आगरे की सडात्रोली म कह, नाम प्रेम सागर धरा। पर श्रीयुत जान गिलक्रिस्ट महाशय के जान से बना अधवना, छप अधठपा रह गया था। सा अब था महाराजेश्वर अति दयाल कृपाल यसस्वा तजस्वी गिलवट लाड मिटा प्रतापवान क राग म नार श्रीगुनवान सुखदान कृपानिधान भगवान कपतान जान उलियम टेलर प्रतापी की जाना स नार श्रीयुत परम मुजान दयासागर परापवारी डाक्टर उत्रियम हटर नक्षत्री की सहायता से श्री श्री निपट प्रवीन दयायुत लिपटन जवराहम लाकर रतीकत क कहे स उसी कवि ने सवत् १८६६ म पूरा कर छपवाया, पाठगाला क विद्याथिया के पढन को।"<sup>२</sup> इसी प्रकार नासिकतोपायान' के अनुवाद के नारभ म पडित मदल

१ हि० भा० सा०, प० ३९८।

२ हिंदी के निर्माता (प्रयाग, प्र० ति० २०), सरस्वती सिरीज, न० १७, प० ७८।

निगिने लिखा था "चित्र विचित्र मुग्ध-नुदर बड़ी-बड़ी अटारिन से इद्रपुरी  
 रामान शोभायमान नगर कलिकता महा प्रतापी वीर नृपति कपना महाराज  
 के सदा फूल फूला रहे कि जहाँ उत्तम उत्तम गगन वमत हैं और देग-देग से एक  
 से एक गुणीजन आय जाय अपने अपन गुण का मुफ्त करि बहुत जाद म मान  
 होत हैं। नाम सुन सदल मिश्र पडिन भी वहा आन पहुँचा। जो बडी बडाई  
 सुनि मव विद्यानिधान ज्ञानवान महाप्रधान श्री महाराज जान गिःकृस्न साहय  
 से मिला कि जो पाठगाला के जाचाय हैं। ताकी जाना पाय दो-एक ग्रथ  
 सस्कृत मे भापा वो भापा से सस्कृत विण।" १

बाबू साहब न हिंदी के निर्माताओं की भाषा शैली का सम्यक् सक्षिप्त  
 विवरण प्रस्तुत किया है। जिन हिंदी-काव्यका क जीवन-परिचित का वर्णन हुआ है  
 उनके जीवन में सबसे माधारण परिचयात्मक बातें ही अधिक कही गई हैं, उनकी  
 साहित्यिक उपलब्धियों का यथाचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है। इस पुस्तक  
 में व्यावहारिक समीक्षा का स्तर अपन निम्न है और साधारण अध्येताओं  
 एवं विद्यार्थियों के लिए ही उपयुगी है।

कबीर प्रयावली' की प्रस्तावना पर हृमन बसफाल्ड तथा "विक्टोरियन'  
 समीक्षा का प्रभाव स्पष्ट है। कबीर के काव्यत्व' का वर्णन करते हुए श्याम-  
 सुन्दरदास ने कहा है "कविता के लिये उन्होंने कविता नहीं का है। उनकी  
 विचारधारा मय की खोज में वही है, उर्मी का प्रकाश करना उनका ध्यय है।  
 उनकी विचारधारा का प्रवाह जीवन धारा के प्रवाह में भिन्न नहीं। उनकी  
 प्रतिभा हृदय समन्वित है। प्रयत्न उनकी कविता में कहीं नहीं दिखाई  
 देता।" २ इसी प्रकार निम्नलिखित विवचन से स्पष्ट है कि बाबू साहब का  
 आलोचनात्मक रामाटिन-विक्टोरियन काव्य एवं समीक्षा के अध्ययन से  
 प्रभावित है —

कबीर ने अपना उक्तिया पर बाहर से अलंकारों का मुलभूता नहीं  
 चढाया है। जो अलंकार उनमें मिलते भी हैं, वे उन्होंने खोज-खोजकर  
 गहा बठाए हैं। मानिक कलाबाजी और कारीगरी के अर्थ में  
 कला का उनमें सबका अभाव है। "बे सिर पर की बाता", 'बायवी  
 अवस्तुआ' का स्थान और नाम निर्देश कर देन की कवि-कर्म कह  
 कर गैकमपियर के कवियों को सतिपात या पागल्पन में बे सिर पर

१ उपरिखत, पृ० ८।

२ कबीर प्रयावली (प्रयाग, १९२८), पृ० ६३-६४।

की याद बरखावागी की धनी म रग गित है। गानी कान क  
 गित तस्य भावतर है।<sup>१</sup>

इस उद्धरण का प्रथम भाग काव्यविशेषक सामाजिक दृष्टिकोण का दर्शा  
 करता है और अंतिम भाग— तथा इदमा क मू—मूत गिदोतां मे तुल्य है।  
 यह दर्शा भी बताता कि भाव क गान गहन क प्रतिरूप यदि कवि उम  
 गामा विचारिय वैभव म समर्पित करे क प्रकृत करेता इम विगर्पिता  
 म विरम्य पाठक को जा आपात पहुँचता उगता उ—प मी गरी कल्प  
 गित उ— म मोक्षायुग रीति मे अन्तर और एतात्त का प्राचुर्य इत्त क  
 (पाठक क मन पर) समृद्धि प्रभाव डालने क प्रतिभामय जती भावना उद्घा  
 तम प्रकटता गती क्षण भी गपता और दांत है।<sup>२</sup> इस प्रकार का भाव पिता  
 पटर का रचनाभा म भा गामा जाता है।<sup>३</sup> जोर तस, उ कता है कि 'कविता  
 गानता तस्य रूप म अभिव्यक्त गाना का ही प्रतिबिम्ब है।'<sup>४</sup>

विद्यार्थियोंगणों गमीणा घजितात्त मन्भासिन् (कोटकम्पुत्रम्)  
 एय प्रभाववाता है बाबू साहब का व्यावहारिक गमीणा भी गमी है। उद्घात  
 दृष्टि और टा० जीतगा के गमात विवेक्य कवि क दाया क अत्याकरण क गित  
 एतिहासिक पृष्ठभूमि का प्रयोग किया है। कबीरदास की उद्घातम्य म  
 अनभिज्ञता का उद्घातम्य कट्टर शक्य घादित किया है कि कट्टिने कविता  
 के आरम्भ के तिथ (प० ६६)। सत्ता क प्रयोग म कथार उ उम गुद्धता और  
 सावधानी का परिपक्व गहा किया है जा प्रत्येक कथिके लिए जरूरिहाय है। उद्घात  
 ब्रह्म के लिए राम रहीम अत्या तस्य ताम गान्य, साहब जात भाति  
 अतक सत्ता का प्रयोग किया है (प० ३४)। बाबू साहब क अनुसार 'इनका  
 (कबीर का) ध्यय सक्ता सिद्ध मुस्लिम ऐक्य रहा है यह भी इसका एत कारण है  
 (प० ३५)। इयाममुद्दरदास न प्रेम तथा बाल्यायस्था के प्रति कबीर के दृष्टिकोण  
 की तुलना कांरिज और यड स्वर्ग की एत विषयक मनादृष्टि स का है।  
 जिस प्रकार कांरिज के प्रेम की सीमा म सष्टि क सभी जीव जतु जा गत है,<sup>५</sup>

१ उपरिचत, प० ६५ ।  
 २ पादचाय काव्य शास्त्र की परपरा (दिल्ली, प्र० ति० २०), प० १४४ ।  
 ३ उपरिचत, प० २२३ २२४ ।  
 ४ उपरिचत, प० १७३ ।  
 ५ बाबू साहब ने कोलरिज की इन पंक्तियों का उद्धृत किया है  
 ही प्रेमेय बेस्ट ह लयेय बेस्ट,

उसी प्रकार कबीर का प्रेम मनुष्यों तक ही परिमित नहीं था। वह स्वयं के अनुसार बालका की सरलता का कारण यह है कि उनमें पारमार्थिकता अधिक रहती है। ज्यों-ज्यों उनकी अवस्था बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उनमें पारमार्थिकता घूना जाती जाती है। इसलिए अपने खोये हुए बालकत्व के लिए वह क्षुब्ध हो उठता है।<sup>१</sup> कबीरदास भी बालका की सरलता के प्रशंसक हैं, किंतु उनके अनुसार यदि मनुष्य स्वयं भक्ति भाव से जपन मन का परिशुद्ध कर परमात्मा की ओर उन्मुख हो तो वह पुनः अपनी बालमुल्लभ सरलता को प्राप्त कर वाचक हो सकता है —

जा तन माहँ मन घर मन घरि निमल हाइ ।

साहिव सा सनमुख रहै, तो फिरि वाचक हाइ ॥

जिस कसौटी पर बाबू माहज न जपन धरितनायका का परखा है और हिंदी के गणमाय भाहित्यकारा का मल्यावन किया है वह शुक्लजी की काव्य-परिभाषा में भी प्रभावित है। 'कविता की कसौटी' शीपक निबंध में "कविता के लक्षण" का प्रतिपादन शुक्लजी की उस चिरपरिचित परिभाषा के जालोक में हुआ है जिसमें उन्होंने कविता को वह साधन कहा है 'जिसके द्वारा शीप मण्डि के साथ मनुष्य के रागात्मक मबंध की रक्षा और उसका निर्वाह हाता है।' शुक्लजी का 'विचार-बीची' नामक निबंध संग्रह के प्रकाशक ने अपने 'निवेदन' में शुक्लजी द्वारा निरूपित काव्य-स्वरूप का उद्धृत करने के पश्चात् कहा है

यह लक्षण रायसाहब बाबू श्यामसुन्दरदास धी० ए० को इतना पसंद आया कि उन्होंने उक्त लेख का वह भाग जहाँ जिसमें इस सिद्धांत का निरूपण था, पहले अपने 'साहित्यालोचन' में और फिर अपनी गद्य-शुसुमावली' (कविता की कसौटी, प० २२-२३) में उद्धृत किया।

इस प्रकार इस संग्रह ('विचार-बीची') में प्रकाशित भारनेदु-सवधी प्रबंध 'नागरी प्रचारिणी-त्रिका भाग १४ सत्या १० तथा भाग १५ सत्या १० में प्रकाशित हुआ था। इस लेख का भी

ऑल थिंग्स घोय ग्रेट एण्ड स्मॉल,

फौर द डिपर गाड हू लवेय अस,

हो मेड एण्ड लवेय आल,

—द राइम आव दि एनगट मेरिनर ।

१ दे० इमोटॅलिटी ओड ।

उपर रायगाहन न अपना मयादित 'भारत-नाट्य-संस्थान'  
 'भूमिमा भज्या तात्वा पूग उद्धत किया है।' १

## रामचन्द्र गुकल

भक्तिकालीन भाव धारा का निरूपण करत हुए, गुकलजी न कहते  
 हैं

कालदर्शी भक्त कवि जनता के हृदय को सम्भालन आर लीन रखन  
 के लिए दबी हुई भक्ति को जगान लगे। प्रमत्त भक्ति का प्रवाह  
 ऐसा विस्तृत और प्रबल हाता गया कि उसकी लपट में केवल हिंदू  
 जनता ही नहीं देग मयसनेवाले सहृदय मुसलमानों में से भी न जान  
 कितन जा गए। २

"हिंदुस्तान का आधुनिक भाषा साहित्य' में प्रियसन न तुलसीदास तथा  
 उनका 'मानस' के सत्रध में इसी तरह की बातें कही हैं<sup>३</sup> और भक्ति-आन्दोलन  
 को मुसलमान विजेताओं द्वारा पराभूत देश की नराश्य भावना का परिणाम माना  
 है। इसमें सन्देह नहीं कि श्यामसुन्दरदास, रामचन्द्र गुकल और उनका समसा-  
 मयिना न तुलसी का महत्त्व "डाक्टर प्रियसन से सीखा है।" रामचन्द्र गुकल-  
 कृत 'गोस्वामी तुलसीदास' के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण स्थल प्रियसन के सक्षिप्त  
 सूत्रबन्धन कथना की व्याख्या है। उदाहरणार्थ, गोस्वामीजी की भाषा के सवध में  
 प्रियसन न कहा है कि 'वसरन्तम प्रवाहपूण वणनात्मक शय्या सलकर जटिलतम  
 साकेतिक पद्य प्रणाला तत्र सर्भी के जाचाय ये।' (वि० ल० गु० पृ० १४२)  
 गुकलजी ने प्रियसन की आधारभूत भाष्यताओं एवं निष्कर्षों का समर्थन किया है  
 और तुलसीदास की प्रबलमान भाषा शली की विशेषताओं का विशद उल्लेख  
 किया है। जिस प्रकार प्रियसन ने तुलसीदास को भारतीय कवियों में शीर्ष स्थान  
 देते हुए सीधे 'प्रकृति का पुस्तिका' से ली गई उनकी उपमाओं की प्रशंसा की  
 है उसी प्रकार प्रियसन की विचार सरणियों का अनुसरण करत हुए, गुकलजी

१ 'विचार-बीची (बनारस, १९३०), पृ० ३४ (निवेदन)।

२ 'हिंदी साहित्य का इतिहास (बनारस, स० १९९९), पृ० ७०।

३ 'किशोरीलाल गुप्त (सपा०), डा० अब्राहम जाग प्रियसन कृत हिंदी साहित्य  
 का प्रथम इतिहास' (बनारस, १९६१), पृ० १३६-१३७।

४ मद्दुलारे बाजपयी, हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी (लखनऊ, १९४५),  
 पृ० ५७।

न कहा है "हिंदी कविता में प्राचीन मन्वृत कविता का-मा वह सूक्ष्म निरीक्षण नहीं है जिससे प्राकृतिक दृश्या का पूरा चित्र सामने पडा जाता है। यदि किसी भी यह बात थाही-यहून है, ता गोस्वामी तुलसीदासजी महीं।"<sup>१</sup> प्रियसन न भी तुलसीदास का स्यूल वस्तुआ का "मूक्ष्म द्रष्टा" कहा है और स्वीकार किया है कि महाकवि के अनेक "सत्य आर नरलनम पद्याश" उनके उन विद्वान् टीकाकारा की समझ म नहा जात "जा जपनी आशें पुस्तका से बल किए हुए, अपने चतुर्दिग्न स्थित सुंदर ससार म विचरण करत थे।"<sup>२</sup> गुक्ली न गोस्वामी तुलसीदास क उम दय आर विनय का प्रसंगानुकूल उल्लेख किया है जिसकी ओर, सक्षेप मे, प्रियसन ने भी हमारा ध्यान इन शब्दा म जाकृष्ट किया था

इस महान् कवि की इस कृति के गुणा के कारण का ढूढन के लिए दूर न जाना जागा। सबसे महत्त्वपूर्ण कारण कवि की जति विनम्रता है, राम चरितमानस की भूमिका प्रथ के अत्यंत विशिष्ट प्रकरणा म स एक है। तुलसी न कभी भी एक पक्ति नहीं लिखी जिनम के अन्तरतम से विवाम न करत रहे हा। व जपन विषय जपन स्वामी की भक्ति आर उनक गारव, म पूणतया निमग्न ये आर वह भक्ति आर गौरव उनसे इतन उच्च थे कि वह सदैव अपने का दीन ममथत रह।<sup>३</sup>

स्पष्ट है कि गुक्ली की व्यावहारिक समीक्षा ऐस स्थला पर प्रियसन स प्रभावित है।

चाहे तुलसीदास का विवचन करना ह, या जायसी का, गवरजी पादशास साहित्य स उपलब्ध ज्ञान विज्ञान का कभी विन्मत नहीं करत। तुलसीदास के लक्ष्य म सवधी विचारा का विनियमन उपस्थित करते हुए व "प्रिसपत्त जाव सोशियॉलजी" के लेखक गिटिंग का मत उद्धृत करत है आर कहत हैं कि "समाज शास्त्र के जापुनिक विवचका न भी लोक-सग्रह आर लोक विरोध की दृष्टि से जनता का विभाग किया है। गिटिंग के चार विभाग य ह—लोक-सग्रही लोक-बाह्य, जलोकपयोग आर लोकविरोध।"<sup>४</sup> तुलसीदास न कहा-कहा एक ही त्रिया क दा एन बर्गों का उल्लेख किया है जा परम्पर

१ 'गोस्वामी तुलसीदास (प्रयाग, १९३५), प० १५०।

२ कि० ला० गु०, उल्लि० प्र०, प० १४५।

३ उपरिबत, प० १४४।

४ गोस्वामी तुलसीदास, प० २८।



विजातीय होन के कारण बहुत ही अनूठे लगते हैं।<sup>१</sup> शुक्लजी को सहसा विना जंगरेज कवि का नहीं, अपितु एत जंगरेज औपन्यासिक का स्मरण ही जाता है जिसे तेम प्रयोग बहुत अच्छे लगते थे। उन्होंने चार्ल्स डिक्स से ऐम हा प्रयाग का एक उदाहरण दिया है 'इस बात न उसकी औपा म जीसु और जम से हमाल निवाल दिया--सिस डू टीयज प्राम हर आइज एण्ड हैक्चोफ़ फ़ाम हर पविट ।'

सूरदास-द्वारा प्रस्तुत गो चारण के मनोमदस्या के वचन को पढ़कर शुक्लजी का मूरप के "पशु चारण काव्य" ( पास्टरल पोयट्री ) की याद आती है।<sup>२</sup> सूर और तुलसी के विवेचन को व्यापक भूमिका पर सस्थित करने के लिए लेखक अपनी दृष्टि प्राच्य दशन चिंतन तक ही सीमित न रखकर प्रतीच्य साहित्य आर दर्शन की ओर भी दीडता है। तत्त्वाभास के लिए वह स्वानुभूति का अनिवाय मानता है<sup>३</sup> और इसकी पुष्टि भारतीय साहित्य एव दशन म प्रतिपादित एतद-विषयक विचारों से ही न कर पाश्चात्य विद्वानों के भी मत उद्धृत करता है। जिस प्रकार सूर और तुलसी न कौरी बुद्धिधिया को निरयक घोषित किया था, उसी प्रकार पश्चिम के भी कतिपय दार्शनिकों न स्वानुभूति का गुण गान किया है। शुक्लजी को विश्वास है कि पश्चिम की अधुनातन विचार धाराएँ प्राच्य चिंतन के नितात विपरीत नहीं हैं। पश्चिम म भी सूर, तुलसी और शकुराघाय के सदृश कई दृष्टियों से उनसे मिलत-जुलते, कुछ ऐसे ममज्ञ कृतधी हुए हैं जो बुद्धि निया और तर्क को ही पारमार्थिक सत्ता के बाध के लिए अनिवाय नहा मानते। इन विद्वानों म, शुक्लजी के साक्ष्यानुसार बगसा और एडवड कार्पेण्टर शापस्थ दीसत है।<sup>४</sup>

सूरदास की नवोन्मेषशालिनी कल्पना की सर्वोपरिता का वचन करत समय शुक्लजी का कालरिज की डिजेक्शन ओट नामक कविता तथा जी० डब्ल्यू० मैकेल के 'लेक्चरस जान पोयट्री' की याद आती है। शुक्लजी की मझातिक समीक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव के निदर्शन तम म कहा जा चुका है कि वे वचन की भाव पेरित कर्ता का ही समथन करते हैं। सूरदास की वाग्विदग्धता का निरूपण करत हुए वे पुन इसी सिद्धांत का उपयोग करते हैं। यहाँ यह कहना असगत न

१ उपरिचत, प० १८३ ।

२ उपरिचत ।

३ 'भ्रमरगीत सार' (काशी, १९२५), प० १३ ।

४ उपरिचत, प० ६० ।

५ उपरिचत, प० ६१ ६१ ।

होगा कि इस सिद्धान्त पर कोलरिज का प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट है। कोलरिज ने भी भाव-प्रेरित वदग्ध्य और वक्रता को ही काव्योचित ठहराया है

Images however beautiful, though faithfully copied from nature and as accurately represented in words do not in themselves characterize the poet. They become proofs of original genius only as far as they are modified by a predominant passion or by associated thoughts or images awakened by that passion or when they have the effect of reducing multitude to unity or succession to instant, or lastly, when a human and intellectual life is transferred to them from the poet's own spirit.<sup>1</sup>

समग्रतः, गुक्लजी की व्यावहारिक समीक्षा कोलरिज, डाउडन, एवरमॉन्डी, जानल्ड तथा रिचर्ड्स के सिद्धांतों में ही सर्वाधिक प्रभावित दीखती है। एकाध स्थल पर व अरस्तू से भी प्रभावित दीखते हैं। "पद्यावत" में 'सबध निर्वह' का विवेचन करते हुए उन्होंने अरस्तू-द्वारा निरूपित 'कार्यावयव' (यूनिटी ऑव ऐक्शन) के सिद्धांत का उपयोग किया है और कहा है (१) "इस प्रकार के प्रबंध के वस्तु विन्यास की समीक्षा बहुत कुछ दृश्यकाव्य के वस्तु विन्यास के समान ही होनी चाहिए, और (२) 'कथावस्तु के आदि, मध्य और अंत तीना स्पष्ट हों।"<sup>३</sup> अरस्तू के अनुसार महाकाव्य के कथानक का निर्माण प्राप्ति की तरफ नाट्य सिद्धांत के अनुसार ही होना चाहिए। उसका आधार आदि-मध्य-अवसानरुक्त एक समग्र एवं पूण काय होना चाहिए।<sup>४</sup>

गुक्लजी ने जानल्ड और जायसी की तुलना करते हुए कहा है कि जो जानल्ड का जादग था वही जायसी का भी जानल्ड ने "काय विषयक प्राचीन जादग का ही नमूना-अनुसरण किया है और काय के महत्त्वपूर्ण होने की सिफारिश का है। जायसी ने भी अपने काव्य के लिए महत्काव्य का ही ध्येय किया है और

१ एस० टी० कोलरिज, 'सायोलॉजिकल लिटरेचर', १८१७। बलाइव सप्तम की पुस्तक 'द बन्ड ऑव पोयट्री' (लंदन, १९५९) के पृ० २१२ से उद्धृत।

२ 'जायसी ग्रंथावली' (प्रयाग, १९३५), पृ० ९४-१०३।

३ उपरिबत, पृ० ९६, ९८।

४ डॉ० नॉर्ड, 'अरस्तू का काव्य शास्त्र' (दिल्ली, स० २०१४), पृ० ६१।

इसका आयोजन करनेवाली घटनाएँ भी बड़े डील डौल का हैं। यहाँ भा जायसी का समीक्षण-परीक्षण करत समय गुजराती अँगरेज कविया का समान रचनाओं को मूल नहीं जात। उन्होंने जायसी द्वारा विस्तारक गुप्तर प्रत्ये तावर्ण किए जाने का उल्लेख करते हुए कहा है कि अँगरेजों का कवि गान्डमिय न भी अपन "श्रात पधिर" नामक वाक्य में विस्तारक प्रत्येगीकरण किया है। कहीं-कहीं शुक्लजी ने पाश्चात्य विद्वानों का विचारों का सडन भी किया है। प्रियसन के इस विचार से वे सहमत नहीं कि जायसी में पात्र जायसा न पछिना मे ससृजन काय रीति का अययन किया।<sup>१</sup> जायसी के रहस्यवाद का अययन का क्रम में उन्होंने पाश्चात्य रहस्यवाद का भी सारगर्भ सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करत हुए प्राच्य प्रतीच्य रहस्यवाद की परस्पर भिन्नता का स्पष्टाकरण किया है। रहस्यामुत्त सूफिया और पुराने कथतिक ईसाई भक्ता की माधना में उहान साम्य देखा है और कहा है कि दोनों समान रूप से माधय भाव की ओर प्रवृत्त रह हैं। यहाँ तक कि यूरप में कई ऐसी स्त्रियाँ हुई हैं जिहान इन्वर की, पति रूप में उपासना की है। सफो और सेठ टेरेंसा इनमें उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार उनीसवीं शती में रहस्यात्मक कविता का जा पुनरुत्थान यूरोप के कई प्रदेशों में हुआ उत्तम सववाद (पथेइज्म) का भी बहुत कुछ आभास मिलता है। अँगरेज कवि गेली में इस प्रकार के सववाद की झलक पायी जाती है और आयल ड में स्वतंत्रता की भीषण पुकार के बीच येटस की रहस्यमयी कविवाणी भी सुनाई देती है।<sup>२</sup> शड, ब्राउनिंग डाउडन, जमन दाशनिक फिक्ट प्रभृति की रचनाओं से भी शुक्लजी परिचित थे और उहान 'जायसी-ग्रन्थावली' का भूमिका में इनका यथावश्यक उपयोग किया है।

### चलदेव उपाध्याय

उपाध्यायजी 'प्राभाविक' समीक्षक हैं

(१) कालिदास की तरह शोकसपियर न भीकया ही अच्छा कहा है।<sup>३</sup>

(२) कवि ने खव ही वाक्य-याम (पोयटिक जस्टिस) दिखलाया है।<sup>४</sup>

१ जायसी ग्रन्थावली, प० २२६।

२ उपरिखत, प० २०७।

३ ससृतकविचर्चा (काशी, १९३२), प० ६०।

४ उपरिखत प० ३१६।

(२) भवभूति एवं-जान के बड़े पत्थरा की भी रामचन्द्र के विलापों से खूब ही रुलाया है। ऐसा चमत्कार किसी कवि ने नहीं पदा किया है।<sup>१</sup>

(४) हम इतना ही कहते हैं कि कविता-कामिनी व शिरोमुकुट के दानो ज्वलत हीरे हैं।

(५) प्रातःकाल भवपत्नी रोनेवाले निपाही का स्या ही खाम्य स्वाभाविक वणन है।<sup>२</sup>

‘संस्कृतकविचचा’ में उन्होंने कालिदास की चचा में गेटे द्वारा शकुन्तला का प्रगता का “प्रसस्त एव ‘औचित्यपूर्ण’ कहा है और गेटे की इस पवित्रया का उद्धृत किया है<sup>३</sup>—

Wouldst thou the life's young blossoms and fruits  
of its decline

And by which the soul is pleased enraptured  
feasted fed—

Wouldst thou the earth and heaven

itself in one sweet name combine ?

I name thee O Shakuntala and all at once is said

इसी प्रकार उहान रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा गेक्सपियर के “टैम्पेस्ट” और कालिदास के ‘अभिज्ञानशाकुन्तल’ की तुलना का ‘सुंदर’ कहा है और इसकी कुछ महत्त्वपूर्ण पवित्रया उद्धृत की हैं।<sup>४</sup> गेटे की समालाचना का अनुसरण करते हुए रवीन्द्र ने कहा है कि शकुन्तला के आगम के तरुण सौम्य ने मगलमय परम परिणति से सफलता प्राप्त कर मृत्यु का स्वर्ग के साथ सम्मिलित करा दिया है। कहीं-कहीं उपाध्यायजी की व्यावहारिक समीक्षा में पाश्चात्य सिद्धांतों का विनियोग अत्यंत स्पष्ट दीख पड़ता है। भवभूति के ‘उत्तररामचरित’ में<sup>५</sup> ‘पोपटिक जस्टिस का साक्षात्कार करते हैं। भवभूति पुरानी लंबी पीठने-

१ उपरिबत, प० ३१६ ।

२ उपरिबत, प० ३२७ ।

३ उपरिबत, प० २८३ । द्रष्टव्य (प० ६१) “पाठक। जरा प्रकृति वणनों का आनंद उठाइये।”

४ उपरिबत, प० ४२

५ उपरिबत ।

६ उपरिबत ।

वाले विद्वान् न थे, इसलिए उन्होंने मौलिक उपाया की उद्भावना की है। वाल्मीकि का तरह पद्य की उपायिनी गुण सदत हैं अथवा टाग यस्तु का उपमा विनी "ऐम्प्ट्रुड" यस्तु ध। भवभूति द्वारा प्रस्तुत दण्डारण्य का यणन जगरज महारविषा द्वारा लिए गए यणा। क समान डिटेड" तथा रियलस्टिक"—विस्तृत तथा वास्तविक—है। यहाँ एव सामाय कथन म वाम चलाया गया है, उन विशिष्ट "महारविषा" के नाम नहीं बताय गए जिनक यणन विस्तृत तथा वास्तविक होते हैं।

"कवि और कव्य म दही, कविराज पार्षी बेंकटाघरि, वाल्मीकि, बालि-दास, शिग भूपाल, जाशाघर भट्ट और ससृत की कवयित्रिया की (व्याव-हारिक) समीक्षा पाश्चात्य तत्त्वा और प्रभावा स विमुक्त है। कभी-कभी उन कविषा के ग्रन्था क अनुसधान म पाश्चात्य विद्वाना के श्रमसाध्य याग का उल्लेख मिलता है। पाटसन और व्यूलर, याकोबी और ऑफ्रेट का गवेषणात्रा की ओर यथावसर उल्लेख किया गया है। लख उनक श्रम एव बहुष्य स ही सर्वाधिक प्रभावित है—उसकी व्यावहारिक समीक्षा पर इन कचस्वा विद्वाना का प्रभाव नहा पडा।

### हिंदी-नाटको की व्यावहारिक समीक्षा डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा

पाश्चात्य पद्धति से प्रभावित हिंदी के कतिपय समीक्षका ने हिंदी नाटका और नाटकबारा की तथ्यपरक व्यावहारिक समीक्षा प्रस्तुत की है। डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने प्रसाद के नाटका का मूल्यांकन पौरस्त्य शास्त्रीय मानदडा से ही नहीं किया है। उन्होंने यथासभव पाश्चात्य प्रतिमाना स भा उन्हें आकने का प्रयत्न किया है। "स्वदगुप्त" के पचम अंक म उन्होंने प्रभावचिति ('यूनिटी आव इम्प्रेगन') की महत्त्वपूर्ण स्थापना देखी है।<sup>१</sup> कहां-कहां उनका चरित्र-विश्लेषण प्रभाववादी एव काव्यमूलक हा उठता है। स्वदगुप्त के तृतीय अंक के विवचन म उन्होंने कहा है 'इसके अतिरिक्त जत सलिला पयस्विनी क समान प्रेम का प्रसंग जीर अधिक् रग पकडता है।<sup>२</sup> इस अंक के जत म प्राप्तमागा का रूप उपस्थित न होकर पाश्चात्य चरमसीमा<sup>३</sup> का रूप निश्चित और स्पष्ट

१ डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, 'प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन (काशी, १९४३), प० ९६।

२ उपरिक्त, प० ९४।

३ बलाइमेक्स।

होना है।<sup>१</sup> शर्माजी के अनुसार "ध्रुवस्वामिनी" में पाश्चात्य शास्त्रीय सक्त्र-त्रय का प्रवृत्त निवाह स्वयं हो गया है।<sup>२</sup> लेवक न प्रभाद के नाटका का भ्रमवद्ध शास्त्रीय अध्ययन किया है। उमवे निकप सभी नाटका के लिए समान भाव से प्रयोजनीय ठहरते हैं। पूर्वनिश्चिन्त शास्त्रीय, और कहीं-कहीं पाश्चात्य प्रतिमाना में प्रसादनी के कर्तव्य का आका गया है। ऐसी पद्धति के लिए विवेच्य ग्रन्था के पाठ का मनायागपूर्वक बार-बार अनुशीलन अपेक्षित है। ऐस अनुशीलन पर आघत विस्लेषण ही सच्चा पाठ विस्लेषण है। जहाँ आलापना जालोच्य पाठा से दूर जा पडती है, वहा वह अयथाथ, नामाय एव मदिग्ध हो जाती है।

### डा० दशरथ ओझा

डा० दशरथ ओझा की व्यावहारिक समीक्षा केवल परिघषात्मक नहीं है उमम मूढतथ्य विस्लेषण भी पाया जाता है। उनकी पद्धति व्यावहारिक समीक्षा की आधुनिक "एम्पसोनियन" पद्धति से भिन्न अँटरजाइस निक्ल की पद्धति के मदन है। वे विवेच्य कृतियों की ही परीक्षा नहा करते, रचना-काल म उनके तात्का की मनोदशा एव तदयुगीन सामाजिक और राजनैतिक परिस्थि-निया का भी विस्लेषण करते हैं। विस्तृत उद्धरण लेकर उनके भाषागत सौष्ठव का रूपाकन नहीं करते।

आमानी की व्यावहारिक समीक्षा का महत्त्व इस बात म निहित दीक्षता है कि वे विवेच्य ग्रन्था से सबद्ध कतिपय मूर्त्मातिसूक्ष्म समस्याका का वदा ही तक्-सगन प्रामाणिक एव विश्वसनीय समाधान खोज निवालते हैं। विशाल्व' क समाक्षण क्रम म वे प्रदन करते हैं। राज्यधी और विशाल्व के रचनाकाल म छ वष का अंतर है। स्वभावत यह प्रदन उठता है कि इस दीषकाल में प्रसादजी न नाटक-नृजन से विथाम क्या लिमा? <sup>३</sup> भारते दुद्वारा विद्याखदत्तकृत "मुद्रा-रास" के अनुवाद एव समपण के सबध म वे पूछत हैं 'भारते दुजी ने यह नाटक क्या समयापयोगी समया और राजा निवप्रसादजी को क्या समपण किया है?'<sup>४</sup> "जनमजय का नागयन" म एक नवीन योजना पाकर वे इसका कारण

१ 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन,' पृ० ९४।

२ उपरिबत, पृ० २१५।

३ डा० दशरथ ओझा, 'हिंदी नाटक उदभव और विकास' (दिल्ली, स० २०१८), पृ० २१९।

४ उपरिबत, पृ० १७२।

जानना चाहते हैं "इसनवीनयोजनाकाकोई न कोई कारण अवश्य रहा होगा।"<sup>१</sup> डा० ओझा के प्रश्न जितने राचक होते हैं, उतने ही विद्वत्तापूर्ण एवं विश्वसनीय उनके उत्तर भी होते हैं। इनके लिए लेखक विवेच्य नाटककार के आवेष्टन और जीवन का सम्यक् अध्ययन और विश्लेषण करता है। वही कटी उसकी व्यावहारिक समीक्षा के प्रतिमान पश्चात्य—यूनानी और फ्रांसीसी हो जात हैं। उदाहरणार्थ बालकृष्ण भट्ट रचित वेणुसंहार का मूल्यांकन करते हुए उसने इसमें काव्य-विरोध दोष पाया है और कहा है कि उसमें बाल की एकता नहीं है। "स्वदगुप्त की विशेषता का निरूपण करते हुए उसने कहा है कि इसमें "प्रसाद न पहले-पहल इस तथ्य को अपनाया है कि ऐतिहासिक नाटकों में राजनीतिक घटनाओं के साथ साथ पारिवारिक घटनाएँ भी जीवन पर प्रभाव डालती चलती हैं।" यह कथन डॉ० जॉनसन द्वारा शेक्सपियर विरचित नाटकों के मूल्यांकन की याद दिलाता है। "ह्याट इज नीयरस्ट टूवेज अस मोस्ट। द पशस राइज हायर ऐट टामेस्टिक देन ऐट इम्पोरियल थोम्ज।"<sup>३</sup> इसी कारण टाइमन जाव एथेस' की प्रशंसा हुई है इसमें राजनीतिक घटनाओं के साथ पारिवारिक घटनाएँ भी विनियोजित हैं। निष्कपत ओझाजी की व्यावहारिक समीक्षा पौरस्त्य एवं पश्चात्य पद्धतियों के अंतराल से चलती है, अतएव उसमें केवल एक ही पद्धति की विशेषताएँ पुजीभूत नहीं लिखाई पड़ती।

## ५० विश्वनाथप्रसाद मिश्र

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने व्यावहारिक समीक्षा के लिए जिन मान-दंडों का ग्रहण एवं प्रयोग किया है वह मुख्यतः प्राचीन वायशास्त्रीय मानदंड हैं। उनकी व्यक्तिगत धारणा है कि पश्चिमी आलोचना का पदानुसरण करने का फल यह हुआ है कि हिन्दी में नया आलोचनाशास्त्र नहीं बन पा रहा है।<sup>४</sup> समालोचना के क्षेत्र में समय का बहुप्रचलित पद्धति भी उन्हे कथमपि प्राह्य नहीं है। पश्चिमी समालोचना के साथ भारतीय साहित्यशास्त्र को मिलाना या उसमें

१ उपरिचन, प० २३२।

२ उपरिचन प० २४७।

३ लेटस, १, प० १६२।

४ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी (प्र० सपा०), 'काव्यशास्त्र' (दिल्ली, १९६६), प० ४८२। दे० प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र लिखित "भारतीय साहित्यशास्त्र और पश्चिमी समालोचना" पाठ्य निबंध।

परिष्करी समालोचना को जोड़ता मंगलकारा नहीं है।<sup>१</sup> इसलिए अपनी सदांतिक एवं व्यावहारिक समीक्षा में मिश्रजी भारतीय पद्धतियाँ वाली अनुकरण एवं विमुक्त सत्समाप्त्युक्त काल में अपनी सम्पादित रचनाओं की जाणालोचना प्रस्तुत करते हैं। इस आलोचना का मूलाधार पाठ विश्लेषण और उपसंग्रह तथ्य। वे आधार पर प्रामाणिक निष्कर्षों की स्थापना हैं। उक्त पाठ विश्लेषण में वहीं भी मन गड़न भाषा का यत्न आराधन नही दीग पड़ता—भाव एक-एक कर पूर्ववर्धित विचारों का विश्लेषण पाठ मस्वन निरस्त जात हैं। वाक्य का अभिव्यक्ति में, मिश्रजी का अनुसार का सत्त्व विधेय काम करते हैं—एक पाठनय और दूसरा विधेयत्व। इनका मन्व, पाश्चात्य समीक्षा का अनुसार, 'जाडिटी' एवं 'विजुअल' कल्पना गति से जाना है। वाक्य में जन प्रतिष्ठित गीत इसका नादवत्त्व है जिसके प्रति भावक श्रवणेंद्रिय द्वारा आकृष्ट होता है। दूसरे तत्त्व का सन्ध वाक्य का धान्य मौल्य से है, इस कारण भावक कल्पना की आगा से इस सौंदर्य का आनंद मता है। समग्रत, यह कहना पड़ता है कि मिश्रजी का मानदंड वाक्यशास्त्रीय भी है और मौलिक भी। अपनी प्रौढ परिपक्व ग्रहणशीलता के कारण, नवनिर्माण में प्रतिभा के याग से उद्धान रङ्ग जजर आलोचना पद्धतियाँ का परित्याग और प्राचीन वाक्यशास्त्र की नाय पर अपना आलोचना का भव्य प्रामाद निर्मित किया है। इस महत् का वाक्य गीता पाश्चात्य है नाय की इट और सारा महत् भारतीय।

"भूषण" और "पद्याकर-पञ्चामृत" की बृहत् भूमिकाएँ इस कथन को बहुविध प्रमाणित करती हैं कि मिश्रजी की व्यावहारिक समीक्षा आमूल भारतीय है पाश्चात्य कसौटियाँ और विचार सरणियाँ पर आधृत नही।<sup>२</sup> अलंकार-योजना, नायिका भेद, रस एवं भाव निरूपण, शृंगार भावना, भक्ति भावना भावाभिव्यजन, प्रबन्ध-विधान, भाषा आदि की दृष्टि से वे जालाच्य कविषा का सर्वांगीण मूल्यावन प्रस्तुत करते हैं।<sup>३</sup> उदाहरणाय उद्धान विहारी का मूल्यावन अप्रस्तुत-योजना भाव-व्यजना, शृंगार भावना, रस एवं भाव निरूपण आदि का

१ उपरिचयत, प० ४८३।

२ 'पद्याकर' (आकर-ग्रन्थमाला ४), काशी, स० २०१६, प० ५८।

३ 'रामचरितमानस' (काशिराज संस्करण, १९६२) और भिखारीदास प्रयागली (आकर-ग्रन्थमाला १, काशी स० २०१३) की भूमिकाएँ पाठा लोचन विषय होने के कारण मिश्रजी की पाठालोचन पद्धति पर प्रभूत प्रकाश डालती हैं। समीक्षक के लिए ये भूमिकाएँ विधेय महत्त्व नहीं रखतीं।

४ दे० 'पद्याकर पञ्चामृत' (काशी, स० १९९२), प० २४ १०८ (आमूल)।



दृष्टियोग स रिया है। 'मिहारी की याग्यभूति' में उक्त गायत्री—मुस्यकन के लिए प्रयुक्त प्रतिमान—भारतीय है। पाश्चात्य नहीं। 'याग्यभूति' का "प्रस्तावना" में उक्त डॉ० ग्रियसन की आशय व्यक्त किया है। पर य इस पाश्चात्य लक्षण में कथमति प्रभावित नहीं है।

### गातिप्रिय द्विवेदी

डॉ० कृष्णवल्लभ जागी ने अपन 'गाय प्रथम तस्य हिंसा मर्मांगा' (१८६६) में छायावादी आलोचना प्रणाली का विभाग का कृष्टित घापित किया है और कहा है

हिन्दा साहित्य में छायावादी आलोचना प्रणाली का विभाग वैसा नहीं हुआ पाया जसा कि पाश्चात्य देशों में। यद्यप्यं कि Lyrical Ballads का भूमिका और कार्लरिज का Biographia Literaria जमा आलोचनात्मक निबंध इस युग का लक्षण न ही रिया। निराला जी ने पत की पत्न्य पर विस्तृत आलोचना रिया। उगम भी कार्लरिज जसा बिनम्र आर वाद्धि तर्क व ही लक्षण हात है।<sup>१</sup>

जोगीजी के उपरिलिखित गाय आर उनका यह उपायक छायावादी आलोचना प्रणाली का विभाग कृष्टित 'निम्नदेह विचारात्तत्र ह आर निर्दिष्ट समस्या पर विचार करने के लिए प्रमाता का वाच्य करत है। परतु सम्पन्न अनु-सौलन परीक्षण के अनंतर ये वाक्य निरचर प्रमाणित हात है। छायावादी कवि आलोचना की रचनाएँ इसी कारण गौण नहीं ह। जाता कि उन पर पाश्चात्य प्रभाव पडा है। स्वयं कार्लरिज के 'दायायाफिया निटररिया पर जमन विचारका और तत्त्वनातिया का प्रभाव दखा गया है। जाचाय गातिप्रिय द्विवेदी की रचनाएँ छायावादी आलोचना प्रणाली में ही परिगणनीय ह। पतजी के छायावादी पुनमूल्याकन, 'कला और ससृति महान्वा' का साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध 'प्रसाद का काव्य आर कला तथा अन्य निबंध'

१ 'धनजानद कबित्त' (काशी सं० २००७) प० १०। हिन्दुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित कश्म प्रयावली (खंड १) में, जिसका संपादन आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने किया है कोई भूमिका नहीं है। मिश्रजी द्वारा लिखित 'काव्यागकीमुदी जैसे ग्रन्थों में पाश्चात्य प्रभाव के स्थान का प्रश्न ही नहीं उठता।

२ 'नय हिंदी समीक्षा' (फानपुर, १९६६), प० ११३।

प्राणि महनीय ग्रथ अपनी व्यापकता, ऊर्ध्वता एव गभीरता के कारण जोशीजी के उक्त तर्कों का निराधार प्रदर्शित करते हैं। अपने गार्ध प्रबंध के डमी पृष्ठ पर, जिनमें उपयुक्त पंक्तियाँ उद्धृत हैं, जोशीजी ने जपन आरम्भिक तर्कों का आप ही खंडन किया है

निम्नलिखित जी न जपन "प्रबंध-पद्य" में आलोचना की अनन्त पम्बुडिया का मन्तव्य किया है। हिंदी में मूर के बाद वाच्य को मयातन्वयता प्रदान का वह निराधार ही है। इसी आलोचनात्मक पुस्तक में उन्होंने "भरगीत और बला" शीर्षक निबंध में हिंदी के नाट्यमंगल का उदाहरण सूक्ष्म विवेचन किया है। पाश्चात्य साहित्य में इस तत्त्व का कबल सापेक्षता ही पर्यव नवा था ।<sup>१</sup>

गान्धिप्रिय द्विवेदी की व्यावहारिक आलोचना प्रधानतः प्रभाववादी (और छायावादी) है। सबत्र विवेच्य कवियों का उनकी कृतियों में उद्बुद्ध प्रतिनियामों के आलाक में परखा गया है छायावादी कवियों की परीक्षा कवि समीक्षक की निजी शिल्पशाला में निमित्त कर्मोटी पर हुई है। इसलिए यह मन्त्र अनुभूतिगील आत्मनिष्ठ एव "इम्प्रेशनिस्टिक"—प्रभाववादी—है। उस व्यावहारिक समीक्षा में यद्यत्न कुछ अंगरजी गंगा का हलका पुट भी दोख पडता है —

जीवन निमाण के लिए प्रत्येक म्पष्टा का अपना एक 'माड' होता है। (सामयिका प० २८)

गरद के बाद साहित्य में एक नय रियलिज्म' न प्रवर्ण किया है। (उपरिबत प० ५४)

छायावादी जीवन का कालात्मक कर्मगत' दिन सकेगा । (उपरि० प० २०६)

भागत हुए समय का एक छोटा सा क'सेगन' ह ।

(बन्ध और विकास प० १२३)

यह उनका गार्दहृष्ट' है। (उपरि० प० ११८)

प्रत्येक व्यक्ति जाउट माइडर हो गया है।

(उपरि० प० १२८)

वह भी गार्तात्मक व्यक्ति का ही सामाजिक 'एनलाजमेण्ट' कर देता है।

(सामयिका, प० १४६)

१ उपरिबत । जोशीजी को समीक्षा, सामायत, उसी कोटि की है जिसमें समीक्षक का उद्देश्य पाठकों का पाश्चात्य नामों से जातकित करना होता है, विवेच्य विषय का प्रामाणिक तथ्यपरक विवेचन प्रस्तुत करना नहीं।

यह कविता की 'इजीनिअरिंग' सा करता है किन्तु 'फील्ड' को नहा जगा पाता ।  
(उारि० प० १४७)

समष्टि में द्विवेदीजी की व्यावहारिक समीक्षा भारतीय भाष्यकारों और रीति-कालीन कवि-आचार्यों की पद्धति से ही सर्वाधिक प्रभावित होती है। इस पद्धति में उद्धरणों का वाच्यसौष्ठव पर उसी प्रकार प्रयोग होता है जिन प्रकार एम्पसोनियन आलोचना में उद्धरणों की अनेकार्थकता एक इलाहात्मकता पर उनमें प्रयुक्त अलंकारों का निरूपण होता है और / अथवा कवि प्रमाता का हृदय पर उद्धृत पंक्तियों के प्रभाव का सूक्ष्म विशद निदान करता है।<sup>१</sup>

"सामयिकों" में 'गुलजी का कृतित्व' की व्यावहारिक समीक्षा परिष्कार-त्मक, ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक है। पर्याप्त उद्धरणों, लक्षणों न गुलजी की विषयों अपने निष्कर्षों एवं उपपत्तियों को प्रामाणिकता प्रदान की है। उद्धरणों के विश्लेषण में द्विवेदीजी सूत्रवत् शैली के प्रयोजन हैं और यथासंभव तत्सम शब्दों का प्रयोग करते हैं। अंगरेजी शब्दों के हल्के-पुट उनकी रचनाओं में नीर-नीर की तरह घुलमिल गए हैं।

द्विवेदीजी ने प्रामाणिक समालोचना की विधिगतता का निदान निम्न-लिखित पंक्तियों में किया है

प्रामाणिक समालोचना टेक्निकल नहीं जाइडियल है वह कवि का अनुभूति का पाठक में जगाती है उसे भी कवि बनाती है।

प्रामाणिक आलोचना द्वारा आलोचक में भी अनुभूति का परिचय मिलता है। अनुभूति के लिए रसयता ही नहीं, रसाद्रता भी चाहिए। प्रामाणिक आलोचना में काव्य का हृदय-पथ रहता है। हृदय की मार्मिकता के लिए सहृदयता या हृदय-तरलता अथवा आत्म-द्रवणता चाहिए।<sup>२</sup>

एलियट ने इम्परफेक्ट क्रिटिकल शीपक निबंध में स्विनबर्न का गुणग्राहक अथवा प्रशंसक माना है समीक्षक नहीं। इसका कारण यह है कि स्विनबर्न ने आलोच्य कविता पर दो से अधिक निणय नहीं दिए।<sup>३</sup> शान्तिप्रिय द्विवेदी में स्विनबर्न के गुणों के साथ समीक्षक के गुणों का निहित है साथ ही उनकी समालोचनाओं में 'प्रामाणिक' आलोचना की सभी विशेषताएँ मौजूद हैं। उनकी

१ उदाहरणार्थ—दे० 'संचारिणी', प० ४२-४५।

२ सामयिकी, प० १४५-१४६।

३ 'द सकरेड वूड' (१९५७), प० १९।

परवर्ती प्रौढ रचनाओं में अधिकाधिक कसावट और निष्कर्षों को जीवन्त सूत्रों में पिरोन-मूथन तथा व्यापक मत्या को छाटे-छोटे वाक्यों में समेटने की तात्त्विक क्षमता भी दीख पड़ती है।

द्विवेदीजी की व्यावहारिक समीक्षा विमोक्षण से आपूरित है। उनसे देखकर प्रतिनियमों का सम्यक् बोध तो होता ही है, भाव ही उनमें इस बात का भी द्योतन होता है कि वह प्रमाता की प्रतिनियमों को भी प्ररार्चित करना चाहता है। इन विमोक्षण से गुणनाप विवेचन एवं मूल्य निर्धारण का काम लिया गया है।

### आचार्य नन्दकुलारे वाजपेयी

वाजपेयीजी के निबन्धों का अधिकांश व्यावहारिक समीक्षा के अन्तर्गत आता है। अपनी व्यावहारिक समीक्षाओं में उन्होंने अपने पारश्चात्य भाषा साहित्य-ज्ञान का भरपूर उपयोग किया है, पारश्चात्य मानक प्रयुक्त किये हैं और हिंदी-समीक्षा में एक अभिनव आयाम का सजावन किया है। व समीक्षा का न तो कोरी उदभावना की चीज मानते हैं और न उस एकांत उमग का वाय समझते हैं। सत्समालोचक, उनका दृष्टि में, एक सिद्ध विवेचक, विश्लेषक एवं चिंतक होता है जो आलोचना का साहित्यिक मान्य के उदघाटन का अनिवाय साधन मानता है।<sup>१</sup> (इसी कारण कुछ ममाक्षका ने उन्हें सौष्ठववादी कहा है।) उनकी सर्व-तिशायिनी कसौटी यह रही है कि 'आलोचना में राष्ट्रीय जीवन का सांस्कृतिक विम्व अवश्य मिलना चाहिए।'<sup>३</sup> हिंदी का नवलेखन इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता इसलिए उसे मायता नहा दी गई है। हिंदी के प्रयोगवादी साहित्यकार पश्चिमी साहित्यकारों की तरह बुठारसून है इसलिए उनकी रचनाओं का संपन्न

१ द्रष्टव्य 'काव्य विवेचन में मैं एकमात्र कविता को ही देखता हूँ। उसकी भावात्मक निष्पत्ति और रूपरत्मक सौन्दर्य ही मेरे समीक्षण के विषय होते हैं।... बात कोई भी हो, कविता की सवेदनाएँ कसौटी ह, किस कोटि की ह, उसका बाह्य और अतरंग सौंदर्य हमारी चेतना और सौंदर्य-दृष्टि को किम्व रूप, में और किस कारण प्रभावित करता है, मेरे लिए इतना ही ज्ञातव्य है।' विजयवहादुर सिंह, 'आचार्य वाजपेयीजी एक अर्थ इतरव्यू', "दे० डा० गमाधार गर्भा, "आचार्य नन्दकुलारे वाजपेयी - यक्ति और साहित्य" (कानपुर, १९६५), प० ९६।

२ नमदाप्रसाद शर्मा, 'आचार्य वाजपेयी एक इतरव्यू', उपरिचित, पृ० ९०।

एव निर्भीक निरसन हुआ है। वाजपेयीजी नवीनता के समर्थ हैं, पर व "पूर्वो नवीनता के प्रयासी हैं न कि पश्चिमी अनुकृति के। यदि पश्चिमी विचारधारा अथवा किसी विशेष प्रकार की वाक्य शला को ज्या वा त्या अपना लिया जायगा ता इस प्रणाली से किसी श्रेष्ठ कवि की सृष्टि नहीं हो सकेगी। यदि हम तब ही लेते रहने दगे कुछ नहीं तो विदेशी में हमारे वाक्य साहित्य का क्या सम्मान होगा ?" हिन्दी के अधिकांश नये समीक्षक नव्यतम वाक्य और विचारों का जोर ही अधिक जाहृष्ट हैं। वाजपेयीजी के मतानुसार इन समीक्षकों की सृष्टि म व्यापकता एव विस्तार का सबधा अभाव है। इनमें अधिकांशता ऐसही समीक्षक हैं जो भारतीय समीक्षा प्रणालियां से कथमपि परिचित नहैं। इस प्रकार विदेशी वाक्य से अपरिचित अध्येता ही उन कवियों का श्रेय दगे ता अनुकृता मात्र है। "जिह इस पश्चिमी वाक्य वस्तु का ज्ञान है व तो अनुकरण को अनुररण और मौलिक वस्तु को मौलिक मानेंगे। पूव और पश्चिम के वाक्य म अनुकृता हो सकती है तद्रूपता नहीं।"<sup>२</sup>

वाजपेयीजी की पूर्ववर्ती समीक्षाओं में पाश्चात्य प्रभाव परिमाणत अधिक है। ("एक आरभिक लेखक का कच्चापन भी, संभव है इनमें से कुछ निदधा में मिले।<sup>३</sup> इनमें "अधिकांश विवेचना एक नवयुवक की है।"<sup>४</sup> 'परवर्ती पुस्तक' में इतना हार्दिक उन्मेष नहीं मिलता, बल्कि एक समय और विपक्षिया की सरया न बढ़ान की वृत्ति अधिक दिखाई देती है।"<sup>५</sup>) प्रसादजी पर उनकी सहानुभूति-पूण आलोचना केवल समय मात्र नहीं है। इसमें आलोच्य कवि और उसके आलोचक की प्रकृति का प्राय पूर्ण सामंजस्य देखा जा सकता है। प्रसादजी शक्ति और ज्ञान की ऊँची मानसिक अभिव्यक्तियां की ही वाक्य का प्रमुख लक्षण मानते थे। वाजपेयीजी की समीक्षा रचना सौष्ठव के उदघाटन में विश्वास करती है और मूलत, रोमांटिक है। प्रसादजी पर प्रगतिवादिया के आक्षेपों का उत्तर वाजपेयीजी ने हेवलाक एलिस की कतिपय पक्तियां से दिया है। हेवलाक एलिस ने कहा है 'जब स्वाट की रचनाओं का मूल्यांकन अपेक्षया अधिक सतुलित

१ डा० रामाधर गर्मा, उल्ल० घ०, प० १००-१०१।

२ उपरिचल, प० १०१।

३ नबदुलारे वाजपेयी, 'जयगाकर प्रसाद' (प्रयाग, स० सस्करण स० २०१५), प० १ (भूमिका)

४ डा० रामाधर गर्मा, उल्ल० घ०, प० ९१।

५ उपरिचल।

दृष्टि से किया जा सकता है। उनके दोष अनेक थे और उसकी विषमताएँ अत्यंत घबराहट पैदा करनेवाली थीं, पर यही बात डी० एच० लारेस या ऐसे ही अन्य आधुनिकों के सब्याभिनयगुणा और जवगुणा के सबघ नकही जा सकती है।<sup>१</sup> प्रसादजी स्काट की अपेक्षा अधिक आधुनिक थे। व नितान्त रामासवादी भी न थे—रहस्यवाद के ऊँचे समतल पर पहुँचकर वे सवलतर भावनाशा की सृष्टि तथा दार्शनिक और भावात्मक दृष्टियाँ से मानव को जीवन-सषप के लिए उद्यत करन थे।<sup>२</sup> वे मुन्यत साम्य सख्य और स्वातंत्र्य (इक्वलिटी, फ्रटर्निटी एण्ड लिबर्टी) के जादगवाद से अनुप्रेरित थे।<sup>३</sup> कुछ समीक्षका का प्रभादजी म 'एजी नियरिंग का धमत्कार नहा मिलता। इसका एक कारण यह भी है कि प्रसादजी नई कला प्रणाली की अपेक्षा नई भावना आर नई चिंतना के निमाण-वाय म अधिक सलग्न थे।<sup>४</sup>

वाजपेयीजी की समीक्षा में जंगरजी शर्मा का विनियोग बड़ा सटीक हाता है। उताहरणाय निरालाजी का पौरुष नारी के स्नेह और सम्मान से सबद्ध होन के कारण "रोमांटिक टाइप" का है "कवाल" के लेखक का प्रयोजन समाज के अनयकारी बधना जादि के विरुद्ध जवदस्त "प्रापेगण्डा करना है 'कवाल का निमाण-पक्ष अतिगय 'यक्तिवादी या 'एनालिस्ट' है।' इस प्रकार के सहस्राधिक उदाहरण दिय जा सकत ह।

नारभ सेही वाजपेयीजी की व्यावहारिक समीक्षा सजग और दशी परपराआ के प्रति विशेष जागम्क रही है। वाजपेयीजी यह स्वीकार करत है कि ए० वेरीडेल काय ने सन्धृत साहित्य और विगेषत सस्कृत नाटका पर महत्वपूर्ण काय किया है और उमका ग्रंथ 'सन्धृत नाटक' अत्यधिक प्रामाणिक माना जाता है। पर

१ टुडे आई 'यू स्पाट विद मोर बलेंस जजमेण्ट । हिज फाटस बेयर मेनी एण्ड हिज इनिक्वलिटीज डिस्कसिंग, यट द सेम मे बी सेड, आई फाइण्ड, आव द थेरी डिफरेंट वर्चुज एण्ड वाइसेज आव द मोस्ट मॉडन मेन, डी० एच० लारेस जीर हूम यू विल।' जयगकर प्रभाद, प० ४५। (भूमिका)।

२ उपरिवत, प० ५।

३ उपरिवत, प० ६।

४ उपरिवत, प० १४।

५ उपरिवत, प० १९।

६ उपरिवत, प० ३७।

७ उपरिवत, प० ४२।

वे कीय की व्याप्ति २ अभिभूत न हारण उगो दोपा का आर इमाग ध्यान आट्टुष्ट करते और यहत हैं 'यहाँ सक्षेप म हम यह उल्लग वगना चाहत हैं कि कीय साह्य ने ससृत नाटका का जो श्रुटियाँ प्रशिन का हैं, उनम अतिरजना अधिक है और तस्य का जानन का प्रयत्न कम । ससृत और भारतीय नाटका का सुखात होना भारतीय का काल्पनिक दृष्टि का परिणाम है जा जावन क कठोर यथाय आर वास्तविकता २ अपरिचित रही है—कीय का यह कथन भारतीय नाटका के लिए अयायपूर्ण है।<sup>१</sup> इसी प्रकार वे पाश्चात्य पंडिता द्वारा किय गए प्राच्य अनुसंधान<sup>२</sup> और ग्रियसन तथा उनके भारताय अनुयायिया द्वारा किये गए साहित्य-सवधी अनुशीलन की प्रशंसा करत हैं और स्वीकार करत हैं कि उहान "एक नई प्रणाली निवाली जाए एक नवीन परपरा स्थिर का।<sup>३</sup> साथ ही व यह कहना नहा भूलत कि "पश्चिमा पंडिता की छत्र छाया" म काम करनेवाल भारतीय पंडिता को सबसे बडा कमी यह थी कि व अपन पाश्चात्य अभिभावक द्वारा निर्दिष्ट भाग पर ही चलना पसद करत थे। ग्रियसन जन अवेपका द्वारा हिंदी का साहित्यिक अनुशीलन पूण राष्ट्रीय अयवा बनानिक मि पर प्रतिष्ठित न हो सका।<sup>४</sup> फ्रायड जादि मनोवज्ञानिक क प्रति वाजपेयीज न ऐस ही दृष्टिकोण का परिचय दिया है। उन्हान फ्रायडीय मनोविश्लेषण - सिद्धाता का यथोचित अययन किया है और व अच्छी तरह जानत है कि साहित्य की सीमा म इनका कुछ उपयोग हो सकता है, पर व यह भी कहत है कि मना-विश्लेषण के सिद्धात अत्यधिक व्यक्तिमुखी और अग्राह्य हैं। फ्रायड के अनुयायी साहित्य भक्ति और आत्मो-मुखी दशन को मनोविश्लेषण की कसौटी पर कसत ह और उह अनेक अस्वाभाविक कुठाओ का परिणाम पाते हैं। ऐसा "विश्लेषण व्यक्तिमूलक होता है जब कि धम और दशन की विधियाँ और निर्देश पूणत सावजनिक है।"<sup>५</sup> वाजपेयीजी का यह निश्चित मत है कि 'बिना वाह्य जगत् की परिस्थितिया और आवश्यकताजा का आकलन किय केवल किसी भक्त कवि या दार्शनिक का मनोविश्लेषण करने बठ जाना बडा ही धितनीय प्रयोग

१ उपरिबत, प० १४३ १४४ ।

२ ओरियण्टल रीसच ।

३ आचार्य नददुलारे वाजपेयी, 'महाकवि सूरदास' (दिल्ली, स० २००९), प० ५ (प्राक्कथन) १।

४ उपरिबत प० ५६ ।

५ उपरिबत, प० ११ ।

ज्ञान पढता है।<sup>१</sup> इसी कारण सूरदास के विवेचन को उन्होने नवीन मतवादों के प्रयोग-क्षेत्र से दूर रखा है।

वाजपेयीजी पाश्चात्य नाटयतत्त्वा पर उसी प्रकार साधिकार लिखत हैं जिस प्रकार भारतीय नाटयतत्त्वा पर। उन्होने प्रसाद के नाटका की समीक्षा के क्रम में अरस्तू के नाटय सिद्धाता का बड़ा ही विशद वर्णन प्रस्तुत किया है।<sup>२</sup> और यथावनर पाश्चात्य नाटय सिद्धाता का प्रयोग भी किया है। “कामायनी-विवेचन’ में उन्होने “कामायनी’ के वस्तुविन्यास और चरित्र चित्रण की समीक्षा प्रस्तुत की है और लज्जा मग की कुछ पक्तियों को उद्धृत करने के पश्चात् कहा है कि “इडा मग चरमसीमा की संधि का द्योतक है। इसके पश्चात् काव्य निर्गमि Denouement की ओर उतरने लगता है।”<sup>३</sup> चरमसीमा और निर्गमि पाश्चात्य नाटय समीक्षा के बहुप्रचलित शब्द हैं। हिंदी साहित्य और भारतीय चिंतन पर पश्चिम के अत्यधिक प्रभाव से आतंकित होकर वाजपेयीजी बार-बार पश्चिमी मतवादा समीक्षका और समीक्षा प्रणालिया का खडन या विराघ करते हैं। उनकी व्यावहारिक समीक्षाओं में पाश्चात्य साहित्यकारों और विचारधाराओं के सहस्रा उत्तरे मिलते हैं। अधिकांश स्थलों पर उनके प्रति वाजपेयीजी की दृष्टि खडनात्मक ही रहती है। पश्चिम की ओर उनका बार-बार संकेत यह द्योतित करता है कि वाजपेयीजी पश्चिम से स्वयं प्रभावित हैं, परंतु इस प्रभाव के दुष्परिणामों से पूर्णतया अवगत होने के कारण जहाँ भी पश्चिम का उल्लेख होता है, वे यत्किंचित अनुदार हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, वे कहते हैं “पश्चिम के पडिता न काव्य की परिधि बनाते हुए न जाने क्यों, धार्मिक और आध्यात्मिक कृतियों का उससे बहिष्कृत ना कर दिया है और वेक, ब्राउनिंग-जस दार्शनिक कविता को भी उनका उचित जासन देने में सकोच करते हैं।”<sup>४</sup> इस व्यापक कथन पर आपत्ति के कई कारण हो सकते हैं (१) पश्चिम के जिन पडिता ने ऐसा किया है उनके नाम बताये नहीं गए हैं (२) जान डन के ‘हाली सानटस’ और हवट की धार्मिक कविताओं की लोकप्रियता सर्वविदिन है (३) हॉपकिंस और एलियट की धार्मिक एवं आध्यात्मिक कविताओं का बहिष्कार नहीं किया जाता, (४) वाइबिल के ‘कण्टिकल्स’ और “साम्म”, “द बुक ऑफ जॉब’ और “एक्ल्-

१ उपरिचत, प० ११ १२।

२ ‘जयगकर प्रसाद’, पृ० १३२ १३६।

३ उपरिचत, प० १००।

४ ‘महाकवि सूरदास’, प० ८१।



जिएस्टिस" के वाक्यगत गुणों की आज भी भूरि प्रशंसा होती है और वाइकिंग को साहित्य के रूप में पढ़ाने की परंपरा देश विदेश में पायी जाती है, और (२) नार्डिंग तथा ब्लेक जैसे दार्शनिक कवियों को उनका उचित आसन देने में सफल नहीं किया जाता। एज़रा पाउंड और एलियट के निबंध इस बात की साक्ष्य हैं कि इन कवियों को यथोचित लोकप्रियता मिल चुकी है और आज भी इनकी शान नहीं आधुनिकों को अनुप्राणित करने में समर्थ हैं। निपेघात्मक तथा खडनात्मक पद्धति जिस सरलता से अपशब्द और साहित्यिक गाली गलौज की धार निम्नाभिमुख हो जाती है, वसी सरलता से सत्समीक्षा कला के स्तर पर आरुढ़ नहीं होती। खडनात्मक दृष्टिकोण जय अपशब्दों का एक उदाहरण इन पंक्तियों में मिला है 'यदि पश्चिम से पूरव का यह कहा जाता है कि तुम्हारी भाषा जलकृत, तुम्हारे भाव अस्पष्ट और तुम्हारी कल्पना अतिशयोक्तिपूर्ण है तो पूरव से पश्चिम को यह प्रतिध्वनि जायगी कि तुम्हारी भाषा भाड़ी, तुम्हारे भाव भौतिक और कल्पना केवल औपचारिक है।'<sup>१</sup> कहीं कहीं तो बाजपेयीजी यह अनुमान कर लेते हैं कि पाश्चात्य साहित्य समीक्षक ऐसा कह सकते हैं जयवा उनका यह आरोप हो सकता है। इस प्रकार उनके आक्षेपों को बाजपेयीजी का भविष्यद्रष्टा समीक्षक अनुमित कर लेता है और तत्पश्चात् उनके खडन में लग जाता है। कई स्थलों पर पश्चिम के साहित्यकारों की शर्चा या तो उनके दायाँ की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करने के लिए या उनकी तुलना में भारतीय साहित्यकारों की उत्कृष्टता और 'धमत्कारी' दिखलाने के लिए की गई है। महाकवि सूरदास' में बाजपेयीजी ने लिखा है 'वाइरल-जस कवि को भी फाइल्ड हराउड की विशाल सृष्टि करने की साध थी और राम्याँ राला ने तो जपन जाल त्रिस्टापर नाम के उदात्त पात्र में तत्कालीन ससृष्टि का पूरा स्वरूप ही भर दिया है किंतु यदि वाक्य रचना और मनाविनान की दृष्टि से दखा जाए तो सूर के कृष्ण का अवतरण इसमें भी कहीं अधिक धमत्कारी और शक्तिपूर्ण अनुभव होगा।'<sup>३</sup> बाजपेयीजी के पाश्चात्य साहित्य एवं ससृष्टि के व्यापक अध्ययन को दखत हुए यह कहना पड़ता है कि (१) या तो वे अपनी खडनात्मक समीक्षा द्वारा जपन हृत्सग्न विश्वासा और प्रभावाधिक्य को जानबूझकर छिपाना चाहते हैं या / और (२) वे जो कहते हैं उसकी सत्यता में उह आप ही विश्वास नहीं रहता।

१ उपरिखत, प० ८३।

२ उपरिखत, प० ८५।

३ उपरिखत प० ८९।

“हिंदी साहित्य बीसवा शताब्दी”, “आधुनिक साहित्य”, “सूर सदभूमिका’ आदि में पश्चिम के प्रति ऐसा ही दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। “कवि निराला” में कई स्थानों पर एलियट का उल्लेख हुआ है<sup>१</sup> पर वही भी ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वाजपेयीजी ने एलियट के काव्य का यथोचित मनोयोग से अध्ययन किया है। एलियट मन्थी उनके प्रायः सभी कथन बड़े ही व्यापक एवं तलानरिक्त हैं। प्रतीकवाद अस्तित्ववाद आदि के संवर्धन में भी उनके कथन कोई गंभीर अध्ययन-मनन का द्योतन नहीं करते।

### हजारों प्रसाद द्विवेदी

डॉ० हजारों प्रसाद द्विवेदी की व्यावहारिक आलोचना पाश्चात्य समीक्षा-सरणियाँ पर न चलकर स्वतंत्र मार्ग का अनुसरण करती है। तथ्य-चयन में द्विवेदीजी न पाश्चात्य ग्रन्थों से सहायता ली है किंतु उनकी विवेचन-पद्धति, जो कला विश्लेषणात्मक एवं वैज्ञानिक है और वही प्रभावाभिव्यक्ति-विज्ञान साहित्यिक मानदंड और परंपराओं पर आश्रित नहीं है। उनकी ‘हिंदी साहित्य की भूमिका’ में विविध कवियों का मूल्यांकन और समीक्षण सेंटसवरी की व्यावहारिक समीक्षा विधियों की याद दिलाता है और द्विवेदीजी की यथानुरूप भाषा शली सेंटसवरी की विधि एवं प्रवर्तमान अंगरेजी गणगली से दायवती है। परंतु समग्रतः द्विवेदीजी की व्यावहारिक समीक्षा-पद्धति उनके निजी बहुपुष्प और भावयित्री प्रतिभा से उद्भूत है, न कि सेंटसवरी अथवा इसके-जैस जय पाश्चात्य साहित्यकारों से।

जिस शास्त्रगुह्य एवं पारदर्शी भाषा-शली में द्विवेदीजी न अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है उसी साहित्यिक सरल भाषा शली में उन्होंने हिंदी के प्राचीन तथा भक्तिकालीन कवियों की व्यावहारिक समीक्षाएँ भी प्रस्तुत की हैं।<sup>२</sup> भाषा मन्थी उनका एक बहुश्रुत आदेश इन शब्दों में व्यक्त हुआ है ‘हम हिंदी को एक ऐसी भाषा नहीं बना देना है जो संवसाधारण ने निकट अंगरेजी की ही भाँति दुर्बोध्य (sic) बनी रहे या संस्कृत की ही भाँति कुछ चुने

१ आचार्य नददुलारे वाजपेयी, ‘कवि निराला’ (वाराणसी, १९६५), पृ० ५२, १८९, १९९ इत्यादि।

२ डॉ० ‘सूर साहित्य’ (बंबई, १९३६), ‘कबीर’ (बंबई, १९४१), ‘कालिदास की लालित्य-योजना’ (वाराणसी, १९६५), ‘हिंदी साहित्य का आदर्श काल’ (पटना, १९५२) इत्यादि।

हुए लोगा के शास्त्राथ विचार की भाषा बन जाए।<sup>१</sup> इम आदस से च्युत होत वे कदापि दीख नहा पडते।

तुलसीदास के विवचन म द्विवेदीजी डाक्टर प्रियमन के इम कथन का समर्थित करते ह कि बुद्धदेव क बाद भारत म सबसु बड ठोबनायक तुलसीदास थे। प्रियसन और शुक्लजी क पदचिह्ना पर चलकर द्विवेदीजी भारतवष की उस ऐतिहासिक पष्ठभूमि का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते है जिसका जान तुलसी के यथोचित मूल्यांकन के लिए आवश्यक है। प्रियसन न कहा था कि तुलसी के पात्र शौर्यकाल के पूण गौरव क साथ जीवत ह आर चलत फिरते है।<sup>३</sup> द्विवेदीजी के अनुसार तुलसी के सभी पात्र हाड मास क बने हमारे हा जैस जीव है। (हि० सा० भू० प० १०५) इसी प्रकार प्रियसन के मतानुसार तुलसी का 'मानस इस समय १० करोड लागा का एवमान धमप्रत्य है आर मह सौभाग्य की बात है कि उहाने यह पथ प्रदणक पाया। (हि० सा० प्र० इ० प० ६६) इन शब्दा की प्रतिध्वनि द्विवेदीजी के इस वाक्य म सुनी जा सकती है 'उन्हान एक अद्वितीयकायकीसृष्टि की जा अबतक उत्तर भारत का माग दणकरहा है।' (हि० सा० भू० प० १०७) के 'पश्चिमी समालोचना' की इस बात स भी सहमत है कि 'कविता जच्छी करना चाहत हा ता विषय जच्छा चुनो।' (उपरि०, प० १०४) हिंदी साहित्य की भूमिका क ऐतिहासिक तथ्या के लिए उहाने विन्सेंट स्मिथ विटरनित्स मैक्समूलर प्रभति पारचात्य विद्वाना की रचनाजा से सहायता ली है और इन तथ्या के निरूपण म यत्र-तत्र अंगरेजी भाषा का नी प्रयोग किया है। द्विवेदीजी 'स्परिट' क पुरजोर कायल दीखत हैं —

'उसका स्परिट नया है (हिंदी साहित्य की भूमिका, प० ११३),

'साहित्य का स्परिट ही बदल गया है (उपरि० प० १३३)।

इसी प्रकार —

'व्यक्तिनता की स्वाधीनता का छोडकर 'टाइप रचना की पराधीनता स्वीकार करता गया है (उपरि० पृ० १३१),

' कम जच्छा और inferior मान लिया गया था" (उपरि-  
वत् प० १३२),

१ अणोक के फूस (दिल्ली, १९४८), प० १७७-१७८।

२ 'हिंदी साहित्य की भूमिका' (बंबई, १९४०), प० १०३।

३ किशोरानाल मुप्त, डा० जवाहम जाज प्रियमन कृत हिंदी साहित्य का प्रयन इतिहास, प० १४३।

“हमारी व्यक्तिकता साहित्य में गतदशु भावुकता से आरम्भ करके हिस्टारिक प्रमाद तक का रूप धारण करता जा रही है” (उपरि०, प० १३४)।

अन्यत्र ग्रन्था में भी अँगरेजी के नये-सुले सटीक शब्दा का प्रयोग हुआ है

“इस स्वतन्त्र द्वीप को लेकर यूरोपियन पतिता न बड़ा बड़ी प्रियगिया खड़ी की हैं” (मूर साहित्य प० २३)

“सन १८०६-८ की खोज रिपोर्ट में जनरल सागर की एक प्रति पाई गई थी (कवीर, प० १५),

“नानी इसे भी माया कहता है, विनाती शायद इन्स्टिक्ट कह द (उपरिवत, प० १७६),

‘व वाणी के डिक्टेटर थे’ (उपरिवत प० २१६)

“ भगदिसवास का अविश्लेष्य सीमट भी काम करेगा (उपरिवत, प० २१८)।

‘हिंदी साहित्य की भूमिका’ में नये हिंदी साहित्य के विवेचन क्रम में द्विवेदीजी ने एक बार फिर पश्चिम के व्यापक प्रभाव की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। देखने की दृष्टि इस प्रभाव के प्रति यहाँ भी सहानुभूतिपूर्ण तथा मूलतः सदस्य है। उन्होंने स्वीकार किया है कि ‘हिंदी के उपन्यास और कहानियाँ एकदम नई चीज हैं। नाटका में यद्यपि इतना बड़ा विकास नहा हुआ है पर वह नितान्त कम भी नहीं है। लिरिक (गीतकाव्य) में अभूत पूर्व परिवर्तन और नया प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है और, जसा कि कभी-कभी बद्ध पंडित कुशलाकर कहा करते हैं छंद भाषा, रीति-नीति और यहाँ तक कि उपमा-रूपक आदि में भी आज की कविता प्रत्येक अँगरेजी ताल-मुर पर नाचन लगी है। सबत्र मुर बदल गया है, अँगरेजी ढंग का अनुकरण हो रहा है।’<sup>१</sup> नया कविता में प्रयुक्त अदभुत कथाकितया उपमाआ आर रूपका का विवेचन वमा ही है जैसा सत्रहवा शती के अँगरेजी ‘मेटाफिजिकल’ काव्य में प्रयुक्त ‘कंसोटा’ (conceits) का अँगरेज समीक्षका द्वारा विवेचन।<sup>२</sup>

मूर साहित्य तथा ‘कवीर’ की रचना के लिए जिन पश्चात्य देखक में द्विवेदीजी ने ऐतिहासिक आधार-मामूरी का सचयन किया था उसका विवरण पुस्तक में अनेकत्र मिलता है। बेबर केनडा, टायमन जे० एन० फर्कुहर, कीय

१ हिंदी साहित्य की भूमिका, प० १३३।

उपरिवत, प० १३९ १४०।

आप्यन्तस्येव प्रभूति विद्वानाम उच्यते । गणयन्ता ता एताहीते भाष्ये इत्यन्त  
अण्डरहिल स भी व प्रभाषित एण है । तिस जंगल जावामं तिमिमात्त मन न  
बहा है द्विवेगजा पुगाया तव तिम्या भी 'क्या (साहित्य) का विचार विचार  
प्रभुता माता, अथवा कही भा विगी के प्रति अगता अगम्ता भी तता तिम्या ।  
उक्त प्रथम मन का इत्यादि आदि विचार-बुद्धि की बगोरी पर मनीमोति  
विचार परतार मात्रघाता क माय प्रत्यायायर्जन तिम्या है । 'सूर साहित्य  
म द्विवेगीजी मुरायाय गमायता क विचार ततो ओर अनवहित तिम्या की का  
तात्र आलापता करता है तथा 'कालिदास की साहित्य-यात्रा' मण० बा०  
काय क कतिपय मनवाया का मंडल करते हुए गटा है त्रि 'कालिदास का  
ही नहा समूह मस्टा साहित्य क अध्येता को कुछ मूलभूत भारताय विचारमा का  
जानवर ही जाय बड़ना चाहिए ।<sup>३</sup> परतु पाश्चात्य विद्वाना की विचारमाय मोत्र-  
रिपोटी और ततानुमादित निष्कर्षों स अपो विचारों की आय-परतानुसार  
पुष्टि भी करत हैं । एक अंगरज पंडित समष्ट गुनवर त्रि 'दाय पित्त तिसा  
प्रकार की सुष्टि म तूत नहा हाना था जत्र तव त्रि उर मनुष्य क आकार या  
भावा म स हातर न गुजरना पडे, द्विवेगीजी कहत हैं वि यही यात ब्रज भाषा क  
कविया क बारे म वही जा सती है (सूर साहित्य, प० १७० १७१) । उन्हान  
'कवि मूरदास की बहिरग-मराधा म रिचड स का अनुसरण किया है आर  
उसकी व्यावहारिक समीक्षा क जादसं पर मूरदास की चित्रमयी भाषा तथा  
उनके शब्द प्रयाग पर अत्यत सारगम टिप्पणियाँ प्रस्तुत की हैं । किंतु द्विवेगीजा  
न तो रिचड स का व्यावहारिक समीक्षा स प्रभावित हैं और न मनोविज्ञान तथा  
पञ्चायगात्र (सिमेटिकस) स ही । वे तत्त्वत ऐस व्याख्यात्मक समीक्षा ह  
जिनकी जालाचना-पद्धति एतिहासिक तथा गवेषणामूलक है । अत व बेर  
टेन, ग्रियसन (डा० जनाहम जाज ग्रियसन तथा एच० ज० सी० ग्रियसन),  
हेरल्ड नीवरसन बेसिल विली, मोल्डन, जस्सरड प्रभति पाश्चात्य समीक्षका  
के जितना सन्निकट है उतना रिचड स के नहीं । प्राचीन कविया के सबध मे वही  
व्यक्ति अधिकारपूवक लिख सकता है जो समीक्षा होने के साथ ही अमसील  
गवेषक और शोधवाय म अत्यत निपुण हो तथा जिसमे शास्त्रनिष्णात पांडित्य

१ 'सूर साहित्य, प० ५ (भूमिका) ।

२ उपरिखत, प० ३ ।

३ 'कालिदास की साहित्य योजना', प० ४२ ।

४ इस पंडित का नाम नहीं बताया गया ।

एव व्यापक वैदुष्य हो। "कालिदास की गालित्य-याचना के लेखक में इन गुणा का कना सुन्दर समाहाण दवा जाता है इसे दुहरान की आवश्यकता नहीं है। इसका लेखक का कालजयी कृतिया ही उसकी अप्रतिम प्रतिभा के चिरज्वलत प्रमाण हैं।

### डॉ० नगेन्द्र

आरम्भ में ही डॉ० नगेन्द्र ने जिन बचस्वी वदुष्य एव समधिक विदलेपण-पम प्रतिभा का परिचय दिया, वमा फिरले ही ममीशक अपनी आरम्भिक कृतिया में द पात हैं। पाश्चात्य साहित्यालोचन में कतिपय प्रतिमाना के गहीत होने पर भी उनकी आलोचना-मदति में मौलिकता का समत्कार है। आचार्य नगेन्द्र न यह सिद्ध कर दिखाया है कि पाश्चात्य निरुपा पर भी पौरस्त्य कलाकृतियों का परखा जा सकता है। उनकी परवर्ती रचनाओं में पाश्चात्य प्रभाव अपेक्षया अधिक समजित एव भारतीय परंपराओं में ही अधिक निहित दीख पडता है। आरम्भ से ही उनके समान अंगरेजी आलोचना के स्पहणीय आदेश के आर उनमें उनके ग्रन्थों के आचार पर हिंदी में भा सुद्धम-मधीर साहित्यालोचन प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति इच्छा और लगन थी। इसलिये फ्रॉयडिय मनोविदलेपण-शास्त्र एव आचे द्वारा प्रवर्तित अभिव्यक्ततावाद का उन्होंने विधिवत् अध्ययन किया। प्रभावा के संबध में उनका यह कथन स्मरणीय है

आरम्भ में ही प्रायः मेरे मन में उन आलोचना के प्रति, जिन्होंने मुझे प्रभावित किया है एक विचित्र स्पष्टता का भाव भी रहा है। जिनकी वान मेरे मन पर नहीं जमनी या जिनके सिद्धांत अथवा गली मुझे प्रभावित नहीं करते उनकी मैं सहज अपेक्षा कर जाता हूँ। किंतु जो मुझे प्रभावित करते हैं—जिनकी गरिमा मेरे मन को आन्दाहित करती है—उनसे फिर मैं जूझन लगता हूँ।<sup>१</sup>

प्राचीन भारतीय आचार्यों में भट्टनायक और अभिनवगुप्त न आधुनिक हिंदी-ममीशक में आचार्य शुक्ल ने उन्हें विदोष रूप से प्रभावित किया है। पाश्चात्य साहित्याचार्यों में डॉ० नगेन्द्र के ऊपर आचे और रिचर्ड्स का प्रभाव देखा जाता है। व्यावहारिक आलोचना में उन्होंने फ्रायड के मनोविदलेपण-शास्त्र का उपयोग तो किया है परंतु व फ्रॉयड-दत्तन का एकांगी आर उनकी जाघारभूत उक्तियों

१ डॉ० रणवीर राया द्वारा संपादित 'डॉ० नगेन्द्र व्यक्तित्व और कृतित्व' (दिल्ली, १९६५), पृ० २०-२१ पर उद्धृत।

को "दूरारूढ और जविश्वसनीय" मानते हैं।<sup>१</sup> उनके अनुसार काम भल ही जीवन का प्रधान जग हा पर वह सर्वांग नहीं हो सकता। ' मतव्य के अभाव म भी आचाय नगेंद्र ने फायड के दशन का अभिनदन किया है और इस मनोवनातिक के "यापक प्रभाव को देखते हुए उसकी मेधा की प्रशसा का है। जहा तक रमसिद्धात का सबध है, फायड की मनोदृष्टि बाधक नहा कही जा सकती वह वस्तुत 'साधक है "क्योकि दोन। ही जानद के सिद्धात को लकर चलत है' दाना का आधार 'प्लेजर प्रिसपिल' है।<sup>३</sup> फिर भी फायड के दशन की एकागिता स्पष्ट है। ' व शायद उन आचार्यों की दिशा मे सोचत है, जो रसवाद को शृंगारवाद म ही सीमित करके देखत हैं।'<sup>४</sup> डा० नगेद्र काव्य मे 'व्यापक रसवाद' और जीवन म 'व्यापक आनदवाद' के समथक ह।

स्वय डॉ० नगेद्र ने अपने स्वभाव का बडा ही मूत और कलात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है और कहा है कि इसकी दो प्रमुख विशेषताएँ हैं अहकार और भावुकता। "आपके अहकार का एक स्पष्ट दुष्परिणाम यह है कि आप प्रत्यक काय अपनी इच्छा के अनुसार करना चाहते हैं।"<sup>५</sup> अहकार और भावुकता रोमांटिक विचारधारा के नित्यसहवर्ती गुण है। उन्नीसवी शती के स्वच्छदतावादी अंगरेज कवि काव्य को अपन व्यक्तित्व के कलात्मक अभिव्यजन का माध्यम मानते थे। उनके लिए जात्मप्रकाशन और आत्मानुभूतिया की सम्यक अभिव्यक्ति ही कविता थी। (कीटस ने वड स्वय मे औदात्य और अहकार का—उदात्त अह का—जबूक सयाग देखा था।) वड स्वय ने काव्य-स्रष्टि के रहस्या का उदघाटन सरलातिसरल शब्द म यह कहकर किया है कि सात क्षणा म आवेगा के अनुचितन से ही काव्य की उत्पत्ति होती है। पर डॉ० नगेद्र ने अपने लेखक की विशेषताया का वणन इस प्रकार किया है "आपका लेखक व्यक्ति स कही अधिक् समचदार है। कारण यह है कि भावा या विचारा का जितना भी उद्वेग होता है उसे आपका व्यक्ति पहल ही झेल लेता है और गला मे रूपायित होने तक यह उद्वेगन बहुत कुछ गात सा ही हो जाता है।"<sup>६</sup> टी० एस० एलियट ने कहा है कि सिद्धहस्त

१ उपरिबत, प० २२।

२ उपरिबत।

३ उपरिबत।

४ उपरियन।

५ ' गिकायत है नगेद्र से नगेद्र को', दे० 'कादम्बिनी', मई, १९६६, प० ४९।

६ उपरिबत, प० ५३।

कलाकार म भोक्ता मानव एव स्रष्टा मन परस्पर पृथक् रहत हैं। अत डॉ० नगेद्र का समीक्षक—और कवि भी—सिद्धहस्त कलाकार है। उनकी स्वच्छद-कल्पना कभी-कभी समीक्षक क बौद्धिक अनुशासन को फोड़कर उच्छ्वसित हाउठनी है, "पराका जोर" कमते ही या तो मजिल पारहो जानी है या "साइ-किल की चैन' टूट जाती है।

मुमिनात दान पत ने डा० नगेद्र के "कवि हृदय के माधुय" उनकी सहृदयता और संहानुभूतिपूण दृष्टिकोण की चर्चा करत हुए अपने समीक्षक के प्रति कृतज्ञता नापित की है। डॉ० नगेद्र का आद्वैता कवि समीक्षा प्रक्रिया मे भी कभी-कभी प्रकट हुए बिना गही रह सकता वह आलोचक की सूक्ष्मदर्शी दृष्टि का प्रदाता है और उसकी भाषा शली की "रसोत्सवत" करता है। स्पष्ट है कि "मुमिनात-नदन पत" का लेखक हिंदी भाषा साहित्य के किसी भी मतवाद या आदोलन को केवल भारतीय भूमिका पर ही आकलित नही करता पाश्चात्य साहित्यिक परंपरा का के व्यापक तथा गभीर बोध के कारण वह हिंदी साहित्य का विश्व वादमय से पथक न कर उमे प्रशस्त साहित्यिक भूमि पर ग्वता है। उसकी समीक्षा-पद्धति की यही पहली महत्वपूण विशेषता है। सबप्रथम लेखक हिंदी साहित्यगत तथ्यो का सुशुद्ध विवरण उपस्थित करता है, तत्पश्चात उनके पल्ल-वन एव विशदीकरण के लिए अथवा उनको अधिकाधिक प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए विश्व साहित्य मे, विशेषत पाश्चात्य साहित्य से दृष्टांत प्रस्तुत करता है।

मुमिनात दान पत' म, जिस डॉ० नगेद्र किशोर समीक्षक की कृति कहत है छायावाद के आविर्भाव का विवेचन इस पद्धति का ज्वलत उदाहरण है। प्रथमत, महादेवी वर्मा के कुछ सारगभ शब्द उद्धत हैं। समीक्षक की दृष्टि युग-युग मे होनेवाले सूत्र क युगान्तरकारी विद्रोह पर केन्द्रित है, इन कारण वह केवल भारतीय इतिहास तक ही अपने को सीमित नही रख सकता। बूकि "यह विद्रोह नवकालीन एव सावदशिक है, समीक्षक केवल वर्तमान म ही अपन को बद्धमूल नही रख सकता और न केवल भारत म ही। इसलिए वह पहले "अनादिकाल" म सूत्र आमतान के विद्रोह की ओर अपन अध्येता का ध्यान आकृष्ट करता

१ 'कवि-सुलभ रसिबता और सजा-सवेदना के कारण ही उनकी आलोचना गली सद्वातिक और व्यावहारिक—दोनों ही घरातलों पर रसोत्सवत है तथा ममस्पर्गी भावजना मे पगी हुई है।' कुमार विमल, 'डा० नगेद्र की समीक्षा पद्धति', रामेश्वरलाल खण्डेलवाल सुरेन्द्र गुप्त, हिंदी आलोचना के आधार स्तभ (दिल्ली, १९६६), पृ० १९९।



है। इसका अर्थ गाँव और शहर आदि है जिनका भावनात्मक प्रभाव जगह हो जान पर भगवान् बुद्ध के जन्ममिथिला पराग्य द्वारा मू म न प्राणि उपस्थित की।<sup>१</sup> बुद्धत्व के पराग्य के वार और अन्तर्गत द्वितीय-युग। मू म के विद्रोह का यह सार्वभौमिक प्रभाव निरूपण अथवा प्राप्तिकर एवं विपदानुरूप (मू म—न कि स्थूल) है। वस्तुतः यह अन्तर्गत और भाव्य ही प्राक्-विवरण के शरीर की ताजो निमाणम प्रविभा का ही मान्य है।

द्वितीय-युग तत्र 'मू म के विद्रोह का इतिवृत्त पठेया गया। जपन युग में अन्तर्गत यहाँ से, समीपक पाश्चात्य साहित्य की आरंभकाल करता है। यूरोप में भी समय समय पर ऐसे घण्ट उपस्थित हात रह हैं जिनमें समय मुख्य १८वाँ शताब्दी का जागृति थी जिसके प्रथमक धर्म और वाल्टेयर।<sup>२</sup> तदनंतर 'नव जागृति' के जिन कारणों का उल्लेख है वे पाश्चात्य स्वच्छदतावादी प्रवृत्ति के उभय के कारण पर आधत जान पड़त हैं। वस्तुतः 'नव जागृति' (छायावाद) और इस पाश्चात्य प्रवृत्ति में मौलिक सादृश्य पाया जाता है जिसके कारण ऐसा जान पड़ता है कि डॉ० नगेन्द्र छायावाद के उद्भव के कारण का नहीं, अपितु स्वच्छदतावाद की विशेषताओं का उल्लेख कर रहे हैं। छायावाद और स्वच्छदतावाद की नींव सुंदर और अन्तर्गत के मिश्रण पर स्थित है। जिन प्रकार नवजागृतिवाद के विरुद्ध स्वच्छदतावाद का विद्रोह हुआ, उसी प्रकार द्वितीय-युग की इतिवृत्तत्मक कविता के विरुद्ध काव्य-क्षेत्र में छायावाद नामक नव जागृति उपस्थित हुई। हिंदी के कवि अंगरेजी और बंगाल की ओर उन्मुख हुए। इन भाषाओं से 'प्राप्त प्रभाव से प्रेरित होकर हिंदी की चिर आरंभकाल ने जिस सौंदर्य की उपासना की 'वह न तो निर्जीव था और न भावगूय ही। डॉ० नगेन्द्र कही भा एवमात्र अंगरेजी काव्य को ही छायावाद का प्रेरणा-स्रोत नही मानते। उन्होंने छायावाद को प्रोत्साहित करनेवाले अहिंदी प्रभावा में बंगला को भी-विशेषतः कविवर रवीन्द्र की गीताजलि को वही ध्येय दिया है जो अंगरेजी का।

"मुमित्रानदन पत" का भाषा शली और आन्तर्गतत्मक प्रतिमान पर अंगरेजी का प्रभाव स्पष्ट है। अंगरेजी की समाशात्मक पारिभाषिक शब्दावली में छायावाद के इस मू म के कवि की काव्यगत विशेषताएँ स्थापित हैं। वही-वहाँ ऐसा जान पड़ता है कि डॉ० नगेन्द्र अंगरेज समीपक की भाषा में साक्षात्

१ मुमित्रानदन पत (आगरा, स० २००९), प० १।

२ उपरिक्त, प० २।

और उन्हीं के मानमूल्यों का अपना निकप मान बैठे हैं

(क) किंतु इस गुण्य समय में (Barren age) में कला का अस्तित्व लोप हो जाने के कारण उमम भी प्लेटफाम काव्य का आधिक्य था। (प० ५)

(ख) वाग्मव में पतजी के काव्यजगत में ऐंद्रियता (sensuousness) का उचित मान है। (प० २३)

(ग) अपनी प्रतिभा की सचताइत फक्कर उम अधिकार गम स विचित्र काव्य-उपादान ढूँढ निकालत हैं। (प० ७)

(घ) ग्रन्थ में आपने 'run on lines' का प्रयोग किया है। (प० ७२)

‘गातकाव्य’ का परिचय दत हुए उन्होंने कहा है कि जिन गीत शली का विकास द्विवदी युग के पश्चात् हुआ वह पाश्चात्य लिरिक बँदग का था। इतना कहकर वे पतजी के रस-दीप्त गीता पर उतर नहीं आत। पहले के अगरजी रसाधार्यों की दृष्टि में गीत-काव्य की आत्मा की विगोपता का प्रकाशन करत हैं सच्ची गीत-कविता एक सरल, क्षणिक एवं तीव्र मनोवेग का परिणामस्वरूप होती है। इस मनावग से उमका समस्त अन्तर्बाह्य एक साथ झट्ट हो जाता है—उसके अतम् में एक अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है।<sup>१</sup> गैली, जे० एस० मिल आदि ने गीत-काव्य की ऐसी ही परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। डॉ० नगेन्द्र शैली की रचनाओं से पूणतया परिचित हैं और उन्होंने पत की विचार धारा के विवधन मम में उनकी प्रकृति-सवधी धारणाओं का उल्लेख भी किया है। कहीं-कहीं शैली पर प्रयुक्त मानदण्डों में पतजी के काव्य की ममीक्षा प्रस्तुत की गई

१ उपरिचत, प० ३३।

२ दे० नाइनटीथ सेंचुरी क्रिटिकल एसेज, वल्ड क्लासिक्स, प० ४२१। इसी निवध में मिल ने वड स्वय के काव्य की उस विगोपता की ओर सकेत किया है जो डॉ० नगेन्द्र की परिपक्व समीक्षात्मक कृतियों में भी मिलती है। मिल के अनुसार वड स्वय की कविता में कभी उछाल उबाल देखने को नहीं मिलता, वह ऊपर से स्वत प्रेरित भी नहीं जान पडता, कवि का हृदय कभी इतना भरा नहीं होता कि उससे आवेग फूट पडें। वड स्वय की रचनाओं से एक प्रगात चिंतन का आभास मिलता है जो कवि हृदय की विगोपता नहीं है, उसकी कविता कुछ और जान पडती है और वह स्वय कुछ और लगता ह।

है, पंतजी को भारतीय गीत-नाट्य की परंपरा में रचना-पादनाय स्वच्छता-वादी परंपराओं की समृद्ध भूमि पर गिटाया गया है। पंत को कला का विवेचन करते हुए लॉरेंस ने एक फ्रांसीसी समालोचक का दृग् उक्ति का उद्धृत किया है "कला प्रकृति की अनजान म की हुई विवेचना है—जा अपूर्ण है कला उसी की पूर्ति है।" यहाँ वाल्टेयर के दृग् वचन का स्मरण हा आता है

Sachez que le secret des arts

Est de corriger la nature

डा० नगेन्द्र के अनुसार पंत को शब्दा की अंतरात्मा का जच्छा जान था इसलिए पंत के इस ज्ञान का विवेचन करते समय उहान उनका चित्रापम प्रयोगों की सराहना की है और कहा है कि पंत की चतुरिन्द्रिय चितनी अन्त प्रवर्गिता है श्रोत्रिन्द्रिय उतनी ही शिक्षित और सूक्ष्म ग्राहिणी है।<sup>३</sup> डा० नगेन्द्र ने यहाँ पंत की "विजु-ल" तथा 'ग्राडेटरी' कल्पना का ही वणन किया है और "पिस्वरस्कयूस" के स्थान पर 'चित्रापम प्रयोग' की बात कही है। इस प्रकार पंत के वणन-परिचय का वणन करते समय उहान ससृष्ट क बाणभट्ट कालिदास आदि कवि पुगवा के साथ अंगरेजी के कौटम रासदी स्विनसन राबट ब्रीजेज आदि की भी एतद्विषयक प्रवीणता का उल्लेख किया है।

'साकत एक अध्ययन में सजन प्ररणा' के विवेचन के पश्चात साकेत की कथावस्तु के जायाम और सघटन का ऐसी समीक्षा प्रस्तुत की गई है जिसके प्रतिमान जरस्तू के काव्यशास्त्र और पुनर्जागरण-पुग के इतालवी तथा फ्रांसीसी मनीषिया की रचनाओं में निर्मित हुए थे। जरस्तू ने ऐसा सबविदित मायताओं के साथ कथावस्तु और त्रासदी के प्रभाव का विवेचन प्रस्तुत किया है जो पाठकों को अत्यंत सामान्य लग सकती हैं किंतु जरस्तू आधारभूत तथ्या की उपेक्षा नहीं करता। उसका अनुसार त्रासदी एक ऐसी क्रिया की अनुकृति है जो अपने में पूर्ण हो और जिसमें एक निश्चित विस्तार हो क्योंकि कोई चीज पूर्ण होकर भी विस्तार रहित हो सकती है। पूर्ण तो वही है जिसमें आदि माय और अवसान हो। आदि उस कहते हैं जो किसी अनिवाय अनुक्रम में किसी अय के बाद न आये किंतु जिसके बाद कुछ और चाहे घटित हो या स्वभावतः विद्यमान रह। अवसान वह है जो स्वाभाविक रूप से किसी अय घटना के अनंतर जावश्यक

१ सुमित्रानदन पंत, प० ५१।

२ 'द सिफ्रेट आव द आट स इज टु करेक्ट नेवर'।

३ सुमित्रानदन पंत प० ५७।

अनुक्रम में घटे और जिसके बाद और कुछ न आये। मय वह है, जा (क्यावस्तु की) किसी (घटना) के बाद आय और जिसके बाद भी कुछ घटित हो। इस प्रकार सुगठित कथानक का आरम्भ या जवसान अचानक और मनमाने ढंग से न होकर इन सिद्धांतों के अनुसार हाता है। जैसे अय अनुकम्पात्मक कलात्रा म अनुकाय वस्तु के एक होने पर अनुकृति भी एक होती है, इसी प्रकार कथानक का, जो काय-व्यापार की अनुकृति हानी है, एक तथा सवागपूष काय का अनुकरण करना चाहिए और उसमें अगा का सगठन ऐसा होना चाहिए कि यदि एक अग को भी अपनी जगह से इधर-उधर करें तो सर्वांग ही छिन्न भिन्न और अस्त-व्यस्त हा जाए, क्योंकि ऐसी वस्तु, जिसके होने न हान से कोई प्रत्यक्ष अंतर नहीं पडता, किसी पूष इकाई का सहज अग नहीं हो सकती। अरस्तू सुकरात के इन कथन से सबया सहमत है कि 'प्रत्यक प्रवध मजीव प्राणी हो जिसे अपना शरीर ता हो ही एक सिर और पैर भी हो, मध्य आदि और अत भी रहें, जो एक दूसरे तथा सपूष क अनुकूल हा।'

इस प्रकार किसी सुगठित कथा का आरम्भ और अन्त किसी भी मनमाने विद्दु पर नहीं हो सकता, कवि को उन सिद्धांतों का प्रतिपालन करना चाहिए जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त वर्णित घटना में विस्तार होना चाहिए क्योंकि कलाकृति का सौंदर्य सजीव प्राणी के सौंदर्य के समान आकार तथा व्यवस्था में पर आधृत होता है। कलाकृति न ता अत्यल्प हो न अतिविस्तृत। अतिलघु पदाथ सुदर नहीं हो सकत क्योंकि उनमें वैसी रमानुभूति नहीं होती, जो सर्वांगों में सुघडता, सौमनस्य एव व्यवस्था देखकर हानी है। इसी प्रकार एक हजार मील लवा पशु भी हमें आह्लादित नहीं कर सकता, क्योंकि हम एक साथ इसके पूर शरीर को नहीं देख सकते।

अरस्तू ने अविचि त्रय में केवल काय-व्यापार की अविचि का ही सिद्धांत-रूप में अधिष्ठित किया है। जहा तक कालगत अविचि का सबध है, उसमें इसकी ओर संकेत भर किया है "वासदी को यथासभव सूय की एक परिक्रमा (एक दिन) या इनसे कुछ अधिक समय तक सीमित रखन का प्रयत्न किया जाना है।" कालगत अविचि को एक सुनिश्चित सिद्धांत बनाने में सिन्यियो का हाथ है, जो फेरारा में दगनगाम्न एव काव्यगाम्न का निष्णात प्राध्यापक था। उसने "लेक्चस आन कॅमिटी एण्ड ट्रेजेडी" (१५४५ ई०) में इस नियम का प्रतिपादन किया, उसके बाद अरस्तू के "पोयटिक्म" के १५४८ में प्रकाशित संस्करण में रॉबर्टेली ने इसकी व्याख्या के त्रय में कहा कि वस्तुतः अरस्तू का मतलब केवल वारह घंटों से था (क्याकि लोग रात में सो जात हैं),

तत्पश्चात् "पोयटिवस" के अपने अनुवाद (१५४६ ई०) में सेमिन ने साधिका-घोषणा की कि चूँकि विश्व की अनेकानेक विलक्षण घटनाएँ रात्रि में घटित होती हैं, अरस्तू के 'सूर्य की एक परित्रमा से चौबीस घंटे का बोध होता है। इसी प्रकार १५७० ई० में प्रकाशित अरस्तू के "पोयटिवस" के संस्करण में कास्टेलवेट्रो ने उपयुक्त अवितिमा में एक और अविति जोड़ दी—स्थानगत अविति। यद्यपि उसने यह नहीं कहा कि अरस्तू ने इसका नियमन किया था, फिर भी उसने इसके लिए एक बड़े ही युक्तिसंगत कारण का उल्लेख किया। उसने कहा कि अरस्तू ने बग़ैर ही सत्यसादृश्य पर (Verisimilitude) साग्रह बल दिया था और कहा था कि नाटक में वणित कायव्यापार सम्भाव्य हों। यदि नाटक के दृश्य कायक्षेत्र के एक भाग से दूसरे भाग में अथवा 'बोहामिया' में जो समुद्र तट पर अवस्थित एक उत्तर अनुवर भू भाग है, चारबार त्वरा से परिवर्तित होता रहा तो सम्भावना जाती रहेगी। निस्सन्देह अवितित्रय का यह सिद्धांत उन दिनों बहुत उपयोगी था जब इसका सबसे प्रथम प्रतिपादन हुआ था। यह सामयिक नाटककारों की अव्यवस्थित शौकिया विधियाँ और गलियाँ को अनुशासित करने का प्रयास था।

"साकेत एक अध्ययन में पात्रों के व्यक्तित्व का विवेचन भी पाश्चात्य प्रतिमानों का प्रयोग करता है। (विवेचन के अंत में लेखक का यह कथन दिया गया है कि 'पश्चिम में घटित चित्रण की यह अत्यंत प्रचलित प्रणाली है।')"<sup>१</sup> 'वृत्त घणन का आरम्भ इस प्रकार होता है "अंगरेजी साहित्य में घणन के दो प्रकार बह गये हैं— एक में कथा का अर्थात् घटनाओं का समय के क्रम में घणन होता है दूसरे में वस्तुओं का स्थान के क्रम में।"<sup>२</sup> लेखक ने पाश्चात्य समीक्षा-पद्धति का अनुसरण करते हुए साकेत में कथा प्रवाह और कथा-घणन में बाह्य-मयम, नाटकीय विषमता या पूर्व-साकेत (ड्रामटिक आयरनी) आदि का विगद निरूपण किया है।

"दूर और उनका कविता की व्यावहारिक समीक्षा अपक्षया अधिपति परिय है। इसमें विवेचन अधिक विद्वत्तापूर्ण और भाषा गरी अधिक व्यञ्जक एवं सधी निगरी है। लेखक ने दूर के शब्द प्रयोग का समीक्षा करते समय पश्चिमी भाष्य का प्रत्यासन्नता का आशय मन्त किया है और कहा है कि 'विगद में धर्मव्यवहारिता या विगद प्रमाण के कारण, नवान कविता में उत्तरा विगद प्रचार

१ साकेत एक अध्ययन (आगरा स० २०२१), पृ० ९६।

२ उपरिष्ठ प० १०३।

बड़ा है। प्रतीकात्मकता अतिवस्तुवाद आदि के आश्रित हान के कारण अत्यंत घटिल और सूक्ष्म वृत्ति है।<sup>१</sup> देव के उक्तिवचिन्त्य की विवेचना करते समय वह अँगरेजी काव्यशास्त्र को नहीं भूलता,<sup>२</sup> पर इस ग्रथ में जहाँ “सुमित्रानन्दन पत” और “साकेत” के समीक्षक के सभी गुण वतमान हैं, वहाँ उनकी विवेचन शैली में कतिपय नये-नये गुण भी प्रकट होते हैं। अब लेखक में प्रभावों को अधिकाधिक आत्मसात करने और अपनी समीक्षा में सतुलन और समन्वय घटित करने की क्षमता में विकास दीख पड़ता है। पहले जहाँ पाश्चात्य तत्त्वा को प्राथमिक महत्त्व मिला था, अब वहाँ वे तुलना के लिए आरापित होते हैं। पहले जहाँ आलोचना के पाश्चात्य प्रतिमान ही सर्वप्रथम आते थे, अब वहीं भारतीय दृष्टिकोण से विवेच्य कवि को आवन का प्रयत्न होता है और इसी प्रक्रिया में पाश्चात्य प्रतिमान भी प्रयुक्त होते हैं।

‘विचार और विवेचन’ में “प्रेमचन्द” “पत का नवीन जीवन-दशन”, “डा० श्यामसुन्दरदास की आलोचना-पद्धति” आदि का विवेचन सर्वथा मौलिक तथा अत्यंत सहानुभूतिपूर्ण है। ‘विचार और अनुभूति’ के एक निवृद्ध में आचार्य शुक्ल और रिचर्ड्स का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। डॉ० नगेन्द्र न पद्मसिंह शर्मा और मिश्रबन्धुआ की तुलनात्मक समीक्षा शैली को अधिक परिमार्जित और बचानिक बनाया है। इस शैली की अनेकानेक विशेषताओं में एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें पौरस्त्य एवं पाश्चात्य साहित्यकारों का युगपूर्व विवेचन होता है—कभी-कभी पौरस्त्य विषय का विवेचन पाश्चात्य साहित्यशास्त्र के आलोक में होता है। इसी शैली के अंतर्गत हम ऐसे भी स्थल रख सकते हैं “ज्या ही मैं कामायनी का मूल्यांकन करने के लिए प्रवृत्त होता हूँ, मुझे लाजाइनस की यह प्रसिद्ध उक्ति अनायास ही याद आ जाती है—”<sup>३</sup> ‘सुखदा’, ‘बोल्गा से गगा’, ‘डरावती’ आदि की व्यावहारिक समीक्षा<sup>४</sup> में प्रयुक्त प्रतिमान सश्लिष्ट मौलिक प्रतिमान हैं जिनमें पाश्चात्य प्रभाव और पौरस्त्य चिंतन एकीकृत हो गए हैं। उपन्यासों के समीक्षण में पाश्चात्य मानदंडों का प्रयोग स्वाभाविक है। (उदाहरणार्थ, देग्वाल या वातावरण के अतिरिक्त उपन्यास के तीन प्रमुख तत्त्व और हैं कथावस्तु, चरित्र निर्माण और उद्देश्य

१ देव और उनकी कविता (दिल्ली, १९४९), पृ० २२६।

२ उपरिक्त, पृ० २२९।

३ अनुसंधान और आलोचना (दिल्ली, १९६१), पृ० ४९।

४ दे० विचार और विश्लेषण (दिल्ली, द्वि० सं० १९६१)।

अथवा आधारभूत जीवन-दृशन।"१) परंतु इन मानदंडों को पूर्ण भारतीय नागरिकता प्रदान की गई है और भारतीय रूप सज्जा में उपस्थित किया गया है "हिमशिरीशितो", 'वामवदता' आदि पुस्तकों पर लिखी गई समीक्षाएँ पाश्चात्य मनोविज्ञान में प्रभावित हैं।

निष्पत्त 30 नवंबर की व्यावहारिक समीक्षा पाश्चात्य समीक्षा सिद्धांतों और पद्धतियों से प्रभावित होकर भी समत्ववादी समीक्षा का एक नवव्यापक उपस्थित करती है। वहां-वहीं उनकी रचनाओं में प्रभाव इस प्रकार एकीभूत हो गए हैं कि उनकी स्वतंत्र सत्ता अदृश्य हो गई है और वे पूर्णतया भारतीय बन गए हैं। उनकी आरंभिक रचनाओं में पाश्चात्य प्रभाव का आधिक्य देखा जाता है, पर परवर्ती रचनाएँ अधिक परिपक्व हैं और उनमें पाश्चात्य प्रभाव अधिक समन्वित सतुलित है। वस्तुतः उनकी उत्तरवर्ती रचनाओं का मूलधार पौरुष काव्यशास्त्रीय चिंतन और उनकी पद्धति का मेरुदंड तुलनात्मक विवेचन है। विवेच्य कृति के सम्बन्ध परीक्षण के लिए उन्हें व्यापक भूमिका की आवश्यकता होती है अतः वे अपनी उत्तर रहस्यामैपिणा दृष्टि को भारतीय परिवर्तन तक ही सीमित नहीं रख सके। क्योंकि वे अंगरेजी अध्ययन-अभ्यास के फलस्वरूप उनकी समीक्षा-पद्धति में पाश्चात्य प्रभाव का समावेश स्वाभाविक ही है।

### प्रगतिवादी आलोचक

हिन्दी के प्रगतिवादी समीक्षकों ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से हिन्दी-लेखकों और कवियों का अनुसंधानीय मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। इस दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण प्रकाशक द्रमुक्त लिमिटेड 'नया हिन्दी साहित्य एक दृष्टि' (१९४०) के प्रारम्भिक भागों में इन पंक्तियों में हुआ है 'अंग सग्रह के विषय एक विचार दृष्टिकोण में लिखे गये हैं। इस दृष्टिकोण में हिन्दी-साहित्य का पश्चिम उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। समाज और साहित्य में परस्पर एक अंतरण मध्य है और साहित्य समाज का दर्शन है।' डॉ० रामविनायक शर्मा का प्रभाव माधव विद्यालयाध्यक्ष चौहान अमतराज, प्रगतिवादी की रचनाओं में इन सूत्रों का मध्यम चलन एवं विचारणात्मकता मिलती ही है साथ ही उनमें व्यापक सामग्रीय सिद्धांतों का त्रिविध विनियोग भी तीन पन्नों में।

प्रकाशक शर्मा का आरंभिक रचनाओं पूर्णतया मानववादी नहीं हैं किन्तु उनमें मानववादी व जीवाणु समाज-व्यवस्था को मान्य रचना और उन लक्ष्यों

की प्रशंसा मिलती है जिनमें, स्वभावतः, प्रगतिवादो प्रवृत्तियाँ दीख पड़ती हैं। प्रेमचंद के “कायाकल्प” में, गुप्तजी के साह्यानुसार, कथावस्तु का रूप विकृत है। इसका कारण यह है कि इसमें प्रेमचंद अध्यात्म और “व्यक्ति के जन्म-जन्म-मातर, योगाभ्यास, कायाकल्प आदि पचड़ा” में पड़ जाते हैं और उनका उपन्यास राईडर हगड के ‘शी का आकार प्रकार ले बैठना है।’ प्रेमचंद द्वारा निर्मित चित्रगाला में गुप्तजी को जीवन के सभी चित्र दाख पड़ते हैं—प्रेमचंद की प्रशंसा होती है। इसका कारण यह है कि प्रेमचंद न एक चित्र “फिर फिर दुहराया है, जजर भारतीय सामन्तगोत्री का दय, कुठिन किसान और सक्कट में पड़ी जमींदारी प्रथा।”<sup>२</sup> परंतु मार्कमवादी भौतिकवादिना और स्थूलता अश्रुत-अदृश्य के प्रति उदार हाना नहीं चाहती। इसलिए, गुप्तजी के अनुसार, “कथावस्तु की एक भारी भूल में ‘कायाकल्प’ को सामाजिक उपन्यास की श्रेणी में निकालकर अध्यात्म कक्ष में पहुँचा दिया।<sup>३</sup> गुप्तजी का अंगरेजी प्राध्यापक प्रेमचंद के ‘कुछ पाना का ‘टाइप’ कहना है और प्रेमचंद उस सहज ही उनके और गाल्सवर्दों की याद दिनात हैं।<sup>४</sup> उसके अनुसार ‘रगभूमि’ में प्रेमचंद ने अपनी सामर्थ्य से बाहर काय उठाया है। उनतिशील कलाकार एक बार ऐसा बीड़ा उठाते हैं ही। गुप्त का ऑल्डम हक्सले की याद आती है और वे उसके ‘प्लायट काउण्टर प्लायट नामक उपन्यास को ‘विफल प्रयास’ घोषित करते हैं।<sup>५</sup> जब जन-जीवन में साहित्य का सबंध विच्छेद हो जाता है तभी उसका पतन शुरू होता है। इसलिए रीतिकाल की कविता उनकी दृष्टि में हल्की है, क्योंकि उसका प्रेरणाएँ ‘भारतीय जन-समाज की आत्मा और आकांक्षाएँ न था।’ इसके विपरीत पत के परिवर्तन में देश के श्रद्धा की व्यापक अभिव्यक्ति है इसलिए गुप्तजी के मतानुसार हिंदी में “इतनी प्रगतिशील चीज’ कम है। निराशाजी भी संभवतः इसीलिए अधिक प्रगस्य ममने गए हैं कि उन्होंने काव्य-परंपरा का घोर विरोध किया था।

प्रगतिवादी आलोचना में क्रांति के प्रति विशेष आकर्षण दीख पड़ता है।

१ प्रकाशचंद्र गुप्त, ‘नया हिंदी साहित्य एक दृष्टि’ (बनारस, १९४०), पृ० १४।

२ उपरिचत, पृ० १७।

३ उपरिचत, पृ० २२।

४ उपरिचत, पृ० २४, ३१।

५ नया हिंदी साहित्य एक दृष्टि (१९४६), पृ० १५७

६ उपरिचत, पृ० २९ (१९४०)





इस प्रकार श्री प्रवाशचन्द्र गुप्त के सभी मूल्यांकन एक ही व्यापक कसौटी पर हुए हैं, सभी साहित्यकारों को मार्क्सवादी मानदंड से मापा-परीखा गया है। इसलिए उनके द्वारा प्रस्तुत विवेचना में कहा-कहा एकतानता और नीरसता तथा पुनरुत्थिता हैं।

डॉ० रामविलास गुप्ता न निराला, प्रेमचंद और भारतेन्दु हरिश्चंद्र पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण से सारगर्भ एव महत्वपूर्ण व्यावहारिक समीक्षा लिखी है। अपन क्षेत्र और युग के इन मूधम साहित्यकारों की रचनाओं को विशुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण से न परखकर डा० शर्मा ने इन्हें प्रगतिशील मानदंडों से परखा है और उन पर अभिनव प्रकाश डाला है। "निराला", "भारतेन्दु हरिश्चंद्र" आदि रचनाओं में अंग्रेजी भाषा साहित्य के ज्ञान का अनुचित प्रदर्शन नहीं दीखता। 'निराला' (१९४६) में समीक्षा अपेक्षा अधिक साहित्यिक और तथ्यपरक है 'प्रेमचंद और उनका युग' (१९५२), "भारतेन्दु युग" (द्वि० स० १८७१) आदि में अपेक्षा अधिक प्रगतिवादी।

शिवदानसिंह चौहान और हिंदी साहित्य के प्रगतिवादी निन्दा के अथ सत्य जंगरेज कवि और आलोचक कॉडवेल की समीक्षा-मदति से पूर्णतया प्रभावित हैं। शिवदानसिंह भा विवेक साहित्यकारों की अपनी मार्क्सवादी कसौटी पर कान्त और इस बात पर प्रभूत बल देते हैं कि समाज और यथार्थ के प्रति उन साहित्यकारों का दृष्टिकोण कसा रहा है। उनकी दृष्टि में श्री जगदीश चंद्र माधु की सचेत दृष्टि आधुनिक जीवन के उस वैषम्य के आर-मार देखती है जो रुढ़िग्रस्त संस्कारों और उच्च सामाजिक प्रवृत्तियों के बीच एक जटिल और अविराम संघर्ष का जनक है। "अश्वजी वर्तमान जीवन के वैषम्य पर तीखे व्यंग्य करते हैं जिससे उनकी विद्रोही चेतना के दर्शन होते हैं।" श्री चौहान की व्यावहारिक समीक्षाओं में कभी कभी दृष्टिकोण के अभाव के साथ विवेकपूर्ण विश्लेषण का विनियोग बड़ा ही सुन्दर हुआ है। उन्होंने प्रसाद के नाटकों का 'कस्तुरमुखी दृष्टिकोण' से परखा और उनकी सराहना की है।

अपनी "नयी समीक्षा" में अमरनाथ ने "मार्क्स क्रॉयड और कविता", "फामिज्म का सांस्कृतिक ब्लाकआउट" 'मक्सिम गोर्की' आदि अनेक निवृद्ध संगीत किये हैं। इनमें प्रेमचंद, महादेवी, रवीन्द्रनाथ आदि पर प्रगतिवादी व्यावहारिक समीक्षाएँ तो हैं ही, लेखक ने सोवियत साहित्यकारों पर भी लिखा

१ 'हिंदी साहित्य के अस्ती-व्य' (१९५४), पृ० १६१।

२ उपरिबत, पृ० १६०।

है। एक अर्थनियम म उत्तम सावियत सप के मुद्द गाहिय और उमरी उपलब्धिया की प्रशंसा की है 'इसलिए हम दसत हैं कि पिछल मुद्द म लगभग सभी सावियत लखव। ने मुद्द का बाना पहना जीर एक हाय म अपना लगनी और दूगर म एक रायपल लखर रणक्षत्र म आ सढे हुए।'<sup>1</sup> 'जान गमरपाट्ट न सावियत साहि य के प्रसग म यह जा प्रदन उठाया है कि उसरा टान्गटॉप कज जमेगा, बहा प्रदन हिंदी के प्रगतिशील साहित्यकारा क सामन इस रूप म उपस्थित किया जाता है कि प्रगतिशीला का प्रेमचद कज जमेगा ?'<sup>2</sup>

### अध्याय आलोचक

डॉ० रामविलास शर्मा, अनेय और डॉ० इन्द्रनाथ मदान हिंदी समीक्षका म इस कारण भी विगिष्ट स्थान रखते हैं कि उन्हान हिंदी और अंगरजी दाना ही माध्यमा से लिखा है। हिंदी साहित्य कोण' म कहा गया है कि 'अंगरजी के माध्यम स हिंदी के बारे म लिखनवाले व्यक्तिमा म इन्द्रनाथ मदान का नाम काफी पहले आता है।<sup>3</sup> अंगरजी भाषा पर अधिकार रखकर भी डॉ० मदान अपनी गद्य शैली को अंगरेजी शब्दा से बासिल नहा बनाते आर न अपने अंगरजी भाषा पान का अनुचित जसमय प्रदगन करते है। उनक समीक्षात्मक निदधा जीर पुस्तका मे पायी जानेवाली विवेचन शैली का उत्कप उनके शब्दलापक म निहित है। वे किसी भी बात को बढेही संक्षेप म, चुनहुए शब्दा म व्यक्त करत हैं। यद्यपि "प्रेमचद एक विवेचा" छाटी पुस्तक है फिर भी यह प्रेमचद के उपन्यासा का प्रसग गभ, सहानुभूतिपूण एव उपयोगी विवेचन प्रस्तुत करने म समथ है। लेखक द्वारा की गई कथा समीक्षा मालिक तथा विश्लेषणात्मक है। डा० मदान प्रधानतया व्यावहारिक समीक्षक हं जीर महादेवी,<sup>4</sup> सिवदानमिह चौहान रामविलास शर्मा डा० नगेद्र नामवर सिंह अनेय जादि<sup>5</sup> पर उहोन सक्षिप्त किंतु मार्मिक समीक्षाएँ लिखी है। उहान पाश्चात्य मनोवज्ञानिका<sup>6</sup>

१ 'नयी समीक्षा' (धनारस, १९५०), प० २१९ ।

२ उपरिखत, प० २२२ ।

३ दे० भाग २, प० ३६ ।

४ दे० 'महादेवी एक सर्वेक्षण' (इन्द्रनाथ मदान द्वारा संपादित "महादेवी चिंतन व कला", दिल्ली, १९६५, प० ४२-५९) ।

५ डा० इन्द्रनाथ मदान, 'आलोचना जीर साहित्य' (इलाहाबाद, १९६४) ।

६ दे० प्रो० प्रेम नदनागर लिखित 'इलाचद्र जोशी साहित्य और समीक्षा' (विलासपुर, १९५९) की भूमिका । डा० इन्द्रनाथ मदान ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी है । 'आलोचना और का य' (दिल्ली, १९६०) ।

के आधारभूत सिद्धांतों का, पञ्चात्य काव्य एवं जागृता का, सम्यक अध्ययन किया है। परंतु उन पर पश्चात्य समीक्षा का उतना ही प्रभाव पड़ा है जितना एलियट पर मलार्से या रेमी द गुर्मा का। डॉ० मदान किमी अज्ञात कारण से, संभवतः अतिशय गीघ्रता, व्यस्तता या आलस्य के कारण कभी-कभी यह ठीक-ठीक निघारित नहीं कर पाते कि कौन-कौन से कवि किस किस कवि-निकाय में परिगणित हान चाहिए। 'आलोचना और साहित्य' में नवनेवादी कवियों का विवेचन साठे चारपृष्ठा में (पृ० ८६-८९) हुआ है पर उनके नाम तक गत नहीं खे—बताये गए हैं। उक्त ग्रंथ के पृष्ठ ७२ पर लिखा मिलता है कि "बिहारक कवियों—नलिनबिलोचन, केसरीनारायण तथा नरेश न अनेक के प्रयोगवाद का विरोध किया है। डॉ० मदान के निम्नलिखित कथन भी ध्यातव्य हैं

- (१) नरेश मेहता, केसरीनारायण तथा, नलिनबिलोचन न प्रपद्यवाद नामक स्वतंत्र काव्य प्रवृत्ति का प्रतिपादित तथा प्रचारित करने का प्रयास किया है। (पृ० ८५)
- (२) नलिनबिलोचन, केसरीकुमार तथा नरेश मेहता का प्रयोगवाद रुढ़ होकर प्रपद्यवाद अथवा प्रयोगवाद की उपधारा का रूप धारण करता है। (पृ० ८६)
- (३) नरेश मेहता ने घोषित किया कि प्रयोग काव्य का साध्य है। (पृ० ८७)
- (४) नरेश मेहता की रचनाओं में परंपरागत मायताओं के प्रति अविश्वास जीवन की व्यथता आदि के स्वर बौद्धिक दृष्टि से मुखरित होते हैं। (पृ० ८८-८९)

केसरीजी (प्रो० केसरीकुमार) को कहीं केसरीनारायण और कहीं केसरी कुमार कहा गया है। 'नवन के प्रपद्य' में सबत्र 'नरेश' का नाम आया है, नरेश मेहता का नहीं।

आधुनिक हिंदी साहित्य में डा० लक्ष्मीसागर वाण्ये ने कहीं-कहीं पञ्चात्य निष्कर्षों पर भारतीय लेखकों को परखन का प्रयास किया है। उन्होंने प्रतापनारायण मिश्र की भाषा-शैली का विवेचन करते हुए मिश्रजी पर "शैली ही मनुष्य है" का सफल प्रयोग किया है। वे कहते हैं "शैली ही मनुष्य है, जंगरजी की इस उक्ति का सफल आगेप मिश्रजी पर किया जा सकता है।"

१ डा० लक्ष्मीसागर वाण्ये, 'आधुनिक हिंदी साहित्य' (इलाहाबाद, १९४८), पृ० १५८।

“शली ही मनुष्य है” जाज हूई द युवा व Le style est l'homme meme (स्टाइल इज द मन हिमसेल्फ) का रूपांतर है। यार्षेयजी व प्राय सभी ग्रंथो म पश्चिम व ससर्ग एव साहित्य के कारण हिंदी भाषा-साहित्य मे हानकाल परिवर्तन का कही सविस्तर और कही सनिप्त निरूपण मिलता है। चूंकि उनका शोध-क्षेत्र सन् १७५७ से लेकर सन् १८५७ तक की धवधि है व भारतीय साहित्यिक एव सांस्कृतिक परंपराओं पर पश्चिम के प्रतिक प्रभाव से पूर्णरूपेण खगत हैं। व्यावहारिक समीक्षा से सबद “भारत-दु की विचार धारा” (१९४८) और “भारत-दु हरिश्चंद्र” (द्वि० सं० १९५६) नामक ग्रन्थों पर पश्चात्य प्रभाव नहीं पडा है। “आधुनिक कहानी का परिपाक” (१८६६) म विवेचित कहानीकारों पर लिखी गई समीक्षा भी इस प्रभाव से मुक्त है।

“अध्ययन” (१९४४) “कला, साहित्य और समीक्षा” (१८६२) जैसे अनेक ग्रंथों म सकलित डॉ० भगीरथ मिश्र की व्यावहारिक समीक्षा-सवधी निबन्धा के अनुशीलन से कही भी ऐसा प्रतीत नहीं होता कि इनके लेखक पर कोई उल्लेखनीय पश्चात्य प्रभाव पडा है। इनके विपरीत डॉ० विजयद्र स्नातक के निबन्धा म पश्चात्य प्रभाव कहीं-कहीं स्पष्ट दीख पडता है। “कामायनी-दंगन” म ‘चिता सग’ के विवेचन म उन्होंने विष्कम्भक की अंगरेजी परिभाषा उद्धृत की है (“ऐन इण्टेल्यूड बिटवीन दि ऐक्टस आव द ड्रामा) और ‘वासना-सग’ मे मनोविज्ञान की एक बहुश्रुत स्थापना के आधार पर कहा है कि “अपनी ही सतान के प्रति जब नारी प्रेम प्रकट करती है ता पुरुष पति होने के नाते कभी-कभी उस जनन प्रति उपेक्षा समझ बठता है।”<sup>२</sup> कामायनी” मे चरित्र चित्रण का निरूपण भी पश्चात्य तत्त्वा से आपूरित है। लेखक के अनुसार “कामायनी के पात्रों म महाकाव्य तथा गीतिकाव्य के तत्त्वा का अदभुत सम्मिश्रण है।” यह मार्बेलस काम्बिनेशन ऑव एपिकल एण्ड लिटिकल ट्रेटस का हिंदी रूपानर है। (अंगरेजी वाक्यांश कोष्ठक मे दे दिया गया है।) १ आत्मवादी व्यक्ति की

१ क. हंयालाल सहल और विजयेद्र स्नातक, ‘कामायनी दंगन’ (दिल्ली, १९५३)। इस छात्रोपयोगी ग्रंथ के भाष्यवाले खंड मे पहला और पांचवां निबन्ध स्नातकजी का है। सात्विक विवेचन और विश्लेषण वाले खंड मे उन्होंने ‘कामायनी की दार्शनिक पृष्ठभूमि’ और ‘कामायनी मे चरित्र-चित्रण’ नामक निबन्ध लिखे हैं।

२ उपरिक्त, प० ८४।

३ उपरिक्त, प० १४६।

चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन आधुनिक मानवनातिक गब्दावली में हुआ है।<sup>1</sup>

डॉ० गुलाबराय और डॉ० विजयेन्द्र स्नातक द्वारा संपादित "आलोचक रामचंद्र गुकल के 'आचार्य गुकल की बहुमुखी प्रतिभा' और 'आचार्य गुकल की निबन्ध-शैली' शीपक निबन्ध जो डॉ० विजयेन्द्र स्नातक द्वारा लिखे गए हैं, परिचयात्मक एवं विवरणात्मक ही अधिक हैं। उन पर पाश्चात्य प्रभाव नहीं पड़ा है। इसी काटि में उनका 'भीरजा' शीपक निबन्ध भी रखा जायगा। इसमें भाष्य और आलोचनात्मक टिप्पणी का ही सर्वाधिक विनियोग हुआ है।

डा० देवीशंकर अवस्थी की व्यावहारिक समीक्षा में पाश्चात्य समीक्षात्मक मानदंड और उनकी समीक्षा भाषा में अंगरेजी गब्दा का समधिक सुष्ठु प्रयोग हुआ है। हिंदी समीक्षक की इन उपलब्धियां को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि हिंदी की व्यावहारिक समीक्षा का अधिकांश छात्राभ्योगी और अर्थोपाजन के निमित्त लिखा गया है। यद्यपि ऐसे भी समीक्षक हैं, जो गभीर एवं विद्वज्ज नानुभूतित आलोचना-ग्रन्थों के प्रणयन का समर्थन करते हैं और इसी में दत्तचित्त हैं फिर भी हिंदी की व्यावहारिक समीक्षा की समस्त उपलब्धियां को समग्र रूप में देखने में यह विश्वास दृढतर हो जाता है कि इसका अभी भी समुचित विकास नहीं हो पाया है। जिन कतिपय समीक्षकों ने हिंदी समीक्षा के व्यावहारिक पक्ष पर यथोचित दक्षता किया है और इसकी समृद्धि के लिए उच्च कोटि के महनीय ग्रन्थ प्रणीत किये हैं, उनमें डॉ० नगेन्द्र, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी तथा दिनकर के नाम सर्वोपरि हैं।



१. उपरिबत, प० १५१।

हिंदी की व्यावहारिक आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव ~ ४०१



चूँकि प्रसादजी “स्वच्छदतावादी काव्यधारा के प्रथम और अग्रणी कवि” हैं उनकी काव्यगत मान्यताओं पर पाश्चात्य स्वच्छदतावादी सिद्धांतों और उनके विन्व-वैकीय नान का प्रभाव दखा जा सकता है । परन्तु प्रथमतः, उनका यह उददेश्य हम प्रभावा के अनुमधान म सतक रहन को बाध्य करना है कि

वाल चत्र क महान प्रत्यावतना स पूण भारतीय वाङ्मय की सुरचि-  
सवधी विचित्रताओं के निदशन बहून स मिलेंगे ।<sup>१</sup>

दूसरी विचारणीय बात यह है कि प्रसादजी भारतीय दशन आर साहित्य-शास्त्र के श्रमगोल अध्यता ही नही, इनके आदर्शों के प्रति आस्थावान् भी थे । इन कारण उन्हान किसी भी पाश्चात्य वाद का अध्याधुध अनुसरण नहः किया है आर न अपन निनी दष्टिकोण का विलोप ही होन दिया है । तीसरी बात जो प्रभाव निम्पण के काय का और भी कठिन बना दती है, यह है कि ज्ञान और सौंदय-बाध विश्वव्यापी वस्तु हैं इनके केन्द्र देण, काल और परिस्थितियों से तथा प्रधानतः सस्कृति क कारण भिन्न-भिन्न अस्तित्व रखते हैं ।<sup>२</sup> परन्तु ‘सगालवर्नी ज्याति-केन्द्रा की तरह आलोक के लिए इनका परस्पर सवध हो सकता है ।’<sup>३</sup> इसलिये भारतीय काव्यशास्त्र की कितनी ही मान्यताएँ पाश्चात्य साहित्यकारों की रचनाओं म स्थापित मान्यताओं के समरूप दीखती हैं और इन साहित्यकारों के विचार हमारे काव्य शास्त्रीय चिंतन मे प्रतिबिंबित दीव पढते हैं । उदाहरणार्थ प्रसादजी ने काव्य को स्वतः आध्यात्मिक माना है और कहा है कि काव्य से ऊँची अध्यात्म नाम की कोई वस्तु नहः । इस कथन पर हम चाहें तो पाश्चात्य प्रभाव देख सकते हैं । अनेकानेक इतावली काव्यशास्त्रियों न कविता का मभी कलाओं और विज्ञान स श्रेष्ठ धापित करते हुए इसकी आध्यात्मिकता का उल्लेख किया है । मेटियो सन मार्टिनो ने अपने निबध *Osservazioni grammaticali e poetiche della lingua italiana* (१५५५) म कहा है कि काव्य अपने मे सभी कलाओं और विज्ञानों का समाहित तो करता ही है इसकी आध्यात्मिक एवं धार्मिक उपादेयता भी अनुपेक्षणीय है । काव्य ही एक ऐसी कला है जो पूजाचना म भी काम देता है और जिसका आबिर्भाव देवी स्रोतों से

१ जयशकर प्रसाद, ‘काव्य और कला तथा अन्य निबध’ (इलाहाबाद, स० १९९६), पृ० ६ ।

२ उपरिक्त प० ४ ।

३ उपरिक्त ।



# हिन्दी के कवि-आलोचको की समीक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव



“अद्य क्षेत्रो की भाँति आलोचना के क्षेत्र में भी इस विषय के पश्चिमी साहित्यो से हिन्दी में बहुत कुछ ग्रहण किया है और अब भी कर रही है।”

—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

जयशंकर प्रसाद (१८८८-१९३७)

हिन्दी के जिन सघे हुए समीक्षको में स्वतंत्र एवं अपरपरीण चिंतन, समवीत ग्रंथों में उपलब्ध तथ्यों के समीकरण की क्षमता, शास्त्र व्युत्पत्ति, पाश्चात्य दर्शन का अंतरंग ज्ञान आदि गुण पाये जाते हैं उनमें जयशंकर प्रसाद का स्थान सबसे महत्त्व का है। प्रसादजी के कवि और समीक्षक में ग्रन्थायाध्यय-सबध देखा जाता है, जो उनके कवि को उतना प्रभावित नहीं करता जितना समीक्षक को। कवि के भावाष्ण हृदय से उद्गत भास्वर रचनाएँ चाहे वे प्रगीत हो या समीक्षात्मक अध्ययन, प्रमाता को विचलित किये बिना नहीं रहती। एक ऐस रचिर गिल्पी के रूप में प्रसादजी हमारे अलकृत गद्य क्षेत्र में आते हैं जिसकी अभिव्यक्ति, समग्रत, एक भावुक कवि की है और कविता की सरस स्निग्ध भूमिका पर विचरण करती है। उनमें अन्तर्निहित करुणा सिक्त प्रेम का अनश्वर गायक अपने गद्य और पद्य दोनों को ‘एक अतपित एक वेदना एक टीस’ के चञ्चल सूत्र में पिरोता है। इस कारण प्रसादजी का समस्त साहित्य उनके कोमल, भावप्रयण और तरल व्यक्तित्व से प्रदीप्त है।<sup>१</sup>

१ डॉ० जेकब पी० जाज, ‘आधुनिक हिन्दी गद्य और गद्यकार’ (कानपुर, १९-६६), प० ३२३।

चूँकि प्रसादजी “स्वच्छदतावादी काव्यधारा के प्रथम और अग्रणी कवि” हैं उनकी काव्यगत मायनाजा पर पाश्चात्य स्वच्छदतावादी सिद्धांत और उनके विश्व-कोणीय गान का प्रभाव देखा जा सकता है। परन्तु, प्रथमतः, उनका यह उपदान हम प्रभावा के अनुसंधान में सतक रहने का बाध्य करता है कि

वाल खत्र क महान प्रत्यावतना स पूण भारतीय वाङ्मय की सुरक्षि-  
सवधी विचिनताआ के निदशन बहून से मिलेंगे ।<sup>१</sup>

दूमरी विचारणीय बात यह है कि प्रसादजी भारतीय दान और साहित्य-शास्त्र के श्रमगीत बनेता ही नहीं, इनके आदर्शों के प्रति आस्वावान् भी थे। इस कारण उन्होंने किसी भी पाश्चात्य वाद का अधाधुध अनुकरण नहीं किया है और न अपन निनी दृष्टिकाण का विलोप ही हान दिया है। तीमरी बात जो प्रभाव-निष्पण के काय को आर भी कठिन बना देती है, यह है कि “ज्ञान और सौंदर्य-बोध विश्वव्यापी वस्तु हैं इनके केन्द्र देश कात् और परिस्थितिया से तथा प्रधानतः संस्कृति के कारण भिन्न-भिन्न अस्तित्व रखते हैं।<sup>२</sup> परन्तु “मणोलवर्ती ज्याति-श्रद्धा की तरह आलोच के लिए इनका परस्पर सबध हो सकता है।<sup>३</sup> इसलिए भारतीय काव्यशास्त्र की कितनी ही मायताएँ पाश्चात्य साहित्यकारों की रचनाओं में स्थापित मान्यताओं के समरूप दीखती हैं और इन साहित्यकारों के विचार हमारे काव्य शास्त्रीय चिंतन में प्रतिबिंबित दीख पड़ते हैं। उदाहरणार्थ प्रसादजी ने काव्य को स्वतः आध्यात्मिक माना है और कहा है कि काव्य से ऊँची अध्यात्म नाम की कोई वस्तु नहीं। इस कथन पर हम चाहें तो पाश्चात्य प्रभाव देख सकते हैं। उनका नक इतावली काव्यशास्त्रिया न कविता का सभी कलाओं और विज्ञान से श्रेष्ठ घोषित करते हुए इसकी आध्यात्मिकता का उल्लेख किया है। मेनिया सैन मारिनो ने अपने निबध *Osservazioni grammaticali e poetiche della lingua italiana* (१५५५) में कहा है कि काव्य अपने में सभी कलाओं और विज्ञानों को समाहित तो करता ही है, इसकी आध्यात्मिक एवं धार्मिक उपादेयता भी अमुपेक्षणीय है। काव्य ही एक ऐसी कला है जो पूजाचना में भी काम देती है और जिसका आविभाव देवी स्रोतों से

१ जयगकर प्रसाद, ‘काव्य और कला तथा अन्य निबध’ (इलाहाबाद, स० १९९६), पृ० ६।

२ उपरिक्त प० ४।

३ उपरिक्त।

होता है।<sup>१</sup> एंटोनियो पोर्जेविनो (१८६३) रचित *Tractatio de poesi et pictura ethnica humana et fabulosa collata cum vera honesta, et sacra* म लेखक कवि की अपार्षिय प्रतिभा का स्तवन करता है और अलौकिक बलिकी काव्य को ही सर्वोत्कृष्ट घोषित करते हुए माजेज डेविड और वाइरिल क गातकारा (सामिस्टा) की सराहना करता है।<sup>२</sup> मार्टिना और पोर्जेविनो जम इतालवी समीक्षका के विचार सिडनी तत्र पहुँचे और उन्होंने नवजागरणयुगीन जगरेज लेखकाको प्रभावित किया। इतना ही नहा इगल्ड मजब भी काव्यकी विशेषता और गुणा का घणा होता है इतालवी नवजागरण म प्रचलित तर्कों का पुनराख्यान किसी न किसी रूप म हो ही जाना है। सिडनी न अपना "जपौलजी फॉर पोयट्री" म कवियाको दार्शनिकास श्रेष्ठ कहा है और बताया है कि कविता मे आनन्द-तत्त्व और दर्शन दोना का युगपत् समाहार मिलता है इसलिए यह नीरस दर्शन से अधिक महत्त्व रखती है। इस धारणा का आधिर्भावक सिडनी नहीं बरन नवजागरण के इतालवी समीक्षक है।

परन्तु प्रसादजी के विचार इन समीक्षका से उद्भूत नहीं हैं और न इनका उद्गम-स्रोत पाश्चात्य साहित्य मे ही निहित है। उपनिषदा म ही कवि और श्रुति को पर्यायवाची शब्द कहा गया है। तब क्या उपनिषदा पर ही उस रोमीय विचारधारा का प्रभाव है जिसके अनुसार कवि को "वेदस या द्रष्टा कहा गया है? प्रभावा की खोज को इस हद तक पहुँचा देना हास्यास्पद दीखेगा।

बस्तुतः प्रसादजी ने कई स्थला पर पाश्चात्य मता और सिद्धांता का निरसन किया है जिससे उनके गभीर पाश्चात्य साहित्य ज्ञान का परिचय तो होता है, पर उनके प्रभावित होने का प्रमाण नहा मिलता। जहाँ भी उन्होंने पाश्चात्य लेखकों और चिंतकों को संकेतित किया है उनकी दृष्टि सजग रही है और वे प्रधानतः उनसे अपने विचारा का वपरीत्य ही दिखाने का प्रयत्न करते हैं।

### कलाओं का वर्गीकरण

प्रसादजी ने काव्य और कला तथा अथ निबंध का आरम्भ इस स्वीकृति के साथ किया है कि पाश्चात्य प्रभाव के कारण अद्यतन समीक्षका का दृष्टिकोण परिवर्तित दिखलाई पडता है। उनकी आलोचनाओं का क्षेत्र उस क्षेत्र से

१ थर्नाड वेनबग, 'अ हिस्ट्री आव लिटररी क्रिटिसिज्म इन द इटलियन रेनेसंस' (शिकागो, १९६१), खंड १, पृ० २७५।

२ उपरिखत, पृ० ३३६।

“कुछ भिन्न” है जिसमें प्राचीन भारतीय साहित्य के आलोचना की विचार धारा काम करती थी। उनके हृदय पर पाश्चात्य ‘विवेचन-शली का व्यापक प्रभुत्व त्रियात्मक रूप में दिखाई देने लगा है।’<sup>1</sup> हमारी विचार-धारा अव्यवस्थित हो उठी है। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारे कतिपय समीक्षक अपनी रचनाओं में प्रतिश्रिया के रूप में भारतीयता की भी दुहाई देते हैं। इस प्रकार उनमें मिश्रित विचारा का समावेश होता है और समालोचना “अव्यवस्था के दारुण” जा पड़ता है। प्रसादजी ने आधुनिक हिन्दी-समीक्षापर हीगेल के प्रभाव का एक दार्शनिक उदाहरण उपस्थित किया है। हीगेल से प्रभावित हमारे आलोचक सबप्रथम काव्य का वर्गीकरण ही प्रस्तुत नहीं करते, उन कला के अन्तगत भी मानने लगे हैं। हीगेल ने काव्य को कलाओं के अन्तगत रखा है उनका यह वर्गीकरण परंपरागत विवेचनात्मक जर्मन दार्शनिक शली का वह विकास है जो पश्चिम में ग्रीस की विचार धारा और उसके अनुकूल सौंदर्य-बोध के सतत अभ्यास में हुआ है।<sup>2</sup> प्रसादजी के अनुसार सस्कृति और सामूहिक चेतना में मौलिक सघन है और उन्होंने इरानी खलीफाओं के ही एकेश्वरवाद को स्पष्ट तथा मिथ्य तक फैला देखा है। इन खलीफाओं की सौन्दर्यानुभूति ने यूरोपीय सौंदर्य-बोध को प्रभावित किया। परन्तु यह कहना न्यायसंगत नहीं कि वर्तमान हिन्दी-कविता ने अचेतना में चेतनता आरापित करना अंगरेजी के कविता में सीखा है। हिन्दी-समीक्षका का सतक करते हुए प्रसादजी उनके इस पूर्वाग्रह की आलोचना करते हैं जिसके कारण वे भारतीय प्रकृतियों पर पाश्चात्य सस्कृति और चिंतन का प्रभूत प्रभाव देखते हैं। हमारे चिंतन ही समीक्षक जिनकी अधिकांश भावनाएँ विचारा की सकीणता और अपनी स्वरूप विस्मृति से उत्पन्न होती हैं अंगरेजी में ‘गॉड इज टू ब’ लिखा पाकर हिन्दी-साहित्य में पाये जानेवाले ईश्वर के प्रेम-रूप के वर्णन को अनुवाद या अनुकरण घोषित कर बैठते हैं। वे नहीं जानते कि जिस वे पाश्चात्य साहित्य की देन समझते हैं वह प्रसिद्ध बदान्ति ग्रन्थ ‘पगदागी’ के इन कथन पर आधारित है कि “अथमात्मा परानन्द परप्रेमास्पद यत । आनन्दवदन न हजारा वय पहले िया था—

भावानचेतनानपि चेतनवच्चेतनानचेतनवत्,  
 व्यवहारयति यथेष्ट सुकवि काये स्वतंत्रतया ।

१ ‘काव्य और कला तथा अन्य निबंध’, पृ० ३ ।

२ उपरिचत ।



पड़न वाले मनभेदा की भी चर्चा करना वाछनीय ममदा है। प्लेटो कविता को संगीत के अतगत रखकर उसका वर्णन करता है किंतु वर्तमान यूरोपीय विचार-धारा के अनुसार काव्य संगीत-कला की अपेक्षा श्रेष्ठतर है। प्लेटो के अनुसार कविता की आवश्यकता संगीत के लिए है और अरस्तू के अनुसार कला अनुकरण है। हीगेल धर्मशास्त्र को कला से ऊपर और दशन को धर्मशास्त्र से ऊपर रखता है। प्रसादजी ने भारतीय एवं पाश्चात्य विश्व-बोधो म मौलिक-वपरीत्य देगा है और इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि जहाँ पश्चिम में सौंदर्यानुभूति द्वारा मानव-स्वभाव के क्रम विकास और स्थूल म सूक्ष्मकी ओर प्रगति का वर्णन मिलता है वहीं भारत में अद्वैतारीश्वर की सदृष्ट कल्पना की गई है और उपनिषदा म मूक्त विश्व को ब्रह्म से इतर निकृष्ट स्थिति म नहीं रखा गया। पश्चिम म सौंदर्यशास्त्री मूक्त और अमूक्त में आध्यात्मिक भेद दग्नत हैं और काव्य का, मूक्त होने के कारण, आध्यात्मिक सीमा से अलग रखने की चेष्टा करत है। उनके विपरीत भारतीय विचार धारा ब्रह्म को मूक्त भी कहती है और अमूक्त भी और इम प्रकार नानात्मक होने के कारण मूक्त और अमूक्त का भेद हटात हुए बाह्य और आभ्यन्तर का एकीकरण करने का प्रयत्न करती है।<sup>१</sup> अतः भारतीय दृष्टिकोण से काव्य को मूक्त होने के कारण अध्यात्म से निम्न श्रेणी की वस्तु नहीं कह सकत। अपने मत की पुष्टि के लिए प्रसादजी ने "इमार्न् आलोचक हेवेल" की यह पक्ति उद्धृत की है कि "द हिंदू बाज नो डिस्क्रिबशन विटविन ह्याट इज सेक्विड एण्ड प्रोफेन।"<sup>२</sup>

स्पष्ट है कि प्रसादजी का उद्देश्य भारतीय समीक्षा को पाश्चात्य प्रभाव से मुक्त करना है, न कि स्वयं पाश्चात्य भाषा साहित्य और समीक्षा से प्रभावित होना। उनकी काव्य-परिभाषा, उनका रहस्यवाद उनका काव्यशास्त्रीय चिंतन स्वच्छदनावादी परंपरा के अनुकूल है परंतु उनका मौलिक दशन चिंतन भारतीय है और भारतीय परंपराओं में प्रभावित भी। यहां तक कि जो स्थूल पाश्चात्य विचार धारा में प्रभावित दीग्नत है वे भी सूक्ष्म परीक्षण और अध्ययन के अनंतर भारतीय तत्त्वा से ही सपोषित तथा अनुप्राणित प्रकट होते हैं। यदि प्रसादजी पर पश्चिम का प्रभाव देखना ही तो उनकी कृतिया में इतस्तत पायी जानेवाला मनोवैज्ञानिक स्थापनाया पर ही देखी जा सकती है अन्यत्र नहीं।

१ 'काव्य और कथा तथा अन्य निबंध', पृ० १५।

२ उपरिद्धत।



१६३६/३७) म निवत्ता । युग के अनुसार मिथक और कल्पित गाथाएँ आद्य-रूपा (आर्किटाइप्स) की ही अभिव्यक्ति हैं । उसने यह भी कहा कि पुराणा और इतिहासा भ वर्णिन हमारे पूवज ह्म इस प्रकार आकृष्ट करते हैं कि उनका हमारी "साइकी" (आत्मा) से सबद्ध होना निश्चित जान पडता है । हमारे सामूहिक अचेतन मे उनकी स्मृति अवश्य ही वर्तमान होनी है, जिसके फलस्वरूप वे हमारे मन मे अपने प्रति इतनी गहरी रुचि प्रोदीप्त करते हैं । गुबलजी न प्रकृति के प्रति हमारे आकषण का जो कारण बताया है वही मिथका के प्रति हमारे आकषण का कारण है । सम्भवत एक अत्यन्त अश्रुतपूव सयोग के फलस्वरूप प्रसादजी न युग के सिद्धाता की प्रतिध्वनित करते हुए कहा है "आज के मनुष्य के समीप तो उसकी वर्तमान सस्कृति का नमपूण इतिहास ही होता है, परन्तु उसके इतिहास की सीमा जहाँ स प्रारम्भ होती है उसी के पहिले सामूहिक चेतना की दह और गहरे रगा की रेखाआ स, बीती हुई और भी पहले की बातों का उल्लेख स्मृति ष्ट पर अमिट रहता है ।"<sup>१</sup> "काव्य और कला तथा अय निवध" मे उन्होंने बताया है कि 'सस्कृति का सामूहिक चेतना से, मानसिक शील और शिष्टाचारा से, मनोभावो से मौलिक सबध है ।"<sup>२</sup> आचार्य नन्ददुलारे चाजपेयी न प्रसादजी के काव्य सिद्धाता की मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए प्रसादजी द्वारा प्रयुक्त 'असाधारण अवस्था का स्पष्टीकरण इन शब्दो मे किया है "यह असाधारण अवस्था युगा की समष्टि अनुभूतियो भ जतनिहित रहती है, कयाकि सत्य अथवा श्रेय जान काई व्यक्तिगत सत्ता नही वह एक शावत चेतनता है ।"<sup>३</sup>

यह निर्विवाद है कि प्रसादजी ने अपने कलागत सिद्धात और अपनी काव्य-परिभाषा आधुनिक मनोवैज्ञानिक शब्दावली मे प्रस्तुत की है और जहाँ युग न "सामूहिक अचेतन" का—समष्टि अवचेतना का—उल्लेख किया है वहाँ प्रसादजी 'सामूहिक चेतनता' का प्रयोग करते हैं । परन्तु प्रश्न है कि क्या प्रसाद जा युग के सिद्धाता से परिचिन थे ? उपलभ्य सामग्री को सबनोभावेन परीक्षित कर चुकन के बाद कहना पडता है—सम्भवत नही । ह्म 'सामूहिक चेतनता' जैसे आमक शब्दा और पदावलिया से सावधान रहना हागा ।<sup>४</sup> साथ ही यह भी

१ 'काव्यप्रती', प० २ ।

२ का० क० अ० नि०, प० ४ ।

३ उपरिबत, प० ६ (प्राक्कथन) ।

४ यह प्रसाद जी का उपर्युक्त कथन विचारणीय है कि " .. अधिकतर आलो-



सास्य है कि प्रसादजी पाश्चात्य महावीरानि कियार-गर्भिया न अगाधिर अनगत य। और Ueber das Unbewusste वा प्रसाद Schweizer Arch Monatshefte für Schweizer Art und Arbeit न चौथ मं म १९१८ म ही हा चुन था। मुग टा Wandlung n und Symbole der Libido नामक पुस्तक १९१२ म ही प्रकाशित हा चुन थी और "वामायनी" न प्रकाश-व्यय म हा मुग का हाथ कियारियामाय न अयुव सम्मान दिया था।

## वाच्य-परिभाषा

प्रसादजी ने पाश्चात्य मतवादी का विरोध ही नहा प्रयुक्त भाग्याय लक्षणकारा की उत्पत्तिया और दान द्वारा उत्पन्न तस्या का मनधन भी दिया है। उन्होंने वाच्य का आत्मानुभूति की मौलिक अभिव्यक्ति कहा है और उगम हृदय-तत्त्व का अनुभव दता है। कला विद्या और बुद्धि न अग्रेग मय रचना है इसलिए इसका रखाएँ निरिचन गिद्धा ता पहुँचा दी है। कला इडा है जा मनुष्या का चेतना प्रदान करती है— 'इडा का बुद्धिवाक्य श्रद्धा और मनुष्य मीध व्यवधान बनान म सहायक होता है। वाच्य श्रद्धा है आत्मा की सात्यात्मक मौलिक अनुभूति है। इतना ही नहीं "वह एक श्रेयमयी प्रेम रचनात्मक नान-धारा है। बिन्दवणात्मक तरों मे और विकल्प न आरोप स मिलन नहान क कारण आत्मा की मनन क्रिया जो बाह्यमय रूप म अभिव्यक्त हाता है वह निस्सन्देह प्राणमयी और सत्य क उभय लक्षण प्रय और श्रेय दोनों स परिपूर्ण हाती है।"

वामायना के कवि का वह भारतीय दृष्टिकोण अधिक ग्राह्य है जिसका प्रतिपादन दण्डी, अमिनवगुप्त, मामह आदि न किया है। वाच्य और कला का वे भिन्न षण की वस्तु मानते हैं और कला का वाच्य वा अग टहरात है। प्रसादजी के मतानुसार वाच्य म भावना और अभिव्यजना का सामजस्य पाया जाता है और कला स कवल अभिव्यजना का अय चोतित होता है। स्वर्गुप्त म कवि मातृगुप्त ने कविता की जो परिभाषा उपस्थित की है उसम वस्तुन प्रसादजी की ही वाच्य परिभाषा ध्वनित है कवित्व—वणमय चित्र है जो स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करता है। अघवार का आलोक स, असन का सत् स, जड का चेतन स और बाह्य जगत् का अतजगत स सबध कौन कराती

चको के गीत का टुक यही रहा है कि हिंदी मे जो कुछ नवीन विकास हो रहा है, वह सब बाह्य वस्तु है।" (प० ७)

१ का० क० अ० नि०, प० १७।

४१० आधुनिक हिंदी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव

है? कविता ही न?"<sup>१</sup> यह एक छायावादी कवि की छायावादी रोमांटिक काव्य-परिभाषा है। इन तथ्य को ध्यान में रखकर ही इसका मूल्यांकन-परीक्षण करना चाहिए। अभिजातवादी लक्षणा या रीतिकारा द्वारा निर्मित परिभाषाओं के समर्थक जोर इनमें ही पगे-सने समीक्षक इस परिभाषा से सहमत न होंगे। डॉ० भर्गोरथ मिश्र न कहा है कि प्रसादजी की 'परिभाषा स्वभावतः न होकर केवल व्यक्तिगत दृष्टिकोण ही स्पष्ट करती है।"<sup>२</sup> सच पूछा जाय तो यह प्रसादजी की समीक्षाका ही नही, प्रत्युत सभी स्वच्छन्दवादी समीक्षकों द्वारा प्रस्तुत आलोचनाका ही दोष है और, समीक्षक पूछना चाहेंगा—क्या ऐसी भी काव्य-परिभाषाएँ होती हैं जो किसी न किसी रूप में व्यक्तिगत दृष्टिकोण व्यक्त नहीं करती? इतना तो निर्विवाद मान लेना चाहिए कि प्रसादजी की परिभाषा भारतीय आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ही सर्वाधिक प्रभावित है न कि अंगरेज रोमांटिक कवियों से। अतः डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त की यह उपपत्ति हम मान्य होगी कि "किन्हीं भी दो कवियों की धारणाका सममानता का होना असम्भाव्य नहीं है किन्तु हम सहमत नहीं हैं कि 'प्रसादजी की प्रेरणा के स्रोत अनेक और बालरिज नहीं हैं—उन्होंने भारतीय दर्शन-ग्रन्थों के आधार पर ही अपने लक्षण का निर्माण किया है।"<sup>३</sup>

### निराला (१८९६-१९६१)

निरालाजी की भाषा-शैली और उनका काव्यशास्त्रीय चिंतन जितना प्राचीन पौरुष परंपराका ही बद्धमूल है उतना पाश्चात्य परंपराका ही नहीं। उन पर सर्वाधिक प्रभाव बंगला और संस्कृत के रचनात्मक साहित्य तथा उसके अध्ययन से उत्पन्न उन मानदंडों का है जिनके प्रकाश में वे अद्यतन साहित्य को आकलित करने और नव्य सिद्धांतों के निर्धारण एवं निश्चय का प्रयास करते हैं। यदि उनकी काव्यविषयक धारणाका ही प्रतिपत्तियाँ पाश्चात्य सत्त्वा का अन्तर्भाव दीखता है तो इसका कारण मूलतः सर्वाधिकृत है, पाश्चात्य प्रभाव नहीं।

निराला पर लिखी गई समीक्षाओं और उन्हें अर्पित श्रद्धांजलियों में उनके व्यक्तित्व की तुलना जहाँ भारतीय मनापिया के व्यक्तित्व में की जाती है वहीं

१ 'स्व-दगुप्त', प्रथम अंक, पृ० २१।

२ 'हिंदी-काव्य शास्त्र का इतिहास', पृ० ३६९।

३ 'आधुनिक हिंदी-कवियों के काव्य सिद्धांत' (दिल्ली, १९६०), पृ० ३४९।

उह कुछ चुने हुए पाश्चात्य महापुरुषों के भी समकक्ष रखा जाता है। उनका भव्य और दासनिक् मुद्रा, पृथु वनस्यल तथा बलिष्ठ शरीर स उनके 'यूनाना दार्शनिक होने का भ्रम' हाता था। अमेरिका की एक पत्रकार महिला ने उह 'अपोलो का पुत्र' और दूसरी ने साधान् 'सीजर का अवतार' कहा है। मगा प्रसाद पाडेय ने उनका रणाक्षिप प्रस्तुत करत हुए कहा है "जान पडता था कि किसी रोमन मूर्ति के सामन सडा हूँ।" "नरपुंगव इस निराला को आगस्टस क एग्रिप्पा और सम्राट ब्राजनस, मिनट गिसरो (sic), सड्राट गला के आकार का बतया गया है। बस्टूटाक के मिस्टर के समान भी कह गए हैं। उन्हें नीरस, ह्यूगो गोर्की और लारेस के समकक्ष भी रखा गया है।" परंतु य भावोद्गार निरालाजी की समीक्षा में सबध नहीं रगत और न इनस इस बात का प्रमाण ही मिलता है कि निरालाजी के प्रगीत पाश्चात्य स्वच्छदतावाद स, अथवा किसी अन्य पाश्चात्य सम्प्रदाय में प्रभावित हैं।

कविया द्वारा उदभावित समीक्षा उनके काव्य से अभिन्नतमा सबद्ध होती है। उस काव्य का स्तवन ही उनकी समीक्षात्मक श्रुतिया का उद्देश्य होता है जो उह अधिकाधिक प्रिय है जो उनका आदग है। उनकी कवि प्रतिभा स उच्छ्वनित काव्य ही उनकी समीक्षा में प्राय समर्थित होता है और वे अपनी ही गली क प्रस्तोता होते हैं न कि अन्य साहित्यकारों की उपलक्षियों के निर्णायक।<sup>३</sup> निराला जी द्वारा सष्ट प्रमीता और उनके समीक्षात्मक निबधों में भी अन्यायाश्रय सबध देखा जाता है। कहा जाता है कि 'निराला के गीत किसी सीमा तक प्राचीन परंपरा के अधिक समीप हैं प्राचीन रस की भूमिका पर लिखे गए हैं और राग

१ महाप्राण निराला, प० १५४। दे० प्रो० धनञ्जय वर्मा, 'निराला काव्य और 'यकित्तव' (दिल्ली, १९६५), प० ५६।

२ उपरिबत।

३ ' the poet is always trying to defend the kind of poetry he is writing or to formulate the kind he wants to write Especially when he is young and actively engaged in battling for the kind of poetry which he practises, he sees the poetry of the past in relation to his own and his gratitude to those dead poets from whom he has learned may be exaggerated He is not so much a judge as an advocate T S Eliot On Poetry and Poets p 26

रागिणियों में बँधे हुए हैं।<sup>१</sup> उनका मानवनावाद भारतीय विश्ववाद से ही अनुस्यूत है और उनका “साहित्य विगुद्ध स्वदगी भूमि पर अवस्थित है”।<sup>२</sup> निरालाजी का कवि “प्राचीन सस्कृति का भवन और गुण-नायक है, जातिगत परंपरा प्राप्त सस्कारों का उसे अभिमान है, वह विदेशों के अघ-अनुकरण की धार निन्दा करता आया है।”<sup>३</sup> उनकी रचनाओं के अनुशीलन से इस बात में सन्देह नहीं रह जाता कि उसके काव्य का मरुदण्ड पश्चात्त्य स्वच्छन्दतावाद न होकर भारतीय बदान्त और ‘नव श्रैतवादी दार्शनिकता’ है।

### निरालाजी का अँगरेजी साहित्य ज्ञान

निरालाजी की समीक्षात्मक कृतियाँ भी भारतीय परंपराओं से ही सर्वाधिक प्रभावित हैं। परन्तु जसा डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने कहा है और जो सबथा तथ्यानुमोदित है निराला सकीणतावादी न थे। उनके कवि और समीक्षक में “उदारता और व्यापकता निजत्व की पूरी रक्षा के साथ समाहित थे और वे विभिन्न विश्व-साहित्या में पाये जानवाले भावाँ के आदान प्रदान का समर्थन करने थे। इतना ही नहीं, निराला जो अँगरेजी साहित्य के मूल्यांकन कविता के कृत्विक्त्व से भी न्यूनाधिक परिचित थे और आवास में हिन्दी में बोलकर अँगरेजी बोलने लगते थे।<sup>४</sup> डॉ० रामविलास शर्मा के साक्ष्यानुसार

करीब दस साल से लगातार इस बात की धमकी देने पर कि वह अँगरेजी में लिखना शुरू कर देंगे, हिन्दी भाषियाँ के सौभाग्य में उनकी

१ नददुलारे बाजपेयी ‘कवि निराला’ (वाराणसी, १९६५), पृ० ६५।

२ डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, निराला का साहित्य और साधना (आगरा, १९६५), पृ० ६६।

३ उपरिखत।

४ डा० रामविलास शर्मा, ‘निराला’ (आगरा, १९६२), पृ० २०। ध्यातव्य “निराला की भारतीय ऐतिहासिक पुरुषों पर, अतीत प्रेम पर लिखी कविताएँ प्रमाण हैं कि कवि को देश की सध्या, उपा, नद, निगर, बन लतादि से प्रेम है, देशीय विचारदशान उसके जीवन का अभिन्न अंग रहा है, उनकी प्रेरणा के स्रोत, विवेकानंद, गकर, तुलसीदास, उपनिषद तथा रवीन्द्र हैं, यद्यपि उन्होंने योरपीय साहित्य को भी पढ़ा है, परन्तु उनके प्रयोग का अविच्छन्न अनुवाद प्रस्तुत न कर उन्होंने मौलिकता की सदा रक्षा की है।” वि० ना० उ०, “निराला का साहित्य और साधना”, पृ० ६७।

वह धमकी अभी तब अमल म नहीं आयी।<sup>१</sup>

निरालाजीके अँगरेजी भाषा-साहित्य ज्ञान का यतिरिचिन् परिषय इसी समीपक की इन पवित्रता से मिलता है —

पठन का तरीका भी उनका (निरालाजी का) अपना है। एत पन्नापढेंगे ता इसके हागिए अय सरग डांन्गे। वर्ना गों र "मेट्रिंग मरिड और गेगी के "अलाम्टर ना प्रत्येक पच्छ 'रग गई पग-या घाय घरा का उदाहरण बना हुआ है। महिया के हाईम्प म प्राप्त विद्य हूए अँगरेजी याकरण के अनुपम ज्ञान का उपयोग वह हर अँगरेजी क अध्यापक पर करत हैं। नेकमपियर की मॉनटा का लकर वह गाफिल खिलाडी को पलक भारत चित्त कर दत हैं।<sup>२</sup>

जपने प्रशात क्षणो म भी कभी-कभी निरालाजी अँगरेजी मिश्रित वाक्य लिखन लगते थे

"उस समय जब पल्लव प्रेस की गेलिया की सघन प्रत्य डालियों के भीतर Projection of Nature का problem solve कर रहा था पतजी के पत्र से अनगल अत्याचारो की कल्पना मैंने कर ली थी।<sup>३</sup>

अतिम कती अग उसके कुछ बढने के पश्चात उसे पकडकर रोव लेता है जिसस Additional (सयुक्त) 'सत्वर' भी उसे उसके स्थान से हिला नहीं सकता।"<sup>४</sup>

"स्वभाव म Female graces की प्रधानता के कारण पतजी कवित्त छंद की मौलिकता आदि समझ नहीं सके।"<sup>५</sup>

"स्वच्छंद छंद मे art of music नहीं मिल सकता, वहाँ है art of reading"<sup>६</sup>

आचार्य देवदत्तनाथ शर्मा ने 'छायावाद पर बाह्य प्रभाव' शीर्षक निबन्ध मे रोमांटिसिज्म की निम्नलिखित विशेषताओ को ध्यातव्य कहा है—(१)

१ रा० वि० ग०, 'निराला', पृ० २० ।

२ उपरिखत ।

३ 'पत और पल्लव' (१९४८), प० ५ ।

४ उपरिखत, प० १८ ।

५ पत और पल्लव, प० ३७ ।

६ उपरिखत प० ४२ ।

विस्मय-मिश्रित कौतूहल, (२) सौंदर्य प्रेम यहाँ "सौंदर्य" का प्रयोग सीमित अर्थ में नहीं बल्कि व्यापक अर्थ में समझना चाहिए, (३) सूक्ष्म रहस्यात्मक अनुभूति और (४) जीवन की सरलता के प्रति सहज-स्वाभाविक दृष्टिकोण।<sup>१</sup> छायावाद में गमाजी के अनुसार, इन सभी विशेषताओं का समाहार मिश्रण है। निराला की 'प्रपात के प्रति', 'तरंगों के प्रति', 'खेबा' और 'अजलि' जमी अनेकानेक कविताओं में रोमांटिसिज्म का स्निग्ध अन्तःप्रवाह देखने को मिलता है। परन्तु उनकी आलाचना पर पाश्चात्य प्रभाव आरोपित करने के पहले अपेक्षाकृत अधिक मतबना की अपेक्षा होती है। निरालाजी रवीन्द्रनाथ से प्रभावित थे और रवीन्द्रनाथ पाश्चात्य रोमांटिक भावधारा से। कोई महाकवि किसी अन्य कवि के सामने नतशिर इस कारण भी होता है कि उसकी काव्यवृत्त उसका मनानुकूल ही नहीं, उसकी काव्य-सज्जना और गली को भी प्रभावित करती रही है। बह प्रगसा का जो उत्काच देता है उसके मूल में स्वाथ की इष्ट भावना होती है। 'रवीन्द्र-कविता-ज्ञानन' का कवि समीपक उस रवीन्द्र से प्रभावित है जो रोमांटिक काव्यधारा का अनन्य प्रस्तोता है। इसके अतिरिक्त, छायावाद के कवियों में परस्पर विभिन्न के होते हुए भी उनमें सम्प्रदायगत सादर्य पाया जाता है। इसी कारण निरालाजी की समीक्षात्मक धारणाओं के ऊपर रोमांटिक भावधारा का प्रभाव दीख पड़ता है।

### ‘पत और पल्लव’

जिस प्रकार निरालाजी की परवर्ती कविताओं में ध्वनित शालीनता से अध्येता को बरबस पाउडर का "पीसान कण्टाज" की कतिपय कविताओं का स्मरण हो आता है और जिस प्रकार निरालाजी की कविताएँ हॉर्जिस, पॉल एल्यूअड रोम्बो, अपीलिनयर और काविट्ट की रचनाओं की याद दिलाती हैं, उसी प्रकार उनकी समीक्षाओं से उनीसवीं शती के स्वच्छन्दतावादी, अंगरेज आलाचकों के काव्य-सिद्धान्त का आभास मिलता है। यहाँ तक कि उनकी समीक्षागत भाषा गैली भी कभी-कभी रोमांटिक सुष्ठुता और धुंध-गपन लिये हुए होती है और गैली पेटर तथा आस्कर वाइल्ड सरीचे साहित्यकारों की गंध गली के सन्ध जान पड़ती है। कविता में उन्होंने जिस मुक्त (स्वच्छन्द) छंद का प्रवर्तन किया है वह अंगरेजों के प्री वम के अनुकरण पर निर्मित माना गया है। परन्तु निरालाजी

१ प्रो० देवेन्द्रनाथ गर्मा, 'छायावाद और प्रगतिवाद' (पटना, स० २००७), पृ० ६९।

इसे स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार 'स्पष्ट छ' मर प्रधान नहीं व्यजन प्रधान है। वह कविता की स्त्री मुकुमारना गहा, कवित्त का पुरुष-गव है। उसका सौंदर्य माने म नहा, बार्तागण करन म है। उत्तरी सट्टि कवित्त-छ' म हुई है, जिसे पतजी विदेगी कहते हैं, जो उत्तरी समय म नहा आया।"<sup>१</sup>

पत और पल्लव' का ऐक्य छायावाद का मरुण्ड नहा है पतजी के दापा के सम्बन्ध उद्घाटन म रत वह अपने छायावादी आदर्शों स ध्युन हा जाता है और ब्रजभाषा की प्रगसा करत हुए कहता है

जिनके सस्कार बहुत कुछ अँगरेजी-कविता क सौच म दृ- जात हैं उ-ह ब्रजभाषा की कविता पसद नहा आती, यह बहुत ठीक है। परतु यह भी बहुत ठीक है कि पतजी न ब्रजभाषा पर अपनी उदासीनता के कारण जो कटाक्ष किया है वह कुछ ही अग म सत्य है।

आजकल के शिक्षित लोग यह समझत हैं कि वे पहले स इन समय ज्ञान की ऊँची भूमि पर विवरण (sic) कर रह हैं। पहले तो यह जान ही मेट देना है। इसके पश्चात् गौरागा की उज्ज्वल अँगरेजी, गौरागा का मुस्त्व और कृष्णागा पर गौरागा का भाष्य और उस भाष्य पर कृष्णाग बालका का विश्वास।<sup>२</sup>

इसी प्रकार छायावादो रोमांटिक काव्य का यह अमर स्रष्टा पतजी का विरोध करता हुआ अँगरेजी शब्दों क तत्सम रूपा की ओर उनके अधिन भुवाव को निश्च ठहराता है और कहता है कि 'पतजी का यह प्रयत्न ऐसा है जस भारतवर्ष की आबोहवा को अँगरेजी दवाआ के अनुकूल करना।' तत्पश्चात् वह अँगरेजी के "टच" (touch) की अपेक्षा "स्पर्श को अधिक सुंदर और मधुर घोषित करता है। "touch के छूने की क्रिया पर विचार कीजिए, 'मे जीभ मूर्द्धा-स्पर्श करती है। फर अच' (ouch) से स्वर वायु भीतर स निकलकर जैसे बाहर की किसी वस्तु को छू जाती हो, इस तरह touch से, स्पर्श की क्रिया उच्चारण द्वारा होती है। 'स्पर्श' मे जो छूने की क्रिया है, वह 'touch से और सुंदर और मधुर है।'<sup>३</sup>

१ 'पत और पल्लव', पृ० ४२।

२ उपरिचत पृ० ५६।

३ उपरिचत, पृ० ६९।

४ पत और पल्लव, पृ० ६९-७०।

## रोमांटिक समीक्षा

समग्रतः, निरालाजी का काव्य विषयक चिंतन रोमांटिक है और उसमें उनका व्यक्तित्व उतना ही प्रतिफलित है जितना उनका काव्य में। रोमांटिक आलोचक कवि के लिए प्रतिभा की अनिवार्यता धारित करता है निरालाजी भी प्रतिभा पर बल देते हैं 'जा कवि है, उह जब अपनी प्रतिभा का जान हो जाता है तब वे, दूसरा की तरह निर्वाक रहकर थोड़े ही शब्दा में अपनी प्रतिभा का परिचय नहीं दते।'<sup>1</sup> रोमांटिक कवि-आलोचक काव्य को आत्माभिव्यक्ति और हृद्गत भावना का सहज उच्छ्वसन एवं स्थायन मानता है। निरालाजी कविया द्वारा प्रस्तुत आत्म-परिचय को उतना ही स्वाभाविक उदगार कहते हैं जितना कविया द्वारा किया गया प्रकृति-वर्णन स्वाभाविक होता है। रोमांटिक आलोचना पूर्व निर्धारित मानदंडों से काव्यकृति का समीक्षण नहीं करती प्रत्युत कवि के मनोभावा का, रोमांटिक भाषा शैली में, विस्तारण करती हुई गद्य-काव्य रचती है, निरालाजी की समीक्षा यही करता है 'कवि-हृदय का यह प्रथम प्रभात है। बाहर की जिस किरण को पाकर कवि नये क्षणों की कित्तियाँ कहीं हैं, वह किरण बाहरी सत्ता के भगवान् भुवन भास्वर की किरण नहीं, वह वनदेवी की ही प्रतिभा की किरण है—उसी की कनक-रत्ना कवि के हृदय पट पर खिंच गई है।'<sup>2</sup>

यहाँ समीक्षक की शैली उस त्रिकालीन कथाकार (omniscient narrator) की शैली है, जो अपने पात्रों के अन्तःकरण में तरंगित सूक्ष्माति-सूक्ष्म भावों और आवेगों को भी प्रकट करने में समर्थ होता है— जिस दिन हृदय में एकाएक इस कनक किरण का प्रवेश हुआ कवि चौक पड़ा। अपने महान स्वरूप का देखकर वह मुग्ध हो गया।<sup>3</sup> "रवीन्द्र-कविता-कानन" का कवि-समीक्षक पेंटर, कार्लोस, सण्टुमबरी और ह्यू-वाकर की शैली में सतक समीक्षा नहीं, स्निग्ध सज्जना करता है और आलोचना में लिखकर गद्य-काव्य की सृष्टि करता है। ये सभी पश्चात्य लेखक समालोचक में आलाप्य कृति के प्रति प्रबल आत्सुक्य (enthusiasm) का उद्रेक वाटिन समझते हैं। निरालाजी की भावयित्री प्रतिभा कार्लोस की दैनिक प्रतिभा के समकक्ष है और 'रवीन्द्र-कविता-कानन' के भावाङ्गण पेंटर तथा स्विनबन की प्रभावाभिव्यक्ति समीक्षाओं की याद दिगंत है।

१ रवीन्द्र-कविता-कानन (कलकत्ता, स० १९८५), पृ० ४९।

२ उपरिचय, प० ५१।

३ उपरिचय।



थोड़े हम निरालाजी द्वारा निष्कर्षित प्रभाव-सबधी तथ्या का सम्यक् परोपण करें तो यह मात्र लेने को बाध्य होना पड़ेगा कि वे उन देशों की सम्मता-संस्कृति को वदातिक भावा से अनुप्राणित मानते हैं जिनसे अंगरेज प्रभावित हुए हैं। अनरहस्यवाद और छायावाद पश्चिम से प्रभावित होकर भी मूलतः भारतीय परंपराओं में ही अन्तःप्रतिष्ठित हैं। प्रभावा का सभ्रमण चक्र श्रम में हुआ है। भारत ही वदातिक भावा का उदगम-स्थान है। यहाँ से बलान्तिक भाव धारा मिश्र, अरब, फारस, ग्रीस और रोम पहुँची और 'सुकृत या विवृत रूप में उनके साहित्य में ठहर' गई।<sup>१</sup> इन देशों के साहित्य ने अंगरेजी साहित्य को प्रभावित किया है जिससे होकर प्रभाव—वदातिक चिंतन—पुनः उस भूमि को लौट आया है जहाँ उनका आविर्भाव हुआ था।

चूँकि निरालाजी छायावाद के मूढय बलाकार हैं उनके अनकश काय-सिद्धांत इस सम्प्रदाय के अथ साहित्यकारों द्वारा भी प्रतिपादित हुए हैं। प्राच्य एवं पाश्चात्य रामाटिक विचार धारा के अनुसार कवि एक अत्यंत कोमल प्राणी होता है, जो दूसरों के साथ सहानुभूति करत-वृत्ते इतना कोमल हो जाता है कि किसी भी चित्र की छाप उसके हृदय में ज्या की-तथा पड जाती है। इसके लिए उस कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता।<sup>२</sup> वड स्वयं 'गेली और कीटम की कितनी की पक्तियाँ इस कथन का सशक्त समर्थन करती हैं। उदाहरणार्थ—'लिरिकल वेल्डम' के द्वितीय संस्करण की भूमिका में वड स्वयं न भी कवि को एक सुकोमल तथा अत्यंत सवेदनशील प्राणी कहा है 'अमन एनडाउड विथ मोर लाइभला ससिबिलिटी, मोर इनथुजिएजम एण्ड टेण्डनेस ईन ग्रार सपोज्ड टु वि कॉमन अमग मनकाइण्ड'।<sup>३</sup> इसी सदभ में निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुतयोग्य हैं

(१) कविता भावात्मक शब्दों की ध्वनि है।"

२० व० का०, प० १८५-१८६

Poetry is emotion put into measure

Thomas Hardy

१ सप्रह (प्रयाग, १९६३), प० १३२।

२ रवीन्द्र-कविता-कानन, पृ० ७८।

३ गेली के भी अपने "५ दिप्लेस आर पोयट्री" में कहा है कि कवि रुढ़ ही भावप्रवण और सुकोमल होता है "ही इज मोर डलिकेटली आर्गनाइज्ड दन अदर मैन" इत्यादि।

- (२) 'बहुत न विद्वाना की राय है कि कविता का मौल्य यह है कि शब्द थोड़े हों और भाव अधिक और गहन। परन्तु कविता के मौल्य की व्याख्या के लिए एकमात्र उस कथन को ही मूल्य मान लेना वैसी ही भूल होगी जमी माकार और निरावार व झगड़े में अवसर हुआ करती है। यह कोई बात नहीं कि मौल्य बिन्दु में ही हुआ करता है।'

२० व० का० पृ० ११६

Undue brevity degenerate into mere epigrammatism A very short poem while now and then producing a brilliant or vivid never produces a profound or enduring effect There must be the steady pressing down of the stamp upon the wax'

Poe *The Poetic Principle*

- (३) "जा कवि और महाकवि होते हैं व प्रकृति के हृत् एक कमर में प्रवेश करने का जन्मिद्ध अधिकार लेकर आते हैं। वे प्रकृति की प्रत्यक्ष भूमि पर—जनाना महत् में भी—वे घटक चले जा सकते हैं।"

२० व० का० पृ० १३६

Painters and Poets you say have always had an equal licence for bold invention We know this we claim the liberty for ourselves and we give it to others'

Horace *Ars Poetica*, 9

- (४) 'कवियों के हृदय निगत कविता रूपी उदगार में इतनी शक्ति होती है कि उसका प्रवाह जनता को अपनी गति की ओर खींच लेता है।

माधुरी अगस्त १२२३, प० ४६

१ 'Pictoribus atque poetis/Quidlibet audenti semper fuit aequa potestas /Scimus et hanc veniam petimusque damusque vicissim

'It compels us to feel that which we perceive and imagine that which we know It creates anew the universe after it has been annihilated in our minds by the recurrence of impressions blunted by reiteration It justifies the bold and true word of Tasso *Non merita nome di creatore se non Iddio ed il Poeta*

Shelley *A Defence of Poetry*

(५) 'उपदेश को मैं कवि की कमजारी मानता हूँ।'

प्रबन्ध प्रतिमा', पृ० २८४

We hate poetry that has palpable design upon us

Keats (Letter to John Hamilton Reynolds 3 Feb 1818)

(६) 'जड़ और चेतन, सबकी प्रकृति कवि का अपना स्वरूप दिखा देती है। वे दपण हैं और प्रकृति का प्रत्यक्ष विषय उनपर पड़नवाला सच्चा बिम्ब।'

२० व० का० प० १३६

Poetry is the image of man and nature

Wordsworth *Pref L B*

(७) 'जिस समय स देश पराधीनता के पिंडों में वन विहंगम का तरह बंद कर दिया गया है उस समय से लेकर आज तक की उसकी अवस्था का दर्शन उससे सहानुभूति, उसकी अवस्था का प्रकटीकरण आदि उसके सबंध व जितने काम हैं इनकी सीमा कवि-जगत् की परिधि के भीतर ही समझी जाती है। क्याकि प्रकृति का यथाय अध्ययन करनेवाला कवि ही यदि देश का देश का अध्ययन न करता तो फिर करता कान ?—एकलू बजाज और मकू मरना ?

२० व० का० पृ० ७८-७९

we live among such philosophers and poets as surpass beyond comparison any who have appeared since the last national struggle for civil and religious liberty The most unfailling

herald companion and follower of awakening of a great people to work a beneficial change in opinion or institution is poetry'

- Shelley *A Defence of Poetry*

- (८) 'साहित्यकार सत्कार की अच्छी चाखा का समावेश अपने साहित्य में करते हैं और उनके प्राणा के रंग में रंगीन हाकर वे चीजें साधारणता को भी रंग देती हैं।'

गीतिका भूमिका प० ५

Poetry is the high-wrought enthusiasm of fancy and feeling. As in describing natural objects it impregnates sensible impressions with the forms of fancy so it describes the feelings of pleasure or pain by blending them with the strongest movements of passion and the most striking forms of nature.

Hazlitt *On Poetry in General*

'यातथ्य है कि निरालाजी के उपयुक्त कथन पाश्चात्य कवियों और आलोचना की भावनाओं के अनुरूप हाकर भी अपना विशिष्ट महत्त्व रखत हैं। उनमें अधिकांश समर्पितन पर जाघन दीखते हैं और कहीं अंगरेजी समीक्षा ने अपहृत हान का धोतन नहीं करते। वस्तुतः हमारी यह निश्चित धारणा है कि निरालाजी के साहित्यिक मित्रातो एव पाश्चात्य भावनाओं में जो साम्य दीखता है वह नितान्त तलोपरिक (superficial) है। निरालाजी 'एक तटस्थ वस्तुमुची बलादृष्टि रखनेवाले कवि हैं। प्रसाद और पत की अपेक्षा उनमें व्यक्तित्व भाव-आरोप की विरता है।'

### हिटमन और लॉरेस का प्रभाव

निरालाजी का स्वच्छन्तावादी भावधारा का अध्ययन विद्वान्पण यही समाप्त नहीं हो जाता। उसे अन्यान्य अन्तःप्रवाहा का भी बल प्राप्त हुआ है जिसके फ-स्वरूप वह अत्यंत गभीर समीक्षा के स्तर पर ऊर्ध्वगामिनी हो सकी है। निरालाजी

१ डा० बलभद्र तिवारी, 'आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका (वाराणसी, १९६२), प० ३९०।

के वांस्वी पांडित्य म मित्र जो अरुणाव गण्ड एकादृश एव है उम कुत वा उम हितमा तथा लोरेत की कविता म भी पाग गता है। म शाना कवि-आलोचन मूला स्वभावात्तरी ओर दिग्गता की गण्ट ही नविग के पुन-गप्ये" क प्रस्ताता है। हितमन न एण्ड ओर पाग की मूनिता म मरत वाव्य वायैगा ही रावन विपा है जगा परिम- म दिग्गतारी । दिग्गतारी की समीभात्मत रचनाआ म भमिताआ म धातन लेगे मून मि- है जिनम जाई सण्टयाता क द एन्मिन्म एण्टनगत ओं व पायट्टा (पोपट्टी एण्ट रीलिजन १३००) वापक निवध क भावा का भी प्रतिष्ठाि मुी जा गनी है। यन्वि निरालाजी मग्गता क एन मर म मरत गता हाति यि भाता म पूणता एनी हा ता दगर तत्ता का मर्गनिवध करता हागा ओर दग एव म्पाट्टि दना हागी । विर भा व है जन्मि तथा मण्टयाता क एवर म ही यन महते हुए जान पडत है वि मारि-चता क प्राणा क रग म रगीता हातर हा यनिन विषय साधारण पाठना वा भा रग दन है। रगा का वात मग्गता म वनमान है—“वा डाद (रगत है) द वल्ल जयि थावन आन वल्ल (रग)

हितमन न कहा है— ‘द आन्ट रड एण्ट एण्ट एटाउग जन्मिन्टा ओं व दट पायटम विल वि प्रुव्ड वाद दवर अरान्ट्टुण्ट’ । तग्गता उटान उस म्यनिन की प्रशाता की है जो उस रडि ओर गतानुगतिर विश्वाग वा विराध करता है जो उसकी स्वतप्रता क गनु है ‘ओं व द ट्टुग ओं व द वल्लुड ओं व राटम सवण्टस म्पूजिगियम इवेटर्स एण्ट आटिस्टम नधिग एज पाइनर दन साददण्ट डिफायस ऐडवांसिग फ्राम न्यू फ्री फोर्स । ‘हितमन पो इमसन मेलविल आदि निरालाजी की तरह ही नतिर साहित्य क प्रणयन के समयक हैं। निरालाजी ने छायावाद के विरोधिया तथा ब्रजभाषा-वाव्य के पण-पोपका के सवध म कहा है

१ ‘ if language therefore is to be made perfect its materials must be made beautiful by being themselves subjected to a measure and endowed with a form —George Santayana The Elements and Function of Poetry Vide Albert D Van Nostrand *Literary Criticism in America* (New York 1957) p 189

२ उपरिवत, पृ० १९६ ।

३ उपरिवत, पृ० १२४ ।

४ उपरिवत ।

४२२ आधुनिक हिंदी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव

“वे तो सिर्फ मनोरञ्जन के लिए काव्य-माधना करते हैं, किसी उत्तरदायित्व को लेकर नहीं उनकी भावा म दूर तक फली हुई निगाह नहीं है। कौन स भाव सम्बन्धीन और कौन स एकदेशीय हैं उठ पता नहीं।”<sup>१</sup> स्पष्ट है कि निरालाजी का कवि मानववादी है। लाकहित के महोद्देश्य में संप्रेरित होकर जो काव्य प्रणयन होगा, वह उमी का समर्थन करता है। साथ ही उसमें मुक्ति की—अपनी और स्वदेश की भी—उद्दाम रात्मा है। ‘जहाँ मुक्ति रहती है, वहाँ वधन नहीं रहन—न मनुष्या म, न कविता म। मुक्ति का अर्थ ही है वधना से छुटकारा पाना।’<sup>२</sup> जमा लॉरेस ने कहा है द्विदमन का भी मूल सद्ग निवध प्रशस्त माग का सद्ग था—‘द्विदमन्स एसेगल मेसेज बाज द ओपन रोड।’<sup>३</sup> निरालाजी ने परिमल” म मुक्त, स्वच्छद छद के सबध म जसी वाग्मिता का प्रदान किया है, वसी भाषण-पटुता लॉरेन्स के “इप्ट्रोडक्शन टु न्यू पोयटम” नामक निवध म भी मिलती है। निरालाजी ने कहा है यदि किसी प्रकार का शृङ्खलापद्ध नियम कविता में मिलता गया, ता वह कविता उन शृङ्खला स जकड़ी हुई ही होती है, अतएव उसे हम मुक्ति के लक्षणा में नहा ता मुक्त न उन काव्य को मुक्त काव्य कह सकत हैं।”<sup>४</sup> इन पक्तिया की तुना लॉरेस की उपर्युक्त भूमिका की इन पक्तियों से की जा सकती है

मुक्त छद के सबध म काफी लिवा जा चुना है। किन्तु, मुक्त छद के सबध म केव—इतना ही कहा जा सकता है कि यह तात्कालिक, सपूर्ण व्यक्ति स निस्तत अभिव्यक्ति है अथवा (इस ऐसी ही अभिव्यक्ति) हानी चाहिए। इसमें कवि की आत्मा, मन और शरीर एक साथ ही तरंगित हो उठत हैं कुछ शेष नहीं रह जाता। य सब एक साथ ही मुखरित हो उठन है। कुछ अस्तव्यस्तता एव असंगति की उत्पत्ति हानी है। मुक्त छद के लिए कल्पित, मनमाने नियम क जाविष्कार से कोई लाभ नहीं और न ऐसी सुरवर रेखा खीचने से

१ ‘चादुक’, प० ४६।

२ ‘परिमल’, प० २१ (दे० डा० नगेंद्र, ‘भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा’, प० ४५७)

३ डी० एच० लॉरेस, ‘सेलेक्टेड लिटररी क्रिटिनिज्म’ (लंदन, १९६१), प० ४०४।

४ डा० नगेंद्र, उल्ल० प० १।



कवि कहलानेवाला के प्रति उनकी अपार घणा सूचित करती है। ऐसे दुर्वासा नमालोचक कभी भी किसी कृति शकुतला का कुछ बिगाड नहीं सके, अपने आप से उसे जार चमका दिया है।<sup>१</sup> निरालाजी के समीक्षात्मक निबन्धा में यह स्पष्ट है कि यह साहित्यिक आदान प्रदान में जट्टू बिश्वास था। वे जानते थे कि पश्चिम में भी ऐसी कितनी ही वस्तुएँ उपलब्ध हैं जिनमें हमारा महत कल्याण हो सकता है और जिनसे हमारा अस्तित्व का रक्षा हो सकती है। भारतीयता के नाम पर कट्टरता तथा भीमत् भावा और कार्यों का प्रचार उन्हें पसन्द न था। उन्हें विश्वास था कि जिस प्रकार पश्चिम के लिए भारतीय भावा की गहनता त्याग, सतीत्व की शिक्षा आवश्यक है उसी प्रकार वहाँ के प्रेम की स्वच्छता, तरलता, उच्च-वर्णित वगैरे हमारे लिए वाञ्छित हैं।<sup>२</sup> इस समय वहाँ वाला का खूनी प्रेम भी शक्ति-संचार के लिए यहाँ आवश्यक हो गया है।<sup>३</sup> इसी प्रकार निरालाजी ने व्यापकता को जीवन का प्रदाता और अस्तित्व के लिए अनिवार्य घोषित किया है। साहित्य अन्तर्गत भावा और चित्रों को पाकर ही जीवित रह सकता है, इसलिए 'हमारे काव्य-साहित्य की दृष्टि बहुत व्यापक होनी चाहिए। तभी उसका कल्याण हो सकता है।'<sup>४</sup>

अपने निष्कर्षों का मुश्किल प्रामाणिकता प्रदान करने के लिए निरालाजी प्रभाव की समझ पर दृक्पात करते हैं और अनुदार हिन्दी-समीक्षक को यह सूचित करते हैं कि पश्चिम में भाव ग्रहण करता कोई अपराध नहीं है—पश्चिम तो आप ही हमारा शत्रु है। बड स्वयं गेलो, वाटम वायरन टेनिसन आदि कवियों की रचनाएँ भारतीय एवं प्राच्य ज्ञान से ओतप्रोत हैं। पर हमारे साहित्य में क्या हो रहा है—यह भारतीय है यह अश्वत्थी असम्भृत। नस-नस में गारत भगी अज्ञान रूप में गाम ठाकने-ठाकत नाक में दम हो गया और अभी संस्कृति लिये फिरत है।<sup>४</sup> इसी अनुदारता का परिचायक करने हुए निरालाजी ने अँगरेजी सगान शेक्सपीयर माकमवाद, बड स्वयं, गेलो कंटिस आदि से प्रभाव स्वीकार किया उन्होंने अँगरेजी के संवाधन गीता की तरह 'वसत समीर' जैसे गीत रच गेगे के एडानन तथा टेनिसन के इन मेमारियम जमे गाकगीना के अनुकूल गाकगीना की रचना की बड स्वयं की तरह प्रकृति का मानवीकरण किया

१ 'चापूक', (प्रयाग), १९६२, पृ० ४८।

२ उपरिबत, प० ५५।

३ उपरिबत, प० ६०।

४ उपरिबत, प० ६१।



शैली और वायरन की तरह "बादल", "देवी तुम्हें क्या दूँ" जसी विद्रोही कविताएँ रची।<sup>१</sup>

पत (१९००-)

स्वच्छतावादी काव्यधारा का जसा यथावत् एव सर्वांगीण स्थापन प की रचनाओं में हुआ है वैसे ही अत्यन्त दुर्लभ है। उनके काव्य पर रोमांटिक भाव का गभीर और व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है, जिसके फलस्वरूप उन लिखी गई समीक्षाओं में शैली तथा बड़ स्वयं की बहुत चर्चा हुई है। समीक्षक कहते नहीं सकते कि पत की कविता रोमांटिक है, उनकी विचारधारा स्वच्छतावाद पर आधुनिक व्यक्तिवादी काव्य सिद्धांतों से प्रभावित है और पर सर्वाधिक प्रभाव शैली का ही पड़ा है। पतजी द्वारा निरूपित समीक्षा सिद्धांत से इन स्थापनाओं को अतिरिक्त बल मिलता है। इनमें भी कवि आलोचना विचार एक ऐसे विशिष्ट काव्य का समर्थन करते हैं जिसके मूलाधार प्रकृति और 'हृदयवाद' हैं और जिसमें अध्यात्मतत्त्व और रहस्य का भी सम समाहार एवं प्रतिपादन हुआ है। पतजी पर बड़ स्वयं के प्रकृति सिद्धांत का उ ही गहरा प्रभाव पड़ा है जितना प्राच्य अध्यात्मवाद महात्मा बुद्ध के मध्यम तथा रवीन्द्र की बधन मुक्ति का।<sup>२</sup> इनके अतिरिक्त हीगेल के सौंदर्यवाद वगैरे के जीव चैतन्यवाद ने भी उनके दशन चिंतन में अनुपेक्षणीय योगदान है<sup>३</sup> और ये उनकी साहित्यिक मान्यताओं में पूर्णरूपेण संयोजित है।

पतजी का खयाल है कि प्राच्य प्रतीच्य का संयोग मानवता के कल्याण लिए नितान्त आवश्यक है। प्रकृति एवं पुरुष के प्रतिनिधि पश्चिम तथा पूर्व यूरोप तथा भारत—एक दूसरे से पर्याप्त रहकर अपूर्ण हैं। जहाँ भारतीय अध्यात्म पाश्चात्य सम्यता को लक्ष्य और दृष्टि दे सकता है, वहाँ पाश्चात्य सम्यता ही अध्यात्म को प्राणवत्ता, सगठन तथा वनानिक साधन आदि देकर इसे जीवित कर सकने में समर्थ है। इनके बिना हम पत हैं।<sup>४</sup> इस कारण अपनी समीक्षा

१ दे० डा० प्रतापनारायण टंडन (सम्पा०) 'निराला व्यक्तित्व और कृति' (लखनऊ, १९६२), प० २०१-२१४ (डा० कलाचन्द्र माथुर लि "निराला पर अग्रणी कवियों का प्रभाव")।

२ प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा (सम्पा०), 'छायावाद और प्रगतिवाद' (प० २००७), प० २६।

३ उपरिक्त।

४ सुमित्रानंदन पत, 'कला और सस्कृति' (इलाहाबाद, १९६५), प० ४२६

और प्रगतिता में पतनी प्राच्य प्रतीच्य प्रभावा का समन्वय घटित करत हैं । पाश्चात्य प्रभाव ग्रहण का एक और भी कारण है जिसका परोक्ष उल्लेख उन्होंने 'मरी लेखन प्रक्रिया' शीर्षक निबन्ध में किया है । यहाँ इस निबन्ध के जिस अनुच्छेद की ओर हमारा संकेत है वह विचित्र विस्तृत है परंतु इसकी भाषा-शैली तनी सगुण और ओजपूर्ण है कि इसमें यथावश्यक अंश को उद्धृत करना समीचीन जान पड़ता है

इस युग में विनोद जब कि देश-काल सिमटकर मनुष्य के हृन्ना-मलकवन् हो गये हैं और विभिन्न देशों की सम्मृतिर्या, भावनाएँ, विचारधाराएँ तथा साहित्यिक मायताएँ परस्पर निकट संपर्क में आकर मनुष्य को अपने पिछले जावन अम्यासो, नैतिक दृष्टिवाणा तथा मीदय रसमूल्या का अधिक व्यापक जीवन पट में सयोजित करन का वाध्य करत हैं, वही रचनाकार जीवित रह सकता है जो युग-सघर्ष के भीतर से निरंतर नए जीवन मूल्य को उपलब्ध कर उस अपनी कृतिया में वाणी दे सके । इस विराट् वरुण युग में ह्यास तथा निर्माण की, विघटन तथा विनाश का, व्यक्ति स्वातंत्र्य तथा विश्व संगठन की, लोकसाम्य तथा मानवीय एकता की इतनी विविधमुखी तथा परस्परविराधा प्रतीत होनवाली शक्तिया मानव मन तथा विश्व चेतना में काय कर रही है कि आज अनक अवसरवादी, यथा काशी कलाकार तथा साहित्यकार इनमें से किसी एक पक्ष के हाथा दिक् कर उसी के प्रचार प्रसार के लिए अपने आत्मनिष्ठ, स्वायत्त सिद्ध जीवन का अपित कर भीतर-ही भीतर अनास्था सशय, भय से ग्रस्त होकर, बाहर कलाबाध के नाम में प्रवचना को तथा जीवन मूल्य के नाम में आत्मरुचि को महत्त्व दे रह हैं ।<sup>१</sup>

इस उद्धरण की भाषा शैली की प्रभविष्णुता एक सगुणता के मूल में लेखक का वह दुर्दमनीय विश्वास है कि इस युग में स्वायत्त सिद्धि, अवसरवादिता एक एकांगिता से काम चलन को नहीं है । जिस व्यक्ति ने वनमान युग में क्रियाशील

---

परंतु पश्चिम की विचार धारा से अत्यधिक प्रभावित होना, उन्हें अहित-कर लगता है । इसलिए उन्होंने कहा है कि "हम पश्चिम की विचारधारा से इतने अधिक प्रभावित हैं कि अपनी ओर मुड़कर अपने देश का प्रशासन भी प्रसन्न मुख देखना ही नहीं चाहते ।"—उत्तरा, प्रस्तावना, पृ० ११ ।  
१ उपरिक्त, पृ० १२५ ।

हिंदी के कवि-आलोचकों की समीक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव " ४२७

शैली और वाचन की तरह "वादल", "देवी तुम्ह क्या दूँ" जसी विद्राहात्मक कविताएँ रचा।<sup>१</sup>

पत (१९००-)

स्वच्छतावादी कायधारा का जसा यथावत् एव सर्वांगीण स्थापन पतज की रचनाओं में हुआ है वसा अत्यन्त दुर्लभ है। उनके काव्य पर रोमांटिक भावधारा का गभीर और व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है, जिसके फलस्वरूप उन पर लिखी गई समीक्षाओं में शैली तथा वड स्वयं की बहुत चर्चा हुई है। समीक्षक यह कहते नहीं सकते कि पत की कविता रोमांटिक है उनकी विचारधारा स्वच्छता-वाद पर आधुत व्यक्तिवादी काव्य सिद्धांतों एव प्रतिमानों से प्रभावित है और उन पर सर्वाधिक प्रभाव शैली का ही पडा है। पतजी द्वारा निरूपित समीक्षा सिद्धांतों से इन स्थापनाओं को अतिरिक्त धल मिलता है। इनमें भी कवि आलोचक के विचार एक ऐसे विशिष्ट काव्य का समयन करते हैं जिसके मूलाधार प्रकृतिवाद और हृदयवाद हैं और जिसमें अध्यात्मतत्त्व और रहस्य का भी समधिक समाहार एव प्रतिपादन हुआ है। पतजी पर वड स्वयं के प्रकृति सिद्धांतों का उतना ही गहरा प्रभाव पडा है जितना प्राच्य अध्यात्मवाद, महात्मा बुद्ध के मध्यम मार्ग तथा रवीन्द्र की बधन मुक्ति का।<sup>२</sup> इनके अतिरिक्त हीमेल के सौंदर्यवाद तथा बगसा के जीव चैतन्यवाद ने भी उनके दशन चिंतन में अनुपेक्षणीय योगदान किया है<sup>३</sup> और ये उनकी साहित्यिक मायताओं में पूर्णरूपेण संयोजित हैं।

पतजी का खयाल है कि प्राच्य प्रतीच्य का संयोग मानवता के कल्याण के लिए नितान्त आवश्यक है। प्रकृति एव पुरुष के प्रतिनिधि पश्चिम तथा पूर्व—यूरोप तथा भारत—एक दूसरे से पथक रहकर अपूर्ण हैं। जहाँ भारतीय अध्यात्म पाश्चात्य सम्यता को लक्ष्य और दृष्टि दे सकता है, वहाँ पाश्चात्य सम्यता हमारे अध्यात्म को प्राणवत्ता सगठन तथा बानानिक साधन आदि देकर इस जीवन-मूत कर सकने में समर्थ है। इनके बिना हम पगु हैं।<sup>४</sup> इस कारण अपनी समीक्षाओं

१ दे० डा० प्रतापनारायण टडन (सम्पा०) 'निराला व्यवितत्व और कृतित्व' (लखनऊ, १९६२), प० २०१-२१४ (डा० कलाशचन्द्र मायुर लिखित "निराला पर अग्रजी कवियों का प्रभाव")।

२ प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा (सम्पा०), 'छायावाद और प्रगतियाद' (पटना, स० २००७), प० २६।

३ उपरिक्त।

४ मुनिमानदन पत, 'कला और सृष्टि' (इलाहाबाद, १९६५), प० ९०

और प्रगीता म पतर्जी प्राच्य प्रतीच्य प्रभावा का समवय घटित करते हैं । पाश्चात्य प्रभाव-ग्रहण का एक और भा कारण है जिसका परोप उल्लेख उन्हान 'मरी लेउन प्रशिया' शीषक निवध म किया है । यहाँ इम निवध के जिस अनुच्छेद का ओर हमारा सकेन है वह विचित् विम्नून है परन्तु इमरी भाषा-गली तनी सगन्त और ओजपूर्ण है कि इमक यथावयक अगा को उद्धृत करना समीचीन जान पड़ता है

इम युग म विगपन जय मि दश-पाल सिमटकर मनुष्य के हस्ता-मलनवत् हा गय हैं और विभिन्न देगा की ससृष्टियाँ, भावनाएँ, विचारधाराएँ तथा माहित्यिक मान्यताएँ परस्पर निवट सपक म आकर मनुष्य को अपन पिछल जीवन अम्यासा, ननिक दृष्टिवाणा तथा मीदर्य रम मूल्या का अधिक् व्यापक जीवन पट म सयोजित करन का वाध्य करता हैं वही रचनाकार जीवित रह सकना है जो युग-सघप के भीतर स निरतर नए जीवन मूल्य को उपलब्ध कर उसे अपनी कृतिमा म वाणी द मके । रम विराट् वैश्व युग मे हास तथा निर्माण की, विघटन तथा विवाम की, व्यक्ति स्वातन्त्र्य तथा विद्व-सगठन की, लोकसाम्य तथा मानवीय एवता की इतनी विविधमुखी तथा परस्परविराधी प्रतीत होनवाली शक्तियाँ मानव मन तथा विश्व चेतना म वाय कर रही है कि आज अनक अवसरवादी, यग काक्षी कलाकार तथा माहित्यकार इनम म किसी एक पक्ष के हाया विव कर उसी के प्रचार प्रसार क लिए अपन आत्मनिष्ठ, स्वाथसिद्ध जावन को अर्पित कर, भीतर-हो भातर अनास्था सशय, भय स ग्रस्त हाकर, बाहर कलाबाध क नाम म प्रवधना को तथा जीवन-मूल्य के नाम म जात्मरचि को महत्व द रह हैं ।<sup>१</sup>

इम उद्धरण की भाषा गली की प्रभविष्णुता एव मसकनता के मूल म लेखक का वह दुदमनीय विदवास है कि इम युग म स्वाथसिद्धि, अवसरवादिता एव एकागिता सेवाम चलने को नहीं है । जिम व्यक्ति न यतमान युग म श्रियाशील

---

परतु पश्चिम की विचार धारा से अत्यधिक प्रभावित होना, उन्हें अहित-कर लगता है । इसलिए उहोने कहा है कि "हम पश्चिम की विचारधारा से इतने अधिक प्रभावित ह कि अपनी ओर मुड़कर अपने देग का प्रशात गभीर प्रसन्न मुख देखना ही नहीं चाहते ।"—उत्तरा, प्रस्तावना, पृ० ११ ।

१ उपरिखत, प० १२५ ।

हिंदी के कवि-आलोचकों की समीक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव .. ४२७

विभिन्न भावधाराओं और तदनुगत विभिन्न उपधाराओं से विमुक्त होने का प्रयास किया, उसकी परिणति अज्ञान एवं दृष्टि-सजुलता में हुई। 'जो युगप्रबुद्ध क्रांति-कार लोकोपकार तथा नवीन मनुष्यत्व की गंभीर प्रेरणा से अनुप्राणित हैं, जो नए मानव मूल्य को जीवनमूलाकार के लिए अजस्र सघटित हैं, उन्हीं की रचना प्रक्रिया अतीत के ऊहापोहों का अतिशयण कर भविष्य के लिए अपना अश्व मूल्य रखती है। काल की रेती में आत्म-छलना के भगजल के पाले भटक शेष पदचिह्न स्वयं ही मिटकर आत्म-निष्ठ अस्तित्व की गूँथता में विलीन हो जायेंगे।'<sup>1</sup>

### पत और स्वच्छदतावाद

पतजी धर्म और विज्ञान में किसी प्रकार का अन्तर्विरोध नहीं देखते। इसलिए उनका धर्म 'पश्चिम के विज्ञान का स्वागत करता है। वे विज्ञान के विश्वव्यापी चमत्कारों से अवगत हैं। इन्होंने ही देग-काल को हस्तामलकवत् कर दिखाया है और प्रकृति के विभिन्न रहस्यों को उदघाटित कर मानव ज्ञान के आयाम का आशातीत विस्तार किया है। यह पाश्चात्य विज्ञान का ही महत्त्वपूर्ण देय है जिसके फलस्वरूप मानवता एक-देशीयता तथा एक-जातीयता के नाशपाश से मुक्त होकर विश्वव्यापी निर्माण के पथ पर अग्रसर हो सकी है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रतिपादित पाश्चात्य स्थापनाओं के आलोचकों में ही आज का मानव "अपनी अतश्चेतना के सूक्ष्म रूपहले सोपानों तथा स्वर्ण-रश्मि-मंडित शिखरों पर भी नवान् माहस, नवीन आस्था तथा विश्वास के साथ अथात आरोहण करने का प्रयास कर रहा है।"<sup>2</sup>

नवजागरण तथा स्वच्छदतावाद का प्रादुर्भाव मध्ययुगीन धार्मिकता, सौदया-नुभूति विषयक प्रतिबन्धों और अठारहवीं शती की नव्युगास्त्रवादी भाष्यताओं की बुडान्त प्रधानता एवं आतिशय के विरुद्ध प्रतिप्रिया के रूप में हुआ है। जहाँ अभिजात साहित्य में पुरातन प्रतिपादित सिद्धान्तों पर अधिक बल दिया जाता था वहाँ नवजागरण युगीन साहित्य में मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा होती है और

१ उपरिवत, पृ० १२६।

२ 'काल और सृष्टि', पृ० ९। 'उत्तरा' की भूमिका में पतजी ने कहा है "पश्चिम को पूव, विनोदकर भारत, अतदृष्टि देगा और पूव को पश्चिम जीवन के दिक्-प्रसरित बहिर्विधान का वभव सौष्ठव प्रदान करेगा। आनेवाली सांस्कृतिक चेतना का स्वर्गोन्नत सेतु पूव तथा पश्चिम के सघुवत छोरों पर झलकर धरती के जीवन एवं विद्व मन को एक तथा अरुड बना देगा।" (पृ० २३)।

व्यसष्टि तथा नवोद्भावना पर जोर दिया जान लगता है। अजरहवीं शती नव्यशास्त्रवाद म पुरातन अभिजात मूल्या का अत्याधिक स्वीकरण हुआ था, नलिए स्वच्छन्दतावाद म नव्यता पर व है और नवनवामपथम कवि-प्रतिभा का नाव्य का अजन्म उदगम मोन माना गया है। पहल जहा कहा जाता था कि नवीन काव्य विधाया के पृथक्-पृथक् नियमा के अनुमार ही काव्यसृष्टि हानी चाहिए, धव वही नई-नई अनुभूतिया के लिए नय-नय प्रेषण-माध्यमा की खाज हाने लगता है। अत पुरातन तथा गनानुतिक के स्थान पर वैचि-यवहुल नावीन्य को प्रथम दिया जान लगता है। पतजी म नवीनता के प्रति भी ऐसा ही प्रबल, व्यापक दृष्टिगत होता है। इसका एक सहज प्रमाण उनके काव्य-विषयक चिंतन एव तामान्य जीवन-बोध म ही पाया जाता है। हिंदी-कविया म हम 'नवीन' का ऐसा उदार प्रयोक्ता नहीं मिला। 'कला और सस्कृति' के प्राय सभी निबधो म कहीं-न-कहीं इस शब्द का किसीन किसी रूप म अवश्य ही प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ

१— जिसके नित्य-नवीन आविष्कारा न मनुष्य का चकित कर दिया है।

‘ऊध्व चेतना, कला और सस्कृति प० १

२— नवीन आध्यात्मिक मजीवन म निवारना हागा।  
धम और विज्ञान’ (क० अ० स० का दूसरा निबध)

पृ० ८

३— नवीन विन्वव्यापी निमाण नवीन मूल्य नवीन साहस  
नवीन आस्था उपरिवत् पृ० २

४— नवीन रचनात्मक शक्ति-तत्त्वा का उदघाटन कर  
सकती है।

उपरिवत् (तीसरा निबध) पृ० ११

५— नयी चेतना के सवर्न मितन है।

उपरिवत् (चौथा निबध) प० १४

६— नवीन प्रकाश नवीन वैव सयाजन नवीन कव्वट  
उपरिवत् (पाचवां निबध), प० २०

७— नवीन आस्था रही है।

उपरिवत् (छठा निबध) प० २४

८— एक नवीन प्रचार की सर्वांगीण एकसूनता का जन्म द  
रही है।

उपरिवत् (सातवां निबध), पृ० २३

हिंदी के कवि-आलोचना की समीक्षा पर पांचालय प्रभाव .. ४२६

- ६— एक नवीन भाष्यता प्रदान की है।  
उपरिवत (जाठवा निबध), प० ३१
- १०— नवीन मिथु-मथन का युग है।  
उपरिवत (नवाँ निबध) प० ३५
- ११— नवीन चेतना नवीन एकता तथा नवीन शक्ति नए  
रूप ।  
उपरिवत (दसवाँ निबध), प० ३७
- १२— नये जीवन का संचार करना है।  
उपरिवत प० ३८
- १३— नित्य नवीन बन गई हैं।  
उपरिवत (ग्यारहवाँ निबध) प० ४३
- १४— नयी ऐतिहासिक एकता को स्थापित करना अनिवाय हो  
गया है।  
उपरिवत (बारहवाँ निबध) प० ४५
- १५— नवीन भू जीवन की सभावना ।  
उपरिवत् (तरहवाँ निबध) प० ५०
- १६— नवीन जाधाजा और सभावनाओं का रूपहला-मुनहला  
प्रकाश उड़ेगा।  
उपरिवत् (चौदहवाँ निबध), प० ५३
- १७— नवीन समत्व तथा सतुलन भरते हैं।  
उपरिवत् (पन्द्रहवाँ निबध), प० ५८
- १८— नया क्षितिज खुल गया।  
उपरिवत (साठहवाँ निबध), प० ६३
- १९— नित्य नए काव्य उमेप से प्रेरित होकर मुखरित  
रखेंगे।  
उपरिवत् (सत्रहवाँ निबध), प० ६६
- २०— नया रगल्ट या ।  
उपरिवत् (अठारहवाँ निबध), प० ६७
- २१— एक नवीन जाणा-उत्साह का संचार ।  
उपरिवत् (उग्रामियाँ निबध) प० ७२
- २२— नवीनित या कवि पत्र प्रार्थी छात्र रचनाएँ सुनाएँ।  
उपरिवत् (बीसवाँ निबध) प० ७४

'नवीन' की इस प्रचुरता का हम सपाग मात्र नहीं कह सकते। साथ ही यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि ये सारे-के-सारे उदाहरण एक ही पुस्तक में संकलित निरघा की ध्ययस्या और श्रम का यथावत् अनुसरण करते हैं।

स्वच्छतावाद को मामा य शब्दावली में फ्रांसीसी राज्यशांति का साहित्यिक प्रतिरूप कहा जाता है। राज्यशांतिया का उन्मेष अनघतन के विरुद्ध अघतन के मगल अवस्थापा के लिए होता है। (टेनिसन के अनुसार 'द आल्ड ऑडर चैम्पेज, पील्डिंग प्लेन टु चू/एण्ड गॉड पु-पिल्ल हिमसेल्फ इन मेनी वज, रिस्ट वन गुड वस्टम गुड वरएट द वल्ड') जब देग हड-जजर मस्कारा और अघ-आस्थाआ में जमडकर गतिहीन हा जाता है और जब उसके राष्ट्रीय जीवन में विघटन तथा कुठा का समावग हो जाता है, तब उन मूल्या की स्थापना के लिए श्रांति होती है जो जन-जीवन के लिए उन्नायक एवं मगलमूख होने हैं। अतः स्वच्छतावाद का मूलाधार नवानता का अन्वयण ही है। इसे ही पेटर ने उन्मुक्ता की सना दी है। उमक अनुसार रामांटिक भावधारा का मरुमूल सौंदर्योपासना तथा अदम्य औत्सुक्य के फलस्वरूप नवीनता की सोज और सप्टि होती है। इसलिए पेटर न कहा है 'एट इज द अडीगन आव स्ट्रे जनेस टु व्युटी, दैट वी स्टेटयूट्स द रामण्टिक क रकटर इन श्राट । स्त डाल न रामांटिमिज्म और क्लामिसिज्म के परस्पर घमिन्त्य को इन शब्दा में स्पष्ट करना चाहा है 'जहाँ रोमांटिसिज्म मनुष्या के लिए ऐसी कलाकृतिया का निर्माण करता है जिनसे उह ही, उनकी वर्तमान अभिरुचि और विश्वास के बावजूद सर्वाधिक आनंद मिलता है, वही क्लामिसिज्म ऐसी रचनाओं का निर्माण करता है जिनमें उनके पूवजा की मबाधिक आनंद मिला था।'<sup>१</sup>

### छायावाद पर पाश्चात्य प्रभाव

पाश्चाय नभ्यता-मस्ठिति और तदुदभुत प्रभावा का सबसे पहले बगाल के

- १ Romanticism says Stendhal is the art of presenting to people the literary works which in the actual state of their habits and beliefs are capable of giving them the greatest possible pleasure classicism on the contrary of presenting them with that which gave the greatest possible pleasure to their grandfathers' Quoted by Pater in *Appreciations* (Postscript) 1889





विद्यमान रहता है। छायावाद कवियों ने भी द्विवेदी-कालीन इतिवृत्तात्मकता का विरोध किया और खड़ीबाली का परिभाजन कर उसे माधुय, आज तथा अभिव्यञ्जना की अपूर्व क्षमता प्रदान की।

पतञ्जी ने स्वच्छन्दतावादी बड़े स्वयं की तरह प्रकृति निरीक्षण से प्रचुर प्रेरणा ली है और यह भी स्वीकार किया है कि छायावाद के अभ्युदय के साथ ही 'पहली बार साहित्य में पाश्चात्य साहित्य का व्यापक प्रभाव तथा नवीन विधाएँ मूलरूप में पुष्पित पल्लवित दिखायी पड़ती हैं।'<sup>१</sup> पतञ्जी के अनुसार इस प्रभाव का कारण अशत नवोत्थित बंगला साहित्य और, विशेषतः, रवीन्द्रनाथ के काव्य का अध्ययन है परन्तु "छायावाद के नये प्रभाव मुख्यतः अंगरेजी साहित्य के अध्ययन मनन के परिणामस्वरूप ही हिन्दी में पहली बार आए हैं।"<sup>२</sup> भारतीय वदात्मक एवं औपनिषदिक विचार धारा के साथ पश्चिमी जीवन-सौंदर्य का सवप्रथम सम्बन्ध बंगला साहित्य और विशेषतः रवीन्द्र के काव्य में मिलता है। इसलिए उपनिषदात्मक बंगला साहित्य और रवीन्द्र के काव्य से तथा पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित होने के कारण छायावाद एक अभिनव विश्व-बोध का उद्घाटन करता है। पतञ्जी ने छायावाद को द्विवेदीकालीन 'सकीण रुति जजर परपरान्तो' के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में भी स्वीकार किया है। छायावाद के साथ 'नवीन उमेरों, नवीन उद्भावनाओं तथा मूल्यों का आविर्भाव' होना है। इसके कवियों में 'जीवन के प्रति नवीन उल्लास, नवीन आशा, आनन्द तथा नवीन सौंदर्य का दृष्टिकोण' देख पड़ता है। इन्होंने "अनक नवीन छोटी शैलियाँ और विधाओं से हिन्दी-साहित्य को उबर" किया है और "वस्तुजगत् की सीमाओं का भावनाओं की उड़ान से लापकर एक नवान् आत्मिक स्वातन्त्र्य के साथ तथा व्यक्तिगत सुख-दुःख, आशा-नराशय की भावनाओं के माधुय की आदर्यता से जन-समाज के लिए नवीन भावभूमि निर्मित की है।"<sup>३</sup>

### पतञ्जी और पाश्चात्य साहित्य तथा ज्ञान विज्ञान

पतञ्जी ने पाश्चात्य साहित्यनिहास का सम्यक् अध्ययन किया है और उसकी विभिन्न प्रवृत्तियाँ तथा भावधाराओं से वह पूर्णतया अवगत है। वह जानते हैं कि

१ 'कला और सृष्टि', पृ० १५।

२ उपरिक्त।

३ उपरिक्त पृ० १६।

ध्यास, वाल्मीकि कालिदास और तुलसीदास की रचनाएँ में ही नहीं, होमर, वर्जिल, दात, मिल्टन तथा गेटे की कृतियाँ भी एक समूच युग, सपूर्ण जाति के जीवन-सघष का चित्रण' स्थापित है। उहान इगलड क 'विक्टोरियन एज' और भारतवष के उत्तर मध्य-कालीन यग म यत्किचिन् साम्य दग्ना है। य दाना युग ऐसे हैं "जिनकी उपयोगिता किसी वृहन् काय या कला चैतय का वाणी देन मे असमथ रही है।"१ विनान द्वारा षटित युगा-तरकारी परिवतना की और वे बार-बार हमार ध्यान आहृष्ट करत ह और विभिन्न ससृकृतियाँ क निरतर घनिष्ठ सम्पक मे आने तथा पिछ्ने युगा की धार्मिक-नतिक मायताआ के परस्पर आदान प्रदान स विकसित तथा वर्द्धित होन की चचा करत ह। उनके समाप्तात्मक निवधा से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि पाश्चात्य विज्ञान की उपलधिवा एव समावनाआ के प्रति वे जितना जागरूक थे उतना ही आस्थावान भी। "नवीनता" के प्रति उनमे जैसा प्रवत मोह पाया जाता है परिवतन के प्रति उनमे वसी ही प्रखर चेतना पायी जाती है। इसलिए वे नवीनतम के साथ साथ युगांतरकारी परिवतना का भी यथावसर उल्लेख करत चलत हैं। परिवतना के प्रति इस निरतर चेतना का अथ कालचेतना है जो अद्यतन मानव का वैशिष्टय प्रदान करती है। जिस युग न दो विश्व-यापी महामुद्ध देखे और जिस युग म विनाश एव विध्वंस की शक्तियाँ इतनी क्रियाशील हो, उस युग का सवेदनशील कवि परिवतन के प्रति इतना जागरूक क्या न हो? पाश्चात्य विनान ने पतजी की मनो-वृत्ति को ही आमूल प्रभावित किया है उनके साहित्य को प्रभावित करने की बात तो बाद मे उठती है। पतजी ने स्पष्ट शब्दा मे यह उन्घोषित किया है कि राष्ट्रीय जागरण मे पश्चिम का जो देय रहा है वह इयत्तमा ही नहीं, ईदकतया भी बडे महत्व का है आधुनिक अथ म राष्ट्रभावना हिंदी साहित्य मे भारत-दु युग से आई है और वह भी अंग्रेजी शासन के सम्पक म आने के कारण। पाश्चात्य जीवन-मद्धति तथा शासन प्रणाली का भारतीय जीवन चेतना मे अविराम प्रभाव पडत रहने के कारण धीरे धीरे परवर्ती साहित्य मे यह दष्टि विकसित होती रही

१ 'कला और ससृकृति', पृ० १९।

२ पतजी ने इस युग को "महान् आतियो तथा ऐतिहासिक उत्यान पतन" का युग कहा है। दे० उपरिवत, पृ० १९, २४, ४९ इत्यादि। पाश्चात्य साहित्यकारों की आतिगमिक काल चेतना के लिए द्रष्टव्य ए० ए० मेण्डलो, 'टाईम एण्ड द नावेल' (लदन, १९५२)। इसके प्रथम चार अध्याया के गीयक ह (१) The time obsession of the

है।<sup>1</sup> इसलिए वे पश्चिम की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ को आत्मसात कर लेने का सत्परामर्श देते हैं। उनके अनुसार "आज के युगद्रष्टा मनीषी साहित्यकार को मानव जीवन का प्रति सर्वांगपूर्ण लोक-कल्याणमयी दृष्टि उपलब्ध कर आज के युग की असंगतियों एवं विसंगतियों में एक व्यापक निर्माणात्मक सतुलन स्थापित कर देना है।"<sup>2</sup>

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि पतंजी पाश्चात्य सम्यता-संस्कृति अथवा मापानाहित्य के अध्यानुयायी हैं। जिस शिक्षा ने भारत में नवजागरण संभव कर दिया था, जिससे एक से एक दिव्यास्त्र मिले और अलौकिक आविष्कार हुए, उसके सबब में ही पतंजी ने कहा है कि "अंग्रेजी की शिक्षा केवल इन्हीं गिने कुशाग्र बुद्धि, विद्याप्रेमी विज्ञान के छात्रों तथा विदेशों में भारत शासन की सेवा करने योग्य युवकों को सिखाई जानी चाहिए। इससे अधिक जनसाधारण के लिए अंग्रेजी शिक्षा की आवश्यकता मुझे नहीं दिखाई देती।"<sup>3</sup> इसके अतिरिक्त पाश्चात्य सम्यता-संस्कृति की विफलताओं और अनुपलब्धियों से भी वे पूर्णतया अवगत हैं। आधुनिक विज्ञान न जिस भौतिक युग का आविर्भाव किया है, उसमें मानव-जीवन की वाह्य परिस्थितियों का एकांगी विकास ही सम्पन्न हो सकता है।<sup>4</sup> पश्चिम के दशन तथा साहित्य ने अनास्था अहंकार, कुठा तथा जीवन की क्षणभंगुर भाग्यप्रिय कल्पना से पूर्ण अस्तित्ववाद" को जन्म दिया है और वहाँ के मनीषियों की प्रतिभा तथा वैज्ञानिक अनुसंधानों की शक्ति विध्वंसक अणु-उत्पन्न बमों तथा घोर महारक्त अस्त्रशस्त्रों के निर्माण में अपव्यय हो रही है। "पश्चिमी सम्यता अपनी गहरी सांस्कृतिक नींव एवं उच्च आध्यात्मिक अभिप्सा के अभाव में आज जिस बहिमुखी अंधकार में भटक गई है और उसकी जीवन उबर कोल नवीन

#### twentieth century

(२) The time-obsession of fiction

(३) The time and the space arts

(४) The time problems of fiction

१ उपरिचत, पृ० २९।

२ उपरिचत, पृ० ३५।

३ उपरिचत, पृ० ४६ "हमारी कठिनाइयों का कारण है हमारी एकांगी शिक्षा तथा पश्चिमी विचार दग्न तथा साहित्य की दासता।" उत्तरा (प्रस्तावना), पृ० ९।

४ उपरिचत, पृ० ८।

मनुष्यत्व को जन्म देने के बदले आज जिन अणु दत्ता का जन्म दे रही है, उमम वहाँ की राजनीति तथा अधशासन की लडगडगती टांगा पर चलनेवाले मरणोन्मुख कुत्स राष्ट्रवाद की कल्पना सहज ही की जा सकती है।<sup>१</sup>

पतंजी के निरघा से उनकी निम्नलिखित मायताएँ और उनके व्यक्तित्व तथा कृतत्व सप्रधी कतिपय तथ्य निष्कर्षित किय जा सकत हैं

(१) पतंजी आशावादी है। ( आशावादी होने का कारण मुझे विचार है ।<sup>२</sup>)

(२) उनके विचार शैली के विचारा से प्रभावित भले ही न हों, परन्तु के विचार पाश्चात्य कवि के वाय प्रयागनादि से सबद्ध विचारा से मिलत जुलत है। शैली की आशावादिता 'प्रमीवियस अनग्राउण्ड' और "वेस्ट विण्ड' सरीनी कविताओं में शब्दमूक्त हुई है। यदि पतंजी के अनुसार साहित्यकार शक्ति, विश्व प्रेम और मानव मूल्यों का योद्धा तथा सरसक है तो शैली के अनुसार कवि नियमा का प्रतिष्ठापक नागर समाज का जन्मदाता जावन-कलाओं का आविष्कृत तथा अदृश्य जगत की शक्ति का आशिक बोध का सत्य और सुन्दर के विशेष साहित्य में ले जानेवाला गुरु भी होता है।

(३) पतंजी में नवीनता, परिवर्तन विधान, समत्व 'विश्व-भूतलन तथा बहिरतर सगठित भू चेतना के प्रति अत्यधिक आग्रह देखा जाता है। व बार-बार इनसे सबद्ध प्रकरणों की रचना और एतद्विषयक विवेचन में आनन्द रेत दोल पडते हैं। इसी प्रकार व मध्ययुगीन जीवन मायताओं से समधिक ग्रस्त जान पडते हैं और यथाशक्य इनका गहण करते हैं। साथ ही उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि छायावादी जीवन मूल्य की दृष्टि से मध्ययुगीन कवि तथा सन सम्प्रदाय के कवियों का मूल्यांकन अपर्याप्त तथा एकांगी लग सकता है।<sup>३</sup> मध्ययुगीन और छायावादी विश्व-बोध में वभिन्न दिखलाते हुए वे कहते हैं कि 'मध्ययुगीन सता की तरह छायावादी कवि आत्मग्रह और आत्म परिष्कार की राज मन जाकर विश्वात्मा तथा विश्व जनोत्त की खोज की ओर अग्रसर हुए।'<sup>४</sup> पाश्चात्य नवजागरण के कवि और समीक्षक मध्ययुगीन जीवन मूल्या पर एसा

१ उपरिखत प० ३० ।

२ उपरिखत, प० ३८ ।

३ मुमिगानदन पत, 'छायावाद का पुनर्मूल्यांकन' (इलाहाबाद, १९६५) प० ५ ('ज्ञातव्य') ।

४ उपरिखत प० १५ ।

ही निदय प्रहार किया करते थे। यहाँ तक कि उनके द्वारा तुकात (कविताएँ) इसलिए भी तिरस्कृत होती थी कि उनका सबध मध्ययुगीन गिरजाघरा और पादरिया द्वारा प्रणीत काव्य स था। राजर ऐम्बक कैम्बिन प्रभृति समीपक तुकान्ता को मदेह की दष्टि से देखन हैं आर उह हूणों और गीय-जाति के देवर लोगो का आविष्कार कृत है। मध्ययुगीन रोमाटिक कथाओ पर तो निदयतर आशोचनाएँ लिखी जाती हैं। इसी युग कं समीक्षका द्वारा मेलरी की लाक विख्यात मार्ने द आयर' का 'आपन मैन-स्लॉटर' तथा वाड बॉडी को कथा-मान कहा गया है।

(४) पतजी पर औपनिपदिक दशन का भी गभीर प्रभाव पडा है।

(५) उनके प्रकृति प्रेम की उत्कटता बड स्वय की याद दिलाती है। पतजी बड स्वय की भांति नैसर्गिक सौंदर्य की प्रेरणा स काव्य सृजन की आर उ'मुख' हुए हैं।<sup>१</sup> छायावाद सामाजिक ढाँचे के वासी सौंदर्य से उबकर' पाश्चात्य स्वच्छतावाद की तरह प्रकृति की आर मुडा' है और प्रकृति से ही नव्य सौंदर्य बभव लेकर 'कला का सौरभ-मटित तथा भावना-जात को सद्य प्रस्फुटित कर सवा' है।<sup>२</sup> बड स्वय और पत, दोना ही एकात प्रिय, भावुक कवि हैं दोना का बचपन प्रकृति के आगन में खेलत-बूदत बीता है। ('मिरा जम प्रकृति की गोद महुआ। उमी के आगन में खेलत-बूदा और बडा हुआ।'—पत) बड स्वय की ये पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं

he who in his youth

A daily wanderer among woods and fields  
With living Nature hath been intimate  
Not only in that raw unpractised time  
Is stirred to ecstasy as others are  
By glittering verse

Prelude V 586-590

बड स्वय की तरह पत भी पना के अनन्य प्रेमी हैं। बड स्वय का 'डफाडिन्स' शीपक कविना दविण आर ग्राम्या की इन पक्तिया पर विचार कीजिए

रग रग के तिन पनाँकन बरबीना छपे डियायम,  
तत तग एटिह्लम तिलली मी पजी पाँगी मालम

१ 'कला और सस्कृति', प० ७९ आधुनिक कवि, पर्यालोचन, प० १।

२ छा० पु०, पृष्ठ १६।

हँसमुख कडीतपट, रेशमी घटकीले नशटरभम  
खिली स्वीट पी, -एवडस फिन वास्केट और ब्लू वटम ।  
दुहरे कार्नेशस, स्वीट मुलतान सहज रोमांचित  
ऊँचे हॉलीहाक, लाकस्पर पुष्प स्तम से शामिल ।

ये पक्तिया कवि के "फूल" शीपक निबन्ध मे उद्धृत हैं । (क० स० प०  
१२८)

(६) पनजी की समीक्षा शैली कवित्वमयी स्निग्ध तरल-स्वच्छ एव  
भावोष्ण है । उसमे सूक्ष्म विश्लेषण से अधिक भावोत्पार मिलते हैं सबत्र कवि का  
व्यक्तिरूप प्रतिच्छायित दीख पडता है और आलोचना की जगह कविता मिलती  
है । कवि अपनी समीक्षात्मक कृतिया म भी अपना कवि रूप विस्मृत नही करता ।  
उदाहरणार्थ—

सन '१५ म हमारी शती एक अल्ट्रड किंगोरी भर थी एव मय-  
वर्गीय अज्ञात यौवना किंगोरी जिसकी चचल पल्का म नय युग के  
रूप-बोध के स्वप्न साकार होने की चेष्टा म पक्ष फरवाना सीप  
रहे ये हृदय की अकरपनीय गहराइया मे लोक-जीवन के भाव  
यौवन तथा लोक चेतना के उगत उमप ने नयी सवेदनाआ की।  
हिलोरा म मचलना आरम्भ कर दिया था और उसके प्रतिपल  
विकासोमुख अगा म अद्विष्ट पारिजान मुकुला के समान अमरय  
रुपा म अदिराम फूटता हुआ निरपम सौन्दर्य निरतर बरबर कर  
अपने नि स्वर भाव मौन स्पर्शों से देश-काल की सीमाआ को डवान  
का प्रयत्न करन लगा था । १

इस गती म भाषा सबधी यह शब्दलाघव नही है जो बनानिन समीक्षा के लिए  
आवश्यक माना गया है । इन पक्तिया म कसावट के स्थान पर विस्तार आर  
फराव अधिक् है आलाचन वस्तुनिष्ठ और निर्व्यक्तिक् समीक्षा का रचनाकार  
न होकर ऐसी विस्तारमयी गली का प्रयोक्ता है जिसका प्रभाव हृदय पर अधिन  
और भस्तिष्क पर अत्यल्प पडता ह । फिर भी यदि छायावादी का पुनर्मूल्याचन  
निमी अय गती म हाना ता अच्यता उसे उतना पसद न करते जितना इस  
गती म उम पसद करते हैं ।

(७) पनजी यह स्वीकार नहा करते कि उन पर या छायावादी कविया  
पर केवल बगल और पाश्चात्य साहित्य का ही प्रभाव पडा है । उन्हाने गुक्तजी

के मनवादा और धारणाओं का सशक्त विरोध करते हुए कहा है कि "गुरुजी की दृष्टि में छायावाद काव्य-वस्तु की दृष्टि में स्वदेशी हिन्दी काव्य-परंपरा का विकास है और 'शली' की दृष्टि में वर्गों की छलनी में छना हुआ और सीधा भी विदेशी स्वच्छन्तावाद का प्रभाव है। छायावाद को जिम बाहरी दृष्टि में गुरुजी दाय सके है उमम तय्या का आग्रह भले ही हा, पर वह सोमिन दृष्टि थी कि उमम अधमत्य क्या, सत्य का छिन्का ही देखने का मिलता है। वास्तव में उस युग के पाम समग्र अन्तर्दृष्टि न हाने के कारण आलोचना के विकसित मानदंड का भी अभाव रहा है और उन युग के प्राय सभी आत्मतुष्ट आलोचक छायावाद की ब्राह्म परित्रमा भर कर उमके सबध में अपने विचार प्रकट करने की विवशता अनुभव करते रहे हैं।"<sup>१</sup>

(८) पनजी के अनुसार छायावाद के मूल्यांकन के लिए पुरातन-प्रति-पादिन सिद्धांतों एवं परंपरागत मानदंडों का उपयोग न्यायसंगत नहीं है। जिसे समीक्षक ने रहस्यवाद को सना दे रखी है, वह वस्तुतः रहस्यवाद नहीं है और न छायावाद में ईश्वर ब्रह्म या महात्मा के प्रति जिनासा ही है। वह तत्त्वतः "नवीन विश्वजीवन का व्यापक संवेदन भर है।" 'छायावाद पुनर्मुन्यावन' नामक पुस्तक और मायताएँ बदन रखी है' शीपर विषय में पतजी न द्विवेदीकाल की रुद्धि-जजर मायताओं का खंडन करने हुए छायावाद की नयता ("नयी जीवन दृष्टि नया सौंदर्य-वाच नयी बला भगिमा तथा अधिक् संवेदनगोल अभिव्यजना") का समर्थन किया है। जब सामाजिक सांस्कृतिक एवं वृत्तारिक जगत में ही युगान्तरकारी परिवर्तन हा चुके है तत्र साहित्य के मानदंड भी बदलने चाहिए। नय आवष्टन को प्रतिफलित करनेवाला साहित्य नय प्रतिमानों से ही आका जा सकता है। अतः पनजी की सलाह है कि "जाप इस नय काव्य के लिए प्राचीन मध्ययुगीन दार्शनिक एवं काव्यशास्त्रीय दृष्टि तथा परंपरागत मानदंडों का उपयोग करना छोड़ दे।"

### छायावाद और रोमाण्टिसिज्म

छायावाद का 'पाश्चात्य काव्य आर वगला का अवाछनीय अनुकरण' बहनवाले समीक्षक की दृष्टि में मध्ययुगीन है और उनके मानदंड साम्प्रदायिक एवं प्रान्तीय हैं। पतजी नहा चाहत कि हिन्दी का विकास अन्तमुखी हो और

१ छा० पु०, प० १३।

२ उपरिबन प० १७।



यह बाह्य सस्टृतिया एव विचारा स प्रभावित न हा। फिर भी ये इन बात न भी सहमत नहीं हैं कि छायावाद का शुद्ध स्वच्छतावाद की सगा दी जाय। यह न विगुद्ध रोमांटिसिज्म है न दृश्य दृ वगैरा का अनुकरण ही।

(यहाँ<sup>१</sup> पतजी की समीक्षा गला यन्तुपरत एव विस्मयनात्मक हा उठता है। तर्क वितक एतत्र विय जात हैं छायावाद पर शिय गए निम्न अभावा का निराकरण निश्चयतर उत्तरा न हाना है। परन्तु कर्णालगारा (मनफम) न यह भाषा गली अभी भी उतनी ही जापूरित तथा सजी हुई है जितनी भावागारा की उद्दाम अभिव्यक्ति न समय रहती है।)

फिर भी छायावाद और स्वच्छतावाद न प्रभूत साम्य नी न पडता है। पतजी ने इसके रहस्य का उन्घाटन यह कहकर किया है कि स्वच्छतावाद और रवींद्र कात्र विश्व विवास की जिन गिनिया स प्रभावित हुए हैं छायावाग भी विवास के उही सोना स प्रभावित है। साथ हा वे इस बात का अस्वाकार नही करते कि छायावाद प्रारभ न कीटस, सोली बड स्वय जादि अंगरेज कविया तथा रवींद्र के अध्ययन स प्रभावित था। स्वय रवींद्र न भी अंगरेजी कविया का प्रभाव ग्रहण कर नय काव्य न भारतीय नवजागरण को वाणी दी। उनकी प्रतिभा 'पूव-पश्चिम के सास्टृतिक समनय के उत्साह से आगा एदवय गभित थी।' चूकि हिंदी-काव्य उनसे भी प्रभावित है उसन पाश्चात्य तत्त्वा का अल्पा धिक समावेश हुआ है। पतजी यह भी स्वीकार करन हैं कि 'छायावाद का सौंदय वादी प्रभाव तो पश्चिम का है क्वाकि नय यत्रयुग के जीवन सौंदय तथा जाशा उल्लास को सवप्रथम पश्चिम का ही साहित्य वाणी देन न सफल हुआ था— किंतु रहस्यवादी प्रभाव निश्चयही सवप्रथम उसन कवी द्र रवीं द्र सआया जा भल ही पीछे कवीर आदि के अध्ययन स गहरा हो गया हा।' पतजा का ममज्ञ कधि आलोचक इस निष्कप स विमुख नही हो सकता कि छायावाद की कितनी ही विगप ताएँ रोमांटिक काय न भी वतमान ह इसलिए वह कहता है कि छायावाद न रोमांटिक काव्य की तरह ही 'किशार विस्मय की भावना या स्वप्न है उसन रागात्मक सवेदन प्राण-तत्त्व तथा कल्पना का वाहुय और प्रवग है।'<sup>३</sup> साथ ही वह इस बात पर भी बल दता है कि छायावाद न पर्याप्त मौलिक तत्त्व भा है जिह हम विस्मत नही कर सकत। इसके जतिरिक्त इस पर राष्ट्रीय

१ छा० पु०, पृ० ३१।

२ उपरिवत प० ३२।

३ उपरिवत, प० ३४।

अन्नजागरण की चेतना तथा विश्व विकास के नये मूल्यों का भी प्रभाव पडा है जो पाश्चात्य प्रभाव की अपेक्षा अधिक गभीर तथा व्यापक है ।

पन की समीभागत मान्यताएँ और पाश्चात्य प्रभाव

पगजी न ' सम्भृत कविया से लेकर द्विवेदीयुगके कविया तक की पुनरुक्तिया से आप्नुत काव्य भाषा अलकारा, उच्छिष्ट एव प्राचीन प्रतीका तथा विवा की आलोचना की है और उनम नवीनता का अभाव देखा है । प्रत्येक नय आन्दात्म के समयक एव पशपोषक प्राग्भूत अथच अत्यधिक प्रचलित शक्तिया के विरुद्ध ऐसे ही तक उपस्थित करते हैं । उदाहरणार्थ—शेक्सपियर और जान इन की रचनाआ म पेटराक और स्पेंसर की शक्तिया की ऐसी ही आलोचनाएँ निहित है । शेक्सपियर के एक सानेट म पेटराक तथा स्पेंसर की पद्धति पर सानेट रचनेवा कवियो और उनके द्वारा प्रयुक्त रूपका उपमाआ तथा विवा की निमम सव्यग्य आलोचना की गई है । यहा बाइ और वाटसन नामक कवि की पक्तियाँ उद्धृत की जाती है और लाहिती और शेक्सपियर की आलोचना प्रस्तुत की जाती है ।<sup>१</sup>

Her yellow lockes exceede If haire be wiers black wiers  
the beaten goulde grow on her head

Her sparkling eyes in heav n My Mistres eyes are nothing  
a place deserve like the sunne

Her wordes are musicke all I love to hear her speake  
of silver sounde yet well I know That  
musicke hath a far more  
pleasing sound

On either cheeke a Rose and I have seene Roses damaskt  
Lillie lies red and white, But noe  
such Roses see I in her  
cheekes

Her breath is sweet perfume And in some perfumes is

१ Patrick Cruttwell *The Shakespearean Moment* (New York 1960) pp 18 et seq

or holke flame

there more delight Then  
in the breath that from  
my Mistres reeces

Her lips more red then any  
Corall stone

Currall is far more red then  
her lips red

Her necke more white then  
aged Swans that mone Her  
brest transparent is like  
Christall rocke

If Snow be white why then  
her Brests are dunno

शकसपियर सामयिक कविया द्वारा प्रयुक्त विवा और प्रतीका की आलोचना कर रहा है उनक विम्ब और प्रतीक उम घिस और मृत दीग पडत हैं उनकी उपमाएँ भी उम उच्छिष्ट लगती है ।<sup>१</sup> स्मर के सानटा म फयर एक एमा विशेषण

१ छायावाद पुनर्मूल्यांकन के प० ४६ पर पतजी ने कहा है सस्कृत के कविया से लेकर द्विवेदी युग के कविया तक हमे मूल्य की दृष्टि से प्रायः एक ही प्रकार के उपमा, रूपक, अलंकार, इने गिने छंदा की पुनरावृत्ति तथा प्राचीन प्रतीका, बिंबो जादि की पुनरावृत्ति मिलती है । शब्द-लंकार तथा अर्थालंकार एव रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अपह्लाति आदि तो इतने दुहराये गये ह कि वे काय रसिको के प्रतिदिन की खाद्य सामग्री बन नए थे । प्रतीक तथा बिंब भी इतने प्राचीन तथा ब्रासी पड गए ह कि उनके कवित्वमय रूप तथा भाव-सौंदर्य से किसी प्रकार की नवीनता की प्रेरणा नहीं मिलती थी । ”

टी० ई० ह्यूम, एजरा पाउड जीर एलियट जैसे आलोचक रोमांटिक कवियों की भाषा शली के सबध मे ऐसी ही आलोचनाएँ लिखते और ऐसी ही धारणाओं का समर्थन करते ह । साथ ही वे शेक्सपियर तथा “मेटाफिजिकल” सम्प्रदाय के कवियों की शली की प्रशंसा और यथाशक्य अनुकरण तथा स्पेंसर द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय के कवियों की आलोचना करते ह । निम्नलिखित पंक्तिया मे स्पेंसर के अनुयायियों के सबध मे प्रायः ये ही बातें कही गई ह जिहे पतजी ने अपने पूर्ववर्ती कवियों के लिए कहा है

At first the playwrights used the comparisons best calcu-

है जा सभी विरोधों का काम करता हुआ जान पड़ता है<sup>१</sup> और सबन प्राचीन उपमाएँ, छन्द, अलंकार आदि प्रयुक्त हुए हैं। शेक्सपियर और जॉन डन ने स्पष्टर द्वारा उद्धाटित परंपरा का विरोध करते हुए एक नव्य काव्यगर्भी का अवस्थान किया जिसमें नय विव, नय प्रतीक, नयी उपमाएँ और नये रूपक प्रयुक्त हुए। अठारहवीं शती में बलर डेहम, ड्रायडन आदि के प्रयास से मेटाफिजिकल सम्प्रदाय के कविया की शली के स्थान पर एक नयी शैली का आविर्भाव हुआ जिसमें प्राजलता, शब्द-लाघव, पदा म सनुलन अथ-वपरीत्य का कलात्मक प्रयोग जीदा-त्य आदि गुणा का स्तुत्य समाहार देखा जाता है। ड्रायडन और पोप के युग में अग्रगामी काव्यगत विवो को—यहाँ तक कि शेक्सपियर के रूपकालंकारों और श्लेषों का—अपने व्यंग्य प्रधान काव्य के अनुपयुक्त ठहराया। उन्नीसवीं शती के रोमांटिक कविया ने ड्रायडन और पोप की परंपरा के विरुद्ध हापकिंस और बीसवीं शती के विम्ववादी कविया ने रोमांटिक कविया की परंपरा के विरुद्ध नयी-नयी काव्य गीतिया और साहित्यिक सम्प्रदाया का प्रतिष्ठापन किया। पत जी द्वारा प्रस्तुत द्विवेदीशालीन कविया की आलोचना ऐसी ही है।

lated to illustrate their point and they were the most traditional. They had a decorative function and were employed to enhance the effect. Derived much oftener from the Classics or from the Italian poets than from personal experience they were designed to raise the object to the poetical plane by assimilating it to something rarer or nobler. It was essentially the laudatory image. Its aim was to awaken the feeling of beauty to provoke admiration and even adoration. Breasts were described as of ivory or alabaster, lips of coral, eyes were stars, Goddesses heavenly bodies, the seasons, birds and flowers, precious stones and metals formed charming symbolical teams harnessed to the objects to be illustrated, and made to assume an emblematic value. See Henri Fluchere *Shakespeare* (London 1953) pp 167 et seq.

१ — 'Fair for example is an epithet of all work it occurs some sixty times in these 88 sonnets. Patrick Cruttwell op Cit p 16

पतंजी को जो साहित्य अथवा कृति अस्चिक्कर लगती है और जो उनकी कसौटी पर खरी नहीं उतरती, उसे वे 'मध्ययुगीन' कहते हैं। जिस प्रबल औत्सुक्य से वे नवीन का स्तवन करते हैं वही उल्कट उपेक्षा भावना से वे मध्ययुगीन भाववभव का तिरस्कार भी करते हैं। उनके अनुसार नवीनता का बहुरतम विरोधी मध्ययुगीन भावधारा है। ऐसे मतवाद का मूलधार कवि का प्रगतिवादी चिंतन है, जो मध्ययुग के सामतवाद और अतिशय निवृत्तिमूलक धार्मिकता को बराबर ही सदेह की दृष्टि से देखता है। पतंजी ने छायावादी काव्यधारा के अंतगत पाय जानवाले रहस्यवाद की एक अभिनव व्याख्या प्रस्तुत की है और उन प्रगतिवाद या जनवादी चिंतन से अनुकूलित किया है।<sup>१</sup> मध्ययुगीन यथाय को उन्होंने सामंती यथाय (छा० पु० प० २६ ३०) की सना दी है, जो उनकी मनावृत्ति के स्पष्टीकरण के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। पतंजी का रहस्यवाद मध्य युगीन सना का रहस्यवाद नहीं है। मध्ययुगीन रहस्यवाद (यूरोप में भी) प्रधानतः निवृत्तिमूलक था, परंतु छायावाद प्रवृत्तिमूलक है। मध्ययुगीन सत आत्मग्रहण और आत्मपरिष्कार की खोज में रत रहते थे छायावादी कवि विश्वात्मा तथा विश्व जीवन की सजा की आर अग्रसर रहे हैं।<sup>२</sup>

रिवीट आब इस्लाम तथा प्रमीथियम आराउण के कवि गली साम्यवाद के आधुनिक जनक मार्क्स और एनिन तथा भारतीय नवजागरण के आविभावक प्रवृत्तिमूलक दार्शनिक चिंतन से एक साथ ही प्रभावित इस दृष्टिकोण का पश्चिम का अद्यतन 'आर्पोडोस' साहित्यिक चिंतन स्थापित रहा होगा। एनिनट न मध्ययुगीन विचार धारा और परंपरा अनुमानित धर्म विस्थापन का अभिनय किया है और मध्ययुगीन विचार धारा द्वारा समर्थित अनुशासन एवं मर्यादा (आर्पोडोस) का कवि के लिए जाबान बननाया है। पाठ एमर मूर, इर्गविग बरिड और एरिंस मरीस मानववादी जगत पतंजी के विचारों का समर्थन करण (समर्थन पतंजी ने इन लोगों का कृतिया का अध्ययन भी किया है), परंतु पश्चिम - मध्ययुगीन सना, रहस्यवादीय आर कथाकारों का विचारधारा

१ 'संसारवादी (आधुनिक दृष्टि में धर्म सतुलित) जनतंत्र तथा भारतीय जीवन-दान का विस्थापित तथा लोक-कथायण के लिए आत्म उपयोग मानता है। उत्तरा, प्रस्तावना, पृ० २१।

२ पतंजी के अनुसार शास्त्र के युग में साहित्यिक दृष्टि एवं कवि का कथक्य है कि वह युगमध्य के भीतर जन्म लेनेवाली नवीन लोकमान्यता को अपनी धागी द्वारा अभिव्यक्ति दे। उत्तरिका पृ० २३।

म पाठका की रचि बड खली है जो क्वचित्-क्वदाचित् महायुद्ध-जनित अनास्था, कुठा और सशयगीतना का परिणाम है। अब ता परिवम म एक ऐसा दल भी उत्थित हा गया है जो नमजागरण का मानव का दूसरा पतन कहता है।

कभी-कभी पतर्जी के विचार पारचात्य कविया के विचारा के इतन सन्निकट आ जात हैं कि उन कविया स उनके प्रभावित होने म सदर की कोई समावना ही नहीं रह जात। उदाहरणाय— आधुनिक कवि के 'पर्यालोचन' म उन्होंने कहा है कि 'कवि-जावन से पहले भी, मुखे याद है, मैं घटा एकात म बैठा, प्राकृतिक दृश्या का एकटक देखा करता था, और कोई अनात आकषण मर नागर, एक अव्यक्त सौदय का जाल बुनकर मेरी चेतना को तमय कर देता था।'<sup>१</sup> प्राकृतिक दृश्या के अवलोकन स बड स्वय की चेतना मा इसी प्रकार तमय हो जात थी। उमम एक ऐसा अदमुत् भव्य भाव ("ब्लेसेड मूड") मर आता था जिसम

the burthen of the mystery  
Of all this unintelligible world  
Is lighted —that serene and blessed mood,  
In which the affections gently lead us on,—  
Until the breath of this corporeal frame  
And even the motion of our human blood  
Almost suspended we are laid asleep  
In body and become a living soul!<sup>२</sup>

जब पतर्जी ने यह लिखा था कि 'जब कभी मैं आखि मूदकर लटता था, तो वह दृश्यपट चुपचाप मेरी आखा के सामने घूमा करता था' उस समय उनके मन म बड स्वय की ये पकिनया, निश्चय ही बतमान रही हागा।

For oft when on my couch I lie  
In vacant or in pensive mood  
They flash upon that inward eye  
Which is the bliss of solitude  
And then my heart with pleasure fills  
And dances with the daffodils<sup>३</sup>

१ आधुनिक कवि (प्रयाग, १९४१), २, प० १ (पर्यालोचन)।

२ Tintern Abbey (1798) 11 38 46

३ Daffodils (1804) 11 19 24



तथा गाधीजी और श्री अरविन्द के महत् संपर्क म आने से प्रस्फुटित तथा विवसित हुआ है।<sup>१</sup> स्पष्ट है कि 'अंतर के प्रवास' में बाह्य प्रभावों का ग्रहण तथा आत्मसात करनेवाला कवि हिंदी का शोला और लारेंस है। स्वच्छदतावादी कवियों की तरह ही उमने भी कल्पना के पला से मौदय भित्तिज का स्पश किया है। (नव्यशास्त्रवादी कवि उछल-बूद सकते हैं परंतु उह पीछे लौट जाना पडता है, व सौंदय क्षितिजो को स्पश करने का प्रयत्न नही करते।)<sup>२</sup> साथ हा यहा यह भी ध्यातव्य है कि कवि ने केवल पश्चिम के दशनो का ही अध्ययन नही किया था, प्रत्युत गाधीजी और अरविन्द के विचारा का भी आत्मसात् किया था।

### डा० रामकुमार वर्मा (१९०५- )

'हिन्दा साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' के 'निवेदन' म डॉ० वर्मा का यह कथन ध्यातव्य है कि 'मैन साहित्य की सस्कृति का आदश सुरगिन रखत हुए पश्चिम की आलोचना शली को ग्रहण करने का प्रयत्न किया है।' उन्हीने न तो डम शली की विशेषताया का निरूपण किया है और न उन पाश्चात्य शलीकारो के नाम बताये हैं जिनसे वे प्रभावित हुए हैं। 'निवेदन' म ही कहा गया है कि 'इतिहास लिखने के दृष्टिकान और शली मे भी नूतन वैज्ञानिक उत्क्राति हुई है', पर यह नहा कहा गया है कि इस उत्क्राति से इतिहास-लेखन मे क्या-क्या मौलिक परिवतन हुए हैं और प्राचान तथा नवीन पद्धतियो म कौन-कौन से सागिन अतर हैं। फिर भा, इमम सदेह नही कि वर्माजी की विवेचन-पद्धति पर पाश्चात्य प्रभाव पडा है। डम कथन की पुष्टि वर्माजी के उपयुक्त निवेदन स तथा उनकी वैज्ञानिक विद्वानापूण समीक्षा-शली से हाती है।

विषय प्रवश मे उन्होन पश्चिम के साहित्येतिहास विषयक महत्त्वपूण योगदान का सक्षिप्त ब्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार कवि के नामो का सबसे पहला सग्रह जो इतिहास के रूप का आभास मात्र है फामासी साहित्य म गस द तासी लिखित 'इस्त्वार द ला लितरात्पूर ऐँदुई ऐँ ऐँदुस्तानी' है।

१ चिदबरा (१९६६), पृ० ३० ३१ ।

२ "हो मे जम्प, बट ही ऑलवेज रिटस बक, ही नेवर पलाइज अवे इष्ट्र द सकमेन्वियण्ट गस ।" टी० ई० ह्यूम, स्पेक्युलेगस (१९६०), पृ० १२० ।

३ प्रयाग, ३१ मार्च १९३८ (द्वितीय सस्करण, १९४८) ।

४ 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', पृ० २ ।



जिसका मुद्रण प्रेट्रिटेन और आयर्लैण्ड की प्राच्य साहित्य अनुवादक समिति की आर से पेरिस में हुआ। "यह आश्चर्य की बात अवश्य है कि हिंदी साहित्य का प्रथम विवरण हिंदी लेखकों द्वारा न लिखा जाकर विदेशी साहित्य में विदेशी विदेशों द्वारा लिखा जावे। विदशा भाषा में लिखे जाने पर भी इस ग्रंथ का महत्त्व है। यह हिंदी का सबसे प्राचीन विवरण होने के कारण विद्वानों और इतिहास लेखकों के लिए साहित्यिक और ऐतिहासिक दाना है। विशेषताएँ स्पष्ट हैं।" गाँव द तार्सी के पश्चात् सर जॉर्ज ग्रियसन का योगदान उल्लेखनीय है। उन्होंने माटन वर्निक्यूलर लिटरेचर आब हिन्दुस्तान की रचना की। यद्यपि यह ग्रंथ गिर्वांसिंह सगर द्वारा त्रिखिन गिर्वांसिंह सरोज की सामग्री से ही निर्मित है, फिर भी 'यह उससे अधिक व्यवस्थित और वज्ञानिक शैली में लिखा गया है।' ग्रियसन के बाद तिन पाश्चात्य लेखकों ने साहित्य इतिहास की रचना की उनमें एन्विन ग्रीस और एफ० ई० के के ताम अविस्मरणीय हैं। उन्होंने क्रमशः एम्बेच आब हिन्दी लिटरेचर (स० १८७४) तथा 'ए हिस्ट्री आब हिन्दी लिटरेचर' (स० १८७७) नामक ग्रंथों की रचना की। एफ० ई० के की पुस्तक ग्रीस के स्केच' की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक ढंग पर लिखी गई है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि डा० वर्मा ने विषय प्रवेश में उपलब्ध सामग्री का विशद विवेचन उपस्थित किया है और इतिहास-लेखन की कठिनाइयों, काल-निर्माण आदि का ध्यान आकृष्ट किया है। यहाँ क्रमबद्ध, तार्किक एवं सुशुद्ध विवेचन विद्वानानुमानित पाश्चात्य पद्धति है जिसका प्रभाव शान-प्रमथा पर भी पड़ा है। इतिहास प्रयत्नकारों में लखन ने हटसन, लाग, डॉ० आयर वाम्पटन रिचर्ड स्टफ्ट ए० शुक प्रमति अंगरेजों के साहित्य इतिहास से ही प्रभाव ग्रहण किया है। डा० वर्मा की पद्धति इनसे ही प्रभावित दीखती है। 'विषय प्रवेश' में ही वे हिन्दी पर अंगरेजों के व्यापक प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि 'अंगरेजों के साहित्य का प्रभाव न हिन्दी साहित्य का अनेक दिशाओं में विकसित होने की प्रेरणा दी। कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना तथा उपन्यास साहित्य की रचना में अद्भुत प्रगतिशीलता आई।'<sup>3</sup> डॉ० वर्मा के अनुसार रहस्यमय कविताओं के दो प्रमुख आधार हैं प्रथम आधार धार्मिक विचार धारा का है और दूसरा पाश्चात्य भावधारा का जिसके

१ उपरिष्ठ पृ० ३।

२ उपरिष्ठ पृ० ४।

३ उपरिष्ठ, पृ० ५२।

अतमन 'अंगरज' के युगांतरकारीन कवि शैली', काटस, दायरन आर वड स्वध का रचनाएँ तथा विश्वकवि श्री. रवा-द्रनाय ठाकुर का काव्य पुस्तकें आता ह।<sup>१</sup> समाप्तावना के क्षेत्र म भा. पश्चिम का यागदान उल्लेखनीय रहा है। वस्तुत मिश्ररघुओं के युग स निकलकर हिंदी की आधुनिक समीक्षा-पद्धति पश्चिम की समाप्तापद्धति का ही अनुसरण करती रही है।<sup>२</sup> स्वयं डॉ० वर्मा ने पाश्चात्य गवपणाआ आर अयक साहित्य-मयन के पश्चान पाश्चात्य मनीपियो द्वारा उपलभ्य तय्यामृता के विनियोग से अपने विवचन को समृद्ध किया है।<sup>३</sup>

सत कबीर म डॉ० वर्मा न कवि क काल निर्धारण के लिए पाश्चात्य इतिहासकारा से प्रचुर सहायता ली है और कबीर तथा मिक्दर मोन्नी के समय के मवध म मिन्न मिन्न पाश्चात्य इतिहासकारों द्वारा दो गइ निधियों को एक सात्विका म उपस्थित किया है।<sup>४</sup> 'कबीर का रहस्यवाद' म कहीं-कहीं बमाजा का आलोचना एव गद्य शली इतिहासकार की वस्तुनिष्ठ इतिवृत्तात्मक शैली म मिन्न भावुकता एव मदुता से ओत प्राप्त हो उठी है। इस सवध म निम्नलिखित पक्तिया उद्धृतव्य हैं

रहस्यवाद की विवचना अत्यंत मनारजक हान पर भी दुसाध्य है। वह हमारे सामन एक गहन वन प्रात की भाति फना हुई है। उमम जटिल विचारा का कितनी काली गुफाएँ ह कितना शिलाएँ ह ! उसकी दुगमता देवकर हमार हृदय का निवल व्यक्ति धक्कर वठ जाता है। सागर के समान इस विषय का विस्तार विश्व-साहित्य मर म फला हुआ है। न जाने कितन कवियों के हृदय स रहस्यवाद की भावना निचर की भाति प्रवाहित हुई है।<sup>५</sup>

रहस्यवाद की परिमाया और विवेचन पर पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट है। उदाहरणार्थ बमाजी की इन पक्तियों को लीजिए —

अत म वह सीमा इस स्थिति को पहुँचती है कि भावो माद म वस्तुआ

१ उपरिचत, प० ५३ ।

२ उपरिचत, पृ० ५५ ।

३ उदाहरणार्थ, दे० हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प० ५२०-५२३ ।

४ डा० रामकुमार वर्मा, 'सत कबीर' (इलाहाबाद, १९५७), प० ४५ ।

५ डा० रामकुमार वर्मा 'कबीर का रहस्यवाद' (इलाहाबाद, १९६१), प० ६ ।



आइडियलिज्म एण्ड मिस्टिमिज्म, पुलन रचित द ग्रेसन ऑन इण्टरियर प्रेयर आदि का भी उपयोग किया है। रहस्यवाद क भिन्न भिन्न पक्षा के स्पष्टीकरण क क्रम में उन्होंने जा विभिन्न उदाहरण दिये हैं वे केवल कवीर की रहस्यवादी कविताओं से ही नहीं लिय गए हैं। जान हवट कालरिज टामसन प्रमति पाश्चात्य कविता की प्रमगानुवल पवितया क। उद्धृत कर थ अपन विषय का अधिकाधिक स्पष्ट करत तथा उसे उचित परिप्रेक्ष्य में दखत लिखत ह।

रहस्यवाद पर डॉ. र. ग्रेगरेजी, श्रीर हिंदी में कई प्रामाणिक एव महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन हुआ है।<sup>१</sup> आचार्य परशुराम चतुर्वेदी-कृत 'रहस्यवाद' अधुनानत प्राच्य प्रतीच्य ज्ञान का अपन विवचन में समाहित कर एक सतुलित नमोर्न दष्टि में उपस्थित करता है। डा० राममूर्ति त्रिपाठी की पुस्तक<sup>२</sup>

- १ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, 'रहस्यवाद (पटना, १९६३), पृ० ९ (प्रस्तावना)।
- २ डा० राममूर्ति त्रिपाठी, 'रहस्यवाद' (राजकमल, १९६६)। त्रिपाठीजी के "रस विमर्श" (१९६५) में प्राचीन एव आधुनिक साहित्य मनीषियों के रस विषयक सिद्धांतों का आकलन एव समीक्षण है। इसमें उन विचारकों के रस-संबंधी सिद्धांतों का भी आकलन है जो पाश्चात्य मनोविज्ञान से प्रभावित हुए हैं और जिन्होंने रस-तत्त्व की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। "रस विमर्श" रस-संबंधी विवेचनों का महत्त्वपूर्ण इतिहास है। नन्ददुलारे धाजपेयी के शब्दों में "यह पुस्तक रस तत्त्व का संपूर्ण ऐतिहासिक इतिवृत्त विवेक्षात्मक पद्धति से प्रस्तुत करती है। (रस विमर्श, धाराणसी, १९६५, पृ० ६) इसमें रामचंद्र गुप्त, डा० छलविहारी गुप्त, डा० नगेन्द्र आदि आचार्यों की रस विषयक स्थापनाओं का विवेचन है जिसके अनुशीलन से हम इन लेखकों पर पड़नेवाले पाश्चात्य मनोविज्ञान के प्रभाव की गहराइयों को माप सकते हैं। गुप्तजी पर मनोविज्ञान का गंभीर प्रभाव था जिसके कारण उन्होंने रसानुभव की शास्त्रीय मायताओं को स्वीकार नहीं किया। रसानुभूति की अत्यधिक व्याप्ति मान लेने के कारण ये शास्त्रकारों की भांति सबथा आत्मानंद के निरावन प्रमाणानंद मय रूप को नहीं मानते। वे उस लोकांत मात्त्विक अनुभूति से पर्यक्त मानने को कथनवि प्रस्तुत नहीं हैं। डा० छलविहारी गुप्त ने "साइकोलॉजिकल स्टडीज इन रस" के पूर्वार्द्ध में काव्य की प्राच्य प्रतीच्य परिभाषाएँ प्रस्तुत करते हुए दिखाया है कि उनमें अधिकांश ऐसी हैं जो "आनंद"

विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोण से लिखा गया है। दार्शनिक दृष्टिकोण से लिखा गया डा० रामनारायण पाण्डेय का ग्रन्थ प्रथम<sup>१</sup> रम्यवाक्य विषयक पाश्चात्य चिन्तन से प्रभावित है। उदाहरणार्थ उर्ली इन पंक्तियाँ का स—

अज्ञान की इस विषय परिस्थिति न जा दृढात्मन मन स्थिति हो गई है उन हम आत्मा की अंधकारमय रात्रि का (Dark Night of the Soul) स्थिति वह समन हैं। इन स्थिति के पश्चात् साक्षात्कार हुआ है।<sup>२</sup>

सट टरीजा, सट जान आन द ग्रास आदि की रचनायाँ भी इस अंधकारमय मन स्थिति का बड़ा ही ममस्पर्शी वर्णन मिलता है। (अण्डरलि त की पुस्तक मिस्टिसिज्म के नव अध्याय का शीर्षक है—'द डार्क नाइट आन द साउल'। पाण्डेय जी, इस पुस्तक से परिचित हैं और अपने प्रथम म उद्दान डमकी आर सकेत भी किया है।) समस्त अण्डरहिल क माध्यम से ही पाण्डेयजी इन रहस्यदर्शी ईसाई सता के विचारों से अवगत हुए हैं।

डा० वर्मा के तत्त्वामिनिवेशी आलाचक न रम का ही मूल्यांकन का कालातीत मानदंड माना है। उसके पाश्चात्य वादमय के सम्यक् ज्ञान का परिचय साहित्यशास्त्र और 'साहित्य समालोचना जसी पुस्तक के अनुशीलन से मिलता है। साहित्य शास्त्र न भूमिका के स्थान पर डाक्टर सायब ने अपने दृष्टिकोण का स्वरुप प्रस्तुत की है। उनके अनुसार सस्कृत और अँगरेजी दोनों से ही हिंदी साहित्य प्रभावित हुआ है। सस्कृत ने जीवन के यथाथ को जवन क आदेश न अनुस्यूत कर लिया है और अँगरेजी साहित्य ने जीवन के आदेश का अनुवाद वस्तुवाची दृष्टिकोण लेकर यथाथ न कर दिया है। आज जब हिंदी साहित्य की समीक्षा की जाती है तो कभी हमारा दृष्टि सस्कृत के आचार्यों की ओर जाती है कभी पश्चिम के समीक्षकों की ओर।<sup>३</sup> डा० वर्मा यह भी जानते हैं कि हिंदी-

या "वाचानद" का उल्लेख करती है। उन्होंने "वाचानद" की पूर्वी और पश्चिमी व्याख्याओं को भी ऐतिहासिक अनुक्रम में रखने का प्रयास किया है। उनके विवेचन की मूलदृष्टि सधन अनुभवाश्रित तथा मनोवैज्ञानिक है। डा० नगेन्द्र आर्से० ए० रिचर्ड से प्रभावित होने के कारण वाचानदवाद की स्वच्छदतावादी अथ समीक्षका की भाँति अनिवायत आनन्दमयी चेतना स्वीकार करते हैं।

१ डॉ० रामनारायण पाण्डेय, 'भक्तिकाव्य में रहस्यवाद' (दिल्ली, १९६६)।

२ उपरिचत, प० ४४।

३ डॉ० रामकृष्ण वर्मा, 'साहित्य शास्त्र' (प्रयाग, १९५६), प० ४।



रचनाओं में पाश्चात्य ज्ञान की जोर विचारणा का अत्यन्त उन्मत्त हुआ है। छायावादियों द्वारा प्रयुक्त अन्तर्-पाश्चात्य दृष्टि के स्थान पर उनका रचनाओं में सचन एका आभास होता है कि उन्होंने अपने जीवन-दृष्टान्त एवं नयी निरखरी गली का पाश्चात्य प्रभावात् अल्पकाल रचन का यथाशक्य प्रयत्न किया है। इस प्रयास के मूल में बदायिनी उनकी यह मुनिप्रति धारणा है कि हम विश्व भर से परिचय की यात्रा में निकलने के पहले यदि अपने देश के हर कान से परिचित हो लें, तो इस गुण गुण ही मानना चाहिए।<sup>1</sup> इन कारण उन्होंने 'अपरिचय के समद्वार आशका के वादला में अपने सवल्प-पथ को विस्मृत हान नहीं दिया है प्रत्यत यह प्रयत्न किया है कि अपरिचय परिवय में जोर 'जागका ऐस आत्म विश्वान में परिणत हो जाय जिसका मूलाधार स्वदेश की पुरातन परंपराओं एवं चिरतन सन्मृति का गहन अद्यतन जान है।

फिर भी महादेवीजी का रचनाओं में निकायगत विरोधता का एकत्रण नया जाता है जो उन्हें छायावाद के अर्थ कविता एवं पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी धारा से संबद्ध करता है। उनकी कारयिनी प्रतिभा अपने देश के सांस्कृतिक आवेष्टन में है। स्वतंत्र रूप से विकसित हुई है जोर उक्त पर भारतीय परंपराओं के ही प्रभूत बिल्ल अंकित है। इसलिए उनकी समीक्षाओं पर पाश्चात्य प्रभाव का अनुमधान बहुत अगा में निरर्थक सिद्ध होता है। उनकी काव्यगत भाव्यताओं जोर स्वच्छन्दतावादी विचार धाराओं में जो साम्य दीखता है उसका ही विवेचन यहां सभव है महादेवी के चिंतन में उन अंतर्-प्रतिष्ठित पराक्ष एवं नगण्य तत्त्वा का नहीं जो पाश्चात्य साहित्य और दशन से उन्मत्त हैं।

### मौलिक रोमाण्टिक समीक्षा

महादेवीजी के समीक्षात्मक निबंधों के अनुशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि वे ईश्वरन्या कथिता हैं न कि सूक्ष्म एवं कानानिक विश्लेषण पर आधारित आलोचना। अपने सिद्धांतों और निष्कर्षों का अधिजाधिक प्रामाणिकता देने के लिए उन्होंने सामयिक या प्राग्भूत साहित्यकारों की रचनाओं से उदाहरण देकर ऐसी कवित्वमयी उपमाएँ प्रस्तुत की हैं जिनमें प्रयुक्त विम्ब प्रतीक आदि नैतिक आदर्शों से संबद्ध होते हैं। इन उपमाओं से कभी-कभी ऐसा आभास होता है कि

१ महादेवी, 'साहित्यकार की आस्था तथा अर्थ निबंध' (इलाहाबाद, १९६६), पृ. २०५। ("महादेवी का विवेचनात्मक गद्य" के नाम से इस पुस्तक के कतिपय निबंध पहले प्रकाशित हो चुके थे।)





यह प्रगीता के लिए ही उपादेय ठहरती है और उनका सिद्धांत छाटे-भाटे छायावादी गीता के लिए ही प्रयोज्य दीरत हैं, वृहत् प्रवधा, महागव्या एव नाटकीय रूतिया के लिए नहीं ।

वड स्वय और शेली की प्रतिध्वनि

'यामा म अपनी बात' कहन के प्रम म उहान एक स्वय पर तिरता है कि 'पहले बाहर गिलने वाटे फूट' का देगकर मेर रोम राम म ऐसा भुत्क दौं जाता था मानो वह मेरे ही हृदय म खिला हा, परतु उसके अपने स भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव म एक अयमत वेदना भी थी, फिर यह सुख दुख मिश्रित अनुभूति ही चिंतन का विषय बनन लगी और अत म अब मेरे मन ने न जान कैसे उस बाहर भीतर म एक सामजस्य सा ढूढ तिया है जिसने सुख दुख को इस प्रकार वुन दिया कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास भित्ता रहता है ।<sup>१</sup> यहा यह कहना यायसगत नहीं जंचता कि इन पकितयाको लिखते समय लेखिका के मन म वड स्वय का एक ऐसा ही कथन बतमान रहा हागा, परतु इसम सदेह नहीं कि इनम वड स्वय की निम्नलिखित पकितया का ही भाव प्रतिध्वनित है । वड स्वय न कहा है 'कभी-कभी मैं यह सोचन म असमय था कि बाह्य पदार्थों का मुझसे बाहर भी कोई अस्तित्व है और मैंने उन सभी चीजा के साथ सम्पक स्थापित कर लिया था जिह में देखता था, मानो वे मुझसे पथक न होकर मरी अमूत आत्मा म ही सयोजित हा । कितनी ही बार स्कूल जात समय पेड और दीवाल पकडकर मैंने आदश के इस गभीर गत से निकलन तथा यथाय की ठोस भूमि पर आन की कोशिश की है ।'<sup>२</sup> हवट रीड ने इन पकितया से यह निष्कर्षित किया है कि वड स्वय बाह्य जगत् और अपने आप मे कोई वभिन्न नहा दखता था । इस मनोवत्ति मे उस धोर सघर्ष करना पडा था और इस कारण उस

१ महादेवी वर्मा, 'यामा' (इलाहाबाद, १९३९), पृ० ४ ("अपनी बात") ।

२ I was of ten unable to think of external things as having external existence and I communed with all that I saw as something not apart from but inherent in, my own immaterial nature Many times while going to school have I grasped at a wall or tree to recall myself from this abyss of idealism to the reality Grosart III 194 5 Quoted by Herbert Read *Wordsworth* (London 1958) p 124

चान्त्विक जगत् को अपन लिए उतना ही ययाय बनाना पडा जितना वह उसे ऐना बना सकता था ।<sup>१</sup>

हवट रीड ने बड स्वय के सिद्धाता के सबध म कहा है कि वे उसकी सवेदनाआ पर ही आघत थे ।<sup>२</sup> स्वय बड स्वय ने 'लिरिकल वैल्डम' की भूमिका मे कहा है कि कवि 'अपन राग और अपने सकल्प मही प्रपुलित्त रहता है, अपन अतस् म विद्यमान जीवनके प्राण-तत्त्व म वह अन्याकी अपेक्षा अधिक रस लेता है और सट्टि के निया कल्प म जो वसे ही सकल्प एव राग दट्टिगोचर होत हैं उनका विचार कर वह हपित हाता है—जहा वे नही होत, वहा स्वभाववश वह उनकी सट्टि करन के लिए वाय होता है ।'<sup>३</sup> महादवीर्ज के साहित्यिक सिद्धात भी उनकी अनुभूतिया से ही निस्तत हुए हैं और उनकी सबदनाआ पर ही आश्रित है । उनकी कविता म बुद्धि 'हृदय स अनुगासित' नही होती, बल्कि उनकी समाक्षा भी हृदगत आवेगा से ही उदभूत हाती है और गायद ही कही 'बुद्धि' स अनुशासित विवेचित जान पडती है । उदाहरणार्थ— छायावाद' शीपक निवध का आरम्भ इन पवितया से हाता ह

अपन मूल्य का वगान के लिए दूनरा का मूल्य घटा दना यदि हमारे स्वभावगत न हा जाता ता हमन उस गगरणयुग का अधिक महत्व दिया हाता जिनकी उत्र वाण। ने पत्ते पत्त एक स्यायी बबडर स उनके लहय का नाम पूछा जिसकी पनी दट्टि न पहल बडकर

१ 'Wordsworth wa unable to distinguish between himself and the external world He therefore struggled against this mental tendency and to do this he had to make the actual world as real as possible Herbert Road, *op cit*

२ His theories were grounded on his own sensations *ibid*, p 125

३ The poet he says in the preface to the *Lyrical Ballads* is a man pleased with his own passions and volitions and who rejoices more than other men in the spirit of life that is in him delighting to contemplate similar volitions and passions as manifested in the goings on of the Universe and habitually impelled to create them where he does not find them *ibid*



महादेवी के अनुसार 'जीवन की गहराई की अनुभूति के कुछ क्षण होते हैं वय नहीं।'<sup>१</sup> तत्त्वतः इस प्रकार की धारणा रोमांटिक है और क्षणिक अनुभूतियाँ पर आश्रित प्रगीता का रचना का मूलाधार हैं। छोटी आरपोप में भी इस धारणा की विंगद अभिव्यक्ति हुई है। शैली न कहा है कि विचारों और भावों की क्षणिक उदभावना होती है—बसो व किमी स्थान अथवा व्यक्ति से सम्बन्धित हात है, कभी अपने ही मन में सम्बद्ध। वजनायाम जाते हैं और सहसा विलीन हो जाते हैं ।<sup>२</sup> यही प्रेरणावाले रोमांटिक सिद्धांत का धुर मूलाधार है जिस आभिजात्य समीक्षक स्वाकार नहा करता। अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैंड में नव्यशास्त्रवादियों ने लंबी लंबी कविताएँ लिखीं या और प्रेरणावाले सिद्धांत का निराकरण किया था, परंतु रोमांटिक युग में पोने पराडाइज लॉस्ट' जस। रम्बी कविताओं का छाटी आटी कविता का सुश्रुत रूप कहा और केवल लघुकाव्य एवं प्रगीता की ही अस्तित्व का स्वीकार किया।<sup>३</sup>

नतिक मूल्या की स्थापना करनेवाले कविया तथा शिक्षाप्रद काव्य के रचयिताओं का सवय में महादेवीजी न कहा है कि विधि निषेध की दृष्टि से महान् कलाकार के पास उतना भी अधिकार नहीं जितना चाराह पर सड़े मिपाही का प्राप्त है। वह न किसी को जादेग दे सकता है और न उपदेग, और यदि दन की नानमयी करता भी है ता दूसर उमे न मानकर समनदारी का परिचय देते हैं। काव्यकार का एकमात्र वस्तव्य अपनी अनुभूतियाँ की यथावत अभिव्यक्ति है,

१ उपरिबत, प० ३८ ।

२ We are aware of evanescent visitations of thought and feeling sometimes associated with place or person sometimes regarding our own mind alone and always arising unforeseen and departing unbidden Shelley *A Defence of Poetry* vide Lieder and Withington *The Art of Literary Criticism* (New York 1941) p 466

३ Thus great work (i.e. Milton's *Paradise Lost*) in fact is to be regarded as poetical only when losing sight of that vital requisite in all works of Art, Unity we view it merely as a series of minor poems

*The Poetic Principle* see Lieder and Withington *op cit*

४ सा० आ० अ० नि०, प० ४१ ।

हिंदी के कवि-आलोचकों की समीक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव - ४५६

'हृदय की कथा' रचना है। काव्य-द्वारा प्राप्त मानवजीवनी कल्याणमूर्ति का विषय म महादेवीजी न बना है कि कौन पुनारत का नाडता मगत हा देगा, परतु कल्याणर विता नाडता पुनर की पीडा त्रिव हूण ही उमरा कमा की तीव्र मधुर अनुभूति दूगर तत पहुँचात म ममय है।<sup>१</sup> ताम्यानुभावा म ताम्यः तरुण भाव हा तहा ह्योन्त्या भा मभक्ति हाता है। मनीमता पीता द्वारा उभाविता 'सत्तार जीव' कल्याण का विराध अवका यगरत मटीकतो है ही, ताव ही उ छायावागी मनारति का भा सात करता है। 'कौन', 'पाता', 'कमक' ताम्रमधुर अनुभूति आति सायावागी काव्य एव काव्यालाता क लिए अनुपेक्षणीय शत ह। इसी प्रकार क स्वय कीटा मनी कायम ता कविताभा म तरुण रवाजापगियात हुआ है कगा रिगा क्षय ताव्याभूता रत का नहा। इन कविता का भावति ता प्रतिपत्त कीटा मी द्र पक्तिता म होता है

Pleasure is oft a visitant but pain

Clings cruelly to us

(*Erdynion* 1 505)

स्वच्छन्दतावादी कवि की यही सामान्य चित्तवृत्ति (मूड) होती है अपनी अति क्षय कोमल मधु सवेदनगालता जात अनुपलब्ध आदमी के कारण वह सत्य ध्रुव अनुपल एव मर्माहत रहता है। उत्तम अश्रुत मधुर संगीत क प्रति आवपण रटता है<sup>२</sup> उसम उत्त सौंदर्य क प्रति अतिगम राग हाता है जो नश्वर है।<sup>३</sup> मुख सताप क मंदिर म ही अवसाद विषाद का पुण्यस्थान हाता है<sup>४</sup> इसलिए इम सत्तार म काई साचे विचार भी तो कस ? यहाँ साधना ही चित्ताडंग का

१ उपरिक्त। द्रष्टव्य "जीवन के उष काल मे मेरे सुखो का उपहास सा करती हुई विश्व के कण कण से एक करुणा ली धारा उमड पडी है" (यामा, प० १३, "अपनी बात")।

२ Heard melodies are sweet but those unheard  
Are sweeter (*Ode on a Grecian Urn* 11)

३ She dwells with Beauty—Beauty that must die  
(*Ode on Melancholy* 11)

४ Ay, in the very temple of delight  
Veiled Melancholy has her sovran shrine  
(*Ibid*)

कारण बनता है।<sup>१</sup> इसी प्रकार यहाँ यह भी कह देना सर्भीचीन जँचता है कि कीट्स ने महादेवी के पहले ही उपदेगात्मक काव्य का निम्नतर स्थान दिया था और कहा था कि दर्शन तो देवहूता के भी पत्नी को बाट डालने की सामर्थ्य रखता है।<sup>२</sup> महादेवीजी के मतानुसार अनुभूति बुद्धि से श्रेष्ठतर होती है, इसलिए अनुभूति से उदगत काव्य बुद्धि पर आश्रित दान से श्रेष्ठतर होता है। इसी प्रकार 'यामा' की 'अपनी बात' में उन्होंने स्वीकार किया है कि वेदना उह अत्यंत मधुर लगती है और 'किवत्' दुःख ही गिनते रहना उह बहुत प्रिय है।<sup>३</sup>

महादेवी की अथ स्वच्छन्दतावादी धारणाएँ

जान कीट्स के इस कथन में कि 'एक्सिअम्ज इन फिलासफी आर नाट एक्सिअम्ज अण्टिट द आर प्रूव्ड अपान आवर पल्सेज', अनुभूति का ही कीर्तिगान है। महादेवी के अनुसार भी 'कवि का वेदान्त तब जब अनुभूतिया से रूप, कल्पना से ग और भाव-जगत से सौंदर्य पाकर साकार होता है', तभी उसके सत्य में जीवन का स्पन्द मिलता है, बुद्धि का तब शृंखला नहीं।<sup>४</sup> शेली ने 'प्रमीथियस अबाउण्ड' की भूमिका में उपदेगात्मक रचनाओं के प्रति अपनी घणा चापित की है।<sup>५</sup> ए० सी० ब्रडले और आर० टर्न्यू० इससे न सहमत न भी यह स्वीकार किया है कि कवि का लक्ष्य किसी का आदेश या उपदेश देना नहीं है। अद्यतन कविता और आलोचकों में ए० डे० लूइस ने कवि का एक अत्यंत सवेदनशील मन (अथवा उपकरण) माना है कोई नैतत्वक्षम व्यक्ति नहीं। द पायटस टग' व प्राक्कथन में टर्न्यू० एच० अँटोन ने स्पष्टतः इस बात की घोषणा की है कि

१ Where but to think is to be full of sorrow

(*Ode to a Nightingale* iii)

२ Philosophy will clip an angel's wings

(*Lamia* 11 234)

३ यामा, प० १२ (अपनी बात) ।

४ सा० जा० अ० नि०, प० ४२ ।

५ Dilactic poetry is my abhorrence nothing can be equally well expressed in prose that is not tedious and so superogatory in verse

६ The poet is a sensitive instrument not a leader *A Hope for Poetry* 1936

‘वाक्य की ऊची-ऊची हिमालय श्रेणियाँ के बीच में गानिमुक्तर एन ताग कामल मेघखंड है जो न उनस दबानर टूटता है और न बँधनर रचना है, प्रत्युत हर निरण स रगस्तान हाकर उनत चाटिया का शृंगार कर ताता है आर हर थाक पर उड उड कर उस विशालता का वान वान में अपना स्थान पट्टेनाता है।<sup>१</sup> स्वच्छद-तावादा अंगरज कवि इन उक्तियाँ का समयन करत क्यारि उनके भी गीत आत्म-निवदन मात्र और कयकिनर अनुभूति पर आश्रित हात हैं। उदाहरणार्थ, विगुद्ध साहित्यिक समीक्षा स महादवी की निम्नलिखित पक्तियाँ का सबध अत्यल्प, किन्तु आत्मकथा रचना से अत्यधिक है

(१) दासशिखा में मरी बुद्ध ऐसी रचनायें सप्रहात है जिन्हें मैं रगरेखा की घुघरा, पण्डभूति दन का प्रयास किया है। समा रचनायाँ का ऐसी पाठियाँ दना न समझना है आर न रचि-कर अन रचनाक्रम की दृष्टि से यह चित्रगीत बहुत प्रियर हुए ही रहेंगे। शशव ही स मैं गीता के सस्कार में पला हूँ। मा की भावमरी गीताजलिया घर में जम आरि शुभ अवसरा पर गाई जानेवाला गीति कथाय परिवारका के अनु पव आदि स सबध रखनवाल लाक-गीत कलाविदा का ध्वनि-संगीत प्राचीन गान और सत्य द्रष्टाओं के वेद छंद माधुय भर सम्झन और प्राकृत पद और पिछने अनक वपों में सुन सहज ग्रामगात, सर्मी के प्रति भरा स्वभाविक आकषण रहा है। इस गीत-परपरा के सबध में कभी विस्तार से कहने की इच्छा है। इस समय तो इतना ही पर्याप्त होगा कि भर गीत अध्यात्म के अमृत आकाश के नीचे लोक-गाता की धरता पर पले है।<sup>२</sup>

(२) मरा प्रत्यक्ष जान मरी कल्पना के पीछे सदा ही हाथ बाधकर चलना रहा है इसी स जब रातनि होने का प्राकृतिक कारण मुझे जात न था तब सध्या से रात तक बदलनवान

१ दीप शिखा (इलाहाबाद, १९४२), प० २० (‘चितन के कुछ क्षण’)

२ उपरिखत। इस प्रकार की पक्तियों में स्वच्छदतावाद की जिस प्रवृत्ति का प्रतिफलन हुआ है उसे पाश्चात्य समीक्षक “नासिसिज्म” अथवा “लिटररी इगोटिज्म” कहेंगे। ब्लेक, रूसो, गेटोविद्या, वड स्वयं, बायरन, ह्यूगो प्रभृति रोमांटिकों में इस प्रवृत्ति का प्रचुर समाहार है।

आकाश के रंग भ मुझे परिया का दशन होंन लगा था जत्र  
 मया के वनन का क्रम मेरे लिए अनेय था तर्न। उनके बापनन  
 न िवाई देनवानो आट्टिनियो का मैं नामकरण कर चुना  
 था। और जत्र मुझे तारा का हमारी पृथ्वी स बडा या उसके  
 समान होना बता दिया गया था तत्र भी मैं रात भ अपन  
 आंगन मे आभा प्यार तारे आभा, मरे आंगन म विछ  
 जाओँ गा-गाकर उन महान् लाका को नीचे बुलान म नही  
 हिचकिचानी थीं । १

इन पवित्रया मे न किम। मिद्धात का प्रतिपादन हुआ है आर न नये निवप ही  
 निर्मित हुए हैं। यहाँ न किम। कला-कृति की समीक्षा की गई है और न किसी  
 कलाकार का बन्धुनिष्ठ परिचय ही प्रस्तुत किया गया है। यहाँ लेखिका का लक्ष्य  
 'आत्म निबदन' प्रस्तुत करना है कलाकारो और उनकी कृतियो का समीक्षण-  
 परीक्षण प्रस्तुत करना नहीं है। परतु प्रमाता का लेखिका के बचपन से उतना ही  
 मद्रव है, जितना उस बचपन का जान उसरी कृतिमा के कलात्मक तत्वो को  
 प्राप्तामित करन मे समथ होना है। यह भी स्मरणीय है कि बचपन का गुणगान,  
 बिान दिनों की यात् और शशव क निर्दोष जीवन के प्रति अगाध प्रेम रोमाटिक  
 चित्तवति से उदभूत माने गए हैं। जहा नव्यशास्त्रवादी कवि एव समीक्षक शिशु  
 का अविक्मिन पुरप' (undeveloped adult) मानत थे, वही रामाटिक कवि  
 और समीक्षक शशव म दिव्य गुणा का आरोरण करत हैं।<sup>१</sup> पोप ने ऐम्ब्रोज  
 फिनिष् की शर्ली का 'बालकीय (इन्फटाइन) शर्ली कहा था और उसकी  
 शशव-भवर्षी कविनाप्रा तथा बालवत शर्ली के कारण लोग उसे नेम्बी-नेम्बी कहन  
 लगे थ। यदि अठारहवी शर्ली म इगलड का वाई कवि बच्चो के सवध म लिखना  
 चाहता था तो उसे मध्यू प्रायर की तरह लिखन का परामश दिया जाता था।  
 अपन एव पत्र म जा Honourable Lady Miss Margaret-Cavendish-  
 Holles-Harley के नाम लिखा गया था, प्रायर ने कवियों को पय प्रदशन  
 करत हुए लिखा था

My noble lovely little Peggy

Let this my first epistle beg ye

१ यामा, पृ० ७ ("अपनी बात") ।

२ James Sutherland *A Preface to Eighteenth Century Poetry* (Oxford 1950) p 3



At dawn of morn and clos- of even,  
 To lift your heart and hands to heaven  
 In double beauty say your pray'r,  
 Our father first then *notre pere* <sup>1</sup>

अठारहवीं शती के कवियों के विपरीत ब्रेक और बड स्वथ की कितना ही कविताएँ निर्दोष शशव के गीत हैं।<sup>२</sup> इन की युद्ध जनित पान का निर्दोष बाल्यावस्था का शत्रु कहा गया है। इनके भावों की प्रतिध्वनि कवियों के इन शब्दों में सुनाई पड़ती है

विशोरता जीवन का वह वर्षाकाल है जो हर गढ़े को भर कर धरती को तरल समता देना चाहता है हर चीज को उगाकर धूल को हरा भरा कर देने के लिए आतुर हो उठता है। पर वह जडा को गहराई देने के लिए नहीं रुकता, तट बनाने का नहीं ठहरता। इसके विपरीत प्रौढता उस गरद जसी रहेगी, जो जल को तट देती है, पर सुलाकर रत भी कर सकती है अच्छे अकुरा को स्थायित्व देती है पर विपली जडा को भी गहराई दे सकती है। साधारणतः किशोर अवस्था में स्नह के स्वप्न कोमल और जीवन के आदर्श सुन्दर ही रहते हैं—उनमें न वासना की उत्कट गंध स्वाभाविक है और न विकृत मनावृत्तियों की पकिलता।<sup>३</sup>

ध्यातव्य है कि ब्लेक, बड स्वथ, कोलरिज और वायरन न बाल्यावस्था तथा कौम्य के बद्धावस्था से श्रेष्ठतर घोषित किया था और जहाँ बूढ़ापे की विकृत मनोवृत्तियों में पकिलता पायी थी, वही किशोरावस्था के स्नह-स्वप्न में कोमलता के दर्शन किए थे। कोलरिज ने अपनी युवावस्था के सबंध में कहा है

Verse a breeze mid blossoms straying  
 Where Hope clung feeding like a bee—

१ उपरिक्त, प० ४।

२ Songs of Innocence Cf Many of these writers were in fact rather too anxious to recapture the visionary gleam, the 'clouds of glory of the Heaven that lies about us in our infancy' F L Lucas *Literature and Psychology* (1957) p 105

३ दीपगिजा, प० १९-२० ("चित्तन के कुछ क्षण")।

Both were mine ! Life went a maying  
 With Nature, Hope, and Poesy  
 When I was young !  
 (*Youth and Age*)

युवा की निष्ठुरता और 'पकिलता' से व्यथित हो बायरन विगत युवावस्था की  
 आमना के लिए तड़प उठता है

O could I feel as I have felt or be what I have  
 been

Or weep as I could once have wept o'er many a  
 vanished scene —

As springs in deserts found seem sweet all brack-  
 ish though they be

So midst the withered waste of life those tears  
 would flow to me !

(*Youth and Age*)

'यामा' और 'सप्तपथा' की 'अनो बात' में महादबीजी ने कहा है

(१) 'कितनी ही भिन्न परिस्थितियाँ मरने पर भी हम हृदय से एक ही हैं।  
 जीवन की एकता का यह छिपा हुआ सूत्र ही कविता का प्राण है।

(यामा प० ११)

(२) "किसी कवि की कृति के अध्ययन के समय उनकी अनुभूतियाँ के  
 साथ पाठक का जो तादात्म्य होता है, वह कभी पूर्ण कभी अर्धत पूर्ण जो कभी  
 अपूर्ण हो सकता है। इस तादात्म्य की मात्रा के 'यूनाधिक्य' पर केवल उसके  
 जपन आनंद की मात्रा का 'यूनाधिक्य' निर्भर है ।

(सप्तपथा प० ६६)

इनसे टॉल्स्टाय के प्रभाव का या समचित्तन से उत्पन्न स्याग का आभास  
 मिलता है। टॉल्स्टाय के संप्रेक्षण-संबन्धी सिद्धांत उनकी 'कला क्या है' शीर्षक  
 पुस्तक में प्रतिपादित हैं। टॉल्स्टाय के मतानुसार कला मूलतः कलाकार द्वारा,  
 अर्थात् अथवा पाठक के हृदय को समझित और समर्पित करने का साधन है।  
 सर्वोच्च कलात्मक अनुभूति का परिप्राहक कलाकार में इस प्रकार निबद्ध हो जाता  
 है कि वह कलाकृति को अपनी ही रचना समझन लगता है। सर्वोच्च कलाकृति  
 प्राहक की चेतना में उसके कलाकार के बीच के विभेद का नष्ट कर डालती है  
 साथ ही उनमें और अन्य कलापारक्षियों में कोई अंतर नहीं रहने देती। कला

की साक्षात्गति ही इसको परखने के लिए एकमात्र कसाटी है। यह सामगिकता जिनकी ही प्रबल होगी कलाकृति भी उतनी ही श्रेष्ठ होगी। इसलिए कलाकार म जब तक भावावगा की अभिव्यजना के लिए प्रबल उत्कठा अथवा तीव्र प्रेरणा न होगी तब तक उसकी कलाकृति उच्च काटि की न होगी। अनुभूति के जाजव और तीव्रता पर ही कलाकृति की श्रेष्ठता और कलाकार की गौरव गरिमा निर्मा होता है। इसके साथ ही अनुभूति की विशिष्टता और अभिव्यजना की प्राजलता भी सम्पन्न है।

महादेवी के कथनानुसार छायावाद के जन्म में प्रथम कविता के बधन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। १ रोमांटिक कविता का अवतरण भी एसी ही परिस्थिति में हुआ। आभिजात्यवादी काव्य में बधन एक अनुशासन का स्वीकृति दी गई थी रूप तत्त्व (फॉर्म) पर बल दिया जाता था और अभिव्यक्ति का उत्कृष्ट का आदेश बनाया गया था। कवि हृदय अपनी अनुभूतियों को धार्मिक देने के लिए उत्कृष्टित हो उठा। नवशास्त्रवाद में मानवा की सामाजिक समायन का अर्थ स्वच्छन्दतावाद के समथक उनका सभावनाओं का घनत अपार कहन लगे। नवशास्त्रवाद मनुष्य को उन मौलिक दार ( आग्निजिनकनिन ) में मुक्त मानता था जो ऐश्वर्य और शक्ति द्वारा की गई अज्ञान का परिणाम है। चूँकि संपूर्ण मानव ताति अज्ञान जाति-भूवज्जा में यतमान था उनके रूप इनका मूर्त घमनिया में जाज भी बनमान है। इन मतान्दित के विपरीत स्वच्छन्दतावाद मानव की अस्तिमित एक दुःसर्जन सामावनाओं का समायन करता है। जहाँ आभिजात्यवादी शिल्पिक मनुष्य का मूर्त सत्त्व कहता था वहाँ स्वच्छन्दतावाद उक्त मूर्त निर्णय घापित करता है। प्रथम की रायत्राति में प्रथम घट्ट करन के कारण उभ्राणवा तात की रोमांटिक चिन्तन धारा न रूपा के मातृकादुक्क में विवचिन मूर्त सान मिडाना का स्वीकार किया है और कहा है कि मनस्य का स्वच्छन्दता स्वभावन प्रिय हानी है।

राजधारी मित्र दिवकर' (१९०८-)

एकता पाठ्य और एमिष्ट का प्रभाव

आभिव्यक्तिगत आरव मन्-असाठ घण्य परिपक्व मान एक निर्मीत गुण-  
न्य विवचन का प्रभा परिगाह तितर का मीडानिक एक व्यावहारिक समी-

१ यामा प० ११ ।

४९८ = अष्टुतिष्ठ द्विती भाषोचना पर पाठ्याय प्रभाव

शास्त्री म मिलता है, वैसा पाश्चात्य समीक्षका म हवट रोड, एम्पसन, विल्सन नाइट प्रभृति लेखका की रचनाशा म ही दृष्टिगत होता है। दिनकर की व्यावहारिक समीक्षा न यह निद्वर दिया है कि कवि म अन्तर्हित समीक्षक वेवत अपनी ही रचनाशा पर मार्मिक जागचनाएँ लिखने म सफत नहा हाता वह वस्तुनिष्ठ भा हो सकता है और अपन मनसामयिका की उपलब्धिया पर वरस। ही वस्तुगत, स्वस्य निष्पक्ष एव सतुलित जालाचना लिख सकता है जसी प्राचीन साहित्यकारा की रचनाशा पर। शास्त्रीय समीक्षा एव परपरानुमायिता के मनयक म ही यह न मानें कि कवि-जालाचक उन आलोचका स श्रेष्ठ हाता है जा कवि नहा हात, पर यह सवमाय है कि सजन-प्रक्रिया के रहस्या का उद्घाटन जिनना कवि की समीक्षात्मक रचनाशा म होता है उतना बयन कही नहीं। दिनकरजी इम सजन प्रक्रिया से ही नहीं, साहित्य-समीक्षण क मम स भी बहुविध अवगत हैं जोर जानकीवल्लभ शास्त्री के लिए प्रयुक्त उनके ही शब्दा मे हम कह नकते हैं कि 'उनक निवध्या म आलोच्य कवि की कला बयवा कौशल का जसा रहस्य खुलता है वभा चमत्कारपूरा रहस्योद्घाटन हिन्दी की जालाचनाशा म कम ही हो पाता है।' वे वेन जाननन के इम बयन म सहमत हागे कि कविया का सच्चा मूल्यावन कवि ही कर सकत हैं—वह भा ऐम-बसे कवि नहीं, प्रत्युत प्रवीण एव उच्च कोटि के कवि ही।' जानकीवल्लभ शास्त्री रचित 'साहित्य-दगन के मूल्यावन के जम म उन्हांन कवि-आलाचका के सबध म अपनी मायताशा का उल्लेख किया है और कहा है

कविता की आलाचना भी कविता की ही तरह विज्ञान न हाकर गुड साहित्य है तथा किनी भी गुरु के लिए यह सभव नहीं है कि वह अपने शिष्यों म काव्यालाचन की शक्तियाँ मनमाने ढग म भर दे। कवि का सच्चा जालाचक वही व्यक्ति हा सकता है जिनम काव्यानन्द के उपभोग की पूरी क्षमता हा जो कवि की उस मनोदशा म प्रवेग पा सके जिसम रहकर उसन आलाच्य कविता की

१ 'हिमालय', अप्रल १९४६, प० ८४।

२ "टू जज ऑव पोयटस इज आल्सी द फवर्ली आव पोयटस, एण्ड नाट आव ऑल पोयटस, वट द बेस्ट। (Nemo infarlicius de Poe is judicavit quam qui de Poetis scripsi) डिम्बर, और डिस्क वरोज। देखिए जे० ई० स्पिगान, 'क्रिटिकल एसेज आव द सेवेटीन्य सेन्चुरी' (१९५७), भाग १, प० ५७।

रचना की है। सच्ची आलोचना केवल नीर भीर की विवचना नहा प्रत्युत उन समग्र कौशला का विश्लेषण है जिनके द्वारा काव्य म चमत्कार उत्पन्न किया जाता।<sup>१</sup>

दिनकरजी आलोचक को भी सजक और उच्च कोटि का भावक मानत हैं। आलोचक काव्यममन ही नहीं उच्च कोटि का ऐना साहित्य स्रष्टा होता है जा 'आलोचना के जरिये पाठक के आनन्द की वद्धि' करता है। वस्तुतः 'काव्य क सबध मे चर्चा सभी तरह के लाग किया करते है किंतु काव्य की उच्चतम कोटि की आलोचनाएँ केवल उही लोग ने लिखी है जो स्वयं कवि थे।'<sup>२</sup> इन स्थला पर दिनकरजी पाउड और एलियट के प्रभावित जान पडते हैं। आधुनिक युग म, पश्चिम म कवि-आलोचक का सबधेष्ट प्रतिनिधि एजरा पाउडहूआ है जिसक साक्ष्य के अनुसार हमे उन लोगा की समीक्षा पर ध्यान देना उचित नहीं जिहाने एक भी स्मरणीय कृति की रचना नहीं की। पाउड द्वारा प्रवर्तित परपरा का अनुसरण ऐलन टेट जान ओ रसम एलियट प्रभति कवि आलोचक। न किया है।

यद्यपि दिनकरजी ने अपन मत की पुष्टि के लिए कोलरिज और स्विनबन आनन्ड और एलियट का संकेत किया है जो अत्यंत प्रत्ययकारी है फिर भी इनमे के अधुनातन समीक्षक एलियट के ही सब धिक समयक दीखते हैं। माइकेल रावट म के इम कथन को के अपूण कहये कि "आलोचक का पहला कर्तव्य न प्रशंसा करना है न गहणा उसका कर्त्तव्य है कवि के भावाय एव रचना-कौशल का यकतीकरण एव विशकलन।"<sup>३</sup> इसके विपरीत 'द प।यटिक इमेज' के लेखक सी० डे० लूइस की यह धारणा उह स्वीकार्य होगी कि कविता के प्रति हमारी सवेदनाजा का सुगम ध्यापक अथवा गभीर बनाना ही समीक्षक का कर्तव्य है। इस काय को सम्पन्न करन के कितने ही ढग हैं, किंतु कोई भी समीक्षात्मक पद्धति इस काय को तब तक सतोपप्रद ढग से पूरा नहीं कर सकती जब तक समीक्षक म कविता और पाठक के प्रति श्रद्धा न हो।' ऐसा प्रतीत

१ 'हिमालय, अप्रैल १९४६, प० ८४।

२ उपरिवत, प० ८५।

३ 'द क्रिटिकल फस्त ड्यूटी इज नाइवर टु कडेम नार टु प्रेज, घट टु एल्यूसि डेट टेक्नीक एण्ड मीनिंग'। 'अ फ्रीटीक ऑव पोयटी' (१९३४)।

४ "द क्रिटिक हैज वन प्री एमिनेण्ट टास्क—द टास्क ऑव ईजींग ऑर वाइडनिंग आर डीपनिंग आवर रेसपांस टु पोयटी। देपर आर, ऑव

होता है कि दिनकरजी वनिपय अथ कवि-आलोचका एव सौष्ठववादी समीक्षकों की तरह आर्यर सायमम स भी प्रभावित हैं। इस कारण जहाँ उन्हान 'विशेषण' और नोर-क्षीर विवेचन' पर एलियट की भाँति बल दिया है वहाँ सायमस, पेटर आदि की तरह 'सरभता', समीक्षक म 'काव्यानुद के उपभाग की पूरी क्षमता', 'पाठका मे आनुद-सधार' जादि पर भी जोर दिया है। नवचित कदाचित् दिनकर के कवि न समीक्षक की इन मायताआ को प्रभावित किया है।

### "साकेत" पुनरुत्थान और दिनकर

दिनकरजी का पाश्चात्य भाषा साहित्य ज्ञान गभार एव व्यापक है। वे पश्चिम की प्रमुख साहित्यिक एव ऐतिहासिक विचारधाराआ स अवगत हैं<sup>१</sup> परतु इनम भी सर्वाधिक स्वच्छदतावाद से जिसका सवप्रथम उमेप उस नव-जागरणयुगीन मानवतावादी चिंतन म हुआ था जिसका सर्वोत्कृष्ट रूपाकन पेट-राक, बुकेचियो लियोनाडो द विंची वीवे वाटिचेली, मार्लो एव शेक्सपियर की रचनाआ और चित्रा म होना है। 'साकेत' म नवयुग का प्रतिबिंब देखत हुए उन्हान कहा है 'शयूक का वध कराते समय आदिकवि के हृदय म द्विधा

कोस, मेनी वेज आव पर्फामिग दिस टास्क। बट नो फ्रिटिकल मेथड विल सटिस्फक्टरीली पर्फाम इट, इफ देयर इज नाट रेसपेक्ट बोय फौर द पोपम एण्ड एण्ड फौर द रोडर।" सी० डे० लूइस, द पोपटिक इमेज, १९४७ (दे० ब्लाइव ससम, द वल्ड ऑव पोपट्री, लुदन, १९५९, प० १५८)

१ दे० 'शुद्ध कविता की खोज' (उदयाचल, पटना, १९६६) मे पश्चिम के अद्यतन साहित्यिक धावो का सूक्ष्म गभीर विवेचन। इस ग्रंथ मे प्रभाववाद, अतिपयायवान्, प्रतीकवाद, अभियजनावाद आदि का तथ्यपरक प्रामाणिक विवेचन हुआ है। लगता है, शुद्ध कविता की खोज के लेखक मे आलोचक की नसर्गिक प्रतिभा तो है ही, वह पाश्चात्य वाङ्मय मे उतना ही व्युत्पन्न है जितना हिंदी साहित्य मे। (यहाँ "अद्यतन" का प्रयोग जान बूझकर किया गया है। "नयी कविता का आन्दोलन यूरोप में लगभग सौ वर्षों से चल रहा है। आश्चर्य की बात यह है कि वह अब भी पुराना नहीं पडा है। उसके भीतर से बराबर नये आयाम प्रकट होते जा रहे ह, बराबर नयी चिनगारियाँ छिटकती जा रही ह।" शुद्ध कविता की खोज, पृ० ५, भूमिका), काव्य की भूमिका (पटना, १९५८), प० १०५ ११७।

या कहना नहीं जगी और चूँकि कवि का हृदय अविचलित रह गया इसलिए उसके पास म भी हिचकिचाहट नहीं आयी ।<sup>१</sup> उनके मतानुसार कवि का व्यक्तिव जीवन दशन उसके पात्रों के विचारों और गति विधि में प्रतिफलित होता है उनके विचारों और गतिविधि को संचालित करता है । कवि के भाव युग से पोषित, समन्वित और गहरीत होते हैं । युग स्रष्टा एवं विचारक भाव जगत में घाति घटित करते हुए युग को नया दशन एवं नयी दृष्टि देते हैं । इस दशन और दृष्टि से कोई भी सत्कवि बच नहीं सकता । वात्स्यिकी और भवभूति अपने युग की मायनाओं से उतना ही प्रभावित थे, जितना आधुनिक युग में मयिलीशरण गुप्त और प्रसाद भारतीय पुनरुत्थान, छायावाद एवं नवयुग की मायनाओं से प्रभावित हैं । नवयुग की मायनाओं पर पश्चिम के बुद्धिवाद, विज्ञानादि का प्रभाव पड़ा । इनसे स्वामी दयानंद प्रभावित हुए और दयानंद से—उदाहरणार्थ—गुप्तजी ।

चूँकि आलोचक दिनकर का भारतीय पुनरुत्थान यूरोपीय 'रेनेसांस' की ही भारतीय प्रतिवृत्ति है इसलिए गुप्तजी पर लिखी गई उनकी समीक्षा गत मालों और स्पेसर पर लिखी गई समीक्षा सी लगती है । भारतीय पुनरुत्थान का विश्लेषण यूरोपीय रेनेसांस की विनियताओं को ध्यान में रखकर किया गया है । दोनों आ-दोलना में निस्संदेह प्रचुर साम्य दीयता है । दोनों में बुद्धि की स्वतंत्रता और प्रवृत्ति भाग की उदघोषणा है तथा पौराणिक एवं मध्यकालीन सत्कारों का बहिष्कार । दोनों में मध्ययुगीन निवृत्तिवादी दशन के अधकार पर प्रकाश के वाण' बरसाये लोक को सत्य सिद्ध किया, कमठता की शिक्षा दी और परलोक की कल्पना में ग्रस्त रहनेवाले व्यक्तियों की उपेक्षा की । इसी अपूर्व साम्य के कारण जब दिनकरजी भारतीय पुनरुत्थान की विशेषताओं को प्रोदभासित करने लगते हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है कि वे यूरोपीय नवजागरण के बसिन्दे का ही उद्घाटन कर रहे हैं ।<sup>२</sup> उन्होंने जिस मूल प्रतिमान से ('कवि की रचनाओं में

१ दिनकर, 'पत, प्रसाद और मयिलीशरण' (पटना, १९६५), प० ११ ।

२ "गूढ़ों और नारियों के प्रति समाज में जो सम्मान के भाव बने ह, उनके कुछ मूल कारण पश्चिमी जगत के प्रजासाम्यिक विचारों एवं उदार भावनाओं के आयात भी ह । किन्तु, विशेषतः, नारियों के प्रति देग में जो औदाय आगत हुआ, उसकी प्रेरणा बुद्धि की स्वतंत्रता एवं प्रवृत्ति के उत्थान से ही आयी है । प्राचीन नतिकता ने जब अपना आसन सौंदर्य धोष के लिए खिसक दिया, तब नारियाँ का सम्मान किसी के भी रोके नहीं रक सकता

उमड़े युग और उसके विश्वासा एव धारणाओं का मूल प्रतिबिम्बन होता है') गुप्तजो के 'साकेत' को आँका है, उससे हम उनके विचारों को भी, कुछ हद तक परत नकन हैं। यदि वे साम्प्रतिक मानवतावाद से प्रभावित न हात तो 'साकेत' की रमीशा म मानवतावादी पुनरुत्थान एव यूरोपीय नवजागरण पर इतना बल न देत (चूँकि उनके ही गद्दा क जाधार पर समीक्षक का हृदय नव जागरण क मान-भूल्या से विचलित हो गया, इसलिए उसकी समीक्षा म भी इस पर इतना बल आ गया)। वस्तुतः 'साकेत' के इसी पक्ष पर—मानवतावाद और इसम पापी जानवाली पुनरुत्थान की प्रवृत्तियाँ पर—अधिक जोर दिया गया है और एक स्थल पर कहा गया है 'भारत के इतिहास म आर्यों के आगमन, बुद्ध के आविर्भाव और मुक्तमाना के आगमन का जो महत्व है उन्नीसवीं सदी के साम्प्रतिक जागरण का उन सबकी अपेक्षा कुछ अधिक महत्व माना जाना चाहिए।'<sup>१</sup> इन प्रवृत्तियों म देखक उन्नीसवीं सदी के उन सांस्कृतिक जागरण का स्तवन कर रहा है जिस पर पाश्चात्य बुद्धिवाद एव भौतिकता के गभीर प्रभाव लक्षित हात हैं। पाश्चात्य नवजागरण की विरोधताओं का उन्होंने बड़ा ही विस्तृत वर्णन उपस्थित किया है

स्वर्ग और नरक की कल्पना के निस्तार होने से अमरता की इच्छा उसी भूमि पर अनंत काल तक टिकनवाली, कीर्ति की कामना बन गयी। साहित्य म साहित्यकार क व्यक्तित्व की शोष की प्रवृत्ति रमी कीर्ति-कामना का परिणाम है। मध्यकालीन नतिकता के पीछे जतिप्राकृत (सुपरनेचुरल) विश्वासा का बल था। उस बल क क्षाण हात ही नतिकता के रूप म परिवर्तन आन लगा। फिर भी, समाज का जा भाग ईश्वर स्वर्ग और नरक म विश्वास करता था मुख्यतः उस जनता के मय म भारत म अनतिकता की बहू वाढ नहीं आयी जो रेनेसा आन्दोलन के बाद इटली म आयी थी। इटली म 'रेनर्वा' क बाद अचानक धन म भी वृद्धि आयी और धन की वृद्धि में अनतिकता को प्राप्ताहन मिलन लगा। समाज का जो वग नवसे अधिक सुखी था वहा बुद्धिवाद का विकास भी उसी के

---

था। इस कथन का सबसे अधिक समयन भारतीय पुनरुत्थान के मुख्य कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं मे मिलेगा, जहा कवि ने नारियो की पूजा उनके सौंदर्य के कारण की है। ' उपरिक्त प० ६।

१ उपरिक्त, प० १२।



धीरे हुआ था। जब भीतर आन्तरिक भागन की उद्गम इच्छा और बाहर से गुण के सभी साधन उपलब्ध हैं। तब विराम ही व्यक्ति होगा जो समय के अनुसार प्रकट होता है। रामों के समय इच्छा के सम्मुख लीला त भा यही किया। १

जहाँ शिवर त "प्रवृत्ति के उपाय के परिणामों का यहाँ किया है यहाँ के पाउण्ड (पॉन्ग) की बहूभुज कथा का स्मरण किया है। मानों के टमनेन तथा डाक्टर पॉन्ग त जा तयजागरण की मानवतापार्थ प्रवृत्तियाँ के मूल रूप हैं सभी ही जीवसुखयजय प्रसन्नता और उद्गम कर्ति-तामता का परिणय किया है जिमका उत्पन्न कवियर शिवर न किया है। उपायन यहाँ है नर का ईश्वरता प्राप्त करान आया' यह भारतीय पुनरुत्थान का मध्य यहाँ किया है। भारत में दश भक्ति की धारा भी पुनरुत्थान के साथ जयदा ठार उमकी पाठ पर आयी थी। २ यूरॉपाय नवजागरण की भा यही किया थी जोर यूरॉप में भी इस जागरण के पारस्वरूप दश भक्ति का प्रचंड उभेप हुआ था।

### फोर क्वाटर्स

दिनकरजी भारतीय पुनरुत्थान को एक स्वतंत्र प्राच्य आन्दोलन के रूप में विवक्षित नहीं करते। वे उस पर पढ़नवाले प्रतीच्य बुद्धिवाद विज्ञान मना-विज्ञान के प्रभावा पर भी दुःखपात करते हैं। इतना हा नहीं, वे इसी सद्म में यूरोपीय नवजागरण की भी विनाद व्याख्या प्रस्तुत करते हैं, जो अत्यन्त प्रामाणिक एवं विश्वसनीय है और जो नवजागरण के विघेयता की रचनाओं से निचाडा और कालक्रम से आत्मसात् किया हुआ जान पड़ता है। अथवा उनकी इस धारणा के मूल में कि वतमान सद्म अतीत पर नया प्रकाश करता है और इसी प्रक्रिया के कारण अतीत का जीवित अंग बराबर वतमान के साथ रहता है ३ एलियट की व परपरा-सबधी भायताएँ व्यजित होती हैं जिनकी अभिव्यक्ति उसने 'ट्रेडिशन एण्ड दि इण्डिविडुअल टलेण्ट' में हुई है। 'कामायनी' की समीक्षा में उन्होंने एलियट की उन पक्तियों को उद्धृत किया है जिनका मध्य रूपांतर उप-युक्त पक्तियाँ में मिलता है :

१ पत, प्रसाद और मधिलीकरण, प० ४ ।

२ उपरिबत, पृ० १५ ।

३ उपरिबत, प० १२ ।

Time present and Time past

Are both perhaps present in time future

And time future contained in time past

चूँकि एलियट की ये पक्तियाँ पर्याप्त लोकप्रियता पा चुकी हैं दिनकरजी ने यह नहीं कहा कि इनसे ही एलियट के "फोर क्वाटर्स" के प्रथम खंड का, जिसका शीर्षक "द वॉल टॉटन" है आरंभ होता है। इन बातों पर दिनकरजी एलियट की अपेक्षा अधिक बल देते हैं कि कवि की काव्यगत विचार धारा युग से प्रभावित होती है। एलियट भी युग के—अतीत और वर्तमान के—प्रभाव को स्वीकार करता है, परंतु साथ ही वह अनुभूति के विशिष्ट्य को भी महत्त्व देता है। कवि की भाव धारा और अनुभूति को जमातरीय संस्कार उसके चेतन अचेतन में वर्तमान नात-अज्ञात अनुभूतियाँ जा उसकी भी हैं और संपूर्ण जाति की भी तथा उसकी दमित एवं अतृप्त वासनाएँ सबकी सब प्रभावित करती हैं। गुप्तजी की नारी भावना केवल पुनरुत्थान से प्रभावित और तज्जय मानवतावाद से उद्भूत नहीं है। उस भावना के निमाण में कवि की निजी अनुभूतियाँ भी रहीं होंगी जिनके सम्यक् विश्लेषण और प्रकाशन की अपेक्षा है। स्वयं दिनकरजी ने कामायनी 'दोषरहित दूषणसहित' में यह स्वीकार किया है कि 'कविता की रचना के पीछे स्मृति का बहुत बड़ा हाथ होता है। कविना अपनी सारी सामग्रियाँ स्मृति के कोप में से चुनती है।'<sup>१</sup>

दिनकरजी के निम्नलिखित कथन ध्यातव्य है

(क) शकूक का वध कराते समय आदिकवि के हृदय में द्विधा या कृष्णा नहीं जगी और चूँकि कवि का हृदय अविचलित रह गया इसलिए उसके पात्र में भी हिचकिचाहट नहीं आयी।

(पत प्रसाद और मधिलीशरण, प० ११)

(ख) राम का रूप उन्होंने वैसा ही अंकित किया जैसा उनका युग चाहता था।

(प० १३)

(ग) 'सुख शान्ति हेतु मैं त्राति मचान आया' के भीतर से स्वाधीनता-संघर्ष का औचित्य ध्वनित होता है।

(प० १५)

---

१ उपरिष्ठत, प० ८३ ८४।

(घ) पुस्तकालय का प्रयोग म शास्त्रिण शारर कवि न उमिना का  
जानी मरानुमूति का तथा उनका रचितान्य का जगन एक  
गवार का प्रयोग किया ।

(१० २१)

एकदम नारम्भ म गाभा शास्त्रि कवि शास्त्रिना अनुमतिप्राप्त युग का प्रतिनिधि  
करन म वाघात हानी है किन्तु उम यह विचार रचना पडा । गणपियर एण  
द स्टामिगम और अनरा म उनका रचनाकार किया है कि मरानुमि अपनी  
व्यक्ति और कलागत जायस्यताभा की पुनि करन म साथ हा परपरा का  
भी सामयन और पापण करत है । दृगी मरानुमि का अभिव्यक्ति उम द पापट्टी  
आव डम्पू० बी० येदन म की है परतु यह भी कहा है कि कवि विचित्र  
समाय स अपन सामयिका क दलितान्य का अभिव्यक्ति गता हा है साथ हा  
वह अपनी उम निजी मनाशा (मूड) का भा अभिव्यक्त करता है जा उमने  
सामयिका की मनादशा म गवया भिन्न हाना है । उपाहरणाथ—त्रय यदन आत्मा  
मिष्यक्ति क योगल म पारमन हुआ तत्र उनका मावना की भी सर्वोत्कृष्ट अभि-  
व्यक्ति की । दिनकरजी के अनुसार पत प्रसाद और मयितीशरण न भी अपने  
वाक्य म यही किया है । पत पर समाजवाद प्रगतिवाद एक अरविन्दान का  
प्रसाद पर छायावाङ् का और गुप्तजी पर पुनरत्यान का गभीर प्रभाव पडा है  
जा उनकी कविताभा म नानाविध प्रतिफलित हुआ है । परतु प्रभावग्रहण  
स ही य कवि सतुष्ट नहा हात । उहान इन 'वादा और दाना का अपनी  
अनुमूतिया के आलोक म सगाधित किया है और नय जीवन गान का प्रतिष्ठा  
की है ।

दिनकरजी द्वारा स्थापित कल्पित मायताए प्रगीत वाक्य या सावेत के  
पात्रा पर मले ही सटीक उतरें परतु जहाँ तब नाटकीय पात्रा का सवष है व  
उपयोगी नही दीसती । ड्रमेटिक मोनालागज म, नाटका म पात्रा का आचरण  
नाटककार की व्यक्तिगत अनुमूतियों पर आश्रित नही होता । कुशल कवि और  
नाटककार अपनी अनुमूतिया से विचलित हुए बिना भी कल्पना और कला से  
अपने पात्रो मे उन अनुमूतिया का आरापण करत है जा पात्रो की अनुमूतियाँ  
होनी है—न युग की, न नाटककार अथवा कवि की । रामाटिक विचार धारा  
कविता और उसके पात्रो न कवि के व्यक्तित्व की प्रतिच्छाया खोजती हैं और  
उमको विश्वास रहता है कि कविता म कवि की निजी अनुमूतियाँ ही उद्गीत  
होनी है । ऐसे ही समीक्षक स्विफ्ट के गलीबस द्रुवेलस म गलीबर को स्विफ्ट  
मान लेत है । परतु नाटका का अथवा नाटकीय रचनाओं का विशिष्ट साहित्यिक

विद्या के रूप में, स्विकार करना चाहिए न कि कवि के जीवन-वृत्त अथवा आत्म-  
कथा के रूप में। कवि, नाटककार और उपन्यास-लेखक ऐसे जीवित पात्रों की  
सृष्टि करने में समर्थ होते हैं जिनके विचार और अनुभूतियाँ काव्य की आवश्यक-  
ताओं से नियंत्रित होती हैं न कि कवि के व्यक्तिगत विचारों और अनुभूतियों से।  
एलियट के अनुसार कविता में कर्मी-कर्म, कवि हृदय की उन अनुभूतियों की  
व्यंजना नहीं होती, जो उसके लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती हैं और कर्म। इनके  
स्थान पर ऐसी अनुभूतियाँ व्यंजित हो जाती हैं जिनका उसके व्यक्तित्व में बड़ा  
ही नगण्य स्थान रहता है।<sup>१</sup>

### “मोडस आपरेण्डो”

दिनकरजी की व्यावहारिक समीक्षा को अच्छी तरह परखने के लिए यह  
आवश्यक है कि हम उनकी उस ‘मोडस आपरेण्डो’ को—उनकी काय-पद्धति को  
—मानी भाँति समझें, जो उनकी व्यावहारिक समीक्षाओं में अंतर्भूत है उनका  
आधार है। सबसे पहले वे आलोच्य लेखक अथवा कवि की ऐतिहासिक पीढ़ी का  
वर्णन करते हैं तदुपरि उस पर दृष्टिगत प्रमाणों का आकलन और अतंत  
उमके जीवन-दशा का विवेचन उपस्थित करते हैं। वे इस दान का अनुसंधान  
करते हैं कि आलाच्य कवि प्रवृत्तिवादी है अथवा पलायनवादी और उम पर किस  
ऐतिहासिक वाद या प्रवृत्ति का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। इन प्रवृत्तियों का वर्णन  
भारतीय विचार सरणियों तक ही सीमित नहीं रहता। कर्म। भारतीय वादा और  
प्रवृत्तियों को पश्चिम के समानांतर आलोचना और दृष्टियों से—भारतीय  
‘वोल्टायन’ के, रेनसस से छायावाद की ‘रोमांटिसिज्म’ से तथा अरवि-द-दशन  
की नीति एवं हिस्टोरिकल मार्टिरियतिज्म’ से सुश्रुतबलित किया गया है। ‘कामा-  
यनी’ के समीक्षण-क्रम में उन्होंने छायावाद की विशेषताओं का तथा, परोक्षत,  
रोमांटिसिज्म का वैसा ही वर्णन प्रस्तुत किया है, जैसा पुनः पुरान के मिस यूरोपीय  
नवजागरण का। वस्तुतः इन सभी वैचारिक आन्दोलनों में तात्त्विक साम्य है  
जिसके फलस्वरूप एक के वर्णन से दूसरे का अल्पाधिक आभास होता है।

दिनकरजी का अध्ययन अंगरेज कविता और आलोचकों तक ही सीमित  
नहीं है और न उनका समीक्षक युग विशेष की प्रवृत्तियों को ही सत्समालोचना  
के लिए अलम समयता है। उनकी सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समीक्षा से यह

१ सिएन लूसी वृत्त ‘टी० एस० एलियट एण्ड द आइडिया ऑव ट्रेडिशन’  
(लंदन, १९६०) में उद्धृत, पृ० १९।

स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने फ्रासस, और जमन तैलको] का भी सवात्मना सतापजनक अध्ययन किया है और इनमें कुछ के सबब में उनका नान स्पृहाय है।<sup>१</sup> उहान कितने ही स्थलों पर नोत्स और बादलेयर को सकेतित किया है, एकाध स्थल पर आइसटाइन के सापेक्षवादी सिद्धांत का भी उल्लेख किया है और 'विचारक कवि पत न माक्सवादी प्रयागो तथा सिद्धांतों का विवरण उपस्थित किया है। अग्रजों स्वच्छदतावादी कवियों में वे बड़ स्वथ और बीट्स से सर्वाधिक प्रभावित देखते हैं। उनका यह कथन कि "कविता की रचना के पीछे स्मृति का बहुत बड़ा हाथ हाता है आधुनिक मनाविज्ञान से उतना प्रभावित नहीं है जितना इमाटलिटी आड, टिनटन ऐबी' तथा इ प्रिल्यूड जसी कविताओं की रचयिता बड़ स्वथ के इस कथन से कि प्रशांत क्षणों में सस्मृत आवगो ('इमोशन रिकलकटेड इन ट्रांक्विलिटी') का ही कविता की सजा देते हैं।

स्पेण्डर, रिचड स, रिल्के और मलार्मी

आधुनिक युग में स्टाफेन स्पेंडर, आर्द० ए० रिचड स डेविड कम्पबेल और आर्० एम० रिचके आदि न म, सजन प्रक्रिया में स्मृति के योगदान का स्वीकार किया है। स्पेंडर के अनुसार स्मृति कारयित्री प्रतिभा का मूलाधार है— मेमरी इज द रूट आव क्रिएटिव जानियस। इससे कवि प्रेरणा के तात्कालिक क्षण (इन्मीडिएट मानेण्ट) का अतीत के उन क्षणों से सजाजित करता है जिनमें उसने ऐस ही प्रभाव ग्रहण किए थे। एक कवि की स्मृति की विशेषताएँ और उसके प्रयोग के ढंग उसे दूसरे कवि से पथक करते हैं। मुख्यतः स्मृति के दो प्रकार हैं एक को हृम प्रत्यक्ष और चेतन तथा दूसरे को पराप्त और अचेतन कह सकते हैं। रिचड स के अनुसार कवियों का हम उनकी अघचेतन स्मृति की अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्नता और संयवक शक्ति ('अमाशिण्टिव पावर') के द्वारा अथ व्यक्तियों से पथक करते हैं। जैसा द बुलेटिन में डेविड कम्पबेल ने कहा है स्मृति ही कल्पना के लिए पोष्य सामग्री एकत्र करती है। स्मृति के सबब में रिल्के ने कहा है कि स्मृतियाँ ही सब-कुछ हैं। जब वे हमारी अन्तश्चेतना में लहू बन जाती हैं और जब वे हमारी दृष्टि और हावभाव में परिणत होकर हममें एकीकृत हो जाती हैं, तभी एक अत्यंत बहुमूल्य क्षण में,

१ गूढ कविता की खोज में "विभिन्न भाषाओं की प्रवृत्तियाँ", "गूढ कविता का इतिहास" आदि अध्याय देखिए।

२ उदाहरणार्थ, "पत, प्रसाद और मयिलीकरण" के पृष्ठ ६१ पर।

उन न्मनियो के बीच, कविता का पहला शब्द उच्छ्वलित हो उठता है।

दिनकरजी, वाक्यगत मत्य का वैज्ञानिक एवं तात्त्विक सत्य में भिन्न मानते हैं। इस सन्दर्भ में उन्होंने कीट्स रचित 'द ईव आव सेंट एग्नेस नामक खडकाव्य का उल्लेख किया है और कीट्स की यह उक्ति उद्धृत की है कि 'कल्पना जिसे सौन्दर्य समझता है वह सत्य भी होगा, भले ही वस्तु जगत् में उसका अस्तित्व न हो।'<sup>१</sup> यदि वे चाहते तो कीट्स की उस कविता की आरंभ भी सकेत कर सकते थे जिसमें काटम न चपमन-द्वारा अनूचित होमर के काव्य के अध्ययन से उत्पन्न अपना प्रतिप्रियाओं का स्थापन किया है। इसमें की गई मूल भी इस कविता की सौन्दर्य-गरिमा का कम नहीं करती, जिससे स्पष्ट है कि कवि की विचार और भाव-सदृशी नूतनता का उतना महत्त्व नहीं जितना उसके द्वारा सजित काव्य और सौंदर्य का है।

कविता केवल विचार और भाव का लेकर सफल नहीं होती। सफल वह तब होता है जब भाव और विचार अनुकूल भाषा में, अनुकूल ढंग से व्यक्त होता है। कविता का अंतिम विश्लेषण उसमें प्रयुक्त भाषा का विश्लेषण है, कविता का चरम सौंदर्य उसमें प्रयुक्त भाषा की सफाई का सौंदर्य है।<sup>२</sup> इन शब्दों में मलानों की यह उक्ति व्यजित हो रही है कि कविता भावों से नहीं, शब्दों से लिखी जाती है। कविता क्या है उसका महत्त्व है, न कि वह क्या कहती है उसका। इसका यह अर्थ नहीं कि कवि अथवा काव्य का हम उस समाज से पथक कर सकते हैं निम्न उसकी सृष्टि का, इससे हम यह भी निष्कर्षित नहीं कर सकते कि कला-कृतियाँ अपने युग का प्रतिबिम्ब और प्रोद्भासन नहीं करती। इससे हम बात का भाव व्यक्त नहीं होता कि कवि का भाव माडार परिशुद्ध होता है और वह जिस विषय पर लिखता है और उसका जो व्याख्या प्रस्तुत करता है, उसका कोई विशय महत्त्व नहीं होता। किंतु उम आलाचना से यदि वह महत्त्व विकृत नहीं होता तो द्वेष अवश्य जाता है, जो केवल कवि के भावा पर ध्यान केंद्रित करती है, उन भावा की अभिव्यक्ति पर नहीं, जो कवि को दार्शनिक और चिंतक बना लेता है और इस प्रक्रिया में उसके उस गुण की उपयोग करती है जिसके फलस्वरूप कवि की वाणी को अक्षयता प्राप्त होती है—वह गुण कवि के मन में अवस्थित कलाकार का गुण है।

दिनकरजी, की व्यावहारिक समीक्षा-पद्धति पर भारतीय भाष्यकारों के प्रभाव के अतिरिक्त एम्पसन, रिचर्ड्स और एलियट का भी प्रभाव दृष्टिगत

१ 'पत, प्रसाद और मयिलीकरण', पृ० ८४।

२ उपरिक्त पृ० ७१।

होता है। इन पाश्चात्य समीक्षकों की तरह उद्दान भा. बहुश उद्धरण का प्रयोग करते हुए उनके शब्द प्रयोग, वाक्य विन्यास और उनकी दुःसहता का वर्णन किया है। 'सिमण्टिक क्रिटिसिज्म' ('सिमण्टिक अनलिसिस') शब्दों के विभिन्न अर्थों का उदघाटन करती है शब्द प्रयोग पर ज़ार दती है और उदघरणों का विश्लेषण मापा की परिशुद्धि एवं व्याकरण के नियमों के आलाचक म करती है। 'कामायनी की समाप्ता सिमण्टिक अनलिसिस का हिंदी में चिरञ्ज्वलत उदाहरण है और स्थल स्थल पर एम्पसन की याद दिलाती है।

दिनकरजी की भिन्न भिन्न आलोचनात्मक कृतियाँ और 'रश्मिरथा', 'नीलकुसुम' जैसे काव्यग्रन्थों की भूमिकाएँ मिलकर एक ही व्यवस्थित वृहत् निबन्ध का रूप ग्रहण करती है। इसलिए अपूर्ण दीखनेवाले निबन्धों, निष्कर्षों एवं निष्कर्षों की परिणति अथ निबन्धों में ढूँढनी चाहिए। तभी हम लेखक की समीक्षात्मक रचनाओं के परस्परविरोधी तत्वों के अविच्छिन्न और सामंजस्य का ठीक ठीक परख सकने में सफल होंगे। 'मिट्टी की ओर' के अंतिम निबन्ध में लेखक भारत के प्रवामी कवि को घर लौटने की सलाह देता है। कालर, 'टाई' और 'धुले कपड़े पाश्चात्य सभ्यता के चाकचक्य के प्रतीक हैं लिपिस्टिक और रासायनिक यागों के रंग का प्रयोग पश्चिम से प्रभावित होने का श्रोतन करता है। प्रश्न है—जब दिनकर कवि को 'टाई और कालर खालकर फेंक देने' की सलाह देता है तब क्या वे नय चमकते हुए श्रितिज का स्वागत करना नहीं चाहते? इसका उत्तर देकर नय कहकर दिया है कि मग अनुमान है कि दिन अवस्थाओं ने इंग्लड में नय कवियों को उत्पन्न किया, उनसे मिलता जुलता अवस्थाएँ अपने यहाँ के बुद्धिजीवियों को भी अनुभूत होने लगी हैं। इसलिए उनमें और यूरोपीय कवियों में थोड़ा बहुत साम्य दिखलाई दे रहा है।"<sup>१</sup>

विक्रमोन्मुख कवि आलाचको म—ड्राइडन पाल बेलरी, एलियट प्रभृति पाश्चात्य लेखकों में भी—अनेकानेक विरोधी तत्वों का समाहार देखा जाता है। इन विरोधी तत्वों और गद्य लेखकों को कवि के काव्य का ही अविच्छिन्न अंग समझना चाहिए। उनका कोई भी सिद्धांत ऐसा नहीं, जो उनकी आत्मकथा का ही एक महत्वपूर्ण खंड न हो।<sup>२</sup>

१ नीलकुसुम (दिल्ली, १९५४), पृ० ३ (दो शब्द)।

२ पॉल बेलरी के लिए प्रयुक्त एलियट के शब्द हैं "बेलरीज एसेज फार्म अ पाट आव हिज पोपेटिकल वक्स"। दे० पॉल बेलरी, 'द आट आव पोपेट्री' (लंदन, १९५८), पृ० २२ (भूमिका)।

दिनकरजी की समीक्षा पर एलियट का प्रभाव प्रयत्न और व्यापक है। ऐसे छाटे-छाटे सूत्रवत् कथन—‘आलाचक नये कवि को पुरानी कसाटी पर कनके उमके साथ चाप नहा कर सकता’ एलियट की उन पंक्तियाँ की याद दिलाते हैं जिनमें उसने कहा है कि साहित्यिक कृतियाँ का मूल्यांकन प्राग्भूत समाधानों द्वारा उद्भावित प्रतिमानों से नही होना चाहिए। (‘इन कम्पैरिजन अथक मस्ट बी जज्ड बाइ द स्टण्डर्ड्स ऑफ द पास्ट आई से जज्ड, नॉट ऐम्प्युटेटेड बाइ देम नॉट टु बी जज्ड ऐज गुड ऐज, ऑर बस’ और ‘बेटर दैन, द रेड, एण्ड सटैन्ली नॉट जज्ड बाइ द कनस ऑव डेड क्रिटिकम’। पुनरपि ‘इच एज डिमाण्डम डिफरेण्ट थिग्स फ्रॉम पोपट्री सो आवर क्रिटिसिज्म, फ्रॉम एज टु एज विल रिफ्लेक्ट द थिग्स दैट द एज डिमाण्डस’)।

दिनकरजी की भाषा शैली—समीक्षा की भाषा-शैली—पर भी पाश्चात्य प्रभाव के अनेक चिह्न दृष्टिगत हात हैं, परंतु उनके शब्द न कहीं खटकते हैं, न अनुपयुक्त दीखते हैं। डॉ० आनारनाथ शर्मा का यह कथन कि,

अंगरेजी शब्दा का प्रयोग तो इन्होंने (दिनकरजी ने) इस युग में ज्या का त्या अंगरेजी वणमाला में ही किया है और कहीं-कहीं कोष्ठक में भी। दूसरी बात यह सटकती है कि जो उपमा दिनकरजी ने ‘गियर’ से दी है, वह एक ऐसा शब्द है जो ‘गियर’ न सम्यक्वाले के लिए कदा भी पाठ के तुल्य ही है। इन्होंने प्रायः दृष्टान्त भी पाश्चात्य साहित्य और समाज के ही दिए हैं जो साधारण पाठक के लिए अध्ययन विषय का विषय बन जाता है। उपयुक्त उद्धरणों में प्रकट होता है कि लेखक पाश्चात्य साहित्य से अधिक प्रभावित प्रतीत (हाता) है।<sup>१</sup>

दिनकरजी के निबन्धों की भाषा-शैली के संबंध में मूल ही यह युक्ति-भंगत लगे, पर उनकी आलाचना की भाषा के संबंध में उपर्युक्त भावोद्गार आलोचकों के अधूरे अध्ययन का परिचय देते हैं। ‘गियर’ जैसा एकाध शब्द और पाश्चात्य साहित्य से उद्धृत दृष्टान्त खटकते नहीं और न पाठकों पर बर्कश प्रभाव ही डालते हैं। परंतु सच्ची बात तो यह है कि दिनकरजी पाश्चात्य दृष्टान्तों को उपस्थित कर सतुष्ट नहीं हो जाते। दृष्टान्तों का चयन प्रसंगानुकूल होना है, न कि पाठित्य-प्रदर्शनाय, इसलिए अनेक भी दृष्टान्त उपयुक्त होते हैं, उनका प्रयोग किया जाता है।

१ डॉ० आनारनाथ शर्मा, ‘हिंदी निबन्ध का विकास’ (कानपुर, १९६४), पृ० २६९-२७०।



शर्माजी ने कनिपय छोटे छोटे उद्धरणों को मूल प्रसंग से एजित कर उनके आधार पर दिनकरजी की भाषा-शैली का विवचन किया है और कई अपपत्तियाँ प्रस्तुत की हैं।

श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' (१९११)

अज्ञेय द्वारा प्रणीत आलोचना पॉल वलरी और टी० एम० एलियट की समीक्षात्मक रचनाओं की तरफ मुख्यतः साहित्यकार की निर्माणशाला में प्रसूत आलोचना—'वक्शाप क्रिटिज्म'—है।<sup>१</sup> जिस प्रकार अँगरेजी में नई कविता के उद्भावकों में एलियट अग्रगण्य है उसी प्रकार हिंदी में नये प्रयागशील काव्य के मजकों में अज्ञेय का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। पाल वलरी एजरा पाउंड और एलियट की भांति अज्ञेय न समीक्षाएँ भी लिखी हैं<sup>२</sup> जिनके इनके व्यापक वैदुष्य एवं पाश्चात्य साहित्य के सुनियोजित, श्रमसाध्य अध्ययन का द्योतन होता है। हिंदी समीक्षकों में समकाल अज्ञेय ही एकमात्र ऐसे वक्शापी लखक हैं जिनके अँगरेजी निबंधों की भाषा शैली अत्यंत सघनी हुई, ललित और आजस्वी है और जिन्होंने अँगरेजी की अधुनातन मुहावरदार शैली के भ्रम का पहचाना है। 'शॉट' के साहित्य ग्रंथ तथा 'वाक' के संपादक की अँगरेजी शैली प्राजल, इनिवृत्तात्मक तथा समयित है और इससे यह स्पष्ट है कि इसने अँगरेजी भाषा के मूल्यांकन शैलीकारों की कृतियों का सम्यक् अध्ययन ता किया ही है साथ ही इनसे अपने साहित्यकार की सवेदना को भी समझ लिया है।

अज्ञेय ने अपने ऊपर दृष्टिगत रचनात्मक प्रभावा का विशदीकरण निम्नलिखित शब्दों में किया है

१ 'This kind of criticism of poetry by a poet or what I have called *workshop criticism* has one obvious limitation T S Eliot 'The Frontiers of criticism in *One Poetry and Poets* (London 1957) p 107

२ द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त दृष्टिगत समसामयिक प्रवृत्तियों से अपने को संबद्ध करते हुए अज्ञेय ने कहा है— A special feature of this period was the increasing amphibian propensity of its writers most of them wrote fiction as well as poetry and frequently essayed into critical prose also Vide *Contemporary Indian Literature* (Sahitya Akademi 1957) p 84

Ajneya (1911-) is sometimes bracketed with Joshi as an exponent of the Freudian novel—wrongly because though he has often applied the psycho-analytical method in a limited way in his novel *Sekhara Eka Jivani* and in his short stories his reasoned optimism his love of life and his faith in man and in the individual definitely separate him. His literary affinities are, in fact, Browning and D. H. Lawrence he is also perhaps more influenced by the Bible and Christian thought than any other Hindi writer. Apart from this his mental outlook is that of scientific humanism.<sup>1</sup>

उस उद्धरण में एक नाम छूट गया है। यदि हम ईसाई दशन, वाइलिस, ब्राउनिंग और डी० एच० लारेंस के साथ टी० एस० एलियट को रखें तो अज्ञेय की समीक्षा में इस विवेचन में समाहित हो जायगी। इस समीक्षा पर एलियट के प्रभाव के अनक प्रमाण मिलते हैं। अज्ञेय ने कई स्थलों पर एलियट की ओर निर्देश किया है और एलियट द्वारा प्रतिपादित निर्व्यक्तिक अभिव्यक्ति के सिद्धांत का उद्धृत किया है। अज्ञेय के शब्दों में ही 'शेखर में मेरा पन कुछ अधिक है। एलियट का आदर्श (जिमकी सहायता में मानता हूँ) मुझसे नहीं निभ सका है। शेखर निस्संदेह एक व्यक्ति का अभिन्नतम निजा दस्तावेज है।'<sup>2</sup> 'त्रिशकु' में संगीत 'रूढ़ि और मौलिकता' शीपक निबंध टी० एस० एलियट के 'ट्रेडिशन एण्ड दि इण्डिविडुअल टलेण्ट' का लगभग भावानुवाद है।<sup>3</sup> इसी संग्रह के 'परिस्थिति और साहित्यकार' नामक निबंध में उन्होंने टी० एस० एलियट की निम्नलिखित पंक्तियों का उद्धृत करने के पूर्व कहा है कि इनमें स्वस्यमना कवि का युष्पुत्र भाव तो चलकता है ही, साथ ही हमारे लिए एक आशाजनक संकेत भी है'  
क्याकि मैं बड़ा पान नहीं कर सकता

1 Hindi in Contemporary Indian Literature A Symposium (Sahitya Akademi New Delhi 1957) p 84

2 सुमन झा, 'अज्ञेय का काव्य' (कानपुर, १९६४), पृ० २१ पर उद्धृत।

3 इन्ट्रो "अज्ञेय", त्रिशकु (दिल्ली, १९५४) भूमिका।

जहाँ बक्ष फतत हैं

इसलिए मैं आनन्दित होता हूँ कि कुछ निमज करना पड़ेगा

जिसके आघार पर मैं आनन्दित हो सकूँ।<sup>१</sup>

कुछ लोगो ने अज्ञेय के आचरण में अहंकार पाया है। सम्बन्ध लखक का भाव-संस्कार विदेशी" है जिसके कारण उसका वर्तव्य लागी व। कुछ मित्त जान पडता ह। ' किंतु मल्लत बहु भारतीय है और अनक इतर प्रभावो के रहत म। एक प्रकार का हिंदू' भी है।<sup>३</sup> साथ ही अज्ञेय ने यह म। स्वीकार किया है कि जिन बहुमर्याद लागी के साथ मेरा सांस्कृतिक परंपरा का साक्षा ह उन लागी स मेरी सवेदना मित्त है। किंतु दूसरी ओर जिन अल्पमर्याद लागी की सवेदना मुझ-सी है उनस संस्कार-परंपरा क विषय म मेरा वही भी मेल नहा है। उनके पास पश्चिमी संस्कृति की एक सतही छाप है—अर्थात् पश्चिम की रहने का पद्धति तो उहोने आत्मसात् कर ली है पर उसकी वचारिक अथवा आध्यात्मिक प्रतिक्रियाओ की लीक म वे नही पडे।'<sup>४</sup>

डेनिस टामसन और एफ० आर० लीविस का प्रभाव

अज्ञेय पाश्चात्य वादमय की कल्पित महत्त्वपूर्ण तथा अधुनातन प्रवृत्तिया और उनके जनयिष्णुओ से प्रभावित हैं, परंतु साम्प्रतिक पाश्चात्य सम्यता के दुष्प्रभावों से पूर्णतया अवगत होने के कारण इस सम्यता का अधसमयन नहा करते। संस्कृति और परिस्थिति म उहोने धनयुग की प्रगति और आधुनिक मानव की अप्राकृतिक मनो-जनो के प्रति अतिशय आसक्ति पर लाम प्रकट किया है। निस्संदेह यह अज्ञेय का निजी दृष्टिकोण है कि की सवेदनशाल आत्मा नमर्गिक सौंदर्य और जीवन-यापन की पुरातन स्वाभाविक व्यवस्था तथा लग के विजडित होने के कारण यथित हा उठनी है। पुरान सामाजिक संगठन के टूटने म उनकी सर्जीव संस्कृति और परंपरा मिट गई है—हमार जीवन म से लासगत नानन्दत्व फम के छपर और दस्तकारिया क्रमश निकल गई ह और निकलता ग। ल ह अर उनक नाय है निकलती ग रहा है वर चा। जिमके य केवत

१ उररिचन, प० ६२ ।

२ आत्मनेपद (बागी, १९६०), प० १७३ ।

३ उररिचन, प० २४९ ।

४ उररिचन, प० २४९ ।

५ दिगदु, प० १३२२ ।

एक चिह्नमात्र हैं—जवन की कता, जीने का एक व्यवस्थित ढंग जिसके अपने रानि-व्यवहार और अपनी अनुचर्या थी—ऐसा श्रुतुचया जिसकी बुनियाद जाति व चिर-मचित अनुभव पर कायम हो।<sup>१</sup> यत्रयुग की निमम प्रगति न हमारे ज्ञान के साथ ही जीवन को प्रतिबिंबित करनेवाले साहित्य को भी स्वभावतः प्रभावित किया है। इसमें उन ग्रथा का ही सर्वाधिक प्रणयन हो चला है जा सस्त मवारजन व प्रदाता हैं, जा जीवन का सस्ता बनाते हैं। मापा मस्ती होनी जा रही है पत्रो का स्टैण्ड गिर गया है और मशीन युग के साथ जो अति उत्पादन हो रहा है उसके लिए विज्ञापनवाजी आवश्यक हो गई है। अगर उदार का उपाय कोई है, ता वह मस्ति की रक्षा और निर्माण की चिरजागरक चेष्टा, और उन चेष्टा के, आनश्यकता में अखंड विश्वास का ही माग है।<sup>२</sup>

'मस्ति और परिस्थिति' में जिन विचारा की अभिव्यक्ति हुई है, उन पर रगे का प्रभाव तो है, माय ही निवध का शीपक एफ० आर० लीविस और निम टॉमसन की पुस्तक 'क्वचर एण्ड एन्वायरनमेण्ट' का और सकेत करता है और इसके कतिपय विचार श्रीमती लीविस की पुस्तक 'फिक्शन एण्ड द रीडिंग पब्लिक' (१८३२) से उद्धृत जान पडते हैं। निवध-लेखक ट्रिविलियन, हार्डी, सिड जेम्सीज, एडवड टामस प्रमति औरज साहित्यकारा की रचनाआ और विचारो से भी प्रभावित हो सक्ता है। ट्रिविलियन के विचारानुमार कृपि अयाय व्यवसाया में एक व्यवसाय-मात्र नहीं है यह जीवन-यापन का एक ढंग और अपने मानवीय एव आध्यात्मिक मूल्या के कारण अप्रतिम है। जीवन-यापन के नेहाती ढंग के ह्रास की प्रविच्छाया इग्लैंड में प्रकृति-सवधी काव्य के उत्तरातर अभाव में दखी जा सक्ती है। हाहों, एडवड टॉमस आदि कवियो न इस ह्रास एव अभाव के व्यापक प्रभावा की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है और प्राचीन समाज के विघटन पर खेद प्रकट किया है। हेनरी जेम्स ने अपने उपयासो में सस्तन के अति भौतिक अपव्ययी, निमम निठुरतया अर्माजित जीवन का अभाव वरण किया है और ऐतिहासिक राज्यक्रांति के पूव दृष्टिगत फ्रान्सीसी अमिजात का के सडे-गले ह्रासामुव जीवन से इसका तुलना की है।<sup>३</sup> रैमजे मक्डोनेल्ड न घोषित किया है कि अब ऐम वित्तदाताआ (फाइनेसियज) का युग आ गया-

१ उपरिबत, प० १३।

२ उपरिबत, प० २२।

३ जी० एच० बंटॉक, "द सोसल एण्ड इण्टेलेक्चुअल बकप्राउंड", द माडन एज (पेगुइन बुक्स, १९६१), प० २९।

है जो हमारी नतिक श्रद्धा के पात्र नहीं हैं। आधुनिक युग में भौतिक मूल्या के आत्यंतिक सवधन एवं तज्जय सामाजिक विघटन की आरंभकारी ध्यान आकृष्ट करते हुए एल० एच० मायस ने "सर्वोत्कृष्टता के धममत" की नीति (द एथिक्स ऑव द क्लट ऑव फुस्ट रेटनेस") का पोषण समर्थन किया है।<sup>१</sup> ई० एम० फॉस्ट तथा मिस सक्विल-वेस्ट के उपन्यासों में भी यत्रयुग के प्रभावों और दुष्प्रभावों की निम्न अभावृत्ति हुई है।

परंतु अज्ञेय के 'संस्कृति और परिस्थिति' नामक निबंध पर पाश्चात्य प्रभावों के आकलन के लिए इतनी दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। जहां यह स्पष्ट है कि इस निबंध का आधारभूत चिंतन उक्त लेखकों के विचारों के समन्वय है, वहां यह भी निस्संकोच कहा जा सकता है कि अज्ञेय ने इस निबंध के लिए डेनिस टामसन और एफ० आर० लीविस की पुस्तक 'कल्चर एण्ड एवायरनमेण्ट'<sup>२</sup> से ही प्रयोजनीय सामग्री को सर्वाधिक गृहीत किया है। अज्ञेय का निबंध किस हद तक उक्त अंगरेजी पुस्तक पर आधारित है, इसका अनुमान निम्नलिखित उद्धरणों से किया जा सकता है (निबंध के उद्धरण वाची और और "कल्चर एण्ड एवायरनमेण्ट" की पंक्तियां दाहिनी ओर प्रस्तुत हैं)

प० १३-१४

pp 1-2

<p>साहित्य—साहित्य की शिक्षा— अततो गत्वा एक स्थानापन्न महत्त्व रखती है। पुराने सामाजिक संगठन के टूटने से उसकी सजीव संस्कृति और परंपरा मिट गई है—हमारे जीवन में से लोकगीत, लोकनृत्य, फूस के छप्पर और दस्तकारियां ब्रमश निकल गई हैं और निकलती जा रही हैं, और उनके साथ ही निम्नलिखित चीजें ली जाती जा रही हैं वह चीजें जिन्हें</p>	<p>But literary education we must not forget, is to a great extent a substitute. What we have lost is the organic community with the living culture it embodied. Folk songs folk dances Cotswold cottages and handicraft products are signs and expressions of something more than an art of</p>
---	--

१ उपरिचिंत ।

२ इसका प्रथम संस्करण लंदन में सन १९३३ में प्रकाशित हुआ था। अज्ञेय का निबंध जिगाकु (१९४५) नामक संकलन का प्रथम निबंध है जिसे लेखक ने पहले जबलपुर के "हितकारिणी सभा हाईस्कूल" के वार्षिकोत्सव के लिए अभिभाषण के रूप में लिखा था। (दे० "भूमिका") ।

४८६ :: आधुनिक हिंदी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव

य केवल चिह्नमात्र हैं—जीवन की कला, जीने के एक व्यवस्थित ढंग जिमके अपने रीति-व्यवहार और अपनी ऋतुचर्या थी—ऐसी ऋतुचर्या जिमकी बुनियाद जाति के चिर-सचित्र अनुभव पर कायम हो। बात केवल इतनी नहीं है कि हमारा जीवन देहाती न रहकर शहरी हो गया है। जीवन का ढंग ही नहीं बल्कि, जीवन ही बदला है। अब समाज न देहाती रहा है न शहरी, अब उसका संगठन ही नष्ट हो गया है। उन ऐक्य में बाघनेवाला कोई मूल नहीं है, जहाँ सुविधा पाता है बना रहता है अपने पडासिया स उसका कोई जीवित सबब, धमनियों के प्रवाह का सबब नहीं रहता, सबब रहता है भौगोलिक समीपता का, मित्रों पानी, माटर-ड्राम की मरफट।

life, a way of living ordered and patterned involving social arts codes of intercourse and a responsive adjustment growing out of immemorial experience, to the natural environment and the rhythm of the year That is—why it is difficult to take revivals seriously It is not merely that life from having been predominantly rural and agricultural, has become urban and industrial When life was rooted in the soil town life was not what it is now Instead of the community urban or rural we have almost universally suburbanism We dwell where we find it convenient or where we can pay our rates and taxes if we have to and live in agglomerations united only by contiguity, the system of transport and the supply of gas water and electricity

तिस्मिन्नेह पुराने संगठन के अवशेष भारत में अब कस्यला पर मिलेंगे जहाँ अब माटरग्लारी सिनमा और रडियो नहीं पहुँचे हैं। इन स्वला में जीवन अब भी एक

Relics of the old order are still to be found in remote parts of the country such as the Yorkshire dales where motorcoach wireless cinema

कला है। लेकिन ये बहुत देर तक and education are rapidly नहीं रहेगे। यत्रयुग की प्रगति का destroying them—they will निमम हल पुरानी मिट्टी उपाटता hardly last another decade हुआ चला जा रहा है।

'त्रिशकु' (१८४५) के चौदहवें पृष्ठ पर ही उपर्युक्त पक्तिया के बाद डॉ० ए० लॉरिस की २६ २७ पक्तिया उद्धृत हैं जा 'क्ल्चर एण्ड एवायरनमेण्ट' म पृष्ठ दो और तीन पर न आकर पृ० ६४ पर आती है। इस उद्धरण का निवध के इस स्थल पर पाकर और 'निस्सदेह पुराने सगठन के अवशेष भारत म अनेक स्थलो पर मिलेगे' जैसे वाक्यो को देखकर अनुसधाता दिग्भ्रमित हो सकता है। न निवध की वस्तु मे आर न पुस्तक की भूमिका म उस ग्रथ को सकेतित किया गया है जो प्रस्तुत निवध का आधार है। (भूमिका मे अज्ञेय ने जहाँ 'रूडि आर मालिकता' को टी० एस० एलियट के एक लेख का 'लगभग भावानुवाद' कहा है वहाँ यह स्वीकार नहीं किया है कि 'संस्कृति और परिस्थिति' उक्त अंगरेजी ग्रथ के कतिपय उपयोगी अनुच्छेदो का ही भावानुवाद है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि अज्ञेय ने उस निवध का नाम नहीं बताया जिसका रूडि और मौलिकता भावानुवाद है। परंतु हिंदी निवध का शीषक ही अत्यंत व्यजक है और प्रमाता का ध्यान मूल निवध की ओर तत्काल आकृष्ट कर लेता है।)

संस्कृति और परिस्थिति" तथा कल्चर एण्ड एवायरनमेण्ट" के युगपत् परीक्षण के लिए यहा निम्नलिखित उदाहरण उपयुगी सिद्ध हगे —

(पृ० १७) देखिए, इस बारे म (Pp 99 et seq) Most popular आवुनिकता का एक पुजारी मनो uses of leisure come under वैज्ञानिक विशेषण म क्या कहता the head of distractions or है—दिना अपन कथन का भीषण what is indicated by the following which is offered in all अनिप्राय समझे! — owing by an expert writing on The Commercial Side of Literature

‘साम विशेषतया म्त्रियाँ गल्प Men and women especially women see in the साहित्य म प्रकारान्तर म उन vicarious realm of fiction the मानवीय अनुभूतिया की तपति wider range of human experiences which a complex and राजनी है, जा आज के उलमे हुए और मर्वाण जावन न पूरी नहीं हा

पाते। अपने तंग, भीड़ भरे और हड़बड़ाए जीवन में अधिक गहरी अनुभूति के स्पंदन और विचारों को प्राप्त करने का समय और अवसर न पाकर वे अपना म्यामादिक वासना की तृप्ति के लिए गल्प साहित्य की ओर मुक्त हैं। सम्यता से बचे हुए लोग वामनाओं की तृप्ति के लिए गल्प साहित्य की ओर मुक्त हैं। इसी लिए लोग सुखांत कहानी पसन्द करते हैं। जीवन में अपने परिश्रम में सफलता का तोड़ न पाकर हताश लोग गल्पसाहित्य में नात्वना खोजते हैं, उपवास के नायक-नायिका की परिस्थिति में अपने को डालकर वे एक अल्पकालिक और मामक तृप्ति पाते हैं।

narrowed life denies them Having neither time nor opportunity in this crowded, hustled existence to taste the joys and sorrows the vicissitudes and triumphs of a more elemental experience they turn to fiction to satisfy their natural craving. For emotional satisfaction civilisation-hampered people turn to fiction. This explains popular preference for stories with happy endings. Deprived of the satisfaction of a triumphant climax to their efforts in life disillusioned people turn to fiction for consolation and by self consciously identifying themselves with the heroes and heroines of a novel achieve a temporary and illusory satisfaction.

अर्थात् वे जीवन की कमी उसकी छाया से पूरी करते हैं। लेकिन जिन लोगों के जीवन में अनुभूति की गहराई और विशालता और सूक्ष्मता के लिए स्थान नहीं है उनका यह छाया जीवन भी कच्चा और छिछना ही हो सकता है। जिस व्यक्ति का काम उसने व्यक्तित्व का पुष्ट नहीं करना, वह छाया-जीवन

—That is they find compensation in Substitute Living. Unhappily, if the routine of one's life does not call for any subtlety or fulness of living then the kind of compensation one is capable of is apt to be correspondingly poor. If one's work



से जो तृप्ति प्राप्त करगा उसका उसके जीवन की यथायता से कोई सबध नहीं होगा, क्योंकि यथायता से तृप्ति न मिल सकने के कारण ही तो वह उससे भागता है। और फिर, ऐसा व्यक्ति वह परिश्रम करने को भी तयार नहीं होगा, जो मनोरंजन के लिए जरूरी है अतः उसकी क्षतिपूर्ति नशे का रूप ले सकती है।

एक तरह की क्षतिपूर्ति मनोरंजन वदापि नहीं है क्योंकि यह पुष्ट और सर्जीवित नहा करती, बल्कि उन यथायता से छट भागने का आशी बनाकर और भी कमजोर और जीवन के लिए अयोग्य बनाता है।

त्रिगु के अर्थ निवद्या म बुद्ध तो निस्संश्लेष ऐम ह जिन पर पाश्चात्य समीक्षा आर विचार धारा का प्रभाव स्पष्ट लजित हुता है। उदाहरणार्थ, ईश्वर, सबलन के कला का स्वभाव और उद्देश्य शीघ्रक निजय म अनेय न कहा है कि कना सामाजिक अनुपयोगिता की अनुमति क विरुद्ध अपन का प्रमाणित करने का प्रयत्न—अपयोजना क विरुद्ध विद्रोह—है।<sup>१</sup> श्री निवनाय न इम स्थापना म एहतर की हानताप्रथि के सिद्धान का प्रभाव दया है एडलर आर आ अनेय की वाउ म अतर बबल इतना ही है कि 'हीनता' के स्थान पर

allows no fulfilment of the personality, then the fulfilment one finds in Substitute—Living will most likely be pitifully unrelated to the possible conditions of actual life Since, moreover such work unfits one for making the *positive* effort without which there can be no true recreation 'compensation tends to be much the same thing as 'distraction

This form of compensation then is the very reverse of recreation in that it tends, not to strengthen and refresh the addict for living but to increase his unfitness by habituating him to weak evasions to the refusal to face reality at all

१ 'त्रिगु', प० २६ ।

“अनुभवयोगिता” और “अपर्याप्तता” का प्रयोग करते हैं।<sup>1</sup> परखतीं शायद न शिवनाथजी के उक्त कथन का ध्रममूलक प्रमाणित विद्या है और बताया कि बला निषेध उपर्युक्त स्थापना न अज्ञेय की है, न एडलर की। यह ता लक्ष्म की है। (मी० टे०) ‘तूझ की पुस्तक ‘ए होर फॉर पोयट्री’ के अंतगत एक निबंध है—‘पान्टस्त्रिप्ट १६३६’। इस निबंध में उक्त स्थापना है—‘द हिस्ट्री ऑफ द पोयट हैज बीन द हिस्ट्री ऑफ द मिसफिट ट्राइंग टु जस्टिफाई हिमसेल्फ टु सोमायटी’। (ए होर फार पोयट्री प० ८८-८९) इस स्थापना के साथ श्री अज्ञेय की इस स्थापना को रखकर देखें तो एक ही (sic) प्रतिध्वनि दूसरे में स्पष्ट सुनाई देगी।<sup>2</sup>

अपनी स्थापना के समथन में श्री अज्ञेय ने खेनिडर-सम्यता और चरवाहा-सम्यता सभी पहलुओं की अवस्था के बलावार की चेष्टाओं का उल्लेख किया है जो ‘होर फार पोयट्री’ पर ही अध्यापन है। ‘एथिआर मौलिकता’ के संबंध में कहा जा चुका है (और स्वयं अज्ञेय ने अपनी भूमिका में स्वीकार किया है) कि यह टी० एम० एलियट के ‘ट्रिडिशन एण्ड दि इण्डिबिडुअल टलेण्ट’ का ही भावानुवाद है। इसी प्रकार ‘परिस्थिति और मस्कार’ में डेनिस टॉमसन और एफ० आर० लीविस के विचारा का पुनराख्यान हुआ है और निबंध के आरंभ में ही यात्रिकता की आरंभ हमारे खान के दुष्प्रभावा का उल्लेख करते हुए लेखक ने कहा है कि आधुनिक जावन की परिस्थितियों और वाध्यताओं का अध्ययन करके हम समझ सकते हैं कि किस प्रकार उन परिस्थितियों में व्यक्ति सस्ती ही अनुभूतियाँ चाहता या चाह सकता है।<sup>3</sup> अज्ञेय पर आधुनिक (पार्श्वार्थ) मनोविज्ञान का—फ्रायड और एडलर का—विचार गंभीर प्रभाव पड़ा है इसका ईषत अनुमान उनके इस कथन से किया जा सकता है ‘आज का हिंदी साहित्य अधिकांश में अतृप्त काया कह लीए लालसा का इच्छित-विश्वास (wishful thinking) का साहित्य है।<sup>4</sup> ‘परिस्थिति और मस्कार’ का विवेचन भी, प्रधानतः मनोवैज्ञानिक भूमिका पर ही हुआ है।

आत्मनपद में मगूहीत निबंधों से भा हमारी यह धारणा दृढतर होता है

१ ‘द्विदिकोण’, जून १९५२, प० १४ (‘केसरीकुमार लिखित “अज्ञेय, एडलर और लिबिम” शीर्षक निबंध से।) ( )

२ उपरिबत, प० १४ १५।

३ ‘त्रिणक’, प० ४६।

४ उपरिबत, प० ४७।

कि अशेष न पाठ्यात्प गात्रिय वा विगेषा चंगेरी। गात्रिय वा, गमीर ।  
 अथवा-अस्तिगाता विद्या वा । १३ निरपेक्ष म पाठ्यात्प गात्रियराग म  
 ताम, विषार धोर उनरी यताया म अनरान उदरप समाहित है। अर  
 ती पढती कविता विद्या म समुचित है धोर कवि धानोपन वा भा होता है कि  
 स्वय न यतात्प साग स पूजा करे, "यादए वा कीर्ति हागी ?" अते देविगन  
 मा कविता की पत्रिया

यदग द्वा द एद होंन गात्रन

दयर ग्रादग एण मात्रिय

मोट मोट, माट , मोट'

द ययर ग्रादग एण मात्रिय

सुनाकर पूजा करन ध—'यादए तो कीर्ति प ती धे कर ?' । अशेष इग धान  
 —अच्छा तरह अथगा है कि बुद्ध साग उनरी कविता वा 'हिंदी म लिगी गयी  
 अप्रजा कविता ' समगत है । परंतु स्वय अथग नहीं समझत कि उनरी कविता  
 म ऐमा बुद्ध है जा कि भारत की ही वाक्य-रूपरा द्वारा अनुमात्रित न हो  
 सकना हा ।'<sup>३</sup>

प्रवृत्ति अह वा विलयन की ये पत्रिया प्रष्टव्य है

वाक्य रचना वा—किती भी कला-सृष्टि वा—अधिकार तर्क  
 आरम हाता है जय व्यक्तित्व का संपूर्ण विलयन हो जाय, यह मानना  
 तो दूर की बात रही, आज वा कवि साधारणतया इतना भी नहीं  
 मानता कि कविता, या कि कला-सृष्टि, व्यक्ति के विलयन वा माध्यम  
 है कि कविता के द्वारा कवि व्यक्ति को बृहत्तर इकाई म विलीन  
 कर देता है। आज वा कवि तो कविता को वरच व्यक्तित्व की,  
 व्यक्ति के अह की, प्रखरतर अभिव्यक्ति और उस अह को पुष्ट करने  
 वाली रचना मानता है। मैं कहूँ कि इस चरम कोटि वा आधुनिक  
 कवि मैं नहीं हूँ अधिक-से अधिक उस श्रेणी मे हूँ जो कविता को अह के  
 विलयन वा साधन मानत है ।<sup>४</sup>

इन पत्रियों म एलिप्ट के उस निबंध की प्रतिध्वनि सुनाई पडती है जिसका अशेष

१ आत्मनेपद (काशी, १९६०), पृ० २४ २५ ।

२ उपरिवत, प० २७ और २९ ।

३ उपरिवत, प० २९ ।

४ उपरिवत, प० ३३ ।

ने नावानुवाद किया था और जा त्रिशकु<sup>१</sup> में 'रुचि और मौलिकता' के नाम से प्रमिहित है। 'ट्रिडिग्न एण्ड रि इण्डिविडुअल टैलेण्ट' म एलियट ने कहा है 'पायट्री इज नॉट अ टर्निंग लूस ऑव इमाजन, बट ऐन इम्बेप फ्रॉम इमाजन, इट इज नॉट दि एकमप्रेशन् ऑव पर्सनलिटी, बट ऐन इम्बेप फ्रॉम पर्सनैलिटा, बट ऑव वोन, ओन्ली दोज हू हैव पर्सनलिटी एण्ड इमाजस नो ह्याट इट मींस टु वाण्ट टु इम्बेप फ्रॉम दीज थिंग्ज।'<sup>१</sup> इसी निबन्ध में कलाकार की प्रगति का एक अनवरत आत्म-समर्पण की प्रक्रिया कहा गया है—एलियट के अनुसार कलाकार की प्रगति व्यक्तित्व के सतत विरोभाव की प्रक्रिया है। इस व्यक्तित्व-उत्सर्ग म कला विज्ञान की स्थिति के मन्त्रिकट पहुँचती, वही जा सक्ती है। अनेय ने एलियट के इस कथन का समयन किया है और कहा है कि "व्यक्तिगत अनुभूति की दृष्टि से दत्ता जाय तो लेख के इस सण्ड के ऊपर दी गई टी० एम० इलियट की उक्ति<sup>२</sup> से बाई छुटकारा नहीं है—कि कविता निर्जी अनुभूति की मुक्ति—अभिव्यक्ति—नहीं वह अनुभूति से मुक्ति है, व्यक्तित्व का प्रकाशन नहा व्यक्तित्व स छुटकारा है।'<sup>३</sup>

'प्रयोग और प्रेषणीयता' म भी अधुनातन पाश्चात्य समीक्षकों के हीं ऐसे विचार न अभिव्यक्ति पायी है जिनसे अनेय सहमत हैं। हिंदी म अद्यतन प्रयोगों के प्राधारमूल कारण का विवचन करते हुए उन्होंने कहा है कि 'भाषा का अपर्याप्त पाकर विराम-मकता स अको और सीधी तिरछी लकीरो से, छोटे-बड़े टाइप से, सीधे या उलटे अक्षरों में लोगो और स्थानों के नामा म अक्षर दायों स—सर्वा प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करन लगा कि अपनी उल्लस्य दृष्टि सवेदना की मष्टि को पाठका तक अनुष्ण पहुँचा सके। ' इस तरह के प्रयोग विश्व-साहित्य म पहले भी हा चुके हैं। सनहवीं शता के 'मेटाफिजिकल कवियों का मूल्यांकन करत हुए एलियट ने उनके वाक्यों के सघटन की जटिलता की और सामयिक पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है और बताया है कि उनके वाक्यों का सरल न होना दोष नहीं है प्रत्युत यह इस बात का द्योतक है कि वे अपने विचारा और अनुभूतिया के प्रति निष्ठावान् थ।'<sup>४</sup> शेक्सपियर के नाटकों

१ टी० एम० एलियट, 'द सेक्सेड वूड' (लंदन, १९५७), प० ५८।

२ "पायट्री इज नॉट अ टर्निंग लूस ऑव इमाजन" आदि।

३ त्रिशकु, प० ४०।

४ आत्मनपद, प० ३६।

५ "दिस इज नाट अ वाइस, इट इज अ पिडेलिटी टु वॉट एण्ड फीलिंग"। एलियट, 'सेलेक्टेड एसेज' (१९४९), प० २८५।

को भाषा में भी ऐसे ही प्रयोग सन्निहित हैं। उसने विंगम-शब्दों में उन शब्दों का भी व्यंजना हार्ना है जिन्हें वह व्यक्त करता चाहता था।<sup>१</sup> होंदरिनग भी उपर्युक्त प्रचलित भाषा को भार्याका पारदर्शक-नग के प्रयोग विग। उमन ने श्रेणरैजा की उस तवी कथिना का गूढगाा होता है जिमन श्दिसुद्ध केजना का श्दन वाक्य विभागा स जितना आलाटिठ रिया है, उतना श्पन भावा नग। श्पना यहीं त्प क्हा जान लगा है कि वाक्य रचना मूक्त परपयनुमाति नग्या म व्यापात उत्पन करता है<sup>२</sup> और आधुनिक कर्मीनी कथिना क अनुमार वाक्य परिग्रह एव पलाजनत गद्य का ही एक प्ररूप न हारर भाषा का एक विशिष्ट प्रकार है जिमना एक श्पूव सदय हाता है। इमी कारण कलरी कथिना को भाषा की ही एक कना ('un art de langage')<sup>३</sup> कहना है श्पार मतामें वाक्य विपात क ह्द नियमों की श्पहलना कर श्पन ग्या को अजान श्परिचित स्थितियों म रगवर उह श्पयनता प्रगन करता है

Le vers qui de plusieurs vocables refait un mot total, neuf etranger a la langue et comme incantatoire achève cet isolement de la parole niant d'un trait souverain le hasard demeure aux termes malgré l'artifice de leur retrempe alternée en les sens et la sonorité et vous cause cette surprise de n'avoir ou jamais tel fragment ordinaire d'elocution, en même temps que la reminiscence de l'objet nommé baigne dans une neuve atmosphère

Crise de Vers Mallarmé O C , p 368 \*

प्रयाग और प्रेषणायता' म ही अज्ञेय न आधुनिक हिंदी-कवि की एक दहुत

१ राबट श्रेण्ट, द कॉमन ऐस्फोडेल, पृ ० ९१ ।

२ एफ० ओ० मेथ्योसेन, द अचीनमण्ट आव टो० एस० एलिपट (१९५८), पृ० ८६ ।

३ Valery Poésie et Pensée Abstraite Valery O , p 1324

४ Robt Gibson (com) Modern French Poets on Poetry, (Cambridge 1961) pp 157 et seq

यही समस्या' की धार नर्मादानों और पाठों का ध्यान आकृष्ट किया है और यज्ञा है कि आज के कवि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण काय भाषा की उत्तरात्तर 'मनुचित हार्न हई साधकता की बँचुल फाटवर'<sup>२</sup> उनमें अमिनत्र व्यापक अथ भग्ना है। साधारणकरण की पुराना प्रणालियाँ अत्र निरयक हा गई हैं और 'प्राणमचार का माग (की शक्ति?) उनमें नहीं है। अनेक के इन मतवाद के मूल में एलियट मरिती पाश्चात्य आधुनिकों के ही विचार दृष्टिगत हान हैं। एलियट ने 'द मेटाफिजिक्स' पोपटस भाषक निबन्ध में कहा है कि हमारी सम्मता में इतना बहिष्कृत और जटिलता आ गई है कि इस वैविध्य और जटिलता में प्रभावित भूमि भवेदनाएँ विविध तथा जटिल बाध्य का हा प्रणयन करेंगी। कवि का अधिकारिय यद्ग्राहा सदमयुक्त और परान होना पडेगा जिससे वह अपनी भाषा को खीच तानकर, या आवश्यकता हान पर विस्थापित कर, अपने उद्दिष्ट अथ में भर सके।<sup>३</sup> बेतरि और एलियट ने उन पाठकों की रुचि का विराय किया है जो बाध्य का भावजनित होना पसंद करत हैं। आधुनिक बाध्य दीनित एव सम्भारित व्यक्तियों के लिए लिखा जाता है इस कारण गूढ-जटिल (esoteric) होता है, जाजियन कवियों की रचनाएँ साधारण पाठकों के लिए भी लिखा जाती थीं इस कारण वे अत्यंत बोधगम्य (exoteric) हैं। अनेक ने हिंदा की नयी कविता के सबध में वही बात कही है जो एलियट ने अंगरेजी की, नयी कविता के लिए कही है। हिंदी की नयी कविता में 'ससाधारण की खोज के उपाहरण अरिक् मिलेंगे, और तत्र का बच्चापन अथवा भाषा का अटपटापन भी कही अधिक। कवि भाषा के विषय में एक प्रकार की अराजकता भी लानि हो सकती है ।<sup>४</sup>

१ आत्मनेपद, पृ० ३६ ।

२ उपरिबत, पृ० ३७। "तीसरा सप्तक" की भूमिका में अनेक का यह कथन द्रष्टव्य है कि "नयी कविता की प्रयोगशीलता का पहला आयाम भाषा से सबध रखता है।" (दे० प० १५) ।

३ 'सेलेक्टेट एसेज', प० २८९। तुलना कीजिए "नये कवि की उपलधि और वेन की कसौटी इसी आधार पर होनी चाहिए। जिन्होंने गद्द को नया कुछ नहीं दिया है, वे लोक पीटनेवाले से अधिक कुछ नहीं ह—भले ही जो लोक वह पीट रहे ह वह अधिक पुरानी न हो। डुरुहता अपने आप में कोई दोष नहीं है, न अपने-आप में इष्ट है।" तीसरा सप्तक (१९६१) प० १७ ।

४ इपाजरा (काशी, १९६०), पृ० १० ११। छायावादी बाध्य पर पाश्चात्य

‘प्रतीक’ का महत्त्व ‘प्रतीक’ और सत्यावेपण आदि निबन्धा में, प्रभाव’ की सम्पात्कीय टिप्पणियाँ और समीक्षाओं में, यहाँ तक कि अज्ञेय व उपयासा न भी पाश्चात्य प्रभाव के प्रभूत विह्वल दृष्टिगत होते हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि अज्ञेय की साहित्यिक चेतना के निर्माण में भारतीय वादमय का भी अमूल्य योगदान रहा है और इसका प्रभाव ‘रूपावरा की भूमिका (‘प्रकृति-काव्य काय प्रकृति’) में मिलता है। तार-सप्तक का भूमिकाएँ (‘विवृति और पुरावृति’ तथा ‘परिष्कृति प्रतिदृष्टि’) अत्यंत सक्षिप्त हैं और प्रस्तुत शाब्द विषय की दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं रखती।

नलिनबिलोचन गर्मा (१९१६-१९६१)

नलिनजी की समीक्षाएँ इयत्तया बहुल न हैं। पर ईद्वयया यडे महत्त्व की हैं। उनमें व्यापकता के स्थान पर ऊर्ध्वता मिलती है परंतु साथ ही प्राच्य तत्त्वा के स्थान पर प्रतीच्य प्रभावा का आतिशय्य मिलता है। इसी कारण प्रभावा के मनन-मधन में रुचि रखनेवाले समीक्षक के लिए उनकी आलोचनाएँ अत्यंत उबरक्षेत्र का काम करती हैं और साथ ही शोथ काय का भी सरल सुगम बनाना हैं। स्पष्ट है कि नलिनजी ने पाश्चात्य साहित्य से प्रभाव ग्रहण करने के पूर्व भारतीय साहित्य का भी अध्ययन किया था और अपने बहुपथीन साहित्यिक शाब्द और अध्ययन के कारण हिंदी वादमय पर व्यापक परिप्रेष्य में विचार करने का क्षमता विकसित की थी। उनके पाठक यह भी जानते हैं कि पाश्चात्य साहित्य की गरिमा से यत्किंचित अस्मिमत होने के कारण उनका समीक्षा में कहा वही पाश्चात्य तत्त्वा का आवश्यकता से अधिक सयाग हुआ है, उनकी मनी ता में एकाग्रता आ गई है और पाश्चात्य-योरस्त्य का धमा सतुलित समन्वय नहीं हा पाया है जैसा आचार्य रामचंद्र शुक्ल और डा० नगद्व की समाक्षाया में हुआ है। परंतु नलिनजी की प्रतिमा विकामामुल एव गत्यामक तो थी हा, वह हमारा आत्मन समन्वय की आर अप्रमरहा चुका थी।

सांभ्रतिक हिंदी साहित्य की अननानक विशेषताया में यह प्रवृत्ति भी सांभ्रिक है जिममें अस्मिमत हा हम पाश्चात्य साहित्य के सम। मतवादा का अ-विउ भाव से अगाहृत कर तत हैं। नवानता की राज में हम प्राच्य परपराया

---

प्रभाव के सबंध में अज्ञेय ने कहा है कि “पश्चिमी काव्य के परिधय से भारतीय कवि एक बार फिर प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता की ओर धाट्टा हुआ।” (प० ८)।

की ओर उतनी प्रबल उत्कृष्टा से उमुख नहीं होते जितनी उद्दाम लालसा से  
 पश्चात्य साहित्य और चिंतन की ओर अग्रसर होत हैं। हिंदी के नव्यतम मानक  
 तीव्र की अनंत खनियो से ही उन्मूत होते हैं। अद्यतन हिंदी साहित्य ने अपन  
 विधन के लिए प्रायः इमी सरल माग का अनुसरण किया है। भारतीय परंपरा-  
 धर्मना ही इस प्रवृत्ति के आतिशयिक विकास में अकुशका काम कर सकती है और  
 उम ममन्वय की धार हमें उत्प्रेरित कर सकती है, जो वाङ्मयीय ही नहीं, हमारे  
 साहित्यिक विकास के लिए अनिवाय भी है। नलिनजी भारतीय साहित्यिक  
 परंपराओं के बमब के प्रति जागरूक थे और सस्कृत साहित्य शास्त्र में "नवीनतम  
 पश्चात्य आलाचनात्मक उदमावनाओं का पूर्वाशित देखकर विस्मित" होते थे।  
 उनके मतानुसार 'शास्त्र के स्तर पर उतीत होने के लिए आधुनिक हिंदी  
 आलाचना को इस दुलम रिक्त के योग्य अपने को बनाना आवश्यक है, तभी  
 उमकी अपनी उपलब्धि मौलिक और महत्त्वपूर्ण होगी। इसके लिए सस्कृत  
 के साहित्य शास्त्र के ग्रन्थों के अनुवाद और भाष्य ही नहीं, पुनःस्थापन भी  
 आवश्यक है।"<sup>१</sup>

शुक्लजा से शुरू होनेवाली आलोचना का आगे बढ़ाना ही नलिनजी के  
 समीक्षात्मक निवधा का लक्ष्य है। समीक्षा-क्षेत्र में यथार्थोमुख प्रयोगवादी हान  
 के कारण उहाने समय-समय पर हिंदी-समीक्षा के अभाव की ओर हमारा ध्यान  
 आकृष्ट किया है

वास्तविकता यह है कि हिंदी में शुक्लजी के पाए के आलोचक उन्ने  
 वाद दुलम ही बन रहे ' मानदंड (१), पृ० २

"वह निर्देश के लिए कभी सस्कृत के साहित्य शास्त्र की ओर पीछे  
 मुड़कर दबती है, कभी सुदूर पश्चिम की उपलब्धि को निहारती  
 है " उपरि०, पृ० ४

'नई दिशा में अग्रसर होने के लिए हिंदी आलोचना को जिन पाथेय  
 रूप महाप्रवधों की आवश्यकता है, वे सख्या में बहुल और प्रकारस्त  
 हान हैं।' उपरि०

'श्रेष्ठ हिंदी आलोचना अपने ही रिक्ता और अपनी ही शब्दावली  
 की वागुरा में आवद्ध है ' उपरि० पृ० ५

किंतु नलिनजी का दृष्टिकोण निषेधात्मक तथा नराशयवादी नहीं है।  
 यद्यपि वे स्वीकार करते हैं कि हिंदी में शुक्लजी से शुरू होनेवाली आलोचना

१ मानदंड (१), पृ० ५।



बहुत आगे नहीं बढ़ी है, फिर भी व यह नहीं बढ़त कि गुकरोत्तर हिन्दी-आलाचना आगे बढ़ी ही नहीं है। इसन "सफर की कुठ मजिलें अवश्य तय कर ली ह । वह आगे बढ़त चलन के लिए पाथय और निर्देश की प्रताप्ता म है।"<sup>१</sup>

विकास पथ पर हिन्दी समीक्षा के सश्रमण तथा उत्तरोत्तर सबधन म जिन व्यक्तिया का योगदान स्मृत य हा चुका है, वे हैं सुधागुजी आचाय नददुलारे वाजपेयी, शर्चीरानी गुटू सुधाकर पाडेय, शिवबालक राय आदि। इनम सुधागुजी और आचाय नददुलारे वाजपेयी हीसवाधिक कीर्तिलब्ध समीक्षक है। शर्चीरानीगुटू की स्याति कतिपय सम्पादित ग्रंथो और निबध-सग्रहा पर ही अधिक आश्रित है और प्राचाय शिवबालक राय की उपलब्धियां सम्माय होकर भा अभी वह यश और लोकप्रियता नहीं पा सकी हैं जिनकी वे अधिकारिणी ह। रायनी का 'साहित्य के सिद्धांत और कुरुक्षेत्र शीपक ग्रंथ उाके महन बहुप्य का परिचायक है परंतु साथ ही वह इस बात का भी चोतक है कि लेखक नलिनजी की समीक्षा-शली से अत्यधिक प्रभावित है। 'कुरुक्षेत्र' के विवेचन मे सवत्र पाश्चात्य साहित्य स उद्भूत मानक प्रदुक्त हुए हैं और आलोचन न अपने विचारा का समयन पाश्चात्य लेखका की उक्तिया से किया है। वही कही जान-बूझकर विवेचन को पाश्चात्य रूप-सज्जा म उपस्थित करने का अनावश्यक प्रयास हुआ ह। परंतु शिवबालक राय उसी साहित्यिक निक्ताय के सदस्य है जिसका नेतत्व नलिनजी ने किया था। घ्यात य है कि हिन्दी समीक्षा के गुकरोत्तर सबधको एव उनायका मे डॉ० नगेंद्र जसे सत्समालाचक, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जसे साहित्येतिहासकार एव डा० धीरेन्द्र वर्मा सदश बनानिक शोध पद्धति के जनक के नाम विस्मृत कर दिये गए हैं। अयत्र एक और नामावली प्रस्तुत की गई है और कहा गया है कि 'वाल्म्यायन माचक केसरी, शिवचद्र, नरश जगदीश पाडेय प्रभृति म से जहा कुछ ने प्राचीन अर्वाचीन के समन्वय का प्रयास जारी रखा, वहा कुछ ने 'दृष्टिकोण' म पहली बार हिन्दी के लिए सुपरिचिन बनाये गय पाश्चात्य आलोचका की अत्यधिक स्पष्ट प्रतिबन्धि है।'<sup>२</sup> यहा भी वाल्म्यायन और माचके का छोड़कर अय प्रतिनिधि हिन्दी आलाचका का उल्लेख नहीं किया गया है। केसरी जी और नरश के नाम नकेतवाद से सम्पकन हान के कारण अखिल भारतीय स्याति पा चुक हैं और य समीक्षक-द्वय नलिनजी क ऊजस्वी तथा गभीर व्यक्तित्व

१ मानदड (१), प० ४।

२ मानदड (१), प० ६।

से प्रतिच्छन्न रहकर भी अपनी मौलिक उदभावनाओं से साहित्य-सवधन में निरतर रत हैं।

वहीं-वहाँ पाश्चात्य प्रभाव तथा पाश्चात्य वादमय के बाह्य भावचिन्तन न नलिनजी से विचित्र और विवादास्पद बातें कहवायीं हैं। उनके अनुसार 'हिंदी के नवीन आलोचक' की सबसे बड़ी उपलब्धि यह होगी कि वह अंग्रेजी या फ्रेंच साहित्य का इतिहास रमालवार के दृष्टिकोण से लिखे, जहाँ वहाँ अपन दृष्टिकोण से मकडानल, वीथ या बितरनितज न सम्भृत साहित्य के इतिहास लिखे थे। जहाँ फ्रांसीसी लुगाइ और बजामिया के इतिहास से बर्निया, उस आकार प्रकार का किसी अंग्रेज लेखक का अंग्रेजी साहित्य का इतिहास नहीं है जहाँ पाश्चात्या के लिये संस्कृत साहित्य के इतिहासों से स्वयं भारतीयों के नहीं हैं उसी तरह बौद्ध जानता है कि हिंदी के किसी आलोचक के द्वारा लिखित पाश्चात्य साहित्य का इतिहास उनका अभिनव मूल्यांकन करने में समय नष्ट होगा।<sup>१</sup> नलिनजी का यह स्मरण करके आश्चर्य होता है कि हिंदी आलोचना के प्रारंभ में ही गुकलजी, तुम्मी और क्युमिगज के बुलावे मिलते हैं।<sup>२</sup>

इन उद्धरणों से निम्नलिखित रोचक तथ्य सामने आते हैं

(१) हिंदी के नवीन आलोचक की सबसे बड़ी उपलब्धि यह होगी कि वह रमालवार के आलोचक में अंगरेजी या फ्रेंच साहित्य का इतिहास लिखे। नलिनजी यह नहीं कहते कि ऐसे साहित्य-इतिहास के प्रणयन के पश्चात् नवीन आलोचकों का रुसी और जर्मन साहित्य का अध्ययन और तदुपरि इनके इतिहास की रचना करनी चाहिए। और, रुसी तथा जर्मन साहित्य तक ही हम अपने ज्ञान को सीमित क्यों रखें? क्या न चीनी और जापानी साहित्यों के इतिहास-लेखन की ओर अप्रसरण है? हिंदी के नवीन आलोचक की सबसे बड़ी उपलब्धि यह होगी कि वह इन प्रकार के कार्य न करे। नलिनजी के शब्दों में ही वह हिंदी के प्राचीन ग्रन्थों के बर्णनिक दृष्टि से संपादित सम्बर्ण प्रस्तुत करे और उनके साहित्यिक मूल्यांकन का दायित्व नए आलोचक पर छोड़ दे। वह चाहे तो अंगरेजी या फ्रांसीसी साहित्य का सम्यक अध्ययन कर उन्में नव्य पाठ्य सामग्री का चयन और स्वयं साहित्य भांडार का सवधन कर सकता है। अंगरेजी या फ्रांसीसी साहित्य के इतिहास को रमालवार के दृष्टिकोण से लिख डालने से गुकलजी द्वारा

१ उपरिबत, पृ० ११।

२ उपरिबत।

३ मानदंड पृ० ४।

प्रवर्तित समीक्षा-परंपरा का विनाश नहीं हो सकता। परन्तु यदि हम उठा माहित्य के मूलभूत उपयोगी तत्त्वा का आत्मतान्त्रिक बनाने माहित्य का मन्त्रणा करता यह अधिा उपादय हो सकता है।

(२) नलिनजी की यह गुदूढ धारणा थी कि 'गुक्लजी' का पाए का आलावा उनके बाद दुःख ही बन रहा। इसका विपरीत हमारा मया है कि अंगरजी का फामीसी साहित्य का इतिहास रगालार का दृष्टि म लिख डानना समीक्षा भी 'गुक्लजी' का पाए का आलावा रहा हो सकता। 'गुक्लजी' न कर्मिग का उत्तम अवश्य किया है, परन्तु उनका ममयन नहा। यन्तु उहान कर्मिग की कविताका को गला की कलावाजी कहा है और उनका वाक्य-शाली का न अपनाते का सत्यरामग किया है।

(३) तासरी बात यह है कि 'गुक्लजी' न मम्मट रिचड्स और प्राचे पर समान अधिकार स अपन रिचार व्यस्त नहा विग। उहान प्राचे के प्रति यय नही किया है और समग्रत उहान उनका अययन भी नहीं किया था।

(४) नलिनजी के साध्यानुसार तुल्सी के 'मानस' को वाक्य की कसौटी माननेवाला विद्वान् कर्मिग का उल्लेख करता है तो अवश्य यह कम बडी बात नहा है।<sup>१</sup> यदि मानस का वाक्य की कसौटी माननेवाले विद्वान् न कर्मिग का उल्लेख किया है तो यह कोई बडी बात नहा है। यह सच है कि 'गुक्लजी' न कर्मिग का उल्लेख ही किया है उसके प्रति यय नहा परन्तु इस उल्लेख को हम शुक्लजी के महत्त्व का कारण नहीं मान सकते। 'रस' को नयप्रतिपादनभम बनानेवाला आलोचक गाम्थन विद्वान् भी था और एक महान कलाकार भी।

उपयुक्त विवचन का उद्देश्य यह लिखलाना नहीं है कि हम नलिनजी के निष्कर्षों और उपपत्तिया से सवथा असहमत है। यहाँ केवल इस बात पर बल दिया जा रहा है कि उनके कतिपय निष्कर्ष अत्यंत विवादास्पद और नव्यता के प्रति अनिश्चय आकर्षण से प्रसूत है। जहाँ तक नलिनजी के मूलभूत लक्ष्य का प्रश्न है व स्पष्ट और निर्विवाद है ससृजत का साथ ही पाश्चात्य माहित्या-लाचन की नवीनतम प्रवृत्तिया का समन्वय जिसकी आर 'गुक्लजी' सकेत कर चुके थे। परन्तु, समग्रत न नलिनजी की समीक्षाका म यह समन्वय मिलता है और न उाके भम्प्रत्याय के ऋय समीक्षका म ही। इस समन्वय के स्थान पर (कर्मिग का लिए प्रयुक्त शुक्लजी के शला से) शला की कलावाजी — 'स्टण्ट' — मिलती

१ उपरिबत, (१), प० १२।

है और हिंदी-आलोचना को पाश्चात्य लेखका तथा उनकी दृष्टिया के नामा रु भारतात कर दिया गया है। इसी गी के प्रयोक्ताओं में डा० देवराज उपाध्याय जगदीश पाडेय, राजेंद्र यादव प्रभृति समीक्षक भी परिगणनीय हैं। नलिनज। पाश्चात्य चिंतन मान स दनना प्रभावित है कि बहा-वही ता प्रतीच्य विचारका और लेखका की नामावली मान प्रस्तुत करके ही सतुष्ट होजात हैं। उनके विधेयवाद आर नव्यालोचन १ गोपक निवध में यूरोपीय पॉजिटिविज्म, उनीतवा शनी की विमानवादिता और विधेयवाक के विरुद्ध हानेवाते बहुपथीन विद्रोह का बणन है और साडे तीन पने के इस निवध में देजना यूरोपीय लेखका के नाम सकेतित हैं। ऐसी बोचिल नौरम आलोचना का ही सभवत 'नव्यालोचन' की सजा से अभिहित किया गया है। यहाँ तक कि यूरोपीय नव्यालोचन का भी स्पष्ट विवेचन उक्त निवध में नहीं हो पाया है और न विधेयवाद तथा नव्यालोचन को ही भारतीय साहित्य स समवित किया गया है। इस निवध की पाद टिप्पणियाँ यडी ही प्रभावोत्पादक हैं —

(प० २१) १—Positivism

२— जाति, वातावरण क्षण', इन फ्रासीसी विद्वान् (Taine) के अनुमार कला के सृजन में निणयात्मक तत्त्व हैं।

३—Antiquarianism

४—Factualism

५—Historicism

(प० २३) १—Naturalism

२—Einleitung in die Geisteswissenschaften

३—Geschichte und Naturwissenschaft

४—Die Grenzen der Naturwissenschaftlichen Begriffsbildung

५—La Theorie L histoire

६—Facts of Repetition

७—Facts of succession

८—History Its Theory and Practice (मूल पुस्तक इटालियन में १६१७ में प्रकाशित

१ मानदड (१), प० २१ २४।

हुई थी, प्रिंजी अनुवाद १८२३ म प्रकाशित  
हुआ था।)

'दृष्टिकोण' म मर्नि निरघ भा, प्रचारा विधेयवा जार नव्यालयन  
के सङ्ग हैं। इम भा ल्या न अपना अनियम उगारा क कारण पात्राद  
लेना वा, यथावत, सामान्य प्रभुता वा है और नियम का विधेय भात जा  
कुछ हा उस पर पात्रात्य साहित्यकारा ती कवा आरगित करदा है। 'साहित्य  
म ग्राम्यता जीर स्यालता का विवना पत्रपर जाळत हात, भाग  
प्रूस्त, डी० ए० लॉरेन, जेम्स ज्वायस प्रभृति मपारा ती रताभा और  
विचारा के आलाक म हुआ है। नर्नि ती जिम 'समय' क प्रस्ताता है  
निम्नाधत गद्या उगा ता एव जगत उगाहम्प है —

इग्लड जीर अमरिता म मनाविज्ञान जीर कामगाम्न की  
हैवलाक एतिम मरी म्टाप्म प्राण्ट एरिम प्रभृति उच्चकोटि क  
विद्वाना की लिा पुस्तक जवा हा चुका हैं यद्यपि प्रसिद्ध कानिका  
के सघटित विराध के बाद नियमन का आना वापस ले ला गयी है।  
वनड शा जस सुधारवादी के एकाधिक नाटका का अभिनय, नतिरता  
क नाम पर, सेसर के द्वारा रोका जा चुका है। वाल्ट व्हिटमन  
के लीव्ज ऑफ ग्रास स्विनवन के पाएम्स एण्ड वट्टस वाचिया  
के डिक्मरन अरेवियन नाइट्स पेप्ट की डायरी डी० एच०  
लॉरेस के पसाज, रेन वो लेडा चटलीज लवर जेम्स ज्वायस क  
युलिसीज फ्रक हैरिम के माइ लाइफ एण्ड ट्राज, रडविलफ के द वल  
आफ लान्लीनेस आदि पनासा उच्च कोटि क कलापूण ग्रन्था पर  
प्रतिबध लगातर अग्रजी जीर अमरिकन सरकारा न अपनी घार  
सकीणता और जगुणप्राहकता का परिधय दिया है ।<sup>१</sup>

नर्निजी के अनुसार आधुनिक यूरोप के गल्प का इतिहास मुख्यत डी०एच०लॉरेस  
और जेम्स ज्वायस का ही इतिहास है। यूरोपीय गल्प स अभिन्न पाठा जानते  
हैं कि आधुनिक यूरोप के गल्प का इतिहास मुख्यत दास्ताए स्का, तालस्ताय  
जोला मोराविया वालजाक फलायेर जीर माग्न का इतिहास है आर आधुनिक  
अगरेजा गल्प का इतिहास मुख्यत लॉरेस तार ज्वायस का इतिहास है। इसा  
प्रकार क 'टरवरा टेत्स' के 'निरावरण कणना क सबध म नलिनजी की धारणाएँ

१ पटना, १९४७ ।

२ 'दृष्टिकोण', प्रथम भाग, प० ८९ ।

ध्यान हैं। चौसर द्वारा किये गए ये वगन विराट नहीं अदलील ही हैं और कटरवरी के माग म अभिनीत होनेवाले नाटक के अविच्छिन्न अंग हैं। संप्टेयाना के अनुमाग अदलीलना ता हमारे अस्तित्व के साथ ही मूलबद्ध है, इसलिए इसक त्रिना मच्ची कॉमिडी की रचना हो ही नहीं सकती। चौसर तत्त्वत हास्यलेखक है और उमके कटरवरी टेरस का ह्य मन कॉमिडी कहा जाता है। कवि के अदलील वगन जीवन के प्रति उसके उदार एवं व्यापक दृष्टिकोण के सबया अनुकूल हैं। उनम कवि का म्वर स्वस्थ है वगन उच्च काटि के हैं और रचना गिल्प की दृष्टि म अलाल कथाएँ चौसर की अनन्य उपलब्धिया मे परिगणित होती हैं। नलिन नी भूत तात हैं कि 'महाकवि चौसर' की यथायता और जोता, मोराकिया जस अद्यतन लेखक की यथायता मे उनना ही अंतर है जितना मध्ययुगीन कला आर अद्यतन कला मे है। जहाँ मध्ययुगीन कला सामजस्य और उच्चाच्चपरपरा (हायरार्की) के सिद्धांत पर आधत है, वही आधुनिक कला का आधार उन प्रतिकूल और विराधी वस्तुआ की भावना है जिनके परस्पर प्रभाव से समकय की उत्पनि हानी है।<sup>१</sup> मध्ययुगीन चिंतन का मूलाधार, मुख्यत उच्चोच्चपरपरा की भावना है और आधुनिक चिंतन म क्रियागोल विरोधी तत्त्वा की भावना पायी जाती है।<sup>२</sup> जब मध्ययुगीन कलाकार को कोई नीति-उपदेश देना होता है तब वह अस्त्रो दृष्टाता का प्रयाग करन म सकोच नहीं करता। चौसर की वात ता जान दीजिए टॉमस रिगस्टेड न 'बुक आव प्रोमव्न की व्याख्या के श्रम म आर राइडवल न सेण्ट ऑगस्टीन न 'मिटी ऑव गाड' पर लिखे गए अपने भाष्य म अदलील दृष्टात प्रस्तुत किए हैं। ये कथाएँ यथायवादी न होकर तयुगीन नतिकता के अतगत ही रहती हैं और इनके लेखक रामाटिक यथायवादी लखन नहा मान जाते। उनकी अदलीलता यथायवादिता से उदभूत न होकर उनकी मध्ययुगीन धार्मिकता का ही अंग है।<sup>३</sup>

१ D W Robertson Jr *A Preface to Chaucer Studies in Medieval Perspective* (Princeton 1962), p 6

२ उपरिबत ।

३ Medieval artists did not hesitate to use what we should call obscenity to illustrate a moral point. The modern view that such materials represent a romantic assertion of the baser elements of human nature simply overlooks the fact that they were intended to be significant

“यथायवाद और आधुनिक हिंदी कविता” शीर्षक निबंध में धर्मजी कविता मयथायवादके विकासका इतिवत्त प्रस्तुत करते हुए नलिनजी कहते हैं ‘कॉन्ट्रवरी टेलस के अनक निराकरण यणन केवल अपनी मनुष्यता के कारण ही जशलील होन के बदले विराट हो गए हैं। फिर, युगा के बाद, ऑस्कर वाइल्ड का ‘द बलड आफ रीडिंग जेल’ इस दृष्टि से एक सवथा अप्रत्याशित, पर श्रेष्ठ रचना है।”<sup>२</sup> एक ही छलाग म पाच सौ वर्षों की सुदीध अवधि लांघ डाली गई है। शेक्सपियर और जान डन आदि, लघु प्रवधा (एपीलिया) के दजना प्रणेता जिनमे एक प्रकार के यथायवाद का स्पष्ट उमीलन हुआ है और अठारहवीं शती के व्यग्य-काल के रचयिता विस्मृत कर दिये गए हैं। शेक्सपियर के सानेटा और नाटका मे, उनके प्रगीता मे, एलिजाबीयन ‘इरोटिक एपीलिया’<sup>३</sup> मे यथायवादी तत्त्वा का पर्याप्त समोग देखा जाता है। सम्भवत शेक्सपियर के ‘बॉडलराइज्ड’ सस्करणों पर निभर रहने और पोप के व्यग्य काव्य से पूणतया अभिज्ञ न होन के कारण ही लेखक ने चौसर के बाद वाइल्ड के यथायवाद का उल्लेख किया है।

सत्रहवीं शती के जर्मी टेलर टामस ब्राउन सरीखे अंगरेज लेखकों की धारणा थी कि यदि उनकी रचनाआ मे प्राचीन लेखकों से लिये गए उद्धरण सन्निविष्ट नही हुए, उनम लटिन के कतिपय विद्वत्तापूण उद्धरणों का समावेश न हुआ और यदि उनमे लटिन ग्रीक आदि के लेखकों का उल्लेख न हुआ, तो सामयिक पाठका द्वारा उनकी रचनाएँ समादत्त न हागी।<sup>४</sup> इस कारण ब्राउन ने

within the framework of Christian morality Ibid pp.,  
20 et seq

१ दृष्टिकोण १, पृ० ११ ११ ।

२ उपरिवत्त, पृ० १३ ।

३ Dr R C Prasad The Elizabethan Erotic Epyllia in  
*Studies in Humanities* March 1964 pp 28 30

४ ‘Those who then (i e in the seventeenth century) wrote on serious subjects were expected to dignify their argument by copious quotations from the Ancients and from the Fathers To appear without one’s Latin was to stroll in the street on a public occasion without one’s wig Browne laments the lack of a library there were no good books on his shelves So Jeremy Taylor, a year or two later bemoaned his misfortune Edmund Gosse

अपने गद्य को लटिन शब्दा और उद्धरणों से भारावात करने में सक्तीच न किया। नलिनजी की धारणा है कि जिस निबन्ध में कतिपय पाश्चात्य लेखकों के नाम और अंग्रेजी शब्द न आयें वह प्रकाशित होने योग्य नहीं है। हिंदी के साधारण पाठकों को अपन विश्वकोशीय ज्ञान से चमत्कृत करना इन निबन्धों का दृश्य लक्ष्य है। इतना ही नहीं, अंग्रेजी के पाठकों का भी नलिनजी के निबन्ध अपनी विस्मयकारी उपपत्तियों से स्तम्भित करने की क्षमता रखते हैं। निम्न-लिखित वाक्यों से इस कथन की पुष्टि होती है —

(१) अंग्रेजी में जो परंपरा लम्बे से चली, वह आधुनिक काल में ल्यूक्स, वेगक, विबरहाम प्रभृति के हाथों में साहित्य का प्रासनीय स्थायी और विनिष्ट रूप धारण कर चुकी है।<sup>१</sup>

(२) हिंदी के पेंटर का हिंदी का स्माइल भी हाना विशेषता नहीं रखता है।<sup>२</sup>

दूसरे वाक्यों में गुकलजी को हिंदी का पेंटर कहा गया है परंतु यह बताया नहीं गया कि इस तुलना का आधार क्या है। पहले वाक्यों में लम्बे के स्थान पर चकन या ऐडिसन रख देने से भी काम चल सकता है।

नलिनजी जैनेद्र की तरह यह स्वीकार करते हैं कि हिंदी का अपना रगमच नहीं है और इस कारण ब्रिटेन और अमेरिका की जागृक जन-नाट्य जालाओं की ओर 'खिने' की सलाह देते हैं। वह नाटक ही क्या जो अपने श्रोताओं और दर्शकों तक न पहुँचे। इस तथ्य के प्रतिपादन के लिए नलिनजी ने 'आधुनिक अंग्रेजों के दार्शनिक और औपचारिक अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के साहित्यिक पुरस्कारों के विजेता चाल्मर मागन' के इस कथन को उद्धृत किया है 'A play is useless that does not reach its audience (अपने कथन का अतिरिक्त प्रामाणिकता देने के हेतु आप यह ता बतनात हैं कि आपके उद्धरण ऐसे-वस्तु साधारण उद्धरण नहीं हैं अपितु आधुनिक अंग्रेजों के दार्शनिक और औपचारिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के पुरस्कारों के विजेता मागन के प्रख्यात नाटक' की सूचिका से लिए गए हैं परंतु यह नहीं कहते कि पेंटर और स्माइलस कौन थे और गुकलजी की तुलना उनसे क्या की जाना चाहिए।) हिंदी का रगमच शापक निबन्ध में है। बनाइशा के नाटकों की विशेषताओं और यूरोपीय रगमचा के विकास

१ दृष्टिकोण, १, पृ० २४।

२ उपरिक्त।

३ उपरिक्त, पृ० ४२-४३।



का सन्निपत वणन उपस्थित किया गया है। 'भाज की छाटी कहानी' में कहानी की कतिपय विशेषताओं का विवरण है परन्तु विवेचन का आधार हिन्दी कहानी और हिन्दी कहानीकार नहीं हैं। एमम म्हाड, पा, हायन, चेगन, मन्नाता कथरीन, मन्-फील्ड, जेम्स ज्जायस, वर्जोनिया बुफ वल्म आदि गल्पकारों की कहानियाँ और उनकी विशेषताओं का ही सर्वाधिक उल्लेख है। चेतना के प्रवाह का उल्लेख करने हुए लेखक ने कहा है " पाश्चात्य जान यूगकर कहा गया है क्याकि कला क जिन म्पा का हिन्दी न परिचय से लिया है उनमें रोद है, वह बहुत पिछरी हुई दीस पडरी है।" 'युद्ध और अहिंसा' का विवेचन मूलतः आर्यभट्टा और फायड के विचारों का प्रस्तुतीकरण है। हमारे डा० जे० डी० अचिन के युद्ध-सम्बन्धी सिद्धांत की पराक्षा की गई है। लेखक इन पाश्चात्य विचारों के सिद्धांतों की मीमांसा से ही सतुष्ट नहीं हो जाता वह हकमले लॉरेन एच० जा० वल्स प्रमति लेखकों के युद्ध विषयक सिद्धांतों का भी उल्लेख करता है। निबंध के अंत में गार्थीजी और नरम के विचार विवक्षित हुए हैं। दृष्टिकोण के अन्तिम निबंध 'नारी' में भी भारतीय नारी की विशेषताओं का—या नारी मुलम गुणों का—वर्णन नहीं है। नारी के गुणों का अध्ययन पाश्चात्य दृष्टिकोण से हुआ है और इसमें भी पाश्चात्य साहित्यकारों के मत उद्धृत हैं। समग्रतः, पश्चिम में प्रचलित नारी-संबन्धी धारणाओं का ही इस निबंध में सर्वाधिक वर्णन हुआ है। 'अंगरेजी, गल्प और भारत, तुगनेव और दास्ताय-स्वी, मन सर्माक्षण, दनाड शा पण्डभूमि, उपलब्धि और पराजय', आद्रे जीद, 'आथर कायस्तर', मागन अंगरेजी के शरतचंद्र एलियट की आलाचना प्रणाली 'जैसे निबंध हैं। नलिनजी की सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ हैं। जहाँ वे भारतीय साहित्य और तत्संबन्धी विषयों पर लिखते हैं, अपने पाश्चात्य पूर्वाग्रहों के कारण एकांगी हो जाते हैं।

नलिनजी की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धियाँ उनकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ और बिहार राष्ट्रमाता परिषद से प्रकाशित साहित्य का इतिहास-ग्रन्थ है। पुस्तक 'मनाक्षा में वे जिस नपुण्य एवं बहुपुण्य का परिचय देते हैं, वह विरल है। उनकी मानिकता इतिहासकार तथा सर्वत्र सूत्रात्मक गद्य के प्रयोजिता और प्रवक्तव्य की मौलिकता है, उनकी प्रतिभा ऐतिहासिक या पूर्वप्रतिष्ठित तथ्यों के इतिहासात्मक विवेचन में ही अधिकाधिक निपरी है। उनकी कविताओं की नीरमता और गद्यात्मकता उनकी प्रतिभा के इन्हीं पक्ष से सश्लिष्ट और उन्मूलन है। यदि कोई सूत्ररूप से उनकी ही शली में, उनकी उपलब्धियों को मूल्यांकित करना

चाह तो रह सकता है कि व हिदा-साहित्य के टामस स्पट हैं यद्यपि यह रूपक भी सबतोभावेन सटीक नहीं है।

साहित्यिक घापणा-यत्रा का प्रकाशन पश्चात् मस्तिष्क की उदभासना है। प्रपञ्चवाद के घापणापत्र के प्रकाशन के पूर्व यूरान मतीन ऐम घापणा-यत्र प्रकाशित हा चुक थे जिनमें वहाँ का अद्यतन साहित्य अत्यंत प्रभावित है

- (१) मिम्बालिब मेनिफेन्टा—१८८६ ई०,
- (२) इमजिस्ट मनिफेन्टा—१८९३ ई०,
- (३) मग्निमिस्ट मेनिफेन्टा—१८७४ ई०।

'नवेनवादी प्रयाग-दा-सूत्री' पर इन घापणा-यत्रा का प्रभाव नाममात्र का है, परंतु प्रपञ्चवाद का ग्यारहवाँ सूत्र द्विविवादी घापणापत्र (इमजिस्ट मेनिफेन्टा) के छठे सूत्र में मिलना-जुगता है। इसी प्रकार 'पसपशा' पर पाउड, एलियट तथा एफ० आर० लाविंस के प्रभाव दृष्टिगत होने हैं। मलामे, ह्यूम, फ्लावेयर पाउड आदि पश्चात्प लेखकों की रचनाओं में किंवदंती ऐसी है। सिद्धांत प्रतिपादित हो जा प्रपञ्चवाद के मूलमूल सिद्धांतों के समरूप हैं। नलिनजा न पश्चात्प सिद्धांतों का यथावत ग्रहण नहीं किया और न व किसी एक ही पश्चात्प लेखक के विचारों में प्रभावित हुए हैं।

### गजानन माधव मुक्तिग्रोध (१९१७-१९६४)

'चाद का मुह टेंडा है' में समाविष्ट मुक्तिवाद की जावनकथा में स्पष्ट है कि जहाँ इस नव्य प्रयागवादी<sup>१</sup> कवि ने भारतीय कवियों की रचनाओं का अध्ययन किया था वहाँ वह दास्तायवस्की, फ्लावेयर आर गार्की की रचनाओं से भी पूर्णतया परिचित था और उसके प्रिय लेखकों में यूरप के यही महान् उपयामकार थे। इनमें गार्की सर्वोपरि था। 'मुक्तिवाद ने स्वयं कहा है १८३८ से १८४२ तक के पाँच वर्ष मानसिक सघप आर वगसानाय व्यक्तिवाद के वर्ष थे। आन्तरिक विनष्ट शांति आर 'पारारिक ध्वम के इस समय में मरा व्यक्तिवाद कवच की भाँति काम करता था। वगसा की स्वतंत्र क्रियमाण जावन शक्ति (elan vital) के प्रति मेरा आस्था बढ़ गयी थी।'<sup>३</sup> बाल्ताक, फ्लावेयर, दास्तायवस्की गार्की

- १ 'आलोचना', अप्रैल १९६६, प० १७६ (दे० डा० नरेन्द्र चर्मा, मुक्तिग्रोध का आलोचनादान)।
- २ 'चाद का मुह टेंडा है' (१९६५), प० १५।
- ३ 'तार सप्तक' (१९६६), प० ४२।

आदि पारचात्य लयना क वया गहित व अतिगिज मुक्तिवाय न पारचाय मनानिनाय एव मातगना का भी। श्रमपूवक अण्यदा निया या भार इही के प्रनाय व फलस्वरूप वे नय प्रगतिना। वनि आर सर्माक्षय वन। उहीन प्रगतिना स ही मासमीय दशा निया और उम प्रयागवाद स अनुभूत वर निराता की मुवरी और गुन। मानवतावा, परपरा का आगे वया।

प्रयागशील ववि आलावरा म मुक्तिवाय का स्थान महत्त्वपूव है। अय प्रयागशील वविया की तरह व भी। पारचात्य मान्दिय भावमवाद, मनानिश्चयण शास्त्र आर मनानिश्चयण स अत्यधिक प्रभावित हुए हैं और अनेय-जम ववि-समीक्षा की तरह उन्हां मी। अनव ऐम नियष लिते हैं ज। उनरी काव्य-मजना और वत त्व पर प्रचुर प्रवाश डालत हैं। एव साहित्यिक की डायरी (डि० रा० १८६४) में यद्यपि कल्पना-सत्त्व का ही प्रापाय है फिर भी, इमव बुद्ध स्थल मुक्तिवाय की अभिरचि आर उनकी रचनाआ म परिलक्षित पारचात्य प्रभाव का दान वरत ह। इम दृष्टि स निम्नलिखित पक्विया ध्यातव्य है

मुचे फिलॉसफी म सबसे ऊंचे नम्बर मिल थे। मैंन साइका ऐनलिसिस की बात छाड (Sic) दी थी।

(एक साहित्यिक की डायरी, पृ० ५)

शायद मैं ही इसे बहुत "बार" करता रहूंगा। यह तो मैं जानता हूँ कि सारे दशन का मूल आघार सडजेवट आजेवट रिलेशनशिप की कल्पना है ।

(उपरि० पृ० ८)

जिस प्रकार विज्ञान म इण्डक्शन पर आया जाता है—तथ्यो के संग्रह से उनके विश्लेषण द्वारा, उनके सामायीकरण से अनुमान और निष्पन्न निकाले जाते है—उस प्रकार साहित्य म इण्डक्शन से डिडक्शन पर क्यों न आया जाये ?

(उपरि०, पृ० १३)

कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट ताव अनुभव-क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने वसवत दुखत हुए मूला स पयक हो जाना और एव ऐसी फण्टेसी का रूप धारण कर लेना माने। वह फण्टेसी अपनी आइया के सामने ही खडी हो ।

(उपरि० पृ० १८)

१ 'चांद का मुह टेढा है', पृ० २६।

में रीअनी फस्ट क्लास कपडे पहन था।

(उपरि०, पृ० ४५)

हाशिये पर कुछ नाट्स'

(उपरि०, पृ० ११)

मुक्तिदायक। यह गद्य शली नहीं खटकती, इसके अंगरेजी शब्द अशामन प्रतीत नहा करते। यहा तक कि में रीअली फस्ट क्लास कपडे पहने था जैसे वाक्य भा अपन सदम मे आस्वादनाय ही। लगत है। इसका कारण है कि जिस पुस्तक स उभयुक्त वाक्य उद्घन है वह एक अगमीर, हल्के मूड' म लिखी गई है—एक साहित्यिक की डायरी' है। 'यै की जम-कुण्डली म मुक्तिरोध त भारत म पाश्चात्य साहित्य-मनीषिया की लोकप्रियता के मूल कारण की ओर सकेत किया ह 'मूल्यत व्यक्ति एक साम्प्रतिक शूय म रह रहा है—एक कल्चरल क्युअम म। फलत कोई टी० एम० इलियट के पास जाता है तो कोई टायनबी क समीप, तो कोई और किसी तरफ।"१ प्रश्न है, यदि टी० एस० एलियट और टॉयनबी क पास जाना हमारी सांस्कृतिक शूयता की पहचान है तो यटस, एलियट आदि कवियो का भारतीय सस्कृति की आर आकृष्ट हाना किस बात का छानन करता है? वस्तुत एलियट और टॉयनबी की ओर हमारा जाना सांस्कृतिक शूयता का क्षण नहीं प्रस्तुत परिस्थितिया का तकाजा है आधुनिक विज्ञान की दन है। एलियट की कविताया म ही। 'शूयता' की जसा ममस्पर्शी व्यजना हुई है वसी अयत्र दुलम है। टिला टामम सा० डे० लूइस आदि भा इस शूयता से पूणतया परिचित हैं और उनकी कविताएँ स्थल-स्थल पर इसकी कृण अभिव्यक्ति करती ह। समसामयिक अमरीकी लेखका ने—वाल्टर बान टिल्स्वग क्लाक, वलस स्टेनर, राइट मारिम आदि न—इस शूयता को अपन उपयासा म वाणत दा है।<sup>२</sup>

१ एक साहित्यिक की डायरी, पृ० ८३।

२ In its largest dimension the crisis in the culture of the forties was an existential crisis. The theme of self discovery that runs through the fiction of this period reveals the intense preoccupation of writers with the problems of the self. It reveals the struggle to define and shape a relationship between the self and American culture. In one context or another we have seen in the preceding pages how writers dealt with these problems at a time when the culture seemed in many ways particularly in-

किंतु मुक्तिवाच्य जैसे आलोचकों को ऐसी बातें बतान की आवश्यकता नहीं होती। यदि वे ऐसी बात न निकलकर कुछ और लिख जात हैं तो इसका कारण उनका अज्ञान नहा, प्रत्युत समबत, उनका र्इपत् उतावलापन है। मुक्तिवाच्य अक्सर पात ही नकेनवाणियों की तरह पाश्चात्य साहित्य में ही उता जात हैं, भारतीय परिवेश से निकलकर पाश्चात्य वाङ्मय से उदाहरण दन लगत ह। नवान सर्मीशा का आधार' शीपक निग्ध म उनर्षी एव महत्त्वपूर्ण स्यापना यह है कि 'वास्तविक जीवन की सबदनात्मक सर्मीशा शक्ति के अभाव में, साहित्य समाधा का हाल बुरा होना है।'<sup>१</sup> भारतीय वाङ्मय से लिय गए सटीक उदाहरणा से इस कथन का विश्वसनीयता नहीं मिलती और न हिंदी के उन साहित्य-सर्मीशकों के नाम ही बताये जाते हैं जिनमें वास्तविक जीवन की सबदनात्मक समाधा शक्ति का अभाव है। इसके विपरीत राम्या रोला क उन आलाचकों की अरर सबत किया जाता है जा जियां क्रिस्ताक के अतगत दार्शनिक मन स्थिति में लिखे गए प्रदीध जीवन आलाचनात्मक खडा को निकाल दन की सलाह दते हैं। परंतु मुक्तिवाच्य के लिए रोम्या राला अरर जियां क्रिस्तोफ' से ही काम चलन को नहीं है। इसलिए वे ह्लासो मुख फ्रांसीसी साहित्य की चर्चा करन लगते हैं। प्रश्न है

hospitable to the survival of the self Walter Van Tilburg Clark is over borne by this crisis and seems to reject man and accept the world nature Chester E Eisinger *Fiction of the Forties* (Chicago and London) p 308

तुलना कीजिए "आज का जीवन सबधा विश्रूललित और अव्यवस्थित है, जीवन मूल्यों की इतनी भयंकर अराजकता पहले नायद ही कभी सामने आई हो। राजनीतिक और आर्थिक दुष्प्रवस्था के साथ सांस्कृतिक और दार्शनिक उलझनों ने मिलकर जीवन में जगणित गुलिययां डाल दी ह— जिनमें कि आज का विचारक फंस कर रह जाता है। इस प्रकार के राजनीतिक विप्लव तो पहले भी आये थे, परंतु मानव चेतना पर उनका इतना सबव्यापी प्रभाव नहीं पडा। पर आज तो जैसे समाज और सभ्यता का आधार ही भग हो गया है। राजनीतिक विप्लव ने भयंकर आध्यात्मिक विप्लव को भी जन्म दे दिया है, विश्वास का सूत्र सबधा छिन्न भिन्न हो गया है। और आज की सबसे बड़ी दुघटना यही सबग्राही अविश्वास है। आज हमें न अध्यात्म दान में विश्वास है, न भौतिक दान में "डॉ० नगेंद्र, 'आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां' (दिल्ली, १९६२), प० ११५-११६।

१ गजानन माधव मुक्तिवाच्य, 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा जन्म निबंध' (नागपुर, १९६४), प० १००।

५१० :: आधुनिक हिंदी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव

हिंदी के कितने पाठकों ने रोम्या रागाँ के उक्त उपयास का अध्ययन किया है ? कितने लोग इस तथ्य का हृदयगत करने में समर्थ होंगे कि 'भाषामा तक आते-आते प्रेंच साहित्य ह्यामप्रस्त हा गया था ?' इस प्रकार नलिनजी की 'स्टट'-गना इस तथ्य प्रगतिदानी आलोचक तक आ पहुँची है। विश्व-साहित्य से अपनी स्वायत्ताका उदाहृत करने में कोई हानि नहीं है—डा० नगेन्द्र और आचार्य नन्दुनार वाजपेयी भी ऐसा ही करते हैं। वितु यहाँ हानि-लाभ का नहीं, वस्तु-स्थिति का प्रश्न है—मुक्तिदास की रचनाओं से यह सवताभावन स्पष्ट है कि भारतीय साहित्य में वांछित अपेक्षित गति न होने के कारण व इस अभाव की पूर्ति पाश्चात्य साहित्य में अपनी पठ दिखलाकर करते हैं। पर साधारण पाठक तो बार-बार यह जानना चाहगा कि क्या इन रचनाओं में मिलनेवाले पाश्चात्य नामों का जगह भारतीय नामों के नाम नहीं आ सकते ? क्या मुक्तिदास ने रूसी और फार्मासी भाषामा में प्रणीत मूल उपयासों का अध्ययन किया था अथवा केवल उनके अनूत्त मन्वरण ही देखे-सुने थे ?

मुक्तिदास व समीक्षा मान भास्मीय हैं और दष्टिकोण, तत्त्वत पाश्चात्य। उनके समीक्षण के लिए यह अदावश्यक है कि वह अपनी जिन्दगी का अपने वग, अपना धर्म और अपने समाज के वास्तविक जीवन का हिस्सेदार बना दे।<sup>१</sup> जिन्दगी से तटस्थ रहनेवाला समीक्षक उच्चकाटि का भावक नहीं हो सकता, कालजयी समीक्षात्मक कृतियाँ की सृष्टि नहीं कर सकता। साधारण मनुष्यों के जीवन के मम और उनके असाधारणत्व का समन्वय-सहचानने वाला व्यक्ति ही उनके 'साहित्यिक प्रतिबिम्बों' की नापजोख करने का अधिकारी है। 'साहित्य के प्रश्न' मुक्तिदास ने कहा है 'जीवन के प्रश्न हैं।' साहित्यकार जीवनतत्वा, जीवनसथाय और जीवनदष्टि को अपनी रचनाओं में सवेदनात्मक रूप में व्यक्त करता है। 'जब तक कि कोई भी समीक्षक जीवन-जगत से लेखक के सवधा का और उनके विभिन्न स्वरुपा का, जीवन-जगत के वातावरण से भावग्रहण करने की उसकी मानसिक प्रक्रियाओं को जीवन जगत के प्रति का जा रही उमका तात्र सवेदनात्मक क्रिया प्रतिक्रियाओं का उनके स्वरुप को, उन तीव्र अवदनात्मक क्रिया प्रतिक्रियाओं के भावात्मक पुजो की स्थिति को, सजन प्रक्रिया में इन भावात्मक पुजो के आविर्भाव को—तथा एतत्सवधी अथ समस्याओं को,

१ उपरिक्त, पृ० १०१।

२ उपरिक्त, पृ० १००।

३ उपरिक्त, पृ० १४५।

जन्तक कि समीक्षक स्वयं आत्मगत नहीं करता, उन पर सर्वांगीण विचारणा प्रस्तुत नहीं करता तब तक वह लगन की सहायता नहीं कर सकता, तब तक वह वास्तविक दिशादान नहीं कर सकता।<sup>१</sup>

इन पंक्तियां में स्थापित समाजवाद, दृष्टिकोण में ही मुक्तिप्राप्त न कामायनी पर पुनर्विचार किया है।<sup>२</sup>

वहीं-वहीं ऐसा प्रतीत होता है कि मुक्तिप्राप्त के विचार क्रमांत बड़े ही घषपक और उनका बयान बड़े ही भविष्यवादी तथा अत्यंत व्यापकीय हैं। उदाहरणार्थ— उनके अनुसार आलोचना दो प्रकार की होती है—एक रूप की, दूसरा तत्त्व की।<sup>३</sup> डा० बेंकट शर्मा और डॉ० भगवत्स्वरूप मिश्र आलोचना के कितने ही प्रकार गिना डालेंगे। मुक्तिबोध यह भी कहते हैं कि जब तक वास्तविक जीवन की संवेदनात्मक और ज्ञानसंवेदनात्मक समीक्षाशक्ति लेखक और समीक्षक दोनों में विकसित और सम्पन्न नहीं होती, तब तक हमारे सारे प्रयत्न अधूरे हैं।<sup>४</sup> दूसरे लोग कहेंगे— सारे प्रयत्न अधूरे न होंगे। तीसरे वर्ग के समीक्षक केवल संवेदन ज्ञान और ज्ञान-संवेदन के विकास और उनकी संपन्नता का ही समीक्षक के लिए अनिवार्य न कहकर भाषा शैली तथा अभिव्यक्ति का भी महत्त्व देंगे और कहेंगे कि संवेदनात्मक ज्ञान तथा ज्ञानसंवेदनात्मक समीक्षाशक्ति का अनेक व्यक्तियों में पायी जाती है। यदि इस शक्ति के साथ आलोचक में अभिव्यक्ति-वीक्षण तथा अपनी अनुभूति में विभिन्न मतवादों के पूर्ण विलयन एवं सांसारिक एकीकरण की क्षमता हो तो कहा अच्छा। इसी प्रकार यह तो कोई प्रगतिवादी मा ही होगी जो मुठेर पर स घडाम से अगिरे हुए अपने बेटे की दशा पर घबडान और रोने के बदले उसे पीटना शुरू करेगी। मुक्तिबोध कहते हैं कि 'महान् से महान् समीक्षक जब काय-सजन की मानवभूमि से कट जाता है तब वह एक बहुत बड़ा खतरा उठाता है।'<sup>५</sup> दूसरे लोग काव्य-सजन की मानवभूमि के साथ काव्य-सजन की भावभूमि और ऐसी ही अन्य भूमियां भी रखना चाहेंगे।

१ उपरिक्त, पृ० १४८।

२ दे० 'गजानन माधव मुक्तिबोध', 'कामायनी एक पुनर्विचार' (जबलपुर, १९६१), पृ० २७, ४१, ८४ इत्यादि।

३ 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य विषय', पृ० १०४।

४ उपरिक्त, पृ० १०५।

५ उपरिक्त, पृ० १०६।

६ उपरिक्त, पृ० १२८-१२९।

## हिन्दी-पाठालोचन पर पाश्चात्य प्रभाव



यदि हिन्दी को अपन कृतन्य का पूरा-पूरा पालन करना है तो उन न कवल मस्कृत के सौंदर्य और लचीलपन तथा प्राचीन भाषाओं के सुलभ साधना का अपनाना पडेगा अपितु अंग्रेजी की सपन्नता और सजावता भी अर्जित करना होगी।

—श्री क हैयालाल माणिकलाल मुशा (नागरीप्रचारिणी पत्रिका, स० २००६ अंक २-३ पृ० २००)।

पाठालोचन' के लिए पाठ-सम्पादन, पाठ-शोध, पाठान्वयण, 'पाठानु-संधान सम्पादन' आदि हिन्दी और टेक्स्चुअल क्रिटिसिज्म' अंग्रेजी पर्याय प्रचलित हैं। अंग्रेजी में टेक्स्चुअल क्रिटिसिज्म प्रायः दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। जब समीक्षक विविध ग्रन्थ के पाठ (टेक्स्ट) का विश्लेषण और उससे निया गए उद्धरणों में प्रयुक्त, गंगा त्रिपा, अलंकार तथा भाषा-भ्रमों का धारीक्यों पर विचार करता है तब ऐसी आलोचना, स्वभावतः टेक्स्चुअल क्रिटिसिज्म कही जाती है। सिडनी, पटनम ड्रायडन, वड् स्वयं शैली, हैर्नलिट, पेटर आदि की समानात्मक रचनाएँ टेक्स्चुअल क्रिटिसिज्म में परिगणित नहीं होती, कारण इनमें पाठ का वसा विवचन विश्लेषण नहीं जमा कतिपय आधुनिक आलोचक करते हैं। आधुनिक समीक्षकों में कालरिज आई० ए० रिचर्ड्स एम्पसन, एनियट एफ० आर० रीकिंस तथा बर्नाय कुक्स की आलोचनाएँ, मुख्यतः टेक्स्चुअल क्रिटिसिज्म कही जा सकती हैं। ये आलोचक निदाता और निष्पत्ता में हैं। उनमें न रहकर विविध साहित्यकारों का रचनाओं का विश्लेषण करते हैं उनमें विम्वन उद्धरण लेकर उनका विवचन-भूत्पादन करते हैं। नई आलोचना में टेक्स्चुअल क्रिटिसिज्म की ही प्रवृत्ति सहायिक देतने को मितती है और यह



व्यापारिक गर्मांग का बर्ती ता पर्याय और बर्ती उगम प्रामाण्य उगम ही, अतिविश्रम धम बन जाता है। मापारग पाठक के लिए यह व्यापारिक गर्मांग ('प्रतिष्ठित विद्विगम') 'निवन्दिता अनेकगिग या पाणिन अनेकगिग' का पयाय है। (यन्तु एमी आलाचना का टक्कुअल विद्विगम' त कहर 'टेक्कुअल अनेकगिग कर्ता अधिक् सममगत जा पदता है। यदि टक्कुअल विद्विगम के म्या पर 'टक्कुअल अनेकगिग का प्रयाग प' पद तो टक्कुअल विद्विगम आः रूड अर्थ म हा र्पेय प्रदुता हाण जा अदायकर है।)

एक। तपानामा के प्रयाग म तार स्तार और विद्या 'टक्कुअल विद्विगम' को हमने रूड अर्थ म ही प्रदुता करना मुशियुता ममग है। अत रूड अर्थ म 'टेक्कुअल विद्विगम बर्ती है जा हिनी म पागगता। टक्कुअल विद्विगम का प्रयाग उगा आलाचना के लिए हाता पाहिण विमम प्राचाः हस्तार आर मुद्रित प्रतिपा के उत्पादन एव प्रमाण सखी सिद्धता का प्रमाण है। विम ग्रय या निधम म प्राणिन पाठ की प्रामाणिकता का परीक्षण पाडुलिपिया की परम्पर तुन्ना के आधार पर सवाधिक प्रामाणिक पाठ के चयन और उत्पादन का प्रयाग पाडुलिपिया आर मुद्रित प्रतिपा का वर्गीकरण आः है उा प्रय मा निवध बाही टेक्कुअल विद्विगम के नाम म अमिहित किया जाता पाहिए। परन्तु नय आलाचक इस प्रकार की आलाचना को आलाचना कहना न्यायमगत नहा समगत। जित आलाचना म अनयानक हस्तलेपा दस्तावेजा आर मुद्रित प्रतिपाके आधार पर उत्तमूलपाठ के निधारण और यथावन् पुर्णमाग का प्रयत्न हो जिसे उसके लेखक नधारण किया था वह सच्ची समालोचना नहीं हा ररती। वह आलोचना नहीं, एव प्रकार का साध—एक प्रकार की पाडित्यपूण गवयणा है। इससे कलाकृति का समझने और उगने आस्वादन म सहायता नहा मिलती। नय आलाचक कलाकृति की आलाचना करत है, कलानार की नहीं कलाकृति का ही परखते हैं उसकी रचना के पूव की स्थितिमा पाडुलिपिया आर कविक जीवन को नहीं। सतमालोचक ता वह है जा हमारी आवतनाकिन आर बोध का सवर्धन कर सके और जो हम उच्च काटि का पाठक बनाये। आइ० ए० रिचड स तथा एलियट ही ऐसे काय मे सर्वथा सभम रहे हैं। रिचड स नविलेपण के साधना को अधिकाधिक उत्तत कर कोलरिज की उपलब्धिया को व्यवस्थित तथा सामायत सुलभ बनाया है। एलियट ने केवल आलोचना-मद्धतिया और आलोचना विषयक धारणाआ को ही परिष्कृत नहीं किया है प्रत्युत ऐसे प्रतिमाना और विचारो का प्रचलन किया है जिनम साहित्य की पुनव्यवस्था और

पुनर्निर्धारण की क्षमता रही है।<sup>१</sup> गरड, बानर्नी डाब्री डेस्मण्ड मेकार्यो, एडमण्ड गॉस एवर-क्रॉम्बी, ब्रडले वेटसन प्रभृति की आलोचनाएँ एफ० आर० लीविस और स्क्रुटिनी-दत्त के समीक्षा को पसंद नहीं हैं। इनके अनुसार उक्त आलोचक ऐंम हैं जिनके गभीर बहुपक्षीय आर वचस्वी पांडित्य में इस दल को संदेह नहीं है परन्तु वेत्सन की आलोचना करते हुए लीविस ने कहा है

Bateson starts from the commonplace observation that a poem is in some way related to the world in which it was written. He arrives by a jump at the assumption that the way to achieve the correct reading of a poem is to put it back in its total context in that world. No idea of such an undertaking troubles the readers whose attention is really and intelligently focussed upon the poem.

स्क्रुटिनी' के लेखक और आलोचक समीक्षा और पांडित्य में पाथक्य स्थापित करना उचित नहीं समझते थे। बारा पांडित्य समालोचना के लिए आवश्यक नहीं और न पांडित्य के बिना समालोचना का वह महत्त्व मिल सकता है जो सायब एव प्रासंगिक विद्वत्ता से युक्त आलोचना का मिलता रहा है। जेरम स्टॉलनिज ने 'इस्थेटिक एण्ड फिग्योर' में आठ क्रिटिसिज्म (१९६०) में एक ऐसी आलोचना का उल्लेख किया है जिसमें वह काण्टेक्स्चुअल क्रिटिसिज्म कहता है। कलाकृति का सद्भ या काण्टेक्स्ट' में व परिस्थितियाँ अतर्निविष्ट हैं जिनमें कलाकृति का सृष्टि हानी है। इनमें समाज पर पड़नेवाले इसके प्रभाव और अमान्य वस्तुओं के साथ इसका संघर्ष और अन्तःसंघर्ष भी समाहित हैं। इसके विपरीत सादय शास्त्रीय दृष्टिकोण (इस्थेटिक पर्सोण) कलाकृति का पथक् रखकर ही उस पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। यदि हम कला के मूल्यों का सादयशास्त्रीय दृष्टि से न आक तो इसका एक सद्भ या प्रसंग में हाना स्पष्ट हो जायगा।<sup>४</sup>

१ *Scrutiny* vol 1 no 2 (एफ० आर० लीविस, "ह्वार्टस रींग विद क्रिटिसिज्म")

२ *Scrutiny* vol XIX no 3 pp 162 et seq

३ दे० प० ४४९ (context uel न वि con textual)

४ स्टॉलनिज, उल्ल० प्र०, प० ४५०। स्टॉलनिज ने कहा है "ह्वार्टस, एव द वक, कसोडड नानइस्थेटिकली एरिजेंटस इन अ काण्टेक्स्ट।"

इसकी रचना ऐसे मनुष्य द्वारा होती है जिसकी अपना साक्ष-साक्ष मनावानिक विशेषताएँ होती हैं। वह रचनाकार एक ऐसे समाज में जाता रहता है जिसकी विविध समस्याएँ और मूल्य उसके जीवन और चिंतन का प्रभावित करते हैं। उसकी अपनी राजनतिक, आर्थिक और जातिगत निष्ठाएँ होती हैं। 'वाण्टेवस्चुअल क्रिटिसिज्म' एक ऐसी आलोचना है जो कला के ऐतिहासिक सामाजिक एवं मनोवज्ञानिक सदर्भों को परीक्षा करती है।

## हिंदी में पाठालोचन

हिंदी में पाठ सम्पादन के वागानिक सिद्धांतों का विवचन प्रस्तुत करनेवाला एकमात्र ग्रंथ 'पाठ-सम्पादन के सिद्धांत'<sup>१</sup> अंगरेजी पुस्तक पर ही सर्वाधिक आधारित है। इसके लेखक ने कात्रे की पुस्तक<sup>२</sup> से सामग्री चयन तो किया ही है इसकी रचना में 'इसाइक्लापीडिया क्रिटिका' से भी यथेष्ट सहायता ली है। पुस्तक के अनुशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि इसके लेखक को वे सारे ग्रन्थ उपलब्ध थे जिनके आधार पर कात्रे ने भी अपनी 'भूमिका' की रचना की है।

पाठ सम्पादन के पाश्चात्य विद्वानों ने एतद्विषयक भारतीय विचारा का किस हद तक प्रभावित किया है, इसका अनुमान कात्रे की पुस्तक के अनुशीलन से किया जा सकता है। विषय प्रतिपादन और अपातकों की अतिरिक्त प्रामाणिकता देने के लिए कात्रे ने सबत्र पाश्चात्य विद्वानों के विचारा का उल्लेख किया है। उनकी पुस्तक में ऐसे कथन बहुश विखरे मिलते हैं —

सर जान माशरन कहा है (प० १)

जसा बूलर न कहा है (प० ३)

हाट के कथनानुसार (प० ३०, ३२)

बन्फ के अनुसार (प० ३६)

जसा वेस्टकॉट तथा हाट ने कहा है (प० ४३)

पाठ विवृतिया के भिन्न भिन्न हेतुओं का उद्धान का विवाद वर्णन प्रस्तुत किया है वह भी पाश्चात्य ग्रन्थों पर विशेषतः ह्विगले रचित 'ज कम्पेनियन टु ग्रीक स्टडीज', तथा एफ० एम्पू० हाट रचित 'कम्पेनियन टु वागानिकल स्टडीज' पर ही आधारित

१ लेखक कहेया सिंह, प्रकाशक इलाहाबाद, महामना प्रकाशन मन्डिर, १९६२।

२ ए० ए० कात्रे, 'इटोडकान टु इंडियन टेक्स्चुअल क्रिटिसिज्म' (पूना, १९४१)

है। कात्रे ने पाश्चात्य पाठालाचन के पारिभाषिक शब्दा का अपनाते हुए उसने मूल-मूल सिद्धांता का समयन किया है और कहा है कि चूंकि मूलपाठा की जो प्रतियाँ तयार की जाती हैं वे मूलपाठ का यथावत् प्रतिवृत्ति नहीं होता, हम मूलपाठ का आदश या मूल प्रति (एकजम्पलर) भी कहते हैं।<sup>१</sup> आदश प्रति के पुनः प्रस्तुतीकरण का प्रक्रिया में विवृतियाँ आ ही जाती हैं जिसके कारण प्रतिवृत्ति आदश के समतुल्यता नहीं ही होती। उमर कभी-कभी बहुत हीनतर भी हो जाती है।<sup>२</sup> इस प्रकार मूल की जितनी भा प्रतिवृत्तियाँ बनती हैं उनमें विवृतियाँ भी उत्तरात्तर बढ़ती ही जाती है और मूल हस्तलेख के सा जान पर इन प्रतिवृत्तियाँ की ही प्रतिवृत्तियाँ बनती हैं। इन कारण हस्तलेखा का रचनाकाल बड़े महत्त्व का विषय बन जाता है।<sup>३</sup> हस्तलेख जितना भी प्राचीन होगा, उसमें आदश के निवृत्त होन की सम्भावना भी उतनी ही होगी। कात्रे के अनुसार प्रतिलिपिकार की भूलें चाक्षुष (दृष्टिभ्रमजनित) और मनावनानिक (मानसिक भ्रमजनित) हाना हैं।<sup>४</sup> चाक्षुष विवृत्तियाँ म म्यानापन्नता लान और परिवधन सबधी जगुद्धियाँ परिगणित हानी है। लिपिकार अपनी असावधानी या दुबलता के कारण ये भूल करवठता है। मनावनानिक भूलें उन लिपिकारा से होती हैं जिनमें अपनी भूला का स्थायक समयन की प्रवृत्ति मिलती है। प्राचीन पाठा के लिपिकार लिखते लिखते अपनी आरम्भगायन करन लग जाते हैं और गायद ही कभी आदश पाठ की नक्की प्रतिवृत्ति प्रस्तुत करत हैं। माय ही यह भी सम्भव है कि लिपिकार का भूलें आदश प्रति में भी विद्यमान है। विश्व के महान् से महान लेखका से भी भूल होती है।<sup>५</sup>

कात्रे ने यह भी कहा है कि प्रत्येक लिपिकार की कतिपय स्वभावगत विषेयताएँ होती हैं और प्रत्येक हस्तलेख कुछ न कुछ विविष्टता लिये जाता है। लिपिकार की स्वभावगत विवृत्तताएँ उतकी लिखावट में उतकी उत प्रवृत्ति में जिसके कारण वह एक विषेय प्रकार का ही भूल करता है और अन्य प्रकार की भूला से विमुक्त रहता है तथा उतकी उत अभिरुचि में उल्लभानित होता है जिसकी

१ कात्रे, उल्ल० प्र०, प० २० ।

२ उपरिचत ।

३ कात्रे, उल्ल० प्र०, प० २० ।

४ उपरिचत, प० २२ ।

५ उपरिचत ।

६ उपरिचत, प० २३ ।

अभिव्यक्ति उन समय होती है जब उसे दा पाठ भेजा गया था। पत्र बनाना पत्रा है। हस्तलेखों के मूलतः श्रमसाध्य अनुर्णन मनन : हैं। लिखिकार की य विशेषताएँ जानी जा सकती हैं। उनके विशेष गुण में मन्वाई और सावधानी निष्ठा और बुद्धिमत्ता जयन्त महत्वपूर्ण हैं।<sup>१</sup>

'इंग्लिश टु इंडियन टेक्स्टुअल क्रिटिसिज्म' में हम्मलेगा के प्रेषण (ट्रान मिशन) के दो प्रकार बताये गए हैं। एक तो सरलित या आनापित प्रेषण है जिनमें मूल की प्रतिनिधि स्वयं लेखक उनका प्रतिनिधि या आदम प्रति के विद्वान अधिकारी के निर्देशन में या राजा के सरक्षण में विद्वज्जना द्वारा तयार होती है और दूसरा ऐना अव्यवस्थित प्रेषण है जिनमें हस्तलेखों की प्रतिलिपि अद्विगुणित व्यक्ति द्वारा की जाती है। पाठालोचकों का यह मतव्य है कि वह नवागिण विश्वमनीय पाठ का चयन (रिसेंसिया) और तमस्त अविश्वतनीय तत्त्वा का निवाल्कर पाठमुधार ('एमेण्डेशिया) करे। पाश्चात्य अभिजात पद्धति के अनुसार पाठालोचन की चार प्रक्रियाएँ हैं (१) ह्यूअरिस्टिकल—सामग्री सक्लन, (२) रिसेंसिया—उन सामग्री का पुनःस्थापन (रस्टोरेसन) (३) एमेण्डेशिया—पाठमुधार और (४) हायर क्रिटिसिज्म—लेखकों द्वारा प्रयुक्त आधारों का पचककरण और उच्चतर आलोचना।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त हिंदी पाठालोचन के आधार स्तम्भों में एक हैं किंतु उन्होंने इसके सिद्धांतों का विश्लेषण में भवधि केवल एक लेख ही लिखा (अनुसंधान की प्रक्रिया)। अतएव यहाँ केवल उसी के आधार पर डॉ० गुप्त के पाठानुसंधान विषयक विचारों का परिशीलन किया जा रहा है। या डॉ० गुप्त ने लगभग आधे दर्जन ग्रंथों का पाठ सम्पादन किया है जिनकी भूमिकाओं में तदविषयक सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन मिलता है। यथाप्रसंग उन पर भी विचार किया जायगा।

गुप्तजी पर काग्रेस का बहुत अधिक प्रभाव है जो निम्नांकित तुलना से समर्थित है—

मा० प्र० गु०	कारे
(अनुसंधान की प्रक्रिया १८६०)	(इंग्लिश टु इंडियन टेक्स्टुअल
प० १२२	प० ३१ क्रिटिसिज्म १८५४)
इसे प्रायः चार विभागों में विभाजित	the classical model
किया जाता रहा है। सामग्री-सक्लन	divides textual criticism in

१ उपरिक्त, पृष्ठ २४

(Heuristics), पाठ चयन  
(Recension), पाठ-सुधार  
(Emendation) तथा उच्चतर  
ग्रन्थ-चर्चा (Higher Criticism)

प० १२६

इसलिए प्रतिलिपि-परंपरा में वृत्ति  
का पाठ उत्तरोत्तर अधिकाधिक विकृत  
होता जाता है।

प० १२६

य विकृतियाँ अनन्योन्य प्रकार की  
होती हैं किन्तु इन्हें मुख्यतः दो वर्गों में  
रखा जा सकता है इच्छित और  
अनिच्छित।

to four processes (1) Heur-  
istics (2) Recensio (3)  
*Emendatio* (4) Higher Cr-  
iticism

प० २०

The deterioration so produc-  
ed increases with the number  
of successive copyings

प० ५४

We have already indicated  
that the corruptions which  
find their way in transmitted  
texts are either visual and  
psychological, *accidental or  
deliberately made and invol-  
untary semi involuntary or  
voluntary*

प० ३८

identity of reading imp-  
lie. identity of origin

प० १२८

ऐसी दशा में जो तत्त्व किन्हीं भी श्रे-  
णी-वर्गों में समान रूप में मिलने  
के मूल के होते हैं।

वस्तुतः गुप्तजी के निबंध का काने की 'भूमिका' का ही एक लघु रूप है  
और कन्हैया सिंह का पाठ सम्पादन के सिद्धांत नामक ग्रन्थ गुप्तजी के निबंध  
का काने और इसाइक्लापीडिया ब्रिटानिका पर आधारित व्यापक रूप। किन्तु  
यहाँ दो बातें उल्लेखनीय हैं एक तो यह कि गुप्तजी और कन्हैया सिंह ने पाठ-  
लोचन के पाश्चात्य सिद्धांतों को भारतीय हस्तलेखों और दस्तावेजों के सम्पादन-  
क्रम में उपस्थित समस्याओं के आलोक में अपनाया है और उनमें प्रचुर स्वदेशी  
तत्त्व समाहित किए हैं और दूसरी यह कि काने की पुस्तक से प्रभावित होकर

१ डॉ० सावित्री सिन्हा और डॉ० विजयेन्द्र स्नातक (सम्पा०), 'अनुसंधान  
की प्रक्रिया' (दिल्ली, १९६०), प० १२१-१३०। निबंध का शीर्षक है  
'पाठानुसंधान'।

से इ-ह लाम भी कम नहीं हुआ। कात्रे ने विवक्ष्य विषय का सर्वाधिक प्रतिपादन भारतीय हस्तलेखा और उनके पाठानुसंधान की दृष्टि से ही किया है। जहाँ व पाठानुसंधान की पारश्चात्य समस्याओं के प्रति जागरूक रह हैं वहाँ उद्दान प्राचीन भारतीय हस्तलेखा के सम्पादन की समस्याओं की उपेक्षा नहीं की है— उपेक्षा करने का प्रश्न ही न था। साथ ही यहाँ इन प्रश्नों पर भी ध्यान देना समीचीन होगा कि क्या पाठानुसंधान जस शास्त्रीय और तर्कनीति विषय व सिद्धांत देश विदेश में मिश्र मिश्र होंगे। यदि नहीं, तो पाठालाचन की पारश्चात्य परंपरा से गुप्तज्ञा और डा० कात्रे के प्रभावित होना का प्रश्न ही क्यों उठाया जाय ? उनके उत्तर में कहा जा सकता है कि पाठानुसंधान व मूल सिद्धांत दश विदेश में मिश्र मिश्र न होंगे किन्तु भारतीय वाङ्मय में पाठालाचन की जो समस्याएँ हैं व पारश्चात्य साहित्य में नहीं हैं। जहाँ पश्चिम में पाठालोचन की परंपरा अत्यंत समृद्ध और प्राचीन है वहाँ हमारे यहाँ यह परंपरा अभी अपने शुरुआत में ही है और इसकी प्रतिष्ठा एवं प्रचलन का यत्किंचित श्रेय पारश्चात्य विद्वानों का है।

कहा जा चुका है कि क-हैया सिंह की पुस्तक 'पाठ-सम्पादन के सिद्धांत' डा० कात्रे और इसाडवलापीडिया ब्रिटनिका पर ही सर्वाधिक आधारित है। इसके सिद्धांत 'विवेचन' शीर्षक खंड (प्रथम सात अध्याय) में मौलिकता के स्थान पर रूपांतरण है, पारश्चात्य सिद्धांतों का हिन्दी में संक्षिप्त प्रतिपादन है। परंतु इससे पुस्तक का मूल्य कम नहीं हो जाता। जैसा स्वयं लेखक ने कहा है

हिन्दी में पाठ-संपादन के वैज्ञानिक सिद्धांतों का विवेचन करनेवाला बोर्ड प्रयत्न नहीं है जिसमें हिन्दी की पाठ-समस्याओं का अनुशीलन किया गया हो।" दृष्टि कोण की ये पंक्तियाँ श्यामसुंदरदास विरचित 'साहित्यालाचन' की भूमिका का स्मरण दिलाती हैं। यदि कहा जाय कि यह श्यामसुंदरदास के 'साहित्यालाचन' की तरह सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक अनिवार्य प्रयास है तो इसमें अत्युक्ति न होगी।

ध्यातव्य है कि हिन्दी में पाठ-सम्पादन के सारे सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक कार्य हस्तलिखित ग्रंथों से सवध रखते हैं। मुद्रित ग्रंथों के पाठ-सम्पादन की ओर ध्यान आकृष्ट करनेवाले एकमात्र डा० नगद्व है। 'कामायनी' के अध्ययन की समस्याओं पर विचार करते हुए उन्होंने इस संध में पाठालाचन का प्रथम स्थान दिया है।<sup>१</sup>

१ डॉ० नगद्व, 'कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ' (दिल्ली, १९६५), प० ३।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी में पाठ-सम्पादन का सद्भावितक विश्लेषण प्रती शशवादस्या में है। इसके विपरीत पश्चात्य साहित्य में इसका दूरव्यापी विकास हुआ है। जिन स्थितियों में पश्चात्य पाठालोचन गुजरा है, उनमें कुछ स्थितियाँ हिन्दी-पाठालोचन में भी आयी हैं अतः सम्भावना है कि देश की अन्य स्थितियाँ आगे यहाँ भी आयें। इसलिए पश्चात्य साहित्य में पाठालोचन के विकास पर विह्वल दृष्टि डाल लेना अप्रासंगिक न होगा।

### पश्चात्य साहित्य में पाठालोचन

पश्चात्य साहित्य में पाठालोचन की साहित्यिक शाख की प्रविधियाँ कथनगत रचन की परंपरा मिलती हैं। अनुसंधान के लिए जहाँ प्राचीन हस्त-लिखितों का लिपिकार के समेषण आनुचन विषयक अन्वेषण तथा छूटे-बूटे अक्षरों के प्रयोग से मूलक विशेषताओं का परिचय आवश्यक है वहाँ उन निम्नलिखित विषयों का भी अध्ययन करना पड़ता है —

विशेषण-आत्मक प्रयोजन (अनलिटिकल विनिर्णयप्रणाली)

पाठालोचन (टेक्स्चुअल क्रिटिसिज्म)

आन्तःप्रय और प्रभाव (मोमेंट एण्ड इन्फ्लूएन्स)

लेखक निर्धारण और प्रामाणिकता (ऐट्रिब्यूशन एण्ड ऑथेंटिसिटी)

रचना प्रक्रिया (द प्रोसेस ऑफ कम्पोजिशन) और पुरातनविज्ञान (पैलिग्राफी)

पाठालोचक भी एक प्रकार का मिथ मर्मो अनुसंधान होता है। प्राचीन पाठालोचन के तुलनात्मक अध्ययन एवं वर्गीकरण में वह निपुणता होता ही है साथ ही वह हस्तलिखितों के रचनाकाल में भाषा की अवस्था उनके लिपिकारों की शैली के गुण-वशिष्टों के ऐतिहासिक परिवर्तन तथा तदुत्पत्ति सामाजिक-धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से भी पूणतया अवगत होता है। इस प्रकार के ज्ञान का उपयोग वह साहित्यकार और लिपिकार की व्यक्तिगत विशेषताओं और उनकी साहित्यगत प्रवृत्तियों के निर्धारण के लिए करता है।

या तो पश्चिम के मूलक वाङ्मय में पाठालोचन के परंपरा अत्यंत प्राचीन हैं, फिर भा मुद्रणशास्त्र की स्थापना के पश्चात् ही, प्राचीन एवं सामयिक श्रुतियों के प्रामाणिक मन्त्रणा के प्रकाशन-कार्य में तद्वत् आय है।<sup>१</sup> इंग्लैंड का सर्व-

१ The Art of Printing had been invented and exercised for a considerable time in most countries of Europe



प्रथम प्रकाशक नक्सटन स्वयं भी, एक सुर्ध, ममन पाठालाचक था।<sup>१</sup> किन्तु उन दिनों पाठुलिपिया वा अछ्यदन, वर्गीकरण और उनका तुलनात्मक समीक्षण वानानिक एव सुशृखल ढग स न होकर अयवस्थित रूप स तथा सम्पादक की सुविधा, रचि और परिस्थिति के अनुसार होता था। उन टिना पाठालाचन वा

before the Art of Criticism was called in to superintend and direct its operations Thomas Tyrwhitt *The Poetical Works of Geoffrey Chaucer* (London 1855) P iii (Appendix to the Preface)

१ Pref to Caxton's 2 d Edit from a copy in the Library of St John's Coll Oxford Ames p 55—Whiche book I have dyligently oversen and duly examyned to the ende that it be made accordyng unto his owen makyng for I fynde many of the sayd bookes which wryters have abrydgyd it and many thynges left out and in some places hav sette certayn versys that he never made ne sette in hys booke of whyche bookes so incorrecte was one broughte to me vi yere passyd whiche I supposed had ben veray true and correcte and accordyng to the same I dyde do enprynte a certayn number of them whyche anon were solde to many and dyverse gentyll men of whom one gentyllman cam to me and sayd that this book was not accordyng in many places unto the book that Gefferey Chaucer had made To whom I answered that I had made it accordyng to my cotype and by me was nothyng added ne mynushyd Thenne he sayd he knewe a book whyche hys fader had and moche lovyd that was very trewe To whom I said, in caas that he conde gete me suche a book trewe and correcte yet I wold ones endevoyre me to enprynte it agayn, for to satisfy the auctour, whereas tofore by ygnoraunce I erryd in hurtyng and duffamyng his book in dyverce places *Ibid*

वैना बहमुची विकास नहा हो पादा थ। जितना दाद क युगा न हुरा है। यूरप म अर पाठालाचन विपयक अनकानक ग्रथो का प्रणदन हो चुका है जिनसे निविवाद है कि पाठालाचन के सिद्धाता अर पद्धतिया का परिचय हा सकता है। यह निविवाद है कि इन ग्रथो की रचना उपलब्ध सम्पादित ग्रथो के आधार पर ही हुई है और इहान पाठालोचन को बनानिक रूप सज्जा देने के साथ ही समीक्षा का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अग भी बना लिया है। अंगरेजी पाठो के सम्पादन के लिए प्राचीन अभिज्ञान पद्धतिया और प्राचीन सम्पादन शलिया का पान डब्ल्यू० डब्ल्यू० ग्रेग की पुस्तक 'द क्लिफुलस आव वरियण्टस' (१६२७) अर पॉल माज की पुस्तक 'टेक्स्चुअल क्रिटिसिज्म' (जमन रु अनूदिन, १६५८) कराती हैं। एनडिपयन्त महत्त्वपूर्ण मामग्रा के लिए अंगरेज सम्पादका ने ए० ई० हाउसमन का मनीलियम (१८०३), जुवनल (१६०५), नूकन (१६२६) की भूमिकाओ और उनकी 'दि ऐप्लिकेशन आव थाट टु टेक्स्चुअल क्रिटिसिज्म का अत्यन्त उपादेय माना है। जान वाटर द्वारा संपादित ए० ई० हाउसमन सलवटेड प्रोज (१६६१) म अतिम निबध की पुनरावृत्ति हुई है।

अंगरेजी म आधुनिक पाठालोचन का आरम्भ आर० व० मकरो (McKerrow) द्वारा सम्पादित टामस नश के बहत सस्करण (पाच खडा म १६०४-१०) म होता है जिसम पन्ना दार कार्पी-टेक्स्ट' नामक पारिभाषिक शब्द-युग्म (और सिद्धात) की उल्भावना हुई है। जत्र एफ० पी० विस्सन न इसका नत्रप्रकाशा सपूरक टिप्पणिया के साथ (पाच खडो म, १६५८ म) किया तब मकरो के पुरान सहयोगी ग्रेग ने एक महत्त्वपूर्ण परिशिष्ट म उनके द्वारा समर्थित विचारा का विरोध किया। इसके पहले भी मकरो की प्रालेगामिना फार द आवमफाइ शेक्सपियर (१८३८) ने ग्रेग का उस निजी प्रालेगामिना (उपाध्यात) की रचना के लिए प्रेरित किया था, जा दि एडिटोरियल प्राग्म इन शेक्सपियर (१८४२, संशोधित १८५०) के आरम्भ मे मयाजित है। पाठालोचन के सिद्धान्तादि के सबध म अयाय महत्त्वपूर्ण वृत्तियो म जे० डोवर वित्मन की पुस्तक 'द मेयुस्क्रिप्ट आव शेक्सपियरस हैमलेट (१८३४), एलिन वाकर की पुस्तक 'टेक्स्चुअल प्राब्लेम्स आव द फर्ट फालियो (१८५३), फ्रेन्सन ब्राज की पुस्तकें 'आन एडिटिंग शेक्सपियर एण्ड द एलिजावायन ड्रेम लिस्टम' (१८५५) 'टेक्स्चुअल एण्ड लिटररी क्रिटिसिज्म (१८५६) और 'विनिश्रीप्रणी एण्ड टेक्स्चुअल क्रिटिसिज्म' (१८६४) तथा चाल्टन हिमन की रचना 'द प्रिंटिंग एण्ड प्रूफ रीडिंग आव द फर्ट फालियो आव शेक्सपियर' (१८६३) उल्लेखनीय हैं। एलिजावेय-मुर्गन नाटको के पाठ विपयक अध्ययन

के प्रत्येक पक्ष पर बहुसदस्यक लेख 'स्टडीज इन विव्लिग्रोपफी' में मिलते हैं। इसका सम्पादन वावज करते हैं जो 'विलियो-टेक्स्चुअल' शब्द के आविष्कार और इसी नाम से अभिहित पद्धति के आविर्भाव भी हैं। शेक्सपियर के अतिरिक्त जिन कवियों और लेखकों के सवध में पाठालोचक व्यस्त रहे हैं, उनमें लगलड चामर, मलरी रॉचिस्टर पोप आर ऐडिसन सर्वोपरि हैं। सन् १८६० में जी. ए. वेन ने पीयस प्लाउमन के 'ए-टेक्स्ट' का एक उच्चकाटि का सस्करण प्रकाशित किया और सन् १९४० में जे. एम. मनली तथा एडिथ रिक्ट न आठ खंडों में चौसर के 'कॉटरवरी टेल्स' की सर्वांगीण पाठालिपियों और प्राचीन मुद्रित प्रतियों का सम्पादन किया। युजीन विनवर ने मलरी की 'कृतियों' का, डॉ. एम. वीथ (Viehl) ने ऐट्रिव्युशन इन रेस्टोरेशन पोयट्री (१९६३) का, एफ. डब्ल्यू. वेडसन ने 'एपिस्तल टु सेनरेल पसस' में जेनरल नाट आन द टेक्स्ट' का तथा डॉ. एफ. वाण्टन पांच खंडों में ऐडिसन के 'स्पेक्टेटर' का प्रकाशन सम्पादन किया।

पाठालोचन-सवधों, अंगरेजी पुस्तकालय में व. ए. डी. यरिंग की पुस्तकें 'अ मनुअल ऑफ टेक्स्चुअल क्रिटिसिज्म' (१९६०) तथा मेयडस ऑफ टेक्स्चुअल एडिटिंग (क्लाक मेमोरियल लाइब्रेरी, १९६२) विषय के सर्वांगीण सूक्ष्म एवं प्रामाणिक विवेचन के लिए रचाए हैं।

### हिंदी-पाठानुसंधान काय का इतिहास तथा उस पर पारश्चात्य प्रभाव

हिंदी-ग्रंथों के मुद्रण के साथ ही हिंदी-पाठानुसंधान काय का बीजवपन हुआ था। उस समय का तयावधित सम्पादन वस्तुतः शौचक होता था जो अपनी गति और अपने भाव के अनुसार पाठालिपि में सुधार कर और कर्म, कर्म, यथा म्यान अपने, आर से कुछ जाड़कर, उस मुद्रित का दना था। आदिमुद्रित प्रया में प्राय ही आवरण पर लिखा मिलता है—पठिता द्वारा शुद्ध कराए, अमुक द्वारा शुद्ध कराए, आदि। निश्चय ही, यह पाठ शाय नहीं था, बल्कि इसमें पाठ गाय की समस्या जटिलतर ही हुई किन्तु हिंदी-पाठालोचन के इतिहास पर यह निर्णय करने हुए इस समस्या का विमर्श नहीं किया जा सकता। पारश्चात्य

१. लगलड अपनी कविता "पीयस प्लाउमन" को पारश्चात्य सन्तोषित करता रहा। इन सन्तोषनों के फलस्वरूप उसकी कविता के तीन पाठ मिलते हैं जिनमें जिस पाठ की रचना पहले हुई वह ए-टेक्स्ट और अंतिम ती-टेक्स्ट कहलाया। बीचवाला पाठ बी-टेक्स्ट कहा जाता है।

पाठालोचन पर विचार करते हुए दिखाया गया है कि आरम्भ में वहाँ भी यही अवस्था थी।

भारत में पाठानुसंधान का आरम्भ संस्कृत ग्रन्थों से हुआ जिसके मूल में पश्चात् प्रेरणा काम कर रही थी। भारतीय हिंदी-परिपद के नागपुर अधिवेशन में हुई निबंध-गाँधी के अध्यक्ष-पद से किये गए अपने भाषण में डॉ० घमँद्र ब्रह्मचारी ने कहा था

जर्मि, प्रगति आलाचना की, अथ दिशाओं में हुई है, ममवत वस। प्रगति प्राचीन ग्रन्था प्राचीन कवियां और प्राचीन लेखको-मवधी शाव की दिशा में नहीं हुई है। हिंदी की अपेक्षा संस्कृत के विद्वानों ने इस दिशा में अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है यद्यपि उन्होंने भी अपने प्रेरणाएँ पश्चात् दिशा के मानियर विलियम्स, बूलर, कीलहॉर्न (Kielhorn) ववर, पार्जिटर (Pargiter) पिटसन (Peterson) कनिंघम (Cunningham) आदि अन्वेषका सली। हिंदी में हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह तथा उनके सवध में सूचनाओं के प्रकाशन का व्यवस्थित रूप में कार्य आरम्भ किया काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने जहाँ मन् १९०० ई० में श्री श्यामसुन्दरदाम के तत्त्वावधान में खोज विभाग की स्थापना हुई।<sup>१</sup>

इससे स्पष्ट है कि पाठालोचन की भारतीय परंपरा का सूत्रपाल नदीपण पश्चात् विद्वानों की प्रेरणा के फलस्वरूप ही हुआ है। पाठानुसंधान के क्षेत्र में काशी नागरी प्रचारिणी सभा का योगदान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। सभा के संचालकों का ध्यान सभा की स्थापना (सन १८९३ ई०) के अवसर पर ही हस्तलेखों की खोज की और आकृष्ट हुआ था। किंतु सभा अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ऐंम महत्त्वपूर्ण एवं व्ययमाध्य कार्य का मार उठान में सवधा असमथ था। अतएव उमने भारत सरकार और वगान की एशियाटिक सोसाइटी से संस्कृत की हस्तलिखित पुस्तकों की खोज और जाच करके ममय हिंदी की हस्तलिखित पुस्तकों की भी जाच करने और सूची प्रकाशित करने की प्रार्थना की। एशियाटिक सोसाइटी ने ही हिंदी की भी, छ सौ पुस्तकों की नोटिसे तैयार की

१ 'अवतिका,' फरवरी १९५६ (वय ४, खंड १, अंक २), प० २१९।

२ नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सवत २००९ (वय ५७, अंक १), प० ९९।

३ नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सवत २००९ (वय ५७, अंक १), प० १००।

परतु दूसरे वष इस काम को करन म अर्पनी। अगमयता व्यक्त की। ममा न प्रार्तीय सरकार से ईपत् प्रोत्साहन पाकर अपन प्रधान स्तम् 'श्याममुदरदाम के निरीक्षण म खोज विभाग की सस्यापना की। सन् १८०६ स इसकी गात्र की रिपोर्टें' श्रैवापिक क्रम से लिगी जान लगी। सरकार के आदेशानुमार हस्तलिखित हिंदी ग्रंथो की खोज की समस्त 'रिपोर्टें' मर जात्र प्रियमन क पास भेजी गया और उन पर उनकी सम्मति मांगी गयी। श्रियसन न रिपोर्टों की भूरिण प्रशंसा ता की ही, साथ ही २२ सितंबर १६१४ क पत्र म समा को कुछ निर्देश भी किये जिनके अनुसार प्रत्येक पुस्तक की नाटिम प्रम्नुत हानी चाहिए। केवल ग्रंथा आर ग्रयवर्ताप्रा की नामावली न हो। पुस्तक के विषय को विस्तार के साथ लिखना चाहिए तथा ग्रयवार क वश और उसके अभिमावक (आश्रयदाता) के वणन को पूरा-पूरा उद्धृत करना चाहिए। साथ ही, सन्-सवत जहाँ जहा हो उह लिख देना चाहिए। रिपाट बहुत महत्त्व की हानी चाहिए। जिन जिन साहित्यिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक बाता का पता लगे उनका रिपाट म पूण विवेचन के साथ उल्लख हाना चाहिए आर यह स्पष्ट दिखाना चाहिए कि किन पुरान विचारो या सिद्धांतो का किन बाता स (जिनका खाज से पता लगा है) समयन अथवा खडन हाता है तथा कान से, बाने सदिग्ध जान पडती हैं।<sup>१</sup>

सन् १६२० म समा द्वारा स्थापित उपसमिति न यह भी निश्चय किया कि 'हिंदी पुस्तक की खोज का जितना काम अब तक हुआ है उसका साराश डा० आफ्रकट के कटेलगस कटोलगरम के डग पर तयार करवाकर प्रकाशित करवा दिया जाय ।'<sup>२</sup>

नागरी प्रचारिण, समा द्वारा किय गए प्रयासा के फलस्वरूप जो हस्तलिखित हिंदी ग्रंथ उपलब्ध हुए उनके आधार पर मिथवधु विनाद की रचना हुई। इस सदभ म रायवहादुर हीरालाल-द्वारा प्रस्तुत दसवा रिपाट (१६१७-१८१६ की खाजा पर) की भूमिका की निम्नलिखित पक्किया उद्धरणीय है

The information collected in respect of the authors and their works has inspired men with a critical turn of mind to write the History of Hindi literature At any rate two

१ उपरिक्त, प० १०४ १०७ ।

२ उपरिक्त, प० १०७ ।

books of this class may be considered to be the direct outcome of the encouragement given by the United Provinces Government to a theme which was restricted only to classical languages like the Sanskrit. The first of these is a voluminous work by the Misra Bandhus who used the search information to the best advantage in their Vinoda and the other is an English work by Mr F E Keay contributed by him to the Heritage of India series. This has been followed by Mr E Greaves Sketch of Hindi literature. The forerunner of all these was a Hindi work named Siva Simha Saroja followed by Sir George Grierson's Modern vernacular literature of Hindustan<sup>1</sup>

प्रियसन जने अंग्रेज विद्वाना ने प्रेरणा पाकर समा न पाठानुसंधान व क्षेत्र मे अनकानक अनुसुत काय किय जिनमे हिंदी के प्रामाणिक साहित्यतिहास का रचना हुई। साहित्यतिहास के प्रारम्भिक लेखको म प्रियसन का स्थान बड़े महत्त्व का है। उनके इतिहास ने परवर्ती इतिहासों को तो प्रभावित किया ही है शुक्लजी जस आचार्यों की साहित्यिक अभिरचि और दृष्टिकोण का भी अनुकूलन किया है। अपनी जायसी-अनुयावली के प्रथम सम्करण म प्रियसन का अनुकरण करत हुए शुक्लजी न दिना किर्स, व्याख्या व ८४७ का पाठ छपवाया है और मूल प्रति की, निधि फारसी मान ली है। इतना ही नहीं पाश्चात्य विश्वविद्यालयों म ही सबप्रथम हिंदी पाठालोचन का अवतरण हुआ माना जा सकता है। यदि डॉ० इरवगनाल शमा द्वारा प्रस्तुत सूचना म सच्चाई है (इसके विपरीत वार्ड अन्य सूचना इन पवित्रता व लेखक का उपनयन नहीं हुई) तो मानना पडेगा कि 'संपादन व क्षेत्र म सबसे पहला काय डा० रामाधर का है। उदाने मलिक मुहम्मद जायसी

१ *The Tenth Report on the Search of Hindi Manuscripts* (Allahabad 1929) p 111

२ डॉ० सावित्री सिहा और डॉ० विजयेन्द्र स्नानक (सम्पा०), उल० ४०, प० १४।

वृत्त पश्चात्त का सटिप्पण संपादन और अनुवाद (१६वीं शताब्दी की अवधि का अध्ययन) नामक शोध विषय पर सन् १९४१ में लंदन रू पी-एच० डी० का उपाधि प्राप्त की थी। डॉ० हरबशलाल शर्मा के साक्ष्यानुसार सन् १९१८ से आज तक जा अनुसंधान-काय हुआ है उसका आदश पाश्चात्य ही रहा है।<sup>१</sup>

रामचन्द्र शुक्ल जायसी प्रथावली (१९२४) और हिंदी पाठ संपादन का प्रारंभ

शुक्लजी उन पाठालाचको म है जा अथ बिठाने क लिए पाठो का विकृत किया जाना उचित नहीं समझत। उन्होन सुधाकरजी और डा० प्रियसन द्वारा संपादित पश्चात्त' के पाठ को प्रामाणिक स्वीकार नहीं किया है और सुधाकर जी की, उस प्रवृत्ति का हेतु बताया है जिसके कारण वे कही-कहा अथ बिठान के लिए पश्चात्त के पाठ का विकृत कर दते हैं।

किंतु स्वयं शुक्लजी म पश्चात्त' की सभी मुद्रित-हस्तलिखित प्रतियां के तुलनात्मक अध्ययन-परीक्षण के लिए न धन था और न इस काम के लिए अवकाश ही। उन्होंने इस ग्रंथ के केवल चार संस्करण देखे थे और उनके पास इन प्रतियां के अनिश्चित कहीं लिपि म लिपी एक हस्तलिखित प्रति भी थी जिससे पाठचयन म उह कुछ सहायता मिली। 'उन्ही लिपि के कारण पाठ-विकृति की सम्भावनाओं पर उन्होंने अवश्य कुछ ध्यान लिया था किंतु प्रियसन नहीं। इस प्रकार का ध्यान दिया था और दोनों म अंतर अश्वि नहीं है। प्रियसन की भांति ही शुक्लजी का ध्यान भी इस बात का प्रारंभ नहीं गया कि वास्तव म पश्चात्त' की आदि

- १ उपरिक्त। इसी लेखक ने यह भी कहा है कि हिंदी साहित्य से सबूत अनुसंधान का "धीमे-धीमे यूरोप के विश्वविद्यालयों में ही हुआ।" (उपरि० प० ३) तुलसी के धर्मद्वार पर जे० एन० कारपण्टर का शोधकाय ही हिंदी का सर्वप्रथम शोधग्रंथ है जिस पर उन्हें सन १९१८ ई० में लंदन विश्वविद्यालय से शोध-उपाधि प्राप्त हुई थी। १९३४ ई० में जनाइन मिथ ने "मूरदास का धार्मिक काव्य" शोधग्रंथ पर सन १९३४ ई० में कानिगसवग नामक जर्मन विश्वविद्यालय से "डॉक्टर ऑफ़ लिटरेचर" की उपाधि प्राप्त की थी। मध्यकालीन काव्यों की श्रजभाषा और लोकाय ब्रजभाषा पर सर्वप्रथम लिखा हुआ शोधग्रंथ डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का है, जिस पर सन १९३५ में पेरिस विश्वविद्यालय ने डी० लिट० की उपाधि प्रदान की थी।

प्रति उन् में नहीं, नागरी-लिपि में था। इसलिए वे भी उर्मी प्रकार माग के वाच म ही रह गए जैसे ग्रियमन। जायसी की मापा और छंद-योजना के स्वत्पो का भी ठीक-ठाक परितान उनके सस्करण म नहीं दिखाई पडता है।”<sup>१</sup>

मम सदिह नहीं कि शुक्लजा उन पाठालोचका म नहा हैं जो धैयपूर्वक प्रयागनीय सामग्री का सचयन तथा एक ही ग्रथ की भिन्न भिन्न पाडुलिपिया के प्राप्त हान पर उनकी प्रामाणिकता प्रतिलिपि-काल और ग्रथकार का निर्धारण करत हैं। ऐम काय के लिए उच्च कोटि की प्रखरता और श्रमशीलता की आवश्यकता होती है। हस्तलेखो के अनुसधान म तरह-तरह के सक्टो और ममस्याग्रा का सामना करना पडता है, ग्रथकार के उत्तराधिकारियों स ग्रथवा उन लाग स जिनके अधिकार म हस्तलेख हाने हैं मिलकर हस्तलेखो की परीक्षा करनी पडनी है। माय ही हम्मलेखा की म्ज के लिए उच्च कोटि की उपलम्भन-याम्यता की अपेक्षा हाती है।<sup>२</sup> शुक्लजी म सम्पादन-कला निपुण साहित्यकार की योग्यता अवश्य थी किंतु कई कारणो स उनके अस समालोचक प्रथम श्रेणी के तथा सवाधिक विश्वमनीय पाठ-मपादक न हो पाय। श्यामसुन्दरदास और लाला मगवानदीन के सबध में भी यही बात कही जा सकती है।<sup>३</sup> इन आलोचको ने कई प्राचान ग्रथो के पाठ सम्पादित अवश्य किये, किंतु इन्होंने शुक्लजी की तरह पाठ चयन और सम्पादन, म अपनी सामाय बुद्धि स ही अधिक काम लिया, सभी

१ माताप्रसाद गुप्त, 'जायसी-प्रयावली' (हिदुस्तानी एकेडेमी, १९५२), पृ० ११५ ।

२ In finding manuscript materials one has to meet problems of a purely practical nature, such as personal acquaintance with heirs of the writer one's own social prestige and financial restrictions and frequently some kind of detective skill. Rene Wellek and Austin Warren, *Theory of Literature* (New York, 1949) p 50

३ डा० धीरेन्द्र वर्मा की यह उक्ति ध्यातव्य है "जिस सामग्री पर यह पुस्तक श्यामसुन्दरदास तथा पीताम्बरदास बङ्गवाल् लिखित 'गोस्वामी तुलसीदास' अधिकाग में आधारित है वह सदिग्ध सिद्ध हो चुकी है और अनेक स्थला पर सुधार की आवश्यकता थी ।'

"प्रकाशकीय", 'गोस्वामी तुलसीदास' (हिदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९५२) ।



प्राप्य हस्तलेखा का तुलनात्मक समीक्षण, वर्गीकरण आदि न किया। सन १८०२ में प्रकाशित 'रामचरितमानस' (इंडियन प्रेस) के संपादक म प० सुधाकर द्विवेदी, बाबू राधाकृष्ण दास, बाबू धार्तिकप्रसाद और बाबू अमीरसिंह के अनिर्विकन डा० श्यामसुंदर दास भी थे। इस ग्रंथ की भूमिका प्रियसन की त्वाजा पर आधृत है और यद्यपि इसका सम्पादन बड़े परिश्रम से किया गया जान पड़ता है फिर भी इसमें अनेकानेक भूलें हैं।<sup>१</sup> इसी प्रकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल लाला भगवानदान और बाबू ब्रजरत्नदास द्वारा सम्पादित तुलसी-ग्रंथावली (म० १६८०) में अनेक ऐसी पक्तियाँ हैं जो प्रक्षिप्त हैं। इतना ही नहीं इसमें मानसतर ग्रंथों का संपादन किसी छपे सस्करण के आधार पर हुआ है, न कि प्राचीन हस्तलेखा और छपी हुई प्रामाणिक प्रतियों के आधार पर।<sup>२</sup>

कभी कभी तो प्राचीन हिंदी-ग्रंथों के सम्पादक यह भी नहीं बताते कि उनके पाठ किस प्रति (या किन किन प्रतियों) के आधार पर प्रकाशित हुए हैं अथवा पाठसम्पादन में उन्हें कौन-कौन से हस्तलेख और प्रकाशित प्रतियाँ उपलब्ध रहीं हैं। ऐसे ग्रंथों के संबंध में प्रायः यही कहा जा सकता है कि ये प्रकाशित (और बहुधा अप्रामाणिक) प्रतियों की ही पुनरावृत्ति होते हैं। उदाहरणार्थ सन १८१० में प्रकाशित 'विद्यापति ठाकुर की पद्यावली' (इंडियन प्रेस प्रयाग) में इसके सम्पादक श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त ने न तो अपने ग्रंथ की आधारभूत सम्पादन-पद्धति पर प्रकाश डाला है और न इस ग्रंथ के हस्तलेखा की चर्चा ही की है। ग्रंथ के आरम्भिक तीतालीस पृष्ठों पर कठिन शब्दों के अर्थ दिये गए हैं शेष पृष्ठों पर आये हुए शब्दों के नहीं। पुस्तक में भूमिका तक नहीं है।

तुलसी-ग्रंथावली के तीसरे भाग की भूमिका में उन पाठुलिपियों का उल्लेख है कि जिनके आधार पर ग्रंथावली के सम्पादकों ने तुलसी के ग्रंथों का भवजन-सम्पादन किया था। किन्तु इस भूमिका में ही यह स्पष्ट है, कि 'मानस' आदि के अन्य पाठों का कुछ परिश्रम से ही उपलब्ध किये जा सकते थे, सम्पादकों का उपलब्ध नहीं हुए थे। उक्त 'ग्रंथावली' के प्रकाशन के चार वर्ष पूर्व बाबू श्यामसुंदर दास द्वारा संपादित 'परमाल रामा' नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ था। बाबू साहब तथा शुक्लजी ने सवत्र एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल और प्रियसन की पाठ-चयन पद्धति का ही स्वच्छानुसार अनुसरण किया है।

१ माताप्रसाद गुप्त, 'तुलसीग्रंथ' (प्रयाग, १९४२), पृ० ६ (भूमिका)।

२ उपरिवन, पृ० १५।

लाला भगवानर्त्तन द्वारा सम्पादित 'बिहारी-बोधिनी' (स० १६०८), 'विश्व-भामुनी' (स० १८८०), 'कवितावली' (स० १८८२), 'सूर-संग्रह' (१८८६) आदि ग्रन्थ अपनी टीकाओं के लिए सावप्रियता पा चुके हैं। वस्तुतः तात्पर्य, यदि धार टीकाकार ५ चाटी व पाठालाचक नहीं। 'उद्धव शतक और गंगाक्षरण' के कविनिर्लघ्न कवि के संबंध में भी यही बात कही जा सकती है। 'बिहारी रत्नाकर (१६२५) के प्राक्कथन में टीकाकार न जाज प्रियमा स उत्साहित होने का दावत वही है' और प० ध्रुविकादत्त व्यास की कतिपय पवित्रिया को उद्धत किया है जिनसे स्पष्ट है कि टीकाकार न पाठों को 'जहाँ तक हो सका वहुत ही शुद्ध' कर दिया है। जगन्नाथदाम पाठालोचन की प्राचीन भारतीय परंपरा को पुनर्जीवित करना चाहते थे और उन्होंने अपना यह निश्चित सिद्धांत रखा था कि भावाथ शुद्धि का पाठ शुद्धि से आंतरिक संबंध है।<sup>२</sup>

मिथवधुआन न भूषण-प्रयावली (१८०७) के संपादन में जहाँ कई भारतीय इतिहासकारों के ग्रन्थों से सहायता ली थी, वहीं उन्हें प्रॉट डफ, टाड, एलियट, हटर, बर्नियर आदि पाश्चात्य लेखकों से भी प्रभूत सहायता मिली थी।<sup>३</sup> हिंदी पाठ-संपादन के क्षेत्र में मिथवधुआन का योगदान प्रशंस्य है किंतु समग्रतः शुक्लजी और श्यामसुंदरदास की रचनाओं की तरह उनकी कृतियाँ भी पाठ-सम्पादन के निदातो का विवेचन-नाममात्र का है।

बासवी शर्मा का तीसरा दशक हिंदी-टीकाओं और टिप्पणियों का स्वर्ण-युग है। उदाहरणार्थ, इसी दशक में सन् १८२० ई० में, प्रतापगढ निवासी प० श्रीतलाप्रसाद तिवारी ने तुलसीकृत दाहावली का सटिप्पण पाठ प्रकाशित किया। सन् १८२८ में विचारदाम शास्त्री का 'विरह-टीका और टिप्पणी-सहित सद्गुरु कबीर साहब का ग्रन्थ बीजक' प्रकाशित हुआ और सन् १६२८ ई० में हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा 'भूषण-प्रयावली'। इस प्रकार माया शंकर यादव द्वारा रहीम-रत्नावली का सटिप्पण प्रकाशन सन् १८२८ ई० में

२ "सन १८९६ ईसवी में लालचंद्रिका का जो संस्करण सर जाज प्रियसन साहब ने प्रकाशित किया उसमें, कई स्थानों पर अपना नाम देखकर हमारा उत्साह और भी बढ़ा, और सन १८९० ई० में हमने उक्त विचार से सतसई के दोहों के भावार्थों की सामान्य टिप्पणियाँ भी, छपी हुई हरि-प्रकाश टीका की एक प्रति के पाइव में, लिख डालीं।"

२ बिहारी रत्नाकर (बनारस, १९५१), पृ० २ (प्राक्कथन)

३ भूषण प्रयावली (काशी, १९२६), प० ८३ ८४।

ही हुआ था। इस शक की वनिपय अथ टीकाप्रा की प्रकाशन विधि इस प्रकार है

- बिहारी-बोधिनी' (लाला भगवान्‌गीन)—सन् १८२१ ई०,  
 'रामचन्द्रिका' (लाला भगवान्‌गीन)—सन् १८२३ ई०,  
 'सूर-संग्रह' (लाला भगवान्‌गीन)—सन् १८२८ ई०,  
 'बिहारी रत्नाकर' (जगन्नाथदास 'रत्नाकर')—सन् १८२८ ई०,  
 'बिहारी-दशन' (लोकनाथ द्विवेदी सितलाकारी)—सन् १८२७ ई०,<sup>१</sup>  
 'विनय-परिचय' (विद्यापी हरि)—सन् १८२३ ई०

हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वारा उद्घाटित सुतम-साहित्य-माला की कई परीक्षोपयोगी टीकाएँ इसी दशक में प्रकाशित हुई थीं। इन टीकाओं के प्रणयन-प्रकाशन के लिए यद्योचित प्रेरणा पारंपार्य देगों से न आकर उच्च ब्रह्मों के विद्यार्थियों से ही प्राप्त हुई होगी, फिर भी इस बात की सम्भावना बनी रहती है कि इन टीकाकारों और सम्पादकों में कुछ तो उन अंगरेजी प्राची की टीकाओं और सम्पादन शक्तियों से प्रभावित हुए होंगे जिनका प्रकाशन इस शती में या इससे पूर्व हो चुका था। वस्तुतः अंगरेजी साहित्य-इतिहास में भी ये दस वर्ष टीकाओं के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण दीखते हैं

- १—एफ० टी० पाल्‌ग्रेव, 'द गोल्डेन ट्रेजरी ऑफ द वेस्ट साउथ एण्ड लिबरल पोयम्स इन द इंग्लिश लैंग्वेज' (१८६१, फुल्ला एनाटेटेड बाइ जे० एच० फाउलर, पांच खंडों में, १८०१-२८)
- २—दि आउल एण्ड द गार्डियन' (लगभग १२००), जे० डब्ल्यू० एच० एंटकिंस द्वारा सम्पादित एवं अनूदित (१८२२)।
- ३—तेरहवीं शती की 'द ले ऑफ हेबलाक' शीर्षक कविता। सम्पादक डब्ल्यू० डब्ल्यू० स्वीट (१८६८), अनुवादक ए० जे० बाइथट (१८१३)
- ४—रिचर्ड रोल (१३००-१३४८) के 'माइनर वर्क्स का जी० ई० हाजमन (१८२३) द्वारा सम्पादन और अनुवाद। (विवेच्य दशक में ही रोल का जीवन-वृत्त और उसकी वृत्तियाँ का विवरण प्रकाशित हुआ। देखिए होप एमिली एलेन, १८२७ और फ्रांसिस एम० एम० कॉम्पर, १८२८)।

१ इसका प्रकाशन सन १९३६ ई० में हुआ।

- ५—पॉ- हमलियस 'सर जान मेण्डेविल' के 'ट्रेवल्स' नामक ग्रन्थ का दाखडा म संपादन, (१८१३-२३) ।
- ६—एच० इ० विन द्वारा जान विक्लिफ की रचनाआ का धयन और सम्पादन, १८२६। इमक साथ उपयोगी टिप्पणियाँ भी जोड दी गई हैं। ह्यट वी० बकमन लिखित विक्लिफ का जीवन-चरित मन् १८२६ म दाखडा म प्रवागित हुआ। विक्लिफाइट बाइबिल के लिए दे० मागरट डानस्ली लिखित लोलाड बाइबिल (१८२०) ।
- ७—विलियम लंगलड (१३३२-१४००) । डब्ल्यू० डब्ल्यू० स्वीट द्वारा छह खडा म सम्पादित, १८६३-८४।
- ८—जी० सी० मक्लि द्वारा जान गावर (१३३०?-१४०८) की रचनाआ का सटिप्पण सम्पादन (१८६८-१८०२)
- ९—जे० थार० आर० टॉल्कीन और ई० वी० गॉडन द्वारा, 'सर गावन एण्ड द ग्रीन नाइट' का सम्पादन, (१८२५)
- १०—विलियम बेकतटन । द० नेली एस० आनर १८२६ डब्ल्यू० जे० वी० प्रॉच (१८२८)

इनके अनिरिक्त और भी दजना पुस्तक बीमवा शती द प्रथम तीन दशका मे सम्पादित हुई। इनम गोल्डेन ट्रेजरी ही एक ऐसा वाव्य-सग्रह है जिमम भारतवष के विन्वविद्याय के अधिकाश छात्र परिचित रहे हैं।

हिंदी पाठालोचन के आधार स्तम्भ

हिन्दी म पाठावेपण की अपनी विशिष्ट समस्याएँ हैं जा अंगरेजी आदि भाषाओ मे नही मिलती। डा० विलियम तिवारी द्वारा सम्पादित (१९६६) हलधर-वृत मुगमा चरित्र के 'पुरोवाक' म आचार्य दवद्रनाथ शर्मा का यह कयन उल्लेखनीय है जिस समाज म अशिक्षा और तक्हीन थडा के चलत पाडु-लिपियाँ पूजा की वस्तु मानी जाती हा और उनका दशन भी इन्वर प्रत्यक्ष का प्रतिम्पर्षा हा, जहा की मिथणनिपुणता रातारात इस कला स नक्ली पाडु लिपिया तयार कर दे कि उनम क्षतादिया की प्राचीनता का महज भ्रम हा जाय वहाँ काम की अतीस पाडुलिपिया प्राप्त कर लेना अपने आपम एक उपलब्धि है।<sup>१</sup> हिन्दी पाठावेपण की निम्नलिखित समस्याएँ ध्यातव्य हैं —

१ "सस्कृत मे पाठगोष और उसके द्वारा होनेवाले सदुपयोग की समस्या

## सामग्री-सकलन के पूव

(क) हस्तलेख नहीं मिलत ।

(ख) कुछ ऐसे पुस्तकालय हैं जहाँ से हस्तलेख बाहर नहीं जा सकत और जहाँ माइक्रोफिल्म की सुविधा नहऱ है । पाठालेखक का स्वयं जाकर उद्दिष्ट हस्तलेख की प्रतिलिपि तयार करनी पडती है ।

(ग) (इस समस्या की आर आचार्य दवद्रनाथ शर्मा न भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है ।) हमारे समाज म कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो अपनी 'अशिक्षा और तबहीन श्रद्धा' के चलत धार्मिक कारणों से—हस्तलेखों को दखत तब नहऱ देत ।

(घ) (इस समस्या का सबध (ग) से है ।) मंदिरों म सुरक्षित हस्तलेख प्रायः देखने को नहीं मिलत । यदि व सुलभ भी हऱ तो मंदिरों में पाठालेखक अपनी सामग्री नहीं ले जा सकत जिससे हस्तलेखों के परीक्षण म उठिनाई होती है ।

(ङ) प्रतिलिपि तयार करना या मूल पाठ का माइक्रोफिल्म प्राप्त करना द्रव्यसाध्य तथा साधारण व्यक्ति के लिए असंभव है । लोक प्रचलित ग्रंथों की इतनी अधिक प्रतिलिपियाँ मिलती हैं कि उन सबका संग्रह एक व्यक्ति के बग की बात नहीं रह जाती ।

(च) ऐसी सर्वांगपूर्ण खोज रिपोर्ट नहीं निकली जिससे यह पता लग

उतनी विकट नहीं है जितनी हिंदी की । इसका वास्तविक कारण यह है कि प्राचीन ग्रंथों के पाठशोध का कार्य हिंदी में अभी नया नया चला है । इसलिए इस प्रकार के कार्य के लिए जितने आरंभिक उपकरण हऱ उनकी सज सज्जा पूरी नहीं हुई है । हस्तलिखित ग्रंथों में विभिन्न प्रकार के अक्षरों के कभी कभी ऐसे रूप मिल जाते हैं जिनका उल्लेख तब लिपिज्ञान की पुस्तकों में नहीं हुआ है । आग भी उन्हें कोई कुछ और कोई कुछ पढ़ लेता है और एक ही आधार होने पर भी यथास्थान भिन्न भिन्न पाठ हो जाते हैं । जहाँ सशय हो, वहाँ पाठ का निणय करने में शब्द प्रयोग की परंपरा, छंद के व्यवस्थित न्य आदि ही अपेक्षित सहायता करते हैं । अभी तक इस क्षेत्र में पाठों के आर्थिक पक्ष पर उतना अधिक ध्यान नहीं दिया गया है जितना अनिवाय था ।" विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पद्माकर (प्रयावली), नागरी प्रचारिणी सभा, सं० २०१६, प० ८९ ।

जाय कि किसी ग्रन्थ के कितने हस्तलेख हैं। इस पाठ की प्रामाणिकता सिद्ध रह जाती है और कभी भी किसी अपेक्षा-वृत्त अधिक प्रामाणिक प्रति के निकल आने तथा इसके कारण निर्धारित पाठ पर पुनर्विचार करने की सम्भावनाएँ बनी रहती हैं।

### सामग्री सङ्कलन के पञ्चान

- (क) समस्त हस्तलेखा और प्रतिलिपिया के नहा मिल पान के कारण उनका गाला निर्धारण प्रामाणिक और अंतिम नहीं होता। इसका अनुर पाठ-चयन पर पड़ता है। गाला निर्धारण में पूर्णता नहीं होने के कारण पाठ-चयन में भ्रम हो जा सकती है।
- (ख) प्रतिलिपिया की गाला का निर्धारण करना बड़ा ही श्रमसाध्य है और अब तक जो आधार सामने आये हैं वे सभी ग्रन्थों के संग्रह में लागू नहीं होते। पाठ-विकृतियाँ की प्रत्येक प्रति में ग्राह्यता कठिन कार्य है और वह भी जब संकडा प्रतियाँ मिल जायें।
- (ग) पाठचयन की कठिनाई प्राचीन ग्रन्थों के सर्वसम्मत पाठ सुलभ नहा होने के कारण तत्कालीन अथ ग्रन्थों के पाठ निर्धारण करने में मुविधा प्राप्त नहीं होती। हिंदी की यह विशेष समस्या है। जिन प्राचीन ग्रन्थों के पाठ-संपादन हुए भी हैं, उनमें संवध में पाठानुसंधान के विद्वानों में मतभेद नहीं है।
- (घ) बड़े-बड़े जमींदारों और देशी नरेशों के पुस्तकालयों में सुरक्षित हस्तलेख साधारण व्यक्ति का सुलभ नहीं हो पाते थे। (रत्नाकर-जी ने इस कठिनाई की ओर मन्त्र किया है।)
- (ङ) जिस समय प्रेस भारत में आये ही थे उस समय हिंदी के जाग्रन्थ मुद्रित हुए थे मब अब उपलब्ध नहा हैं और उनके प्रकाशन के लिये संस्करण आदिकों सूचनाएँ भी अपूर्ण हैं जिनके परिणामस्वरूप विद्वानों में काफी मतभेद हो चुका है। (उदाहरणार्थ प्रेमचंद और किशोरीलाल गोस्वामी की कृतियों के प्रकाशन-के लिये आदि का लंकर ड० माताप्रसाद गुप्त और ड० गोपाल राय का विवाद।)

(घ) अनतो गत्वा, ऐस सम्पान्त प्राचीन प्रया के प्रकाशक नहीं मिलत जिसके कारण पाठ सम्पादनच्छु माहित्यका की सरया अत्यल्प है।

इन समस्याओं पर सर्वाधिक विजय प्राप्त करनेवाले अनुसंधाताओं में माताप्रसाद गुप्त और आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का स्थान ठीक ही, मध्य है। माताप्रसाद गुप्त ने 'तुलसीदास' की भूमिका (१८४२) में एच० एच० विल्सन को तुलसी विषयक अध्ययन की नवीन परिपाटी का उदाहरण और प्रवर्तक माना है। नाभादास जी के छप्पय और उस पर प्रियादास जी की टीका तथा कुछ जन-श्रुतियों के आधार पर विल्सन ने तुलसीदास का जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया था। इन जनश्रुतियों के सबंध में यह मानना पड़ता है कि उनसे पहले किसी विश्वस्त व्यक्ति द्वारा संकलित दूसरी जन-श्रुतियाँ इस समय अप्राप्त हैं।<sup>१</sup>

विल्सन के पश्चात् गासाँ द तामी ने अपने 'इस्तवार द ला लिरेल्योर इटुई ए इदुस्तानी के प्रथम खंड में हमारे महाकवि का परिचय दिया, जिसका आधार विल्सन का 'ए स्केच अफ् दि रेजिजस सेक्टस अफ दि हिंदूज' नामक निबंध ही था। माता के आरम्भिक अध्ययनकर्ताओं में एफ० एस० ग्राउस का भी नाम अविस्मरणीय हो चुका है। किंतु माताप्रसाद गुप्त के अनुसार 'यशस्वी स्वर्गीय सर जाज ए० प्रियसन की सेवाओं की इस क्षेत्र में तुलना नहीं हो सकती। जिस वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आपने हमारे महाकवि के जीवन और रचनाओं के सबंध में पहले श्री पहल अनुसंधान किया, यह दुःख का विषय है कि उसका परिचय आपके पीछे आनेवाले विद्वानों ने नहीं दिया।<sup>२</sup> तुलसीदास के समीक्षात्मक अध्ययन-अनुशीलन में प्रियसन वस्तुतः एक युग के विधायक' हुए।<sup>३</sup> अथ पाश्चात्य लेखकों में जिन्होंने तुलसीदास में गभीर रुचि का प्रदर्शन किया है ई० ग्रीस इतालवी विद्वान एल० पी० टैसीटरी, पादरी जे० एन० कारपेण्टर और अंगरेज विद्वान् जे० एम० मेकफी अग्रणी हैं।

माताप्रसाद गुप्त की पाठालोचन पद्धति पाश्चात्य पाठालोचन विषयक सिद्धांतों की समस्त भूमिका पर अवस्थित है। उदाहरणार्थ, 'तुलसीदास' एक समीक्षात्मक अध्ययन में हस्तलेखा की परस्पर तुलना और उनके विश्लेषण के

१ तुलसीदास, (१९४२) प० २।

२ उपरिचत प० ३।

३ उपरिचत, प० ५।

जिन सिद्धांतों का विवरण उपस्थित किया गया है, वे सबताभावेन पाश्चात्य हैं और उनमें विवेचन की भाषा में भी पाश्चात्य प्रभाव प्रतिफलित हैं

- (क) हस्तलेखा के मिलान में पहली बात जो साधारणतः देखी जाती है, वह है उनका 'माधारण स्वरूप' ('स्टाइल')। प० १६६
- (ख) हस्तलेखों के विश्लेषण का एक और तरीका उनकी 'गति (मूवमेंट)' की जांच का है। (प० १६७)
- (ग) हस्तलेखा के विश्लेषण का एक और तरीका उनमें व्यवहृत अक्षरों के 'गुण' [और मोड़] (जैसे 'स्ट्रोक' और 'कर्स') की जांच करना का है। (उपरि०)
- (घ) एक और भी तरीका हस्तलेखा के विश्लेषण का उनमें अक्षरों के 'आकार' ('साइज') की तुलना का है। (प० १६८)
- (ङ) हस्तलेखा के विश्लेषण का और भी अन्य तरीका अक्षरों के बीच का फासला ('स्पेस') देखना का है। (उपरि०)
- (च) हस्तलेखा के विश्लेषण का एक और भी तरीका यह देखना का है कि लेखक शिरोरेखा के साथ अक्षरों का शीर्ष भाग साधारणतः कितने अंश के कोण पर रहता है, जिसे झुकाव ('स्लॉट') कहते हैं। (प० १६९)
- (छ) अंत में हस्तलेखा के विश्लेषण का सबसे अधिक प्रचलित और मायम तरीका नमूना में से ऐसे शब्दों और अक्षरों को काटकर एकत्र आमन-मामने घिपकाने का है जिसे 'तुलनात्मक मानचित्र' (जबकि पाज्ड खाट) तैयार करना कहते हैं। (उपरि०)

गुप्तजी की पद्धति में हस्तलेखा के परस्पर संबंध ('प्रतिलिपि-संबंध'), चर्गीकरण, शाखा निर्धारण आदि का विशेष महत्त्व है। इस पद्धति का प्रवर्तन पश्चिम में हुआ है और सर रिचर्ड सी० जेब, हॉल प्रभिति का निवृत्त और ग्रन्थ में इसका विशेष पल्लवन और विशदीकरण हुआ है। तुलसीदास में 'कृतिया का पाठ' आदि उपन्यासों के अंतर्गत जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ है, उनमें भी पाश्चात्य पाठालोचन के सिद्धांतों का व्यावहारिक रूप देखने को मिलता है। प्रायः स्मरणीय महाकवि तुलसीदासजी की कृतियों के हस्तलेखा और प्रतिलिपियों का परीक्षण पाश्चात्य पाठालोचना द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों और उनके द्वारा प्रवर्तित शैलियों के आलाप में हुआ है। सबसे पहले 'मानस' की हस्तलिखित प्रतियाँ का वर्णन है, फिर उनकी बहिर्ग परीक्षा की गई है,



पाठ-शोध विषय ग्रन्था म महत्त्वपूर्ण हाते हुए भी पाश्चात्य प्रभावावेपण की दृष्टि से अनुत्प्रेक्षणीय ही है।

सूर समिति के तत्त्वावधान म आचार्य नन्दुलारे वाजपेयी द्वारा सम्पादित 'सूरभागर' (स० १८६३) पाश्चात्य प्रभावावेपण की दृष्टि मे कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। इस ग्रन्थ का संपादन जगन्नाथरास 'रत्नाकर' के निश्चिन सिद्धाता के अनुसार हुआ है और इसम 'सूरभागर' की उन प्रतिया की ओर मवेत किया गया है जिनसे संपादन-त्राय म सहायता ली गई थी। 'सूर-भुषमा' (स० १६८८), 'सूर सदम' (प्रति० २०) आदि सम्पादित ग्रन्थों की भूमिकाएँ वाजपेयीजी की आलोचनात्मक प्रतिमा की द्योतक हैं उनके पाठालोचक की परिपक्वता एव श्रमशीलता की नहीं। प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादक जय उपलब्ध हस्तलेखा और प्राचीन मुद्रित प्रतिया का सर्वांगीण अध्ययन न कर ग्रन्थ की अतुवस्तु का समीक्षण-परीक्षण करते हैं तब पाठालोचन क स्थान पर साहित्यालोचन मिलता है। विपिन विहारी त्रिवेदी लिखित चदवरदायी और उनका काव्य' (१६५२), उनके द्वारा सम्पादित 'रेवातट (पथ्वीराज रासो १८५३) ड० नारायणदास खन्ना रचित आचार्य भिवारीदास (१८५५), डा० विश्वनाथप्रसाद द्वारा संपादित मुरलीधर कविभूषण कृत 'छन्दोदयप्रकाश (१८५८) डा० सत्येन्द्र द्वारा संपादित जाहरपीर गुरु सुग्गा (१८५६) और उमाशकर शुक्ल द्वारा संपादित नददास (१८४२) आदि ग्रन्थ पाठालोचन से सबध नहीं रखते। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र की परंपरा म डा० विशारीलाल गुप्त द्वारा संपादित नागरीदास ग्रन्थावली आदि पाठालोचन म परिगणित अवश्य हैं किंतु उन पर पाश्चात्य प्रभाव नहीं पडा है।

हिंदी पाठालोचन की डा० माताप्रसाद गुप्त वाली परंपरा, जिस पर कने और विष्णु एस० सुकथकर का प्रभाव है पाश्चात्य पाठालोचन परंपरा से प्रभावित है। स्वयं आचार्य सुकथकर ने महाभारत के जादिपव की भूमिका मे त्रिट्टरनित्स के योगदान का उल्लेख किया है जिससे यह स्पष्ट है कि महाभारत जैसे भारतीय ग्रन्थों के संपादन की प्रेरणा भी पश्चिम से ही आयी है। आचार्य सुकथकर ने अपनी 'प्रोलोगामिना' म कहा है —

The need of critical or ( as it was sometimes called ) a correct edition of the Mahabharata has been felt by Sanskritists for over half a century It was voiced however in a clear and emphatic manner for the first time by

Professor M Winternitz at the XI International Congress of Orientalists held at Paris, in 1897. The ideas received a concrete shape in his proposal for the foundation of a Sanskrit Epic Text Society which was laid before the very next session of the Oriental Congress (XIII) held in Rome (1899). Again three years later at the following session of the Congress (XIII) held in Hamburg (1902) Professor Winternitz reiterated his requisition and endeavoured to impress again upon the assembled savants that a critical edition of the Mahabharata was a *sine qua non* for all historical and critical research regarding the Great Epic of India.<sup>9</sup>

प्राफेसर विंटरनिट्ज़ के परामर्श पर ही सर्वप्रथम किसी भारतीय आचार्य ने नहा, प्रयुत् एच० लूडर (Luders) ने महाभारत के 'आलाचनात्मक' मस्करण का एक प्रादश (स्पेसिमन) प्रस्तुत किया—

*Druckprobe einer kritischen Mahabharata* Leipzig 1908 और इसके लिए अपेक्षित अर्थ का प्रवध भारतवर्ष में नहा बल्कि पश्चिम में *ko mögliche Gesellschaft der Wissenschaften in Göttingen* हुआ।

प्राच्य साहित्य में पौरुष्य पाठालाचका समीक्षका और साधारण अध्यापक की रुचि का सूत्रपात राबर्ट डे नोबिली (Robert de Nobili c 1620) से होता है। बर्फे और मैकनमूलर के अनुसार वही संस्कृत का पहला यूरोपीय विद्वान् था। उसके बाद अब्राहम रोजम ने भतृ हरि का डच में अनुवाद किया (लगभग १६५१) और जॉस्ट हक्सलेडेन ने संस्कृत व्याकरण की रचना की। गेस्ता क्यूरडोज (Gaston Coeurdoux c 1767) ने सर्वप्रथम भारतीय तथा यूरोपीय भाषाओं में साम्य की ओर सक्त किया और सचमुच फ्रांसीसी एके

<sup>9</sup> 'Prolegomena *The Adiparvan* (For the first time critically edited by Vishnu S Sukthankar) Poona, Bhandarkar Oriental Research Institute 1933 p I

डेमी (Academie Francaise) से इस विषय पर एक प्रश्न भी किया।<sup>१</sup> दुनेरा (Anaquetil du Perron) ने परिस के राजकीय पुस्तकालय (रायल लाइब्रेरी) में कुछ प्राचीन फारसी पांडुलिपियाँ का देखा और भारत आन का निरक्षण किया और वह बम्बई पहुँचा। यहाँ घात ही उसने दया रि इंग्लंड आर फ्रान्स में युद्ध छिड़ गया है जिसके कारण वह बनारस न जा सका जहाँ वह ससृष्ट पढ़ना चाहता था। सूरत पहुँचकर उसने आवस्ता और पहावी का आलावन मयन किया और सन् १७६१ में १८० हस्तलिपियाँ और प्रचुर टिप्पणियाँ के साथ वह परिस लौट गया।

बमालक अंगरेजान इही दिना ससृष्ट का अध्ययन शुरू किया। चार्ल्स विलियमसन १७८५ में गीता का और दा वप वाद 'हितोपदेश' का अनुवाद प्रकाशित किया। तत्पश्चात् सर विलियम जोस (१७४६-८४) ने सन् १७८४ में बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की और कालिदास की 'गुणलला तथा ऋतुसंहार' नामक कृतियाँ का अनुवाद किया। उनके अध्याय 'अनूदित ग्रन्था म हितोपदेश', जयदेव विरचित गीत-गोविन्द मनुस्मृति और वद की कतिपय ऋचाएँ उल्लेखनीय हैं। ससृष्ट के सबंध में जोस ने कहा था 'इट इज मार पफेक्ट देन द ग्रीक, मार क्राफियस देन द लटिन, एण्ड मार एक्सक्वि जिटली रिफाइण्ड देन आइदर'।<sup>२</sup> उनके बाद कोल्ब्रुक और जल्कजडर हेमिल्टन, वाप, रस्क, ग्रिम आदि विद्वान् हुए जिन्होंने ससृष्ट में विशेष रुचि दिखाई। हेमिल्टन (१७६५-१८२४) ने जर्मन कवि फ्रीडरिख स्लेगिल का ससृष्ट पढ़ाया जिसके फलस्वरूप सन् १८०८ में स्लेगिल का युगांतराग्रथ 'आन द लंग्वेज एण्ड विजडम आव दि इण्डियन्स' प्रकाशित हुआ। एच० टी० कोल्ब्रुक ने वेदा पर एक निबन्ध तो लिखा ही, साथ ही डाइजेस्ट ऑव हिंदू ला की भी रचना की। वेदा के गभीर तत्त्वदर्शी अध्ययन के लिए राय, राजेन और मैक्समूलर स्यातिलब्ध हैं। भारतीय वाङ्मय में गभीर रुचि का प्रदर्शन करनेवाले पाश्चात्य विद्वानों में हारस हेमन विलसन, जी० ए० ग्रिमसन, मानियर विलियम्स, ए० ए० मैकडानेल, राफ टो० ए० वी० कीय, राल्फ

१ H G Rawlinson, A Century of Oriental Research in Annals of the Bhandarkar Institute, vol VI, Part I, July 1924 p 42

२ उपरिक्त ।

ए० टनर, एच० डब्ल्यू० वेली, टी० बरा आदि भी कम महत्वपूर्ण नहीं।<sup>1</sup>

निष्कर्षतः, अभी हिंदी मपाठसंपादन-सद्वृत्ति के दो विधाय बन गये हैं जिनमें एक का नतत्व प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र और दूसरे का डॉ० माताप्रसाद गुप्त कर रहे हैं। प० मिश्र जरात और डॉ० गुप्त समग्रतः पाश्चात्य पाठालोचन से प्रभावित हैं।



---

1 Sunati Kumar Chatterji: *India and a New Renaissance* Europe *Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute*, vol XXXIX 1958 p 151



## उपसहार

प्रस्तुत शोध प्रबंध का समारम्भ हमन इस 'प्रतिज्ञा' के साथ किया था कि पश्चिम के समृद्ध सजनात्मक एवं समीक्षात्मक साहित्य से हिंदी-आलोचका का घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। प्रथम दो अध्याया म हमने हिंदी और, तत्पश्चात, यूरोपीय समीक्षा का सक्षिप्त ऐतिहासिक सर्वेक्षण प्रस्तुत करते हुए उस प्रगस्त एवं बलिष्ठ भूमिका का निर्माण किया है जा इदयुगीन समीक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव के विस्तारीकरण के लिए अ यावश्यक थी। हिंदी-समीक्षा क ऐतिहासिक सर्वेक्षण म हमने यह दखा कि आधुनिक समीक्षा आरम्भ सही पश्चिम से प्रभावित रही है। 'हिन्दी प्रदीप', 'सारसुधानिधि', 'सत्यमिधु' आदि पत्रिकाओं म प्रकाशित निवधों के साक्ष्य के अनुसार कहा जा सकता है कि भारते दुयुगीन साहित्य से ही अंगरेजी भाषा-साहित्य के तलस्पर्शी प्रभाव के अनेक पिल्ल दृष्टिगत होने लगते हैं। तृतीय और चतुर्थ परिच्छेदों मे हमने इस 'प्रतिज्ञा' की संपूर्ति की है कि हिन्दी के अधिकांश समीक्षक पश्चिम स प्रभावित होकर भी पौरस्त्य परंपराओं से विमुप नही हैं। परवर्ती अध्याया मे हिंदी की व्यावहारिक समीक्षा और पाठा-वेपण पर पाश्चात्य प्रभाव का सविस्तर विवेचन विश्लेषण प्रस्तुत है और यह दिखाया गया है कि पाठालोचन की भारतीय परंपरा-पद्धति भी अत्यंत सशक्त एवं गौरवमयी है तथा इस परंपरा के सवतोभावेन प्रमुख प्रतिनिधि आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र हैं। पाठा-वेपण की पाश्चात्य पद्धति डा० माताप्रसाद गुप्त की सम्पादित वृत्तियों म रूपायित है।

प्रस्तुत विवेचन आधुनिक हिन्दी समीक्षकों को निम्नांकित वर्गों मे विभाजित करता है। प्रथम वर्ग उन आलोचका का है जो प्रत्यक्षत भारतीय काव्य शास्त्र की सुदीप परंपरा से अनुस्यूत हैं। इन भारतीय काव्यशास्त्रवादिपों मे आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प० रामदहिन मिश्र और आचार्य बलदेव उपाध्याय परिगणनीय हैं। इन आलोचकों के लिए 'भारतीय काव्यशास्त्रवादी अभिधा का प्रयोग विचारणीय है। ये सब भारतीय काव्यशास्त्र के नदीष्ण अध्वेता हैं और इन्होंने उसी के सिद्धांत प्रतिमाना और निष्कर्षों से हिंदी साहित्य को निरखा-परखा है यद्यपि हिंदी साहित्य के सूक्ष्म अध्ययन के आधार पर मौलिक

प्रतिमाना और सिद्धांतों के सजन-स्थापन का प्रयास भी इनमें द्रष्टव्य है। यहाँ यह भी स्वीकार करना आवश्यक है कि इन सभी आलोचना का पाश्चात्य साहित्य शास्त्र से भी परिचय रहा है, पर वह परिचय की परिधि से आगे न बढ़ सका— प्रभाव के स्तर तक न आया। द्वितीय वग मम-वयवादिया का है जिनमें डा० श्यामसुन्दरदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० गुलाबराय डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी डा० नगेंद्र, आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी और डा० सुधासु मूधय हैं। भारतीय काव्य शास्त्रवादिया और मम-वयवादिया का मुख्य अंतर यह है कि प्रथम का पाश्चात्य साहित्य शास्त्र ज्ञान प्रभाव की सीमा तक न आया जब कि मम-वयवादी प्रभाव की परिधि में आ जाते हैं। इनकी मौलिकता इस बात में है कि भारतीय काव्यशास्त्र के अपने गहन अध्ययन के आलोक में इन्होंने पाश्चात्य साहित्यशास्त्र को ग्रहण किया है। प्रचारात् ये सारे समीक्षक एक कोटि में रखे गए हैं किन्तु इनमें प्रभाव का परिमाण भिन्न स्पष्ट है जो आगे की तालिका से भी स्पष्ट होता है। इस परंपरा का सूत्रपात साहित्यालोचन सह्या और इसकी परिणति रस सिद्धांत में हुई है। डा० श्यामसुन्दरदास में पाश्चात्य प्रभाव परिमाणत अधिक है— तिल-तण्डुल 'याय' में तिल या तण्डुल अधिक है। आचार्य शुक्ल, इस दृष्टि से बाबू श्यामसुन्दरदास के समीप पढ़ने बिल्कुल समकक्ष नहीं। शुक्लजी का भारतीय काव्यशास्त्र से वही अधिक गहन अध्ययन मनोविज्ञान और पाश्चात्य रोमांटिक विक्टोरियन काव्य का प्रतीत होता है। उनके सारे आलोचनात्मक साहित्य का पढ़ने पर एक ही धारणा बनती है कि वे पाश्चात्य साहित्यिक एवं मनोवैज्ञानिक गतिविधियों के प्रति अत्यंत सजग हैं परंतु उनकी स्थिति यह है कि अपनी विशाल परंपरा के मोह में वे पश्चिम की सर्वांगत स्वीकार नहीं कर सकते। उन्होंने न क्रोचे को अच्छी तरह समझा और न वमिगज के प्रति 'याय' ही किया। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी में यह सम-वय किंचित प्राकारिक भिन्नता भी रखता है। इनके सम-वय के त्रिकोण में एक बिंदु बगला भी है। इस सम-वयवादी परंपरा की अंतिम मागशिला डा० नगेंद्र हैं जिनमें यह सम-वयवाद नीर-नीर 'याय' को धरिताय करता है। तृतीय वग मानसवादिया का है जिनका मूलभूत सिद्धांत बिल्कुल पश्चिमी है। चतुर्थ वग में पाश्चात्य सह पौरस्त्यवादी आते हैं जिनमें 'निराला' और पत प्रमुख हैं। इनके समान 'प्रसाद और महादेवी भी छायावादी कवि तथा आलोचक हैं किन्तु इनमें पश्चिम का उत्तना प्रभाव नहीं जितना समाहित है। उपान्त्य वग पाश्चात्यवादिया का है जिनमें डा० दवरज अन्येय नलिनजा मुक्तिबोध और देवीशंकर अवस्थी के नाम लिये जा सकते हैं। पाश्चात्य प्रभाव से ये समीक्षक पूर्णतया अभिमूत हैं और

अतीवृत्तियां मये उगीं वर्यातिविरुजान सेपाठकको यथाशक्त आगिण करन वा प्रयाग करने हैं। इत गमी यगों के गर्मासरा में गै० धीरुद्र वर्मा विगिण्ट हैं। ये मूलत और प्रदानन भाषा-वर्णानिर तथा गवेपक तो हैं ही, हिन्दी गोघ के जनन भी हैं।

पारचातर प्रभाव के आलोचन म हिन्दी-आलोचना के वा रव के ममीगण नम में नय-नये तष्य प्रकाशित हुए हैं नयी-नयी रपागनाएँ हुई हैं और अयगयत प्रपत्ति अवनवानव भांगियां दूर की गई हैं। तवप्रथम यह स्यापित किया गया है कि हारेग के वाव्य प्रयोजन सयधी रिपाग इतासवी ममीगण की रपागनाके माध्यमगनरजागरणयुगको प्रभावित करतहुए मिठनी आदि लेखन और स्वच्छतावागी ममीगण व मगातन पठपोषण के फलरयरूप हडसन, वर्सपील्ड और डॉ० द्यामगुत्तरदास तव आ पहुँचे हैं। वाबू गाहव म 'विपटा गिया' नतिवना और 'रोमागिा' पलायनवादिगा का युगपत् मगाहार है तथा उनवे द्वारा अनुगिा पकिया। म भी उनकी गर्ज तारमर प्रतिभा का प्रभूत प्रतिविचन हुआ है। आचार्य रामचद्र शुक्ल व गैली सयधी गिा से सर्वप्रथम यह सिद्ध होना है कि ममीगण न मगातयि की रपनाग का समुचित आलोहन ही नहा किया या, उनमें मनोनुबूल जीवन बोध की अभिव्यक्ति दगी थी और इगमे अपनी धारणाओं तथा विचारा म स्यामितव उत्पन्न किया था। ववचित्-नगाचित् गेली के वाव्य से ही शुक्लजी के गाहिय तथा जीवन-मरधी कतिपय विचार निस्सूत हुए थे। यह भी संभव है कि 'रिवाल्ड और इगलाम' की ओर 'शुक्लजी के आका नेत्र सवेना का मूल कारण गेली का प्रभाव न होकर केयरल भाव-मादुग्म हो गेली की धारणाओं में मिलती-जुलती शुक्लजी की कतिपय पूर्वनिमित्त धारणाएँ रही हा। साहित्य-जगत् म ऐसी बात प्राय देखने-मुना को मिलती है कोई लेखक यदि किसी की प्रसा करता है ता इगवा यह अर्थ नहा होता कि वह प्रगसित व्यक्ति से प्रभावित ही हुआ है। समादर एव श्रद्धा के मूल म विचार-मादुश्य ('गाइव माइण्डेडनम') भी हो सकता है। उदाहरणार्थ, कलाइव एकसटन यदि स्त्रीन्वर्ग की तथा जॉन आडन श्रेस्ट की प्रगसा करता है तो इसका यह कारण नही कि एकसटन तथा आडन और श्रेस्ट से प्रभावित ही हुए हैं। शुक्लजी का यह कथन कि 'वर्तमान कविया म कर्मिगण का नाम शायद ही कोई लेता हो उपलघ तष्या के आलोचन म न्यामसगत नही दीयता। कर्मिगण, पाउड, हॉपरकिंग और डेन मलामें प्रभूति ने परपरगत छत्रों अत्रवारो और सलो का यथाशक्य परित्याग कर इस विद्वास से कि वर्तमान युग की नव्यतम अनुभूतिया के अनुकूल ही भाषा-दात्री प विद्याग तथा विराम चिह्नो के



प्रयोग होते चाहिए, राजकी तयारवित कालाजी सिद्धी है। रॉबर्ट ब्रेडर ने कर्मिज की 'बलावाजी' का पुरजोर समर्थन किया है और 'द बेवर् लो' के लेखन जो प्रेस ने इस गदम म कहा है कि मुद्रण तथा विराम गिह मवधी वतिपय प्रचला व हम इताशक्यस्त हागा है कि उनी उो ॥ हा। ही एम पूर्णतया व्यप्र हो उठो है चारा जाते हैं।

डॉ० गुलाबराय की गर्मी तयो म मरणकारमक रिक्टर का गवयत प्रमाय दीग पडता है। इस कारण उारा म्यान िया आवातना क आचार-मामा के नीचे है पर उनी सम-ममार्गि दृष्टि तितान भारतीय है। ये परगय भाषा को तर्मी स्वीकार करत है जस उा पूणतया आममान कर सत है। एम आर्मी कारण की प्रक्रिया म स्मृतिय-मर्तिय का सम-यद हा जाता है। उाव नरम म डॉ० नगेद्र क रम गिद्वान की पूर्वानुमृति हाती है आचार्य मुवन और बापू जी डॉ० नगेद्र क पूर्वानुमायना म है। ए० गम-हित मिभ और डॉ० दवरगा पना दो धुवाना पर गडे रीगत है। उा एम मुख्यत भारतीय गिद्वाना का हा प्रस्तोता और प्रमोवना है वनी दूगरा पश्चिम की भार ही अत्यधिक उमृग है। मिश्रजी सिद्धात सम-वयवाणी है, व्यवहारत सरत साहित्यशास्त्र की भार ही गर्वाधिक प्रवत्त। आचार्य बलदव उपाध्याय की वतिपय आरमिक रचनाएँ उनी हीन भावना की मूत प्रतीक है। एमार दश म एस लागी की कर्म नहा है जिनकी दष्टि आयुनिकता स आचिन और हीनभावना सग्रस्त है।<sup>१</sup> उपाध्यायज। भार म पाश्चात्य वादमय के चापचिक्य म वही ता पूणत अनिमूत और वही भारतीय सास्कृतिक जीवन पर उसवे वतमान दुल्मनीय प्रमाय क कारण आनवित और क्षुब्ध हैं। ये पाश्चात्य समीक्षका स नही प्रत्युत पाश्चात्य गवयका पुरातत्या 'वेपिमो और कृत्तिसकारो से प्रभावित हैं तथा पाश्चात्य आलोचना की गौरव गरिमा को स्वीकार करत है।

ए० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के अनुसार भारतीय एव पाश्चात्य काव्य म एव तात्त्विक अंतर यह है कि जहाँ ममस्त भारतीय साहित्य काव्य म सर्गीत तत्त्व को समधिक महत्त्व देता है वहा पाश्चात्य काव्य म सर्गीत का वना व्यापक स्वरूप कभी नही दिखलाई पडा। एतत्थ, सर्गीत के साथ खेल करन का जसा स्वाग पश्चिम मे रचा गया है यहाँ अब भी नही हो सका। मह अनिरक यहाँ तक वडा कि कविताओ म जतुओ की ध्यनिया निवाली जान रागी।' इन पवितयो मे मिश्रजी के प्रकृत एव अरोचकी समीक्षक के दर्शन नही होवे। स्वाट जेम्स

१ आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा, 'भाषाविज्ञान की भूमिका' (दिल्ली, १९६६), प्रस्तावना।

हडसन, ऐवरक्राम्वा प्रमति क आधार पर ऐस व्यापक मतवादी का व्यक्तीकरण अशोभन पतात होना है। यह स्मृतव्य है कि कर्मिग्न आदि की रचनाओं का यही पक्ष सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। मिश्रजी नव्य के प्रति यत्किंचित् अनुदार ह, चाहे नव्यता पाश्चात्य काव्य में देख पड़े या नय हिंदा आलोचकों में।

हिन्दी के सांझातिक समीक्षका में आचार्य हजारा प्रसाद द्विवेदी, डॉ० नगेद्र आर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा साम्प्रतिक हिंदी समीक्षा के आधार-स्तम्भ हैं, परंतु जगद् द्विवेदीजी मानवतावादी एव गतिशील आत्म-जात्यवादी ह वहीं डॉ० नगेद्र और आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी स्वच्छन्दतावादी हैं। इन तीनों में डॉ० नगेद्र की समीक्षा हा शब्द के सच्चे अर्थ में सम-व्यवादी है और इन्होंने ही समय समय पर काव्यशास्त्र में प्रचलित भिन्न भिन्न सिद्धांतों में सदभाव के सघान और उनके अन्तर्विरोधों का मिटान का प्रयास किया है। इनकी समीक्षा कही भी उपरिष्ठ एव पल्लवप्राहा नहीं है—सबसे सटीक उदाहरण प्रस्तुत किये गए हैं विश्व वाङ्मय को आलाडित कर उससे पर्याप्त तथ्य एकत्र किये गए हैं। स्वच्छन्दतावादी हों के कारण डॉ० नगेद्र मानव प्रवृत्ति और मानव विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया एव व्यक्ति के विकास के मूल में एक साधक एकाता देखते हैं। साहित्य के क्षेत्र में इस एकाता की अभिव्यक्ति विश्वजनीन रम सिद्धांत में हुई है। निश्व की अधिकांश साहित्यिक प्रवृत्तियाँ रमवादी हैं, क्योंकि मानव स्वभाव सबके आनन्ददायी है। इसा व्यावहारिक अनुभूति पर डॉ० नगेद्र का रमवाद आधारित है। वाजपेयीजी को मा बुद्धिरस' का बाहुल्य अटपटा और अप्राह्य लगता ह और व कहते हैं कि नये रचनाकार काव्य की सहज और अतरंग प्रेरणाओं से संचालित नहीं है। अठारहवाँ शता के कवियों के सबध में कीटस के विचार ऐसे ही थे। आनल्ट न अठारहवाँ शता के नव्यशास्त्रवादी कवियों की आलाचना ऐस ही शब्दों में की थी। आचार्य हजाराप्रसाद द्विवेदी पाश्चात्य साहित्य से उतना प्रभावित नहीं दावत जितना पाश्चात्य विचार धाराओं और दशन चिंतन से। डॉविन की युगान्तरवादी उपपत्तियों और स्थापनाओं तथा शिलर स्पेयर माशल नगफील्ड प्रमति विचारकों के कृत मिश्र-सबधी विचारों से पूर्णतया अवगत हैं। पश्चिम (और अर्थ पूर्व) में जस प्रयागात्मक कृष्णग्रस्त, बजर-ऊमर काव्य का प्रचलन हो चला है उसके प्रति भी व जागरूक है परंतु व टबायनबा तथा स्पेंगलर-जसे निराशावादियों की कोटि में अपन को, ठीक ही नहा रखते। परिवर्तन के प्रति उनकी जागरूक मनोवृत्ति उनके विषयों को विचारगत विराट एकाता प्रदान करती और उन्हें परस्पर सूत्रित-अपिक्त करती है। पश्चिम में माल चेतना का अधिकांश (और आतक) एलियट की रचनाओं

भूमिलता है। टिवेर्नीजी और एडिगट, दोनो कालात्र की भाना में प्रत्यक्ष प्रस्तुत हैं। दोनो की इतिहास भाषा में अतीत की, अतीतता का ही रहा, उसका यतमाता का भी अवधान समाविष्ट है।

डा० धीरन्द्र वर्मा, डॉ० चाचुराम मन्गला, डॉ० सूर्यनारायण तिवारी आदि के भाषा विज्ञान विषयक अध्ययन में हिन्दी भाषा-साहित्य प्रत्यक्ष गमक हुआ है और साथ ही शब्द भाष्यमय, पारश्चात्य भाषाविज्ञान प्रभावित भी। हिन्दी शब्द व शैली में डॉ० धीरन्द्र वर्मा का योग उजाड़ ही महत्त्वपूर्ण है जिनका हिन्दी समाक्षा के क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का है।

हिन्दी साहित्य और इगर्ब, निविध विद्याप्राप्त पर पारश्चात्य प्रभाव का आवलन करनेवाले अनुसंधितों प्रायः साथ प्रभाव-ही प्रभाव दगत है। डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा के संबंध में कहा गया है कि हिन्दी-काव्य पर आंग्ल प्रभाव नामक अपने शब्द प्रबंध में प्रत्यक्ष उल्लेख पर सिद्धि-न निर्मात्र्य में अमरजा का प्रभाव यतान पर तुल्य हुए हैं। जहाँ विचार-साम्य दगा गया है वहाँ प्रमाणा के अभाव में हगन वर्माजा के विपरीत समाचितन के विवचन सहै। सत्ताप विद्या है। प्रस्तुत प्रबंध में आधुनिक पारश्चात्य आलाचका की अवहलना नहीं की गई है और अमुक अमूक साहित्यकारों का प्रभाव भी आधुनिक हिन्दी समाक्षा पर पडा - ऐसा कहना ही पर्याप्त नहीं समझा गया है। उन सभी साहित्यकारों के नाम दिए गए हैं जिन पर पारश्चात्य प्रभाव यतलाया गया है और उन रचनाओं का उल्लेख भी हुआ है जिनके कारण हम इन निष्कर्षों पर पहुँचे हैं। हिन्दी समाक्षा की निजा उपलब्धियों का देखन-परखन से ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे आधुनिक आलाचकों का एक वर्ग अपनी पिछली विरासत को नवाभूत परिस्थिति के अनुकूल गठन की चेष्टा में दत्तचित्त है। समवयवादियों के वर्ग में डॉ० हजारप्रसाद द्विवेदी, डा० नगेन्द्र, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी डॉ० सुधाशु डॉ० रामकुमार वर्मा प्रभृति समीक्षक मूढय है। इनका प्रधान लक्षण है प्राचीन सस्कृत के समुद्र मथन से प्राप्त तत्त्वामृता की नई नैपि से निरख-परख तथा नई आवश्यकताओं के अनुकूल उनका व्याख्या करने की प्रवृत्ति।

कुछ लोगो की धारणा है कि हमारी आलाचना का अधिकांश अंगरजा समाक्षा

१ 'आलोचना', १६, १९५५, पृ० ९९ (डॉ० अनन्तकुमार 'पाषाण' द्वारा "हिन्दी-काव्य पर आंग्ल प्रभाव" की समीक्षा)।

२ 'हिन्दी साहित्य का मूल इतिहास' (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, स० २०२२ वि०), पृ० ४।

का ह्पानर मात्र है। अब तक के विवचन सह स्पष्ट हा जाता है कि हिन्दी के आधुनिक आलोचक पश्चिम की वरिष्ठ साहित्यिक परंपराओं सिद्धांतों और निकाया स प्रेरणा लेत रहे है परंतु आधुनिक हिन्दा आलोचना पाश्चात्य आलोचना का अविकल अनुवाद नहा है। हमार समीचक जहा आलोचना के नवाकरण के लिए प्रयामशाल हैं, वना व भारत का मनातन काव्यशास्त्रीय परंपरा क प्रति भा जागरूक हैं और इम मुदह विश्वास के कारण कि आज के वैज्ञानिक युग म नव्य मानकी के उभावाक उह अपन दश काल तक हा सीमित नही रख सकत उनम मित्र मित्र विचार-नरणियों का अपतान की प्रवृत्ति क्रियाशील रही है। आविर उनक पूवजो न भी ता पश्चिम का कम प्रभावित नहा किया था। जना तरु प्रभाव ग्रहण का सवध है यह मी नवजनानुमादित तथ्य है कि पाश्चात्य वादमय म भा मित्र मित्र अयन्शाय तत्त्वों का सयाग हुआ है। नवनागरण काल से ही अंगरजी समीक्षा पर इर्न और हालड के विचारों का तनस्पर्शी प्रभाव रहा है। रोमांटिक और प्रतीकवादी भावधारा पर फ्रासीसी साहित्य चिंतन का, समाजवादी भावधारा पर टेन और माक्स का अस्तित्त्ववादी भावधारा पर वीर्कगाड और सात्र का तथा मनोविश्लेषणमूलक समीक्षा पर फ्रायड का प्रभाव साहित्यतिहास म सवविदित है।

यद्यपि हिन्दी की व्यावहारिक समीक्षा बहुत दिना तक प्रभाववादी रही है फिर भी व्यावहारिक समीक्षा की भारतीय पद्धतिया के सयोग से एक अभिनव समीक्षा-पद्धति का आविर्भाव हो चला है। हिन्दी के शास्त्रनिष्णात समीक्षक भी यह अनुभव करने लगे हैं कि प्राचीन और नवीन साहित्य की मीमासा पश्चिम और पूव के समचित मानदडों सेहानी चाहिए। नलिनजी जसे प्रयोगवादी समीक्षक पाश्चात्य साहित्य की समीक्षा भारतीय दृष्टिकोण स, भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार करना चाहते हैं। नलिनजी सस्कृत के साथ ही पाश्चात्य साहित्यालोचन की नवानतम प्रवृत्तिया का समन्वय उपस्थित करना चाहते हैं। परन्तु, समग्रत नता नलिनजी की समीक्षाओं म यह समन्वय मिलता है औरन उनके सम्प्रदाय के अन्य समीक्षका मे ही। इस समन्वय के स्थान पर (बर्मिंज के लिए प्रयुक्त चुकली के शब्दों म) 'शब्दा की कलावाजी' मिलती है और हिन्दी आलोचना को पाश्चात्य लेखका तथा उनकी कृतिया क नामा स भाराश्रात कर दिया गया है। इसी शली के प्रयाक्ताओं म डा० देवराज उपाध्याय, डा० देवराज, जगदीश पाडेय प्रभृति परिगणनीय हैं। अल्पाधिक परिमाण मे य सभी आलोचक पश्चिम स प्रभावित है। प्रभाव की दृष्टि स निम्नांकित आनुपातिक उपसहृति घ्यातव्य है

	अंगरेजी	यूरोपीय	संस्कृत	अन्य
--	---------	---------	---------	------

१—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी	२०	१०	५०	२०
२—ड० नगेन्द्र	४०	१०	४०	१०
३—आचार्य न ददुलारे बाजपेयी	५०	५	२०	२५
४—डा० माताप्रसाद गुप्त	५५	४	२१	२०
५—डा० धीरेन्द्र वर्मा	२०	२०	५०	१०
६—डा० रामविलास शर्मा	४०	४०	१५	५

हिंदी के कतिपय कवि समीक्षका पर भी पश्चिम का उतना ही गहरा प्रभाव पड़ा है जितना शास्त्रीय, ऐंकेडेमिक समीक्षकों पर। साथ ही यह भी उल्लेख्य है कि प्रसादजी जैसे कवि आलाचका का मौलिक दशन चिंतन भारतीय है और भारतीय परंपराओं से प्रभावित भी। यहाँ तक कि जो स्थल पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित दोस्त हैं, वे भी सूक्ष्म परीक्षण एवं अध्ययन के फलस्वरूप पीरस्त्व तत्त्वों से ही सपोषित प्रतीत होते हैं। संयोगवश इस वष 'कामायनी' का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था, उसी वष—सन् १९३६ म युग का सामूहिक अचेतन का सिद्धांत अंगरेजी में अनूदित होकर 'द जनल ऑव सण्ट वायोलोमीउज हास्पिटल' में प्रकाशित हुआ था। इसमें सदेह नहीं कि प्रसादजी ने अपने कलाविषयक सिद्धांत और अपनी काव्य परिभाषा आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणों में प्रस्तुत की है और जहाँ युग न 'सामूहिक अचेतन का—समष्टि अवचेतना का—उल्लेख किया है वहाँ प्रसादजी 'सामूहिक चेतनता' का प्रयोग करते हैं। फिर भी उपलब्ध सामग्रियों के बहुविध परीक्षणों के अनंतर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्रसादजी युग के सिद्धांतों से, समकाल, परिचित नहीं थे।

निरालाजी का गभीर बहुपक्षीय मिलकर जा अमदसीय तत्त्व एकीभूत हो गए थे उनमें कुछ का उत्साहित मन तथा लारस का कृतिया में भी पाया जाता है। ये दावा कि आलाचक स्वच्छतावाद और निरालाजी की तरह कवित्व में 'पुरष गव' के समकाल हैं। हितमन न लीज आव घास' की भूमिका में मुक्त काव्य का दावा ही स्तवन किया है जसा परिमल में निरालाजी ने। निरालाजी की समीक्षात्मक रचनाओं में उनसे भूमिकाओं में, अनेक ऐसे सूत्र मिलते हैं जिनमें जात्र मन्त्राना का दण्डिमन्त्र एण्ड फलन आव पोषण' गार्भक निरुध का भावा का प्रतिफल सुनाई पड़ता है। पत्रों ने पाश्चात्य मनाविज्ञान और मन का

ध्रममाध्य अध्ययन किया था, जा उनके द्वारा प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक तथ्या और शब्दास घोतित होता है। 'उत्तरा' और 'आधुनिक कवि' की भूमिकाएँ तथा 'रुघ्व चेतना' जैसे निवध उनके गभीर पाश्चात्य इतिहास-दशन के अध्ययन का घोतन करत हैं। उ हान बार-बार इस देश की महान् विभूतियों और हिमालय-तुल्य उनके मन सिखरकी प्रगासा की है और अपने तरुण बुद्धिजीविया का सचेत करते हुए कहा है कि उ हें अन्य दगना के साथ अपन देश के दशन का भी सागो-पाग तुग्नात्मक अध्ययन करना चाहिए।

निष्कपख्येण कहा जा सकता है कि हिन्दी समीक्षा म जा कुछ लिखा जा चुका है और जा लिखा जा रहा है वह पाश्चात्य छोता से ही नितात उदगमित नहीं है। भिन्न भिन्न हिन्दी समीक्षकों की रचनाया के अनुशीलन से इसम सदेह नहीं रह जाता कि उनमें पर्याप्त मौलिकता भी है। अत यह ध्रम दूर हो जाना चाहिए कि हिन्दी का जपना मौलिक समीक्षाशास्त्र नहीं है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० नगेन्द्र, डा० धीरन्द्र वमा, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डा० माताप्रसाद गुप्त आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र प्रभृति साहित्यकारा के कर्तव्य पर किसी भी साहित्य का अभिमान हा सकता है। दूसरी बात यह है कि राष्ट्रीयता के अधमोह म हम यह न भूल बैठें कि पश्चिम के साहित्य-मनीषिया और विचारका ने हिन्दी भाषा-साहित्य के विकास म अपुव योगदान किया है। विलियम जोस, मक्सम्यूलर, प्रियसन पिशल, कीथ प्रभृति पाश्चात्य विद्वाना द्वारा सम्पन्न महत्कार्यों को हम कभी विस्मृत नहीं कर सकत। गोघक्रम म यह भी पाया गया है कि हिन्दी-साहित्य म प्रचलित जिन विधाया और वादा का उन्भव पश्चिम म हुआ है, उनके विवेचन मे पाश्चात्य मानदडा और पद्धतिया का प्रकृतया आश्रय लिया जाता है।

समग्रत यह निस्मकोच कहा जा सकता है कि हिन्दी समीक्षका न पाश्चात्य दाडमय से मधुर पोष्य सामग्री ग्रहण करके भी अपने व्यक्तित्व को तिरोभूत हाने नहीं दिया। वस्तुन पश्चिमा योगदान हिन्दी समीक्षा के बहुविध विकास के लिए श्रेयस्कर ही नहीं हुआ वरन् इसके स्वरूप को निखारन-धमकाने तथा इसे व्याप्ति प्रदान करन म भी स्मरणीय रहा है।

## सदभ-ग्रन्थ और पत्र-पत्रिकाएँ

### १-हिंदी

- धर्मतराम
- १—नई समीक्षा, हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस, वाराणस, जनवरी १९५०<sup>१</sup>
- २—साहित्य में समुक्त मोर्चा, हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, प्र०ति०२० ।
- अयो-यासिंह उपाध्याय
- १—रस-क-उस, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय और पटना, प्र०ति०२० ।
- २—रस-साहित्य तथा मांसासा, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, काशी १९५६ ।
- ३—हिंदी भाषा और साहित्य का विकास पुस्तक भंडार लहेरियासराय, स० १८६० वि० ।
- आनन्दप्रकाश दाक्षित
- ४—रस सिद्धांत स्वरूप विलक्षण राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६० ई० ।
- इंद्रनाथ मदान
- १—आलाचना और साहित्य नीलाम प्रकाशन, इलाहाबाद १९६४ ।
- २—प्रेमचंद एक विवचन, राजकमल प्रकाशन, १८५० ।
- ३—महादेवी चिंतनकला राष्ट्राट्टण प्रकाशा, दिल्ली, १९६५ ।

१ डा० बेंकट गर्मा ने जपन भाषा-निष्ठा हिंदी साहित्य में समालोचना का विभाग (दिल्ली, १९६२) नामक पाठ्यपत्र का प्रथमूची में इस पुस्तक के प्रथम संस्करण का प्रकाशन स० २००० वि० माना है । यस्तुत इस पत्र के प्रथम संस्करण का प्रकाशन सन् १९५० में (सदनुसार स० २००७ वि० में) हुआ था, न कि स० २००० वि० में । गर्माजी ने मुद्रित प्रतियाँ की संख्या (२०००) को प्रकाशन वर्ष मान लने की भूल की है ।

उत्पन्नानु सिद्ध

४—हिंदी कलाकार, हिन्दी भवन, लाहौर, १९४६  
महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग  
रत्ननऊ विश्वविद्यालय, स० २००८० वि०।

एन० पी० मन्ना

१—आलाचना इतिहास तथा सिद्धांत, राज-  
कमल प्रकाशन, वि० स० १९६४।

२—वाक्य की परख, साहित्य भवन, प्रयाग।

३—नाटक की परख, साहित्य भवन, प्रयाग,  
१९४८।

४—हास्य की रूपरेखा, हिंदी प्रचारक पुस्तक-  
माला, काशी १९५५।

आचारनाथ शर्मा

हिंदी निबंध का विकास, अनुसंधान-  
प्रकाशन कानपुर १९६२ ई०।

कहैया सिद्ध

पाठ-मपादन के सिद्धांत, महामना प्रकाशन  
मन्िर इलाहाबाद १९६२ ई०।

विगारोलाल गुप्त (अनु०)

डा० अब्राहम जाज प्रियमन कृत हिंदी  
साहित्य का प्रथम इतिहास, हिंदी प्रचारक  
पुस्तकालय, वाराणसी, १९६१ ई०।

कृष्ण देववारा

रस-शास्त्र और साहित्य-समीक्षा, भारतन्दु  
भवन, चण्डीगढ़, १९६५ ई०।

कृष्ण बिहारी मिश्र

दश और बिहारी, गंगा पुस्तकमाला, रत्ननऊ  
चतुर्थावृत्ति, स० २००६ वि०।

कृष्णवल्लभ जासा

नव्य हिंदी समाप्ता, ग्रन्थम, कानपुर,  
१९६६ ई०।

गणपति चन्द्र गुप्त

आचार्य हजाराप्रसाद द्विवेदा व्यक्तित्व  
एव साहित्य, भारतन्दु भवन, चण्डीगढ़  
१९६३ ई०।

गुलाब राय

१—अध्ययन और आस्वाद, आत्माराम

२—आलाचना कुसुमाजली, रूपकमल

३—वाक्य व रूप आत्माराम, १९४७ ई०।

४—कुछ उबल कुछ गहरे, शिवलाल, १९५५ ई०।

५—नवरम आरा, द्वि०स० १९३४ ई०।

६—मेरे निबंध आगरा, १९५५ ई०।



७—सिद्धांत और अध्ययन, छठा स० १८६५ ई०।

८—हिंदी नाट्य विमर्श।

गोपाल राय

हिंदी कथा साहित्य और उसका विकास पर पाठको की रचि का प्रभाव ग्रथ निकेतन, पटना, १९६५ ई०।

गोविंद त्रिगुणायत

शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत, भाग १-२, भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली, १९६२ ई०।

गारीशकर हीराचंद ओझा

कोशोत्सव-स्मारक-संग्रह वाशी नागरी प्रचारिणी सभा, १९८५ वि०।

जगदीश चंद्र माथुर

ओ मरे सपने, नीलाम प्रकाशन, इलाहाबाद, १९५३ ई०।

जगन्नाथप्रसाद शर्मा

१—कहानी का रचना विधान, हिंदी प्रचारक, काशी, १९५६ ई०।

२—प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन, सरस्वती मंदिर बनारस, १८४३।

३—हिंदी गद्य के युगनिर्माता, नदविशोर ब्रदस, काशी।

४—हिंदी की गद्य शैली का विकास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, की ओर से प्रकाशक इंडियन प्रेस, प्रयाग, स० १९८० वि०।

जयचंद्र राय

आचार्य रामचंद्र शुक्ल सिद्धांत और साहित्य, भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली, १९६५ ई०।

जयशंकर प्रसाद

काव्य और कला तथा अन्य निबंध, भारती भंडार, इलाहाबाद, स० १८६६।

दशरथ जाना

१—समीक्षा-शास्त्र, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १८५५ ई०।

२—हिंदी नाटक उद्भव और विकास राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १८५८ ई०।

दशरथ

१—आधुनिक मर्माक्षा लक्षण १८४५ ई०।

२—दायाबाद का पतन वाणा मन्दिर छपरा १८४८ ई०।

३—प्रतिक्रियाएं राजनमल प्रकाशन, १८६६।

४—साहित्य विना, गौम बुट डिपो, दिल्ली,  
१८५० ई०।

देवराज उपाध्याय

१—आधुनिक कथा-साहित्य और मनोविज्ञान,  
साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, १९५६।

२—कथा के तत्व, प्रथमाला पार्याय, पटना,  
१९५७।

३—साहित्य तथा साहित्यकार, मंगल प्रकाशन,  
जयपुर, १८६०।

देवीगवर अवस्थी

१—आलोचना और आलोचना, प्रज्ञा प्रकाशन,  
बानपुर, १९६१ ई०।

२—नयी कहानी सद्म और प्रकृति, अक्षर  
प्रकाशन, दिल्ली, १९६६ ई०।

३—विवेक व रंग, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,  
१९६५।

द्वेन्द्रनाथ वर्मा

१—छायावाद और प्रगतिवाद, प्रथमाला पार्याय,  
पटना, स० २००० वि०।

२—भाषा विज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन,  
दिल्ली, १८६६ ई०।

३—राष्ट्रभाषा हिंदी समस्याएँ और समाधान,  
राजकमल प्रकाशन १९६५ ई०।

४—ग्रजभाषा की विभूतियाँ मोतीलाल बनारसी  
दास, पटना, स० २००६ वि०।

५—हिंदी कविता का मूल्यांकन, मोतीलाल  
बनारसीदास, पटना, स० १८५२ वि०।

धीरेन्द्र वर्मा

१—परिषद निबंधावली, भाग १२।

२—विचारधारा, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग  
स० १८६८।

३—हिंदी अनुशीलन (धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक,  
१९६०)

नन्दुलारे बाजपेयी

१—आधुनिक साहित्य, भारती भंडार, इलाहाबाद,  
स० २००७ वि०।

२—कवि निराला वाणी वितान प्रकाशन,

वाराणसी १८६५ ई० ।

३—नया साहित्य नये प्रदत्त विद्यामन्दिर,  
वाराणसी १८५५ ई० ।

४—प्रकीर्णिका, अनुसन्धान प्रकाशन, वानपुर,  
१८६५ ई० ।

५—राष्ट्रभाषा की कुछ समस्याएँ, राजपाल  
एण्ड सन्स दिल्ली, १८६२ ई० ।

६—राष्ट्रीय साहित्य तथा अर्थनिबन्ध, विद्यामन्दिर,  
वाराणसी १८६२ ई० ।

७—सूर सदन इंडियन प्रेस, प्रयाग प्र० ति० २०

८—सूर-सुपमा, इंडियन प्रेस प्रयाग १८८६ वि०

९—हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी, इंडियन  
यूनिवर्सिटी प्रेस लखनऊ १९४५ ई० ।

१—अनुसन्धान और आलोचना, नेशनल पब्लिशिंग  
हाउस, दिल्ली, १९६१ ई० ।

२—अस्तु का काव्यशास्त्र, भारती भंडार,  
इलाहाबाद स० २०१४ वि० ।

३—आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ  
नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, द्वि० स०  
१९६२ ।

४—आधुनिक हिंदी नाटक साहित्यरत्न भंडार  
आगरा, तु० स० २००० वि० ।

५—आलोचक की आस्था, नेशनल पब्लिशिंग  
हाउस दिल्ली १९६६ ई० ।

६—वामावली के अध्ययन की समस्याएँ नेशनल  
पब्लिशिंग हाउस दिल्ली द्वि० स० १९६५ ई० ।

७—काव्य में उन्नत तत्व राजपाल एण्ड सन्स  
दिल्ली द्वि० स० १८६१ ई० ।

८—जैव और उनकी कविता गौतम युनिवर्सिटी  
दिल्ली १९४६ ई० ।

९—भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा नेशनल  
पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली स० २०१३ वि० ।

- १०—भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, द्वि० स० १९६३ ई०।  
११—रम-सिद्धांत, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६४।  
१२—रीति काव्य की भूमिका नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पंचम स० १९६४ ई०।  
१३—विचार और अनुभूति, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वि० स० १९६१ वि०।  
१४—विचार और विवेचन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वि० स० १९६४ ई०।  
१५—विचार और विश्लेषण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस द्वि० स० १९६१ ई०।  
१६—साकेत एक अध्ययन, माहित्य-रत्न भंडार, जगरा एकादश स० स० २०२१ वि०।  
१७—मुदिनानदन पत्र माहित्य रत्न भंडार आगगा पष्ठम स० २००६ वि०।

नलिनबिलोचन शर्मा

- १—दृष्टिकोण, पुस्तक भंडार पटना, १९४७ ई०।  
२—मानदंड, मोतीलाल बनारसीदास पटना, १९६३ ई०।  
३—नवेन के प्रपद्य मोतीलाल बनारसीदास, पटना १९५६ ई०।  
४—साहित्य का इतिहास दशेन विहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना, १९६० ई०।

नामवर सिंह

- १—आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ किनाब महल प्रयाग १९५४ ई०।  
२—इतिहास और आलोचना नया साहित्य प्रकाशन, काशी, १९६२ ई०।  
३—बहानी नयी बहानी लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद १९६६ ई०।  
४—छायावाद सरस्वती प्रेम, बनारस, १९५५ ई०।  
५—हिंदी के विवास में अपभ्रंश का योग साहित्य



५—श्री शंकराचार्य, हिंद, एवेडेमी, १९५० ई० ।

६—संस्कृतविवेचनी, १९६२ ई० ।

भगवत्स्वरूप मिश्र

हिंदी आलोचना उद्भव और विकास,  
साहित्य सदन, देहरादून, १९६१ ई० ।

भगीरथ मिश्र

१—अध्ययन, हिंदी-साहित्य भंडार, लखनऊ,  
१९६२ ई० ।

२—बला, साहित्य और समीक्षा, भारती साहित्य  
मंदिर, दिल्ली, १९६३ ई० ।

३—वाच्यशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन  
गोरखपुर, वि० सं० १९६३ ई० ।

४—साहित्य-साधना और समाज, अवध पब्लिशिंग  
हाउस, लखनऊ ।

५—हिंदी वाच्यशास्त्र का इतिहास, लखनऊ  
विश्वविद्यालय, सं० २००५ वि० ।

महादेवी वर्मा

१—साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध  
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,  
१९६६ ई० ।

२—यामा भारती भंडार इलाहाबाद  
१९३६ ई० ।

३—दीप शिखा भारती भंडार इलाहाबाद  
१९४२ ई० ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी

१—आलोचनाजलि इंडियन प्रेस, १९२८ ई० ।

२—कालिदास और उनकी कविता, राष्ट्रीय  
हिंदी मंदिर, जबलपुर सं० १९७७ वि० ।

३—कालिदास की निरक्षता, इंडियन प्रेस  
प्रयाग, १९११ ई० ।

४—नवध चरित चर्चा हरिदास एण्ड कंपनी,  
कलकत्ता, १९१६ ई० ।

५—रमन रजन साहित्यरत्न भंडार आगरा,  
सं० २००६ (सप्तम संस्करण) ।

६—लजाजलि, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता  
सं० १९८५ वि० ।

( ५६२ )

७—विश्वमावदेव चरित चर्चा, इंडियन प्रेस, प्रयाग,  
१९०७ ई० ।

८—विचार विमर्श, भारती भंडार, काशी, स०  
१९८१ वि० ।

९—समालोचना-समुच्चय, रामनारायणलाल,  
प्रयाग, १९३० ई० ।

१०—साहित्य-सदभ, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ,  
स० १९८५ वि० ।

११—साहित्य-सीकर, तरुण भारत प्रथावली, प्रयाग,  
१९४८ ई० ।

१२—सुकवि-सकीर्तन गंगा पुस्तकमाला लखनऊ,  
प्र० स० ।

१३—हिंदी बालिदास की आलोचना वासी,  
१९०१ ई० ।

मिश्रबधु

१—साहित्य-परिजात, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ ।

२—हिंदी नवरत्न, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ ।  
(मिश्रित हिंदी नवरत्न, गंगा पुस्तकमाला  
लखनऊ, स० २००५ वि०, पंचमावृत्ति ।

३—मिश्रबधुविनी (४भाग) गंगा पुस्तकमाला  
लखनऊ ।

रघुवरा

नाट्यकला नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली  
१९६१ ई० ।

रमाकान्त त्रिपाठी

त्रि-वि-गद्य-मीमांसा गिरी बुक हाउस  
रानपुर १९३२ ई० ।

रवीन्द्रनाथ वर्मा

१—शांखाय्य गान्ध्यालोचन और त्रिणी पर  
उपमा प्रमाण विश्वविद्यालय प्रयाग  
गोरखपुर १९६० ई० ।

२—त्रिणी काव्य पर आत्म प्रभाव पद्यका  
प्रकाशन रानपुर स० २०११ वि० ।

राजम रायच

१—काव्य कला और शास्त्र विनोद पत्रिका मन्दि  
रानपुर १९३८ ई० ।

२—काव्य कला और शास्त्र विनोद पत्रिका

( ५६३ )

मदिर, आगरा, स० २०१२ वि०

३—प्रगतिशील साहित्य के मानदंड, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, १९५४ ई० ।

४—महाकाव्य विवेचन विनोद पुस्तक मदिर, आगरा, १८५८ ई० ।

५—सगम और सघर्ष, किताब महल, इलाहाबाद, १९५३ ई० ।

१—कबीर का रहस्यवाद, साहित्य भवन, प्रयाग, १९३८ ई० ।

२—विचार-दशन प्रयाग, १९४८ ई० ।

३—सन कबीर, इलाहाबाद, १९५० ई० ।

४—साहित्यशास्त्र, राजकिशोर प्रकाशन, इलाहाबाद, १८५६ ई० ।

५—साहित्य-ममालोचना, साहित्य-मदिर, प्रयाग स० १९८० वि० ।

६—हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामनारायणलाल, इलाहाबाद १९३८ ई० ।

७—रिमझिम, शिवाजी आदि की भूमिकाएँ ।

१—तुलसी-साहित्य रत्नाकर सत साहित्य-प्रकाशन मडल पटना १९८६ वि० ।

१—चित्तामणि भाग १२ (भाग १—इडियन प्रेस भाग २—सरस्वती मदिर, काशी।)

२—जायसी ग्रथावली, नागरी प्रचारिणी सभा २००३ वि० ।

३—त्रिवेणी नागरी प्रचारिणी सभा काशी १९९५ वि० ।

४—गोम्बामी तुलसीदास काशी नागरी प्रचारिणी सभा, स० २००८ वि० ।

५—रस भीमामा, काशी नागरी प्रचारिणी सभा २००६ वि० ।

६—मूर्गदास सरस्वती मदिर काशी ।

७—हिंदी साहित्य का इतिहास नागरी प्रचारिणी

रामकुमार वर्मा

रामचंद्र द्विवेदी

गमचंद्र शुक्ल



सभा, नरम सस्वरण, २००८ वि० ।

रामदहिन मिश्र

१—वाच्य-दपण, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना,  
पटना, १९४० ई० ।

२—वाच्य मेळप्रस्तुत योजना, ग्रन्थमाला कार्यालय,  
पटना, १९४८ ई० ।

३—वाच्य विमल ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना ।

४—वाच्यलोक, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना,  
स० २००१ वि० ।

रामधारी सिंह 'दिनकर

१—वाच्य की भूमिका, उदयाचल, पटना,  
१९५१ ई० ।

२—चक्रवाल, उदयाचल, पटना ।

३—नीलकुसुम दिल्ली, १९५४ ई० ।

४—पत प्रमाद और मधिलीशरण उदयाचल  
पटना, १९६५ ई० ।

५—शुद्ध कविता की खोज उदयाचल पटना,  
१९६६ ई० ।

रामनारायण पांडेय

मनिकाव्य म रक्षस्यवाद नशनल पब्लिशिंग  
हाउस दिल्ली १९६६ ई० ।

राममूर्ति त्रिपाठी

रस विमल विद्यामंदिर वाराणसी, १९६५ ई० ।

रामविनायक शर्मा

१—आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलाचना  
विनोद पुस्तक मंदिर आगरा वि० म०  
१९५८ ई० ।

२—निर्गता शिवलाल अग्रवाल एण्ड क०,  
आगरा स० म० १९६२ ई० ।

३—प्रगति और परंपरा, किताब महल, इलाहाबाद,  
म० १९४८ ई० ।

४—प्रगतिशाल साहित्य की समस्याएँ विनोद  
पुस्तक मंदिर आगरा १९५४ ई० ।

५—प्रमच और उतका युग भरतचंद्र मुनीराम  
दिल्ली, वि० स० १९५५ ई० ।

६—भारत दु युग विनाद पुस्तक मंदिर आगरा  
चतुर्थ म० १९६३ ई० ।

७—भारते डु हरिश्चन्द्र, राजकमल प्रकाशन,  
दिल्ली, १९५३ ई०, द्वि० स० १९६६ ई० ।

८—भाषा और समाज, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस,  
दिल्ली, १९६१ ई० ।

९—भाषा, साहित्य और सस्कृति, विताव  
महल, १९५४ ई० ।

१०—विराम चिह्न, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा,  
१९५४ ई० ।

११—स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, हिंदी  
प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९५६ ई० ।

१२—लोक जीवन और साहित्य, विनोद पुस्तक  
मंदिर, आगरा ।

१३—सस्कृति और साहित्य, विताव महल इलाहा-  
बाद, १९५६ ई० ।

रामानारायण सुधागु

१—काव्य में अभिव्यक्तिवाद, ज्ञानपीठ प्राइवेट  
लि०, पटना, चतुर्थ स०, २०१६ वि० ।

२—जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धांत,  
ज्ञानपीठ प्रा० लि०, तृ० स० १९६३ ई० ।

३—मपत्र भाषा हिंदी, दिल्ली, १९६५ ई० ।

४—साहित्यिक निबंध, राजकमल प्रकाशन,  
१९६४ ई० ।

५—हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, नागरी  
प्रचारिणा समा, १९६५ ई० ।

६—हिंदी के दस प्रबंधकाव्य (संपादित), पराग  
प्रकाशन, पटना, १९६६ ई० ।

रामेश्वर बाण्ये

१—आधुनिक हिंदी साहित्य, हिन्दी परिषद्  
प्रयाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, १९४१ ई० ।

२—आधुनिक हिंदी साहित्य की मृत्तिका, हिंदी  
परिषद् प्रयाग, प्रयाग विश्वविद्यालय  
१९५२ ई० ।

३—गर्भित आत्मना शास्त्र हिन्दी समिति  
शुभा विभाग उत्तर प्र०, १९६५ ई० ।

४—फोट विलियम कालेज, इलाहाबाद, स०  
२००४ वि० ।

५—निबन्ध-नवनीत, विश्वविद्यालय प्रकाशन,  
गोरखपुर, १९५० ई० ।

६—भारत-दु की विचारधारा, शक्ति वाचालय,  
प्रयाग, १९४८ ई० ।

७—भारत-दु हरिश्चन्द्र, साहित्य भवन (प्रा०)  
लि०, इलाहाबाद, वि० स० १९५६ ई० ।

८—साहित्य चिन्तन, बंबई, १९५६ ई० ।

९—हिंदी साहित्य का इतिहास, मालवीय पुस्तक  
भवन, लखनऊ, १९५२ ई० ।

१०—हिंदुई साहित्य का इतिहास (अनुवाद) ।  
पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, हिंदु  
स्नानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, १९५२ ई० ।

श्रीगणेश गुप्त

विजयेन्द्र स्नातक

१—आलोचना रामचन्द्र शुक्ल (डा० गुलाबराय  
और विजयेन्द्र स्नातक द्वारा संपादित),  
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, वि०स०  
१९६२ ई० ।

२—वामनाथनी दत्त, दिल्ली, १९५२ ई० ।

३—चिन्तन का क्षण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस,  
दिल्ली, १९६६ ई० ।

४—नवभारत-निबन्ध, नेशनल पब्लिशिंग  
हाउस, दिल्ली, १९५० ई० ।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

१—बिहारी की वाचस्पति, वाणी विज्ञान प्रकाशन,  
दिल्ली सं०, २०१६ वि० ।

२—वाचस्पति-विमर्श, हिंदी साहित्य कुटीर  
वाराणसी, अगस्त स० २०१८ वि० ।

३—हिंदी का सामयिक साहित्य, गररवती  
मन्दि कान्हा, स० २००८ वि० ।

४—हिंदी में आधुनिक साहित्य का विकास, साहित्य  
नवक वाचस्पति कान्हा स० १९८६ वि० ।

५—हिंदी साहित्य का अन्तर्गत, वाणी-विज्ञान ।

(पचाकर-यचामृत, घनबानद-ववित्त, पद्या कर प्रयावली, भूयण आदि सपादित ग्रन्था की भूमिकाएँ) ।

बजरत्न दास

१—भारतन्दु प्रयावली (सपा०), काशी नागरी प्रचारिणी सभा, २००७ वि० प्रथम खंड ।

२—भारत दु हरिश्चंद्र, हिंदुस्तानी एवेडेमी, प्रयाग १८४८ ई० ।

३—हिंदी नाट्य साहित्य, हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, १९९५ वि० ।

शचीरानी गुट्टू

१—बलादशन, साहनी प्रकाशन, दिल्ली, १९६६ ई० ।

२—हिंदी के बालोचक, आत्माराम एड सस, दिल्ली, १९५५ ई० ।

शान्तिप्रिय द्विवेदी

१—आधान, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९५० ई० ।

२—कवि और काव्य, इंडियन प्रेस, प्रयाग, १९३६ ई० ।

३—ज्योति विहग हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २००८ वि० ।

४—युग और साहित्य इंडियन प्रेस, प्रयाग, १९४१ ई० ।

५—वृन्त और विकास, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५६ ।

६—साकल्य विद्या मंदिर प्रस, वाराणसी, १८५५ ई० ।

७—साहित्यिकी, प्रथमाला कार्यालय, बांकीपुर १८३८ ई० ।

८—सचारिणी इंडियन प्रेस प्रयाग, १९४१ ई० ।

९—सामयिकी ज्ञानमंडल काशी २००१ वि० । पश्चात्य काव्य-शास्त्र के सिद्धांत अंगार प्रकाशन, दिल्ली १९६५ ई० ।

शान्तिस्वरूप गुप्त

शिवदान सिंह चौहान

१—आलोचना के मान रणजीत प्रिंटर्स एण्ड

पब्लिशस, दिल्ली, १९५६ ई० ।

२—आलोचना के सिद्धांत, राजकमल प्रकाशन,  
१९६० ई० ।

३—आलोचना इतिहास तथा सिद्धांत, राजकमल  
प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, १९६४ ई० ।

४—प्रगतिवाद, प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद,  
१९४६ ई० ।

५—साहित्य की परख, इडिया-पब्लिशस, प्रयाग,  
१९४८ ई० ।

६—साहित्य की समस्याएँ, आत्माराम एंड सस,  
दिल्ली, १९५८ ई० ।

७—साहित्यानुशीलन, आत्माराम एंड सस, दिल्ली,  
१९५५ ई० ।

८—हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष, राजकमल  
प्रकाशन, वि० सं०, १९६१ ई० ।

शिवनाथ

१—आचार्य रामचंद्र शुक्ल, सरस्वती मंदिर,  
बनारस, वि० सं० २००५ वि० ।

२—हिंदी आलोचना की अर्वाचीन प्रवृत्तियाँ,  
राजकमल प्रकाशन, १९५३ ई० ।

श्यामाशरणदास

१—गद्यबुगुमावली (प्रकाशन ? प्रस्ताव  
तिथि ?) हीरालाल द्वारा लिखित प्रस्तावना,  
१९२५ ई०) ।

२—गोम्वामो गुल्तीदास, हिदुस्तानी एनडेमा,  
प्रयाग, १८३१ ई० ।

३—रुत रदुय, इदियन प्रेम, प्रयाग, २००६  
वि० ।

४—गान्ध्यालोका, इडिया प्रेम, प्रयाग वि० सं०  
१९६४ वि० । (बई अय मंदरुण भी  
उत्तम) ।

५—गान्धि भाषा और गान्धिय, इदियन प्रेम  
प्रयाग १९८० वि० ।

६—गान्धि गान्धिय, इदियन प्रेम प्रयाग, बयम

स० २०१३ वि० ।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन १—आत्मनेपद, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी,  
“अज्ञेय” १९६० ई० ।

२—आधुनिक हिंदी साहित्य, अभिनव भारती  
ग्रन्थमाला, कलकत्ता, १९४० ई० ।

३—तारसप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ, वि स०  
१९६६ ई० ।

४—त्रिशकु, सरस्वती प्रेस, बनारस, १९४५ ई० ।

५—रूपावरा (काशी, १९६०) की भूमिका ।  
अगरेजी कन्टेम्पररी इंडियन लिटरेचर  
(साहित्य एकेडेमी, दिल्ली, १९५०) में  
‘हिंदी’ शीर्षक निबंध ।

सुमन झा

सुमित्रानन्दन पत्त

अज्ञेय का काव्य, कानपुर १९६४ ई० ।

१—उत्तरा (भूमिका) ।

२—कला और संस्कृति, किताब महल, इलाहाबाद,  
१९६५ ई० ।

सूयकान्त त्रिपाठी ‘निराला’

१—चाबुक, निरुपमा प्रकाशन, १९६२ ई० ।

२—सप्रह, निरुपमा प्रकाशन प्रयाग, १९६३ ई० ।

हजारी प्रसाद द्विवेदी

१—कबीर, हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर बंबई, चतुर्थ  
स० १९५२ ई० ।

२—कालिदास की लालित्य याजना, नवय निवेतन  
वाराणसी, १९६५ ई० ।

३—नाट्यशास्त्र की भारतीय परंपरा और दश-  
रूपक, राजकमल प्रकाशन, १९६३ ई० ।

४—विचार और वितक, साहित्य भवन (प्रा०)  
वि०, इलाहाबाद, १९६१ ई० ।

५—साहित्य सहचर, नैवेद्य निवेतन, वाराणसी,  
१९६५ ई० ।

६—सूर-साहित्य, हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर (प्रा०)  
लि० बंबई, स० स० १९६१ ई० ।

७—हमारी साहित्यिक समस्याएँ, अभिनव प्रकाशन  
पटना, १९४६ ई० ।

- ८—हिंदी साहित्य, अतरचंद कपूर एण्ड सन्स,  
देहली, अम्बाला, आगरा, स० २००६ वि०।
- ९—हिंदी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्र  
भाषा परिषद पटना, १९५२ ई०।
- १०—हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी ग्रन्थ  
रत्नाकर, बबई, १९४० ई०।



२-अग्रंजो  
(Select Bibliography)

- Atkins, J W H                      English Literary Criticism  
17th and 18th Centuries, Lon  
don 1951
- Bateson, F W                      Wordsworth A Re interpre-  
tation London 1956
- Bosanquet Bernard                A History of Aesthetic, Lon-  
don 1934
- Bradley, A C                      Oxford Lectures on Poetry,  
London 1962
- Caudwell Christopher              1 Studies in a Dying Culture,  
London, 1951
- Cohen J M                      A History of Western Litera-  
ture London 1961
- Collingwood R G                  The Principles of Art, Oxford  
1963
- Cooper Lane                      The Poetics of Aristotle Its  
Meaning and Influence New  
York 1963
- Cruttwell, Patrick                *The Shakespearean Moment*,  
New York, 1960
- Daches David                      1 Literary Essays, London  
and Edinburgh. 1956  
2 A Study of Literature for  
Readers and Critics, Ithaca  
New York, 1948
- Eisinger Chester E                Fiction of the Forties, Chicago  
and London, 1963



- Eliot, T S  
 1 The Sacred Wood, London 1957  
 2 On Poetry and Poets, London, 1961
- Frye, Northrop  
 Anatomy of Criticism, Princeton, 1957
- Ghiselin, Brewster,  
 The Creative Process, A Mentor Book 1955
- Gibson, Robert (ed )  
 Modern French Poets on Poetry, Cambridge 1961
- Hadas Moses  
 A History of Literature, New York, 1960
- Highet, Gilbert  
 The Classical Tradition, Oxford 1949
- Holloway, John  
 The Chartered Mirror, London 1960
- Hudson, William Henry  
 An Introduction to the Study of Literature, London, 1958
- Hyman, S E  
 The Armed Vision, New York, 1952
- Jarrell  
 Poetry and The Age, New York 1962
- Jones Edmund D  
 English Critical Essays, XIX Century The world's Classics 1945
- Jung C G  
 Collected Works
- Keats John  
 Selected Letters, The World's Classics, 1954
- Kris Ernest  
 Psychoanalytic Explorations in Art, London 1953
- Leavis F R (ed )  
 Scrutiny, Vols 1-19 Cambridge, 1963

- Levin Harry (ed ) Perspectives of Criticism Cambridge 1950
- Levy G R. The Sword From the Rock, London 1953
- Lieder Paul Robert and Withington, Robert The art of Literary Criticism, New York, 1941
- Maritain, Jacques Creative Intuition in Art and Poetry, London 1953
- Narasimhaiah C D F R Leavis Some Aspects of His work, Mysore 1963
- Neff Emery A Revolution in European Poetry, 1660 1900 New York, 1940
- Ogilvie R M Latin and Greek, London, 1964
- Orsini Gian N G Benedetto Croce, Southern Illinois University Press, 1961
- Orborne Harold Aesthetic and Criticism, London, 1955
- Philipson Morris Aesthetics Today, Cleveland and New York 1961
- Powell A E The Romantic Theory of Poetry, London, 1926
- Praz, Mario The Romantic Agony, O U P 1933
- Press John The Chequer d Shade, London, 1958
- Read Herbert Wordsworth, London, 1959
- Richards I A Principles of Literary Criticism London 1947
- Rickert Edith Chaucer s World, New York and London, 1948

- Roberts, W Rhys *Greek Rhetoric and Literary Criticism*, New York, 1963
- Robertson D W (Jr) *A Preface to Chaucer*, Princeton, 1962
- Sansom, Clive *The World of Poetry*, London, 1959
- Sartre, Jean Paul  
 1 *What is Literature?* London, 1950  
 2 *Essays in Aesthetics*, London, 1964
- Schorer Mark, Miles, Josephane and McKenzie *Criticism* New York, 1958
- Sparshott F E *The Structure of Aesthetics*, Toronto and London 1963
- Times Publishing Company, The *The Critical Moment* London, 1964
- Valery Paul *The Art of Poetry* (tr by Denise Folliot) London, 1958
- Wain John *Essays on Literature and Ideals*, London, 1963
- Weinberg, Bernard *A History of Literary Criticism in the Italian Renaissance*, 2 Vols, Chicago, 1961
- Wellek, Rene and Warren Austin *Theory of Literature*, New York, 1949
- Wellek Rene  
 1 *A History of Modern Criticism 1750-1950 (The Romantic Age)* London, 1955  
 2 *Concepts of Criticism*, New Haven and London, 1963
- Wimsatt William K (Jr) and Cleanth Brooks *Literary Criticism A Short History*, New York 1959

३—पत्र पत्रिकाएँ

- १—श्रवतिका
  - २—आलोचना
  - ३—कल्पना
  - ४—माध्यम
  - ५—हिमालय
  - ६—हिन्दी अन्तर्जालन
  - ७—नागरी प्रचारिणी पत्रिका
  - ८—साहित्य
  - ९—नई धारा
  - १०—द टाइम्स लिट्ररी सप्लिमेंट
  - ११—एनकाउण्टर
  - १२—एसेज इन ब्रिटिसिज्म
  - १३—स्टूडिनी
-

- Roberts, W Rhys      *Greek Rhetoric and Literary Criticism*, New York, 1963
- Robertson D W (Jr)      *A Preface to Chaucer*, Princeton, 1962
- Sansom, Clive      *The World of Poetry*, London, 1959
- Sartre Jean Paul      1 *What is Literature?* London, 1950  
                                  2 *Essays in Aesthetics*, London 1964
- Schorer, Mark Miles Josephine and McKenzie      *Criticism* New York, 1958
- Sparshott, F E      *The Structure of Aesthetics*, Toronto and London 1963
- Times Publishing Company, The      *The Critical Moment*, London, 1964
- Valery Paul      *The Art of Poetry* (tr by Denise Folliot) London, 1958
- Wain John      *Essays on Literature and Ideals*, London, 1963
- Weinberg, Bernard      *A History of Literary Criticism in the Italian Renaissance*, 2 Vols, Chicago, 1961
- Wellek Rene and Warren, Austin      *Theory of Literature*, New York 1949
- Wellek, Rene      1 *A History of Modern Criticism 1750-1950 (The Romantic Age)*, London 1955  
                                  2 *Concepts of Criticism*, New Haven and London, 1963
- Wimsatt William K (Jr) and Cleanth Brooks      *Literary Criticism A Short History*, New York, 1959

३—पत्र-पत्रिकाएँ

- १—अवतिका
- २—आलाचना
- ३—कल्पना
- ४—माध्यम
- ५—हिमालय
- ६—त्रिती अनशीलन
- ७—नागरी प्रचारिणी पत्रिका
- ८—माहित्य
- ९—नेई घाग
- १०—द टाइम्स लिटररी सप्लिमेंट
- ११—एनकाउटर
- १२—एसेज इन क्रिटिसिज्म
- १३—स्टुडिनी